पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विरचित

संस्कृत-

व्याकरण-कौमुदी

अनुवादकः—

पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

७२
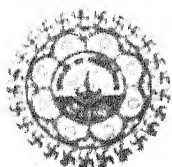
पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विरचित

संस्कृत—

व्याकरण-कौमुदी

(प्रथम भाग)

अनुवादकः—

पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री
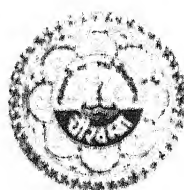
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०८

चतुर्थ संस्करण १९९३ ई०
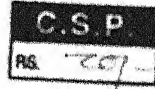
अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

आमुख

स्व० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महोदय के द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण-कौमुदी संस्कृत भाषा सीखने की अद्वितीय पुस्तक है। अब तक लाखों छात्र इससे संस्कृत भाषा सीखने में समर्थ हुए हैं। इस संस्कृत व्याकरण-कौमुदी का यह नवीन संस्करण बंगला से हिन्दी में अनूदित होकर चार भागों प्रकाशित हुआ है।

इस प्रथम भाग में वर्ण, सन्धि, णत्व-षत्व-विधान, लिंग, विशेष्यविशेषण, उद्देश्य-विधेय, सुबन्त-प्रकरण, शब्दरूप, अव्यय, उपसर्ग आदि का पूर्ण विवेचन किया गया है। अभ्यास के लिए प्रत्येक अध्याय के अन्त में अनुवाद के उदाहरण और परीक्षा में आने वाले प्रश्न आदि अनेक नये विषय संयोजित कर दिये गये हैं। इससे व्याकरण के नियम सीखने के साथ-साथ शब्दों के प्रयोग तथा अनुवाद करने में विद्यार्थियों को बहुत ही सहायता मिलेगी।

स्वतन्त्र भारत में संस्कृत का पठन-पाठन बहुत बढ़ गया है। हमारे सारे धर्म-कृत्य संस्कृत में निबद्ध हैं तथा समस्त ज्ञान-भण्डार संस्कृत ग्रन्थों में निहित है। इस कारण अनेक शिक्षित व्यक्ति आजकल संस्कृत भाषा सीखना चाहते हैं। हमारे द्वारा सम्पादित तथा पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विरचित 'संस्कृत व्याकरण की उपक्रमणिका' पढ़कर 'व्याकरण-कौमुदी' पढ़ने से वे अनायास संस्कृत भाषा उत्तम रूप से सीख सकेंगे।

निवेदक

गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

संस्कृत

व्याकरण-कौमुदी

प्रथम भाग

वर्ण-निर्णय

१—वर्ण द्विविध हैं; स्वर और व्यंजन।[1] जो वर्ण अन्य वर्ण की सहायता बिना स्वतन्त्र रूप से उच्चारित होते हैं, उन्हें स्वर-वर्ण कहते हैं। जो वर्ण स्वर-वर्ण के आश्रय के बिना स्वतन्त्र रूप से उच्चारित नहीं हो सकते, उन्हें व्यंजन-वर्ण कहते हैं।

१—१, अ इ उ ण्। २, ऋ लृ क्। ३, ए ओ ङ्। ४, ऐ औ च्। ५, ह य व र ट्। ६, ल ण्। ७, ञ म ङ ण न म्। ८, झ भ ञ्। ९, घ ढ ध ष्। १०, ज ब ग ड द श्। ११, ख फ छ ठ थ च ट त व्। १२, क प य्। १३, श ष स र्। १४, ह ल्। ये १४ माहेश्वर सूत्र हैं। इनके प्रथम ४ में स्वरवर्ण और परवर्ती १० में व्यजनवर्ण हैं। हर एक सूत्र के अन्त में एक व्यंजनवर्ण है, ये इत् हैं अर्थात् इन व्यंजन वर्णों का लोप हो जाता है। 'आदिरन्त्येन सहेता' आदि वर्ण अन्तिम वर्ण के साथ मिलकर अपनी तथा बीच के वर्णों की संज्ञा होती है। संज्ञा की गणना करते समय इत् छोड़कर गणना करनी होती है। जैसे—अण् कहने से ण् को छोड़ कर अ इ उ समझना चाहिए। ऐसे ही अक् कहने से अ इ उ ऋ लृ; एङ् कहने से ए ओ; एच् कहने से ए ओ ऐ औ; अच् कहने से सारे स्वरवर्णों; हल् कहने से सारे व्यंजन वर्णो को समझना होगा। उक्त १४ सूत्रों से निम्नलिखित संज्ञाएँ निर्दिष्ट हुई हैं। जैसे—अण् (अ इ उ)। इण् (इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल)। अक्, इक्, उक्। एङ्।

स्वरवर्ण

२—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ, इन १३ वर्णों को स्वर कहते हैं।[1] स्वर दो प्रकार के होते हैं—ह्रस्व और दीर्घ। अ इ उ ऋ ऌ ये ५ ह्रस्व स्वर हैं। आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ, ये ८ दीर्घ स्वर हैं। ऌ का दीर्घ नहीं होता।

व्यंजनवर्ण

३—क् ख् ग् घ् ङ्, च् छ् ज् झ् ञ्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म्, य् र् ल् व् श् ष् स् ह् ं :[2]। ये ३५ व्यंजन वर्ण हैं[3]। इनमें क् से म् तक २५ को स्पर्शवर्ण कहते हैं[4]। स्पर्शवर्ण

अच्, इच्, एच्, ऐच्। अट्। अण्, षण्। अम्, यम्, ङम्। यण्। झष्, भष्। अश्, हश्, बश्, जश्, झश्, यश्। छव्। यय्, मय्, झय्, खय्। घर्, झर्, खर्, चर्, शर्। अल्, हल्, बल्, रल्, झल्, शल्।

१. वैयाकरण अ इ उ ऋ ए ऐ ओ औ इन आठों को दूराह्वान, गान तथा रोदन-जनित सुदीर्घ उच्चारण में प्लुत संज्ञा देकर इनकी गिनती प्लुत स्वरों में करके स्वतन्त्र वर्ण मानते हैं। इस नियम से स्वरों की संख्या २१ है। किसी मत से प्लुत ऌ भी है। उसके अनुसार स्वर २२ हैं। 'मुग्ध-बोध' व्याकरणकार बोपदेव दीर्घ ॡ स्वीकार करते हैं। तदनुसार स्वर २३ हैं।

२. अनुस्वार और विसर्ग णत्व काल में स्वरों में और स्वरसन्धिकाल में व्यंजनों में गिने जाते हैं। (स्वरता णत्वविधौ, व्यंजनता स्वरसन्धौ)। इस प्रकार उभयधर्मी होने के कारण अनेक वैयाकरण ही इन्हें स्वर के अन्त में तथा व्यंजन के पूर्व पढ़ते हैं।

३. क्ष् को कुछ लोग स्वतंत्र वर्ण मानते हैं। परन्तु क् और ष् मिलकर क्ष् होता है इस कारण अधिकांश वैयाकरण उसे स्वतंत्र वर्ण नहीं मानते। वस्तुतः क्ष् संयुक्त वर्ण है।

४. (कादयो मावसानाः स्पर्शाः) जिह्वा का अग्रभाग, उपाग्र, मध्य

५ भागों में विभक्त हैं[१]। क् ख् ग् घ् ङ् ये पाँच कवर्ग; च् छ् ज् झ् ञ् ये पाँच चवर्ग; ट् ठ् ड् ढ् ण् ये पाँच टवर्ग; त् थ् द् ध् न् ये पाँच तवर्ग; और प् फ् ब् भ् म् ये पाँच पवर्ग, य् र् ल् व् ये चार अन्तःस्थ वर्ण हैं[२]। श् ष् स् ह, इनका नाम ऊष्मवर्ण है[३]। ° अनुस्वार और : विसर्ग को अयोगवाह[४] वर्ण कहते हैं।[५]

प्रत्येक वर्ग के प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श् ष् स् को अघोषवर्ण कहते हैं। वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण तथा य् र् ल् व् ह को घोषवान वर्ण कहते हैं। हर वर्ग के प्रथम, तृतीय, पञ्चम वर्ण तथा य् र् ल् व को अल्पप्राण और वर्ग के द्वितीय, चतुर्थ वर्ण तथा श् ष् स् ह को महाप्राण वर्ण कहते हैं।

और मूल, इन स्थानों का स्पर्श करके इन वर्णों का ऊच्चारण होता है, इस कारण इनका नाम स्पर्शवर्ण पड़ा है।

१. कु चु टु तु पु।

२. (य र ल वा अन्तःस्थाः) स्पर्शवर्ण और ऊष्मवर्ण इन दोनों के बीच में निर्दिष्ट हैं, इसलिए य् र् ल् व् इन चार को अन्तःस्थ अर्थात् मध्यस्थित वर्ण कहते हैं।

३. (श ष स हा ऊष्माणः) ये वर्ण उच्चारण से मुख में उष्णता उत्पन्न करते हैं इस कारण इन्हें ऊष्मवर्ण कहते हैं।

४ अ इ उ ण् आदि माहेश्वर सूत्र में अनुस्वार और विसर्ग का योग अर्थात् उल्लेख नहीं है, इस कारण ये 'अयोग' तथा उसके न रहने पर भी अयोग का निर्वाह करते हैं, इस कारण 'वाह' हैं। इन दोनों धर्मों से युक्त होने से अनुस्वार और विसर्ग को अयोगवाह नाम प्राप्त हुआ है।

५. विसर्ग के और भी दो प्रकार हैं—जिह्वामूलीय और उपध्मानीय।

वर्णों का उच्चारण-स्थान-निर्णय

४—अ आ क् ख् ग् घ् ङ् ह् का उच्चारणस्थान कण्ठ है; इसलिए इन्हें कण्ठ्य वर्ण कहते हैं।[१]

५—इ ई च् छ् ज् झ् ञ् य् श् का उच्चारण-स्थान तालु है, इसलिए इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।[२]

६—ऋ ॠ ट् ठ् ड् ढ् ण् र् ष् का उच्चारण-स्थान मूर्धा है; इसलिए इन्हें मूर्धन्य वर्ण कहते हैं।[३]

७—ऌ त् थ् द् ध् न् ल् स् का उच्चारण-स्थान दन्त है; इसलिए इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।[४]

८—उ ऊ प् फ् ब् भ् म् का उच्चारण-स्थान ओष्ठ है; इसलिए इन्हें ओष्ठ्य वर्ण कहते हैं।[५]

९—ए ऐ का उच्चारण-स्थान कण्ठ और तालु है; इसलिए इन्हें कण्ठ्य-तालव्य वर्ण कहते हैं।[६]

१०—ओ औ का उच्चारण-स्थान कण्ठ और ओष्ठ है; इसलिए इन्हें कण्ठ्यौष्ठ्य वर्ण कहते हैं।[७]

११—अन्तःस्थ व का उच्चारण-स्थान दन्त और ओष्ठ है; इसलिए इसे दन्त्यौष्ठ्य वर्ण कहते हैं।[८]

१२—अनुस्वार का उच्चारण-स्थान नासिका है; इसलिए इसे अनुनासिक वर्ण कहते हैं।[९]

१३—विसर्ग आश्रयस्थानभागी है अर्थात् यह जिस वर्ण का आश्रय लेकर रहता है, उस वर्ण का उच्चारण-स्थान ही इसका उच्चारणस्थान हो जाता है।[१०]

---

१. अ-कु-ह-विसर्जनीयानां कण्ठः। २. इ-चु-य-शानां तालु। ३. ऋ-टु-र-षाणां मूर्धा। ४. ऌ तु ल-सानां दन्ताः ५. उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ। ६. एदैतोः कण्ठतालु। ७. ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। ८. वकारस्य दन्तौष्ठम्। ९. नासिका अनुस्वारस्य। १०. अनेक वैयाकरण कण्ठ को विसर्ग का उच्चारण स्थान बताते हैं।

१४—ङ् ञ् ण् न् म् ये वर्ग के पञ्चम वर्ण जिह्वामूल, तालु आदि की तरह नासिका से भी उच्चारित होते हैं; इसलिए इन्हें अनुनासिक वर्ण कहते हैं।[1]

अभ्यास

१—परिभाषा बताओ—

ह्रस्व स्वर, प्लुत स्वर, घोषवान् वर्ण, अघोष, अन्तःस्थ वर्ण ऊष्मवर्ण, अयोगवाह वर्ण।

२—अन्तःस्थ वर्ण क्या है और उसे वैसा क्यों कहा जाता है ?

संस्कृत में किस-किस वर्ण को अल्पप्राण और महाप्राण कहते हैं ?

४—दीर्घ स्वर और प्लुत स्वर का भेद बताओ।

परिभाषा

प्रकृति—क्रियावाचक या वस्तुवाचक अथवा वस्तु के विशेषणवाचक शब्द को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति दो प्रकार की है—धातु और प्रातिपदिक।

धातु—जिससे क्रिया व्यक्त होती है उसे धातु कहते हैं।[2]

प्रातिपदिक—जो शब्द वस्तुवाचक या वस्तु का विशेषणवाचक है उसे प्रातिपदिक कहते हैं।[3] वस्तुवाचक—देह, वृक्ष, नदी, वन, पर्वत, सोमा, सुख, चन्द्र, सूर्य, तरु, लता, जल आदि। वस्तु के विशेषण-वाचक—सुन्दर, कुत्सित, नूतन, पुरातन, प्रबल, दुर्बल, कठिन, कोमल, बृहत्, क्षुद्र आदि।

प्रत्यय—धातु और प्रातिपदिक के उत्तर जो लगता है उसे प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय पाँच प्रकार के हैं—विभक्ति, कृत्, तद्धित, स्त्री-प्रत्यय, धात्ववयव।

विभक्ति—धातु के उत्तर ति, तस्, अन्ति, आदि और प्रातिपदिक

१. ञ म ङ ण नानां नासिका च।

२. भूवादयो धातवः। ३. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।

के उत्तर सु, औ, जस् आदि जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें विभक्ति कहते हैं।[१]

कृत्—धातु के उत्तर तव्य, अनीय, य, तृ, त आदि जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें कृत् कहते हैं।

तद्धित—प्रातिपदिक के उत्तर, अ, य, त, त्व आदि जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें तद्धित कहते हैं।

स्त्री प्रत्यय—स्त्रीलिंग में आ, ई आदि जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें स्त्री-प्रत्यय कहते हैं।

धात्ववयव—धातु के उत्तर इ (णिच्), स (सन्) आदि और प्रातिपदिक के उत्तर य, काम्य आदि जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें धात्ववयव कहते हैं।

पद—धातु और प्रातिपदिक में विभक्ति युक्त होने पर उन्हें पद कहते हैं।[२]

आदेश—प्रकृति और प्रत्यय के जो रूप-परिवर्तन होते हैं उन्हें आदेश कहते हैं। जैसे—वृद्ध शब्द के स्थान में ज्य, स्था धातु के स्थान में तिष्ठ, या विभक्ति के स्थान में इ, अन् विभक्ति के स्थान में उः इत्यादि।

गुण—स्वर का गुण कहने से प्रतीत होगा कि इ ई के स्थान में ए; उ, ऊ के स्थान में ओ; ऋ ॠ के स्थान में अर् और लृ के स्थान में अल् होता है।[३]

वृद्धि—स्वर की वृद्धि कहने से यह प्रतीत होगा कि अ के स्थान में आ; इ, ई, ए के स्थान में ऐ; उ, ऊ, ओ के स्थान में औ; ऋ, ॠ के स्थान में आर् और लृ के स्थान में अल् होता है।[४]

लघु और गुरु—ह्रस्व को लघु और दीर्घ स्वर को गुरु कहते हैं। संयुक्त वर्ण परे रहने से ह्रस्व स्वर भी गुरु रूप से गिने जाते हैं।[५]

---

१. विभक्तिश्च। २. सुप्तिङन्तं पदम्। ३. अदेङ्गुणः। ४. वृद्धिरादैच्।
५. ह्रस्वं लघु। संयोगे गुरु। दीर्घञ्च।

उपसर्ग—यदि क्रिया के साथ संयुक्त रहे तो प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर् (निस्), दुर् (दुस्), अभि, वि, अधि, सु, उद्,[1] अति, नि, प्रति, परि, अपि, उप, आ (ङ्), इन बीस शब्दों को उपसर्ग कहते हैं।[2]

सवर्ण—समान स्थान तथा प्रयत्न द्वारा उच्चारित होने वाले वर्णों को सवर्ण कहते हैं।[3] जैसे—अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ आदि।

टि—स्वरों में जो अन्तिम है वहाँ तक के सभी वर्णों की टि संज्ञा होती है।[4]

उपधा—अन्तिम वर्ण के पूर्व वर्ण को उपधा कहते हैं।[5]

●

सन्धि-प्रकरणम्

दो वर्ण परस्पर अत्यन्त निकटवर्ती होने से मिल जाते हैं, उस मिलन को सन्धि कहते हैं।[6]

सन्धि में कभी दो वर्णों का मिलन होता है; कभी पूर्व वर्ण विकृत (रूपान्तरित) होता है; कभी परवर्ण विकृत होता है; कभी दोनों वर्ण ही विकृत होते हैं; कभी पूर्ववर्ण का लोप होता है; कभी परवर्ण का लोप होता है; यथा—(मिलन) महान् + आग्रहः = महानाग्रहः; (पूर्ववर्ण विकृत)—तत् + जयः = तज्जयः; (परवर्ण विकृत)—यज् + नः = यज्ञः; (दोनों वर्ण विकृत)—तत् + शक्तिः = तच्छक्तिः; (पूर्ववर्ण लोप) ऋषयः + ऊचुः = ऋषय ऊचुः; (परवर्ण लोप) सखे + अवेहि = सखेऽवेहि।

---

१. वैयाकरण लोग इसे दकारान्त निर्दिष्ट करते हैं। २. पाणिनि के मतानुसार निस् और दुस् इन दोनों को उपसर्गों में गिनते हैं। उपसर्गाः क्रियायोगे। ३. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। ४. अचोऽन्त्यादि टि। ५. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा। ६. जिन दो वर्णों में सन्धि होगी, उनके प्रथम वर्ण को पूर्ववर्ण और द्वितीय वर्ण को परवर्ण कहते हैं। अतः पूर्वपद के अन्त्य वर्ण को पूर्ववर्ण और परपद के आदि वर्ण को परवर्ण समझना चाहिए।

सन्धि तीन प्रकार की है—(१) स्वरसन्धि, (२) व्यञ्जनसन्धि और (३) विसर्गसन्धि ।

(१) स्वरवर्ण और स्वरवर्ण में जो सन्धि होती है, उसे स्वरसन्धि कहते हैं; यथा—मुर + अरि: = मुरारि: ।

(२) व्यञ्जनसन्धि दो प्रकार की है (१) व्यञ्जनवर्ण और व्यञ्जन वर्ण में; यथा—तत् + हितम् = तद्धितम्, (२) व्यञ्जनवर्ण और स्वरवर्ण में; यथा—सत् + आशय: = सदाशय: ।

(३) विसर्गसन्धि दो प्रकार की है (१) विसर्ग और स्वरवर्ण में; यथा—नर: + अयम् = नरोऽयम् ; (२) विसर्ग और व्यंजनवर्ण में यथा—मयूर: + नृत्यति—मयूरो नृत्यति ।

एक पद में, धातु और उपसर्ग में तथा समास में नित्य सन्धि होती है; अर्थात् इनमें सन्धि अवश्य करनी चाहिये, किन्तु वाक्य में सन्धि इच्छाधीन है। अर्थात् वाक्य के बीच में सन्धि की सम्भावना रहने से, इच्छा हो सन्धि करना: न हो, न करना । यथा—(एकपद में—ने + अनम् = नयनम् ; (धातु और उपसर्ग)—अनु + एति = अन्वेति; (समास में) नित्य + आनन्द: = नित्यानन्द: । (वाक्य) में "कस्मिश्चि-द्वने भासुरको नाम सिंह: प्रतिवसति । असौ नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयति"—यहाँ 'कस्मिश्चित् + वने; भासुरक: + नाम' इन दोनों स्थानों में सन्धि की हुई है, न करने से भी चल सकता था। 'नित्यमेव + अनेकान्'—यहाँ सन्धि नहीं की है, की भी जा सकती थी, किन्तु 'कस्मिश्चित्' इस एकपद में, और 'मृगशशकादीन्' इस समास में सन्धि करनी ही होगी; 'कस्मिन्-चित्', मृगशशक-आदीन्'—ऐसा लिखने से भूल होगी ।[१]

पद्य (श्लोक) में भी सन्धि न करने से दोष होता है । विसर्ग-सन्धि की सम्भावना रहने से सन्धि करनी ही चाहिए, न करने से

१. संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो: ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

श्रुतिदोष होता है; यथा—'सः हि दाशरथिः रामः'—यहाँ 'स हि दाशरथी रामः' कहने से सुनने में अच्छा लगता है।

●

स्वर-सन्धि

[अ आ + अ आ]

अकार व आकार से परे अकार व आकार रहने से दोनों मिलकर दीर्घ (आकार) होता है[1]; आकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है; यथा—

अ + अ = आ—मुर + अरिः = मुरारिः। शश + अंकः = शशांकः।

अ + आ = आ—देव + आलयः = देवालयः।

आ + अ = आ—दया + अर्णवः = दयार्णवः।

आ + आ = आ—विद्या + आलय = विद्यालयः।

सन्धि करो—पद + अर्थः, रत्न + आकारः, लता + अन्तः, महा + आशयः, गदा + आघातः, अल्प + अर्थः।

विश्लेष करो—अद्यापि, कुशासनम्, महार्घः, मदातिरेकः, नयनानन्दः, जलदागमः, भक्ताधीनः, अर्धांशः, दीपाधारः।

[अ आ + इ ई]

अकार वा आकार से परे ह्रस्व इ वा दीर्घ ई रहने से दोनों मिलकर एकार होता है[2] एकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है; यथा—

---

१. अकः सवर्णे दीर्घः।

अ आ के स्थान में आ, इ ई के स्थान में ई, उ ऊ के स्थान में ऊ, ऋ ॠ के स्थान में ॠ होने को 'दीर्घ होना' कहते हैं।

समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् (समानसंज्ञको वर्णः सवर्णे परे दीर्घो भवति, परश्च लोपमापद्यते)।

२. इ ई के स्थान में ए, उ ऊ के स्थान में ओ, ऋ के स्थान में अर् होने को 'गुण कहते हैं।

अवर्ण-इवर्णे— ए (अवर्ण-इवर्णे परे एर्भवति, परश्च लोपमापद्यते।)

अ + इ = ए—देव + इन्द्रः = देवेन्द्रः । ईश्वर + इच्छा = ईश्वरेच्छा ।

अ + ई = ए—भव + ईशः = भवेशः । गण + ईशः + गणेशः ।

आ + इ = ए—महा + इन्द्रः—महेन्द्रः । यथा + इष्टः = यथेष्टः ।

आ + ई = ए—महा + ईश्वरः = महेश्वरः । रमा + ईशः = रमेशः ।

सन्धि करो—पूर्ण + इन्दुः, लोक + ईशः, लता + इव, उमा + ईशः, धन + ईहा, मानव + इन्द्रः, राजा + इन्द्रः, धन + इच्छा ।

विश्लेष करो—नरेन्द्रः, भवेन्द्रः, अवेक्षणम्, दुर्गेशः, रमेशः, शुष्केन्धनम्, मगधेशः, परेच्छा, प्रेक्षितम् ।

विशेष—स्व शब्द के परे ईर् और ईरिन् शब्द रहने से स्व शब्द का अकार और ईर् तथा ईरिन् शब्द का ई ये दो मिलकर ऐकार होता है। ऐकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है[1] यथा—स्व + ईरः = स्वैरः; स्व = ईरी = स्वैरी ।

[अ आ + उ ऊ]

अकार वा आकार से परे ह्रस्व उ वा दीर्घ ऊ रहने से, दोनों मिल कर ओकार होता है: ओकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है ।[2] यथा—

अ + उ=ओ—ज्ञान + उदयः=ज्ञानोदयः । चन्द्र + उदयः=चन्द्रोदयः ।

अ + ऊ=ओ–एक + ऊनविंशतिः = एकोनविंशतिः ।

आ + उ = ओ–गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् । महा + उत्सवः=महोत्सवः ।

आ + ऊ = ओ–महा + ऊर्मिः = महोर्मिः ।

सन्धि करो—व्याघ्र + उत्पातः, यमुना + उत्तरणम्, गृह + ऊर्ध्वम्, विद्या + ऊनः, नील + उत्पलम्, चन्द्र + उदयः, मास + उत्तमः ।

विश्लेष करो—कार्य्योत्पत्तिः, प्रोचुः, कथोपकथनम्, सहोदरः, लम्बोदरः, महोदयः, महोक्षा, पञ्चाशोर्ध्वम् ।

---

१. स्वादीरेरिणोः ।

२. उवर्णे—ओ (अवर्ण उवर्णे परे ओर्भवति, परश्च लोपमापद्यते ।)

ऋवर्णे—अर् (अवर्ण ऋवर्णे परे अर् भवति, परश्च लोपमापद्यते ।)

विशेष—अक्ष शब्द के परे ऊहिनी शब्द रहने से अक्ष शब्द का अकार और ऊहिनी शब्द का ऊकार ये दोनों मिलकर औकार होता है। औकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है[1] यथा–अक्ष + ऊहिनी=अक्षौहिनी।

प्र शब्द के परे ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य शब्द रहने से दोनों मिलकर वृद्धि होती है[2] यथा—प्र + ऊहः = प्रौहः; प्र + ऊढः प्रौढः; प्र + ऊढिः=प्रौढिः; प्र + एषः=प्रैषः; प्र + एष्यः=प्रैष्यः।

[अ आ + ऋ]

अकार वा आकार से परे ऋकार रहने से, दोनों मिलकर "अर्" होता है; अकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है, और र् परवर्ण के मस्तक पर जाता है; यथा—

अ + ऋ=अर्–देव + ऋषिः=देवर्षिः।

आ + ऋ=अर्–देवता + ऋषभः=देवतर्षभः।

सन्धि करो—पवित्र + ऋत्विक्, महा + ऋक्षः, शीत + ऋतुः।

विश्लेष करो—हिमर्त्तुः, नरर्षभः, महर्षिः राजर्षिः।

विशेष—प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण तथा दश शब्द के परे ऋण शब्द रहने से वृद्धि (आर्) होती है;[3] यथा—प्र + ऋणम्= प्रार्णम् (मूल ऋण), वत्सतर + ऋणम्=वत्सतरार्णम् (बछड़े के लिए ऋण), कम्बल + ऋणम्=कम्बलार्णम् (कम्बल के लिए ऋण), वसन + ऋणम्=वसनार्णम् (वस्त्र के लिए ऋण), दश + ऋणः=दशार्णः (एक देश का नाम), ऋण + ऋणम्=ऋणार्णम् (एक ऋण शोधने के लिए दूसरा ऋण, सूद दर-सूद)।

तृतीया-समास-निष्पन्न ऋण शब्द परे रहने से पूर्ववर्ती अवर्ण और ऋकार मिलकर आर् होता है;[4] यथा—(सुखेन ऋतः) सुख +

---

१. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्।

२. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु।

३. 'प्रवत्सतरकम्बल-वसनार्णदशानाम् ऋणे।

४. ऋते च तृतीयासमासे'।

ऋत:=सुखार्त्त:, तृष्णा + ऋत:=तृष्णार्त्त: (प्यासा)। अन्यथा (परम + ऋत:, कर्मधारय) परम + ऋत:=परमर्त्त:। सुखेन + ऋत:= सुखेनर्त्त:—यहाँ समास नहीं है।

[अ आ + ए ऐ]

अकार वा आकार से परे 'ए' वा 'ऐ' रहने से, दोनों मिलकर 'ऐ' होता है;[1] ऐकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है; यथा—[2]

अ + ए = ऐ—मम + एव = ममैव।

अ + ऐ = ऐ—धन + ऐश्वर्यम् = धनैश्वर्यम्।

आ + ए = ऐ—सदा + एव = सदैव।

आ + ऐ = ऐ—सदा + ऐक्यम् = सदैक्यम्।

सन्धि करो—तव + एतत्, तथा + एव, मत + ऐक्यम्, महा + ऐरावत:

विश्लेष करो—एकैकम्, अद्यैव, चित्तैकाग्र्यम्, महैश्वर्यम्।

[अ आ + ओ औ]

अकार वा आकार से परे 'ओ' वा 'औ' रहने से, दोनों मिलकर 'औ' होता है; औकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है;[3] यथा—

अ + ओ = औ—जल + ओघ: = जलौघ:।

अ + औ = औ—चित्त + औदास्यम् = चित्तौदास्यम्।

आ + औ = औ—महा + ओषधि: = महौषधि:।

आ + औ = औ—सदा + औत्सुक्यम्। सदौत्सुक्यम्।

सन्धि करो—दिव + ओकस:; हृदय + औदार्यम्।

विश्लेष करो—महौजस:, जलौका:, रुचिरौपम्यम्।

---

१. इ ई ए ऐ के स्थान में ऐ, उ ऊ ओ औ के स्थान में औ, ऋ के स्थान में आर् होने को 'वृद्धि' कहते हैं।

२. एकारे ऐ ऐकारे च (अवर्ण एकारे ऐकारे च परे ऐर्भवति, परश्च लोपमापद्यते)।

३. ओकारे औ औकारे च (अवर्ण ओकारे औकारे च परे और्भवति, परश्च लोपमापद्यते)।

विशेष—अकार वा आकार के परे ओम् वा आ रहने से पर रूप एकादेश होता है;[1] यथा–शिवाय+ओम् + नमः = शिवायोंनमः; शिव + एहि (आ + इहि) = शिवेहि; अव = एहि (आ + इहि) = अवेहि ।

[इ ई + इ ई]

ह्रस्व इकार वा दीर्घ इकार के परे ह्रस्व इ वा दीर्घ ई रहने से, दोनों मिलकर दीर्घ ईकार होता है, ईकार पूर्व वर्ण में युक्त होता है;[2] यथा—

इ + इ = ई—अभि + इष्टम् = अभीष्टम् ।
इ + ई = ई—प्रति + ईक्षणम् = प्रतीक्षणम् ।
ई + इ = ई—महती + इच्छा = महतीच्छा ।
ई + ई = ई पृथ्वी + ईशः = पृथ्वीशः ।

सन्धि करो—अति + इव, कवि + ईश्वरः, मही + इन्द्रः, लक्ष्मी + ईशः ।

विश्लेष करो—गिरीन्द्रः, गौरीक्षणम्, क्षितीहा, धात्रीक्षणम् ।

[इ ई + असमान स्वरवर्ण]

ह्रस्व इकार वा दीर्घ ईकार से परे इ ई भिन्न स्वरवर्ण रहने से, ह्रस्व इ और दीर्घ ई के स्थान में 'य्' होता है; 'य्' पूर्व वर्ण में युक्त होता है;[3] यथा—

इ + अ = य् + अ—अति + अन्नम् = अत्यन्नम् ।
ई + आ = य् + आ—देवी + आगमनम् = देव्यागमनम् ।

सन्धि करो—यदि + अपि, प्रति + ऊहः, पचति + ओदनम्, अति + आचारः, प्रति + एकम् , अभि + उदयः, मुनि + ऐक्यम् ।

विश्लेष करो—अत्यौदार्यम्, नद्यम्बु, गोप्येषा, सख्युक्तिः, मुन्युचितम्, यद्येवम्, भवत्येव, नद्येषा ।

---

१. ओमाङोश्च ।
२. समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् ।
३. इवर्णो यमसवर्णे—न च परो लोप्यः (इवर्णो यम् आपद्यते, असवर्णे परे ।)

[उ ऊ + उ ऊ]

ह्रस्व उकार व दीर्घ ऊकार से परे ह्रस्व उ वा दीर्घ ऊ रहने से दोनों मिलकर दीर्घ ऊ होता है; दीर्घ ऊ पूर्व वर्ण में युक्त होता है;[1] ।

उ + उ = ऊ—विधु + उदयः = विधूदयः ।

उ + ऊ = ऊ—लघु + ऊर्मिः = लघूर्मिः ।

ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सवः = वधूत्सवः ।

ऊ = ऊ = ऊ—तनू + ऊर्ध्वम् = तनूर्ध्वम् ।

सन्धि करो—कटु + उक्तिः, स्वयम्भू + उदयः, स्वादु + उदकम् ।

विश्लेष करो—भूर्ध्वम्, गुरूहः, साधूक्तम्, ऊरूद्भवा ।

[उ ऊ + असमान स्वरवर्ण]

उ ऊ भिन्न स्वरवर्ण परे रहने से, ह्रस्व उ और दीर्घ ऊ के स्थान में 'व्' होता है, 'व्' पूर्ववर्ण में युक्त होता है;[2] यथा—

उ + ए = व् + ए—अनु + एषणम् = अन्वेषणम् ।

ऊ + आ = व् + आ—वधू + आगमनम् + वध्वागमनम् ।

सन्धि करो - साधु + इदम् , ऋजु + अर्थः , सु + आगतम् , अनु + अयः ।

विश्लेष करो—चञ्च्वाघातः, गुर्वासनम् , तन्वङ्गी , वध्वौदार्य्यम् ।

[ऋ + ऋ]

ऋकार से परे ऋकार रहने से दोनों मिलकर दीर्घ ॠ होता है; दीर्घ ॠ पूर्ववर्ण में युक्त होता है;[3] यथा—

ऋ + ऋ = ॠ—पितृ—ऋणम् = पितॄणम् ।

---

१. समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् ।

२. वमुवर्णः (उवर्णो वम् आपद्यते, असवर्णे परे, न च परो लोप्यः ।

३. समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् ।

सन्धि करो—भ्रातृ + ऋत्विजौ ।

विश्लेष करो—मातृद्धिः ।

[ऋ + असमान स्वरवर्ण]

ऋ भिन्न स्वरवर्ण परे रहने से, ऋ के स्थान में 'र्' होता है; पूर्ववर्ण में युक्त होता है;[1] यथा—

ऋ + आ = र् + आ—पितृ + आसनम् = पित्रासनम् ।

सन्धि करो—मातृ + अनुमतिः, सवितृ + उदयः, मातृ + इच्छा ।

विश्लेष करो—जामात्रर्थम्, दुहित्रीहितम्, पित्रैश्वर्य्यम् ।

[ए + स्वरवर्ण]

स्वरवर्ण परे रहने से, एकार के स्थान में 'अय्' होता है; अकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है, और 'य्' परस्वर में युक्त होता है[2]; यथा—

ए + अ = अय् + अ—ने + अनम् = नयनम् ।

सन्धि करो—शे + इतम्, ने + असि, शे + ए, अशे + आताम् ।

विश्लेष करो—जयति, अशयिष्ट, सञ्चयः, शयनम्, लयः ।

[ऐ + स्वरवर्ण]

स्वरवर्ण परे रहने से, ऐकार के स्थान में 'आय् होता है; आकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है; और 'य्' परस्वर में युक्त होता है;[3] यथा—

ऐ + अ = आय् + अ—नै + अकः = नायकः ।

सन्धि करो—निनै + अ, परिचै + अकः ।

विश्लेष करो—सञ्चायकः, रायः ।

[ओ + स्वरवर्ण]

स्वरवर्ण परे रहने से ओकार के स्थान में 'अव्' होता है; अकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है, और 'व्' परस्वर में युक्त होता है,[4] यथा

---

१. रमृवर्णः (ऋवर्णो रम् आपद्यतेऽसवर्णे, न च परो लोप्यः ।)

२. ए—अय् (एकारः अय् भवति, न च परो लोप्यः ।)

३. ऐ—आय् (ऐकारः आय् भवति, न च परो लोप्यः ।)

४.—ओ—अव् (ओकारः अव् भवति, न च परो लोप्यः ।)

ओ + अ = अव् + अ—भो + अनम् = भवनम् ।

सन्धि करो—भो + इष्यति, स्तो + अनम्, गो + ए ।

विश्लेष करो—पवनः, पवित्रम्, प्रभवितुम्, श्रवणम् ।

विशेष—पथपरिमाण समझाने में यूति शब्द परे रहने से भी गो शब्द के ओकार के स्थान में 'अव्' होता है।[1] यथा—गो + यूतिः = गव्यूतिः (चार मील की दूरी), अन्यथा गोयूतिः (बैल का जूआ) ।

अक्ष और इन्द्र शब्द परे रहने से गो शब्द के ओकार के स्थान में 'अव्' होता है[2] । यथा—गो + अक्षः = गवाक्षः (जंगला); गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः[3] (साँड़) ।

[औ + स्वरवर्ण]

स्वरवर्ण परे रहने से, औकार के स्थान में 'आव्' होता है; आकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है, और 'व्' परस्वर में युक्त होता है, [4]यथा—

औ + अ = आव् + अ—पौ + अकः = पावकः ।

सन्धि करो—नौ + आ, गौ + अः, स्तौ + अकः ।

विश्लेष करो—भाविनी, भावुकः' गावौ श्रावकः ।

विशेष—यकारादि प्रत्यय परे रहने से भी ओकार और औकार के स्थान में क्रमशः 'अव्' और 'आव्' होता है। यथा गो + यम् = गव्यम् (गौ-सम्बन्धी): नौ + यम् = नाव्यम्, (नाव चलाने योग्य) ।

[पदान्त ए ओ + अ]

पद के[5] अन्त में स्थित एकार वा ओकार से परे अकार रहने से

---

१. अध्वपरिमाणे च । २. अवङ् स्फोटायनस्य । ३. इन्द्रे च ।

४. औ—आव् (औकार आव् भवति—न च परो लोप्यः ।)

५. प्रकृति और विभक्ति के मिलने से जो होता है, उसे 'पद' कहते हैं; यथा—तद् + जस् = ते—यह पद है (तद् प्रकृति, जस् विभक्ति है) । समास में विभक्ति का लोप होनेसे, पूर्ववर्ती शब्द भी पद में गिना जाता है; यथा—जगताम् ईशः—जगत् + ईशः, इस स्थानमें 'जगत्'—यह पद है ।

ाकार का लोप होता है; लोप होने से लुप्त अकार का चिह्न (ऽ)[1] रहता ;[2] यथा—

सखे + अर्पय=सखेऽर्पय । प्रभो + अत्र=प्रभोऽत्र ।

सन्धि करो—विपन्ने + अन्यस्मिन्, विभो + अनुजानीहि ।

विश्लेष करो—तेऽत्र, कवेऽवेहि, गुरोऽनुमन्यस्व ।

(पदान्त ए + अ–भिन्न स्वरवर्ण)

अकार–भिन्न स्वरवर्ण परे रहने से, पद के अन्त में स्थित एकार के स्थान में 'अ' वा 'अय्, होता है; 'अ' पूर्ववर्ण में युक्त होता है, 'य्' र स्वर में युक्त होता है; 'अ' होने से, फिर सन्धि नहीं होती; यथा—

ए + इ=अ + इ—ते + इव=त इव ।

ए + इ=अय् + इ—ते + इव=तयिव ।

सन्धि करो—विद्यते + एव, सखे + उच्यताम्, सखे + एहि ।

विश्लेष करो—गृहयागच्छ, नरपतयेहि ।

[पदान्त ओ + अ-भिन्न स्वरवर्ण]

अकार-भिन्न स्वरवर्ण परे रहने से, पद के अन्त में स्थित ओकार के स्थान में 'अ' वा 'अव्' होता है; 'अ' पूर्ववर्ण में युक्त होता है, 'व्' पर स्वर में युक्त होता है; 'अ' होने से, फिर सन्धि नहीं होती; यथा—

ओ + इ = अ + इ–विभो + इह = विभ इह ।

ओ + इ = अव् + इ = विभो + इह = विभविह ।

सन्धि करो—साधो + एहि, गुरो + उद्यताम्, प्रभो + इच्छसि ।

विश्लेष करो—प्रभ इह, प्रभवेहि, प्रभ ईहसे ।

[पदान्त ऐ + स्वरवर्ण]

स्वरवर्ण परे रहने से, पद के अन्त में स्थित ऐकार के स्थान में 'आ'

---

१. लुप्त अकार के (ऽ) चिह्न को संस्कृत में 'अवग्रह चिह्न' कहते हैं ।

२. एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः । (एदोद्भ्यां परोऽकारः पदान्ते वर्तमानो लोपमापद्यते ।)

वा 'आय्' होता है, 'आ' पूर्ववर्ण में युक्त होता है, 'य्' पर स्वर में युक्त होता है; 'आ' होने से, फिर सन्धि नहीं होती; यथा—

ऐ + अ = आ + –काल्यै + अर्पय = काल्या अर्पय ।

ऐ + अ = आय् + अ–काल्यै + अर्पय = काल्यायर्पय ।

सन्धि करो—देव्यै + इदम्, भक्त्यै + उत्कण्ठा ।

विश्लेष करो—विद्यायाग्रहः, स्त्रियायुन्नतिः, मायायायिह ।

[पदान्त औ + स्वरवर्ण]

स्वरवर्ण परे रहने से, पद के अन्त में स्थित औकार के स्थान 'आ' या 'आव्' होता है, 'आ' पूर्ववर्ण में युक्त होता है, 'व्' पर स्वर में युक्त होता है; 'आ' होने से, फिर सन्धि नहीं होती;[1] यथा—

औ + अ = आ + अ–रवौ + अस्तङ्गते = रवा अस्तङ्गते ।

औ + अ = आव् + अ–रवौ + अस्तङ्गते = रवावस्तङ्गते ।

सन्धि करो—विधौ + उदिते, तौ + ईश्वरौ, गुरौ + अर्पणम्, गुरौ + आगते, गतौ + औत्सुक्यम् ।

विश्लेष करो—गताविमौ, रवावूर्ध्वगे, मतावैक्यम् ।

धातु का एकार वा ओकार परे रहने से उपसर्ग का अकार और आकार लुप्त हो जाता है । एकार और ओकार उपसर्ग में लुप्त होता है[2] । यथा—प्र + एजते = प्रेजते; उप + एषते = उपेषते; उप + ओषति = उपोषति; परा + एजते = परेजते ।

एध् और इ (ण्) धातु का एकार परे रहने से उपसर्ग का अकार और आकार लुप्त नहीं होता[3] । यथा—उप + एधते = उपैधते; परा + एधते = परैधते; अव + एति = अवैति, आ + एति = ऐति ।

---

१ अयादीनां य-व-लोपः पदान्ते, न वा-लोपे तु प्रकृतिः । (अय् इत्येवमादीना पदान्ते वर्त्तमानानां य–वयोर्लोपो भवति, न वा । लोपे तु प्रकृतिः स्वभावो भवति ।) ३० से ३३ सूत्र ।

२. एङि पररूपम् । ३. एत्येधत्यूठ्सु ।

यदि उपसर्ग के अकार वा आकार के परे धातु का ऋ रहे तो दोनों मिलकर 'आर्' होता है। आकार उपसर्ग में युक्त होता है और र् पर वर्ण के मस्तक पर जाता है[1]। यथा—अप + ऋच्छति = अपार्च्छति; प्र + ऋजते = प्रार्जते; परा + ऋषति + परार्षति।

ओष्ठ शब्द परे रहने से पूर्व पद के अन्तस्थित अकार और आकार का विकल्प में लोप होता है[2]। यथा—बिम्ब + ओष्ठः + बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः, उमा + ओष्ठः = उमोष्ठः; उमौष्ठः। समास न होने से नहीं होता। यथा तव + ओष्ठः = तवौष्ठः।

ओकारान्त वा एक स्वरमात्र (अ आ इ उ) अव्यय शब्द के साथ परवर्त्ती पद की सन्धि नहीं होती[3]। यथा—अहो + अपेहि = अहो अपेहि; आ + एवम् = आ एवम्[4]; अहो + आगमिष्यति = अहो आगमिष्यति; अ + अद्यापि = अ अद्यापि; इ + इन्द्र, = इ इन्द्र; उ + उत्तिष्ठ = उ उत्तिष्ठ।

द्विवचन निष्पन्न दीर्घ ईकारान्त दीर्घ ऊकारान्त तथा एकारान्त पद के साथ परवर्ती पद की सन्धि नहीं होती[5] यथा—कवी + इमौ + कवी इमौ; गिरी + एतौ = गिरी एतौ; साधू + इमौ = साधू इमौ; विद्ये + इमे = विद्ये इमे; लते + एते = लते एते; शेवहे + आवाम् = शेवहे आवाम्; याचेते + अर्थम् + याचेते अर्थम्।

अदस् शब्द के दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त पद के साथ

---

१. उपसर्गादृति धातौ। २. 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा'।

३. ओत्; निपात एकाजनाङ्।

४. सीमा, व्याप्ति वा ईषदर्थ समझाने में अथवा क्रिया के साथ योग रहने से अव्यय के आकार की सन्धि होती है। यथा—सीमा—आ + अध्ययनात् = आध्ययनात् (अध्ययन पर्यन्त); व्याप्ति—आ + एकदेशात् = ऐकदेशात् (एकादेश व्याप्त करके); ईषदर्थ—आ + आलोचितम् = आलोचितम्, (अल्प आलोचित); क्रिया के साथ प्रयोग—आ + इहि = एहि।

५. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्। प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम्।

परवर्ती पद की सन्धि नहीं होती[१]; यथा—अमी + अश्वा: = अमी अश्वा:, अमी + इषव: = अमी इषव:; अमू + अर्भकौ = अमू अर्भकौ ।

शकन्धु आदि कुछ शब्द निपातन-सिद्ध हैं[२] यथा—शक + अन्धु: = शकन्धु; (शकरकंद) कर्क + अन्धु: = कर्कन्धु: (बेर), कुल + अटा + कुलटा (छिनाल); सीमन् + अन्त: = सीमन्त: (मांग), मनस् + ईषा + मनीषा (बुद्धि); लाङ्गल + ईषा = लाङ्गलीषा (हल का दस्ता),सार + अंग: = सारंग: (चितकबरा हरिण), मृत + अण्ड: (अण्) = मार्त्तण्ड: (सूर्य); हल + ईषा = हलीषा (हल का दस्ता) पतत् = अञ्जलि: = पतञ्जलि: (पाणिनि-भाष्यकार; योगसूत्रकार) ।

---

१. अदसो मात् ।

२. 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' । 'सीमन्त: केशवेशे' ।

व्यञ्जन-सन्धि

च् वा छ् परे रहने से, पूर्ववर्ती त् और द् के स्थान में च् होता है[1]। यथा—महत्—चक्रम् = महच्चक्रम्, महत् + चित्रम् = महच्चित्रम्; विपद् + चयः = विपच्चयः; शरद् + छटा + शरच्छटा; महत् + छत्रम् = महच्छत्रम्, तद् + छविः = तच्छविः।

ज् वा झ् परे रहने से, पूर्ववर्ती त् और द् के स्थान में ज् होता है। यथा—उत् + ज्वलः = उज्ज्वलः; जगत् + जीवनम् = जगज्जीवनम्; तद् + जंन्यः = तज्जन्यः; विपद् + जालम् = विपज्जालम्; महत् + झञ्झनम् = महज्झञ्झनम्; बृहत् + झटिका = बृहज्झटिका।

ज् वा झ् परे रहने से, पूर्ववर्ती दन्त्य न् के स्थान में ञ् होता है। यथा—महान्+जयः = महाञ्जयः; भवान् = जीवतु = भवाञ्जीवतु; गच्छन् + झटिति = गच्छञ्झटिति।

पद के अन्तस्थित तकार वा दकार के परे तालव्य श् रहने से त् और द् के स्थान में च् और तालव्य श् के स्थान में छ होता है।[2] यथा—जगत् + शरण्यम् = जगच्छरण्यम्[3], महत् + शकटम् = महच्छकटम्; तद् + शरीरम्=तच्छरीरम्[4]।

पद के अन्तस्थित नकार के परे तालव्य श् रहने से न् के स्थान में ञ् और तालव्य श् के स्थान में छ् होता है[5]। यथा—

---

१. स्तोः श्चुना श्चुः। २. तालव्य श् च्-युक्त होने से नहीं होता। यथा—उत्+श्च्योतति = उत्श्च्योतति। ३. शश्छोऽटि।

४. वैयाकरण लोग पद के अन्त स्थित तकार किंवा दकार के परे तालव्य श् रहने से दो पद सिद्ध करते हैं। यथा—महत् + शकटम् = महच्छकटम्, महच् शकटम्। तद् + शरीरम् = तच्छरीरम्, तच् शरीरम्।

५. शि तुक्।

महान् + शब्दः = महाञ्छब्दः; धावन् + शशः = धावञ्छशः[१] :

पद के अन्तस्थित तकार वा दकार के परे ह् रहने से त् के स्थान में द् और ह् के स्थान में ध् होता है[२]। यथा—

उत् + हतः = उद्धतः; उत् + हरणम् = उद्धरणम् ; विपद् + हेतुः = विपद्धेतुः ।

चवर्ग के परे दन्त्य न रहने से, उस न् के स्थान में ञ् होता है। यथा—याच् + ना = याच्ञा, यज् + नः = यज्ञः; राज् + नी = राज्ञी ।

ट् वा ठ् परे रहने से पूर्ववर्ती त् और द् के स्थान में ट् होता है[३]। यथा—उत् + टलति = उट्टलति; तद् + टीका = तट्टीका; सत् + ठकारः = सट्ठकारः; एतद् + ठक्कुरः = एतट्ठक्कुरः ।

ड् वा ढ् परे रहने से पूर्ववर्ती त् और द् के स्थान में ड् होता है[३]। यथा—उत् + डीनः = उड्डीनः; एतद् + डामरः = एतड्डामरः; तत् + ढौकते = तड्ढौकते; एतद् + ढक्का = एतड्ढक्का ।

ड् वा ढ् परे रहने से पूर्ववर्ती दन्त्य न् के स्थान में मूर्द्धन्य ण् होता है। यथा—महान् + डामरः; = महाण्डामरः; राजन् + ढौकसे = राजण्ढौकसे ।

मूर्द्धन्य षकार के परिस्थित त् के स्थान में ट् और थ् के स्थान में ठ् होता है।[३] यथा—आकृष् + तः = आकृष्टः; द्रष् + ता = द्रष्टा; स्रष् + ता = स्रष्टा; उत्कृष् + तः = उत्कृष्टः; षष् + थः = षष्ठः ।

---

१. वैयाकरण लोग पद के अन्तस्थित नकार के परे तालव्य श् रहने से चार पद सिद्ध करते हैं। यथा—महान् + शब्दः = महाञ्छब्दः, महाञ्छ्ब्दः, महाञ्श्-शब्दः, महाञ् शब्दः, । (अछो अचछा अचशा अशाविति चतुष्टयम्) ।

२. (झयो होऽन्यतरस्याम्) वैयाकरण लोग पद के अन्तस्थित तकार वा दकार के परे ह् रहने से दो पद सिद्ध करते हैं। यथा—उत् + हतः = उद्धतः, उद्हतः । तद् + हेयम् = तद्धेयम्, तत्हेयम् । ३. ष्टुना ष्टुः ।

ल् परे रहने से पूर्ववर्ती त्, द् और न् के स्थान में ल् होता है[1]। यथा—उत् + लिखित: + उल्लिखित:; तद् + लीलायितम् = तल्लीलायितम् ; बृहत् + ललाटम् = बृहल्ललाटम्, महान् + लाभ; = महाँल्लाभ:; भवान् + लभते = भवाँल्लभते[2]।

स्वरवर्ण परे रहने से पद के अन्तस्थित नकार का द्वित्व होता है[3]। यथा—धावन् + अश्व; = धावन्नश्व:; हसन् + आगत: = हसन्नागत:। चिन्तयन् + इह = चिन्तयन्निह; स्मरन् + उवाच = स्मरन्नुवाच।

न् दीर्घ स्वर के परे रहने से द्वित्व नहीं होता। यथा—महान् + आग्रह: = महानाग्रह:; कवीन् + आह्वय = कवीनाह्वय।

च् वा छ् परे रहने से पद के अन्तस्थित न् के स्थान में अनुस्वार च् और छ् के स्थान में श्च् और श्छ् होता है[4]। यथा—पश्यन् + चकित: = पश्यंश्चकित: हसन् + चलित: = हसंश्चलित:; नृत्यन् + चकोर: = नृत्यंश्चकोर: धावन् + छाग: = धावंश्छाग:।

ट् वा ठ् परे रहने से पद के अन्तस्थित न् के स्थान में अनुस्वार तथा ट् और ठ् के स्थान में ष्ट् और ष्ठ् होता है।[4] यथा—उद्यन् + टंकार: = उद्यंष्टंकार:; महान् + ठक्कुर: = महांष्ठक्कुर:।

त् वा थ् परे रहने से पद के अन्तस्थित न् के स्थान में अनुस्वार तथा त् और थ् के स्थान में स्त् और स्थ् होता है। यथा—पतन् + तरु: = पतंस्तरु:, महान् + तडाग: = महांस्तडाग:; क्षिपन् + थुत्कारम् = क्षिपंस्थुत्कारम्।

तालव्य श् या दन्त्य स् या ह् परे रहने से पदमव्यस्थित न् के

---

१. तोर्लि-।

२. नकारस्थान जात लकार का उच्चारण नकार की तरह अनुनासिक होता है। उस उच्चारण की सूचना देने के लिए बिन्दुसहित अर्द्धचन्द्र वा चन्द्रबिन्दु पूर्ववर्ण में योजित किया जाता है।

३. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्। ४. नश्छव्यप्रशान्।

स्थान में अनुस्वार होता है[1]। यथा—दन् + शनम् = दंशनम् ; भ्रन् + शते = भ्रंशते; मीमान् = सते = मीमांसते; जिघान्+सति = जिघांसति, बृन् + हितम् = बृंहितम्।

दन्त्य स् परे रहने से पदमध्यस्थित म् के स्थान में अनुस्वार होता है। यथा—रम् + स्यते = रंस्यते; अयम् + सीत् = अयंसीत् ; निनम् + सति = निनंसति।

जिस वर्ग का अक्षर (वर्ण) परे हो पदमध्यस्थित न् के स्थान में उस वर्ग का पंचम वर्ण होता है[2]। यथा—आशन् + कते = आशङ्कते; आलिन् + गति = आलिङ्गति; वन् + चयति = वञ्चयति; वान् + छति = वाञ्छति; रन् + जयति = रञ्जयति; मन् + डयति = मण्डयति; कन् + पते = कम्पते; जृन् + भते = जृम्भते।

त् परे रहने से पदमध्यस्थित म् के स्थान में न् होता है[3]। यथा—गम् + ता = गन्ता ; क्षम् + तव्यम् = क्षन्तव्यम् ; शाम् + तम् = शान्तम् ; क्षाम् = तिः = क्षान्तिः; दाम् + तः = दान्तः।

अन्तःस्थ अथवा ऊष्मवर्ण परे रहने से पदान्तस्थित म् के स्थान में अनुस्वार होता है। यथा—सत्वरम् + याति = सत्वरं याति; करुणम् + रोदिति = करुणं रोदिति; विद्याम् + लभते = विद्यां लभते; भारम् + वहति = भारं वहति; शय्यायाम् + शेते = शय्यायां शेते; कष्टम् + सहते = कष्टं सहते; मधुरम् + हसति = मधुरं हसति।

स्पर्शवर्ण परे रहने से पदान्तस्थित म् के स्थान में अनुस्वार, वा जिस वर्ग का वर्ण परे हो, उस वर्ग का पंचम वर्ण होता है[4]। यथा—किम् + करोषि=किं करोषि, किङ्करोषि; गृहम् + गच्छ=गृहंगच्छ, गृहङ्गच्छ; क्षिप्रम् + चलति = क्षिप्रं चलति, क्षिप्रञ्चलति; शत्रुम् = जहि=शत्रुं जहि, शत्रुञ्जहि; नदीम् = तरति = नदीं तरति, नदीन्तरति, धनम् + ददाति=धनं ददाति, धनन्ददाति; स्तनम् + धयति=स्तनं धयति, स्तनन्धयति; गुरुम् +

१. नश्चापदान्तस्य झलि। २. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः।
३. मोऽनुस्वारः। ४. वा पदान्तस्य।

नमति = गुरुं नमति, गुरुन्नमति; चन्द्रम् + पश्यति = चन्द्रं पश्यति, चन्द्रम्पश्यति; किम् + फलम् = किं फलम्, किम्फलम्, सत्यम्, + ब्रूयात् = सत्यं ब्रूयात्, सत्यम्ब्रूयात; मधुरम् + भाषते = मधुरं भाषते; मधुरम्भाषते।

विशेष—क्विप् प्रत्ययान्त राज् शब्द परे रहने से सम् शब्द के स्थान में म् को अनुस्वार नहीं होता[1]। यथा—सम् + राट् = सम्राट् (सम्राट्)।

छ् परे रहने से स्वरवर्ण के परे च् होता है; च् छ् मिलकर च्छ् होता है[2]। यथा—सित + छत्रम् = सितच्छत्रम्; परि + छदः = परिच्छदः; अव + छेदः = अवच्छेदः; वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया।

पदान्त दीर्घस्वर के परे विकल्प में च् होता है[3]। यथा—लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया (लक्ष्मी की छाया)।

उद्-उपसर्ग के परे स्था और स्तम्भ धातु के स का लोप होता है[4]। यथा—उत् + स्थानम् = उत्थानम्, उत् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्।

स्वरवर्ण, वर्ग का तृतीय और चतुर्थ वर्ण वा य् र् ल् व् ह् परे रहने से पद के अन्तस्थित क् के स्थान में ग्, च् के स्थान में ज्, ट् के स्थान में ड् और प् के स्थान में ब् होता है[5]। यथा—दिक् + अन्तः = दिगन्तः; वाक् + ईशः = वागीशः; प्राक् + एव = प्रागेव; दिक् + गजः=दिग्गजः; वाक् + दानम् = वाग्दानम्; धिक् + धनगर्वितम् = धिग्धनगर्वितम्; वाक् + बाहुल्यम्; = वाग्बाहुल्यम्; दिक् + भागः = दिग्भागः; धिक् + याचकम् = धिग्-याचकम्; वाक् + रोधः = वाग्रोधः; धिक् + लोभिनम् = धिग् लोभिनम्; सम्यक् + वदति = सम्यग्वदति; दिक् + हस्ती = दिग्हस्ती[6]; अच् + अन्तः = अजन्तः; परिव्राट् + वदति = परिव्राड् वदति; परिव्राट् + हसति = परिव्राड्-हसति[6], अप् + इन्धनः = अबिन्धनः; अप् + घटः = अब्घटः; अप् + हरम् = अब्हरम्[6]।

---

१. मो राजि समः क्वौ। २. छे च। ३. पदान्ताद्वा।

४. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य। ५. झलां जशोऽन्ते।

६. झयो होऽन्यतरस्याम्। वैयाकरण लोग वर्गप्रथम के परे ह् रहने से प्रथम वर्ण के स्थान में तृतीय वर्ण और ह के स्थान में विकल्प में पूर्व चतुर्थ वर्ण

स्वर वर्ण वा ग् घ् द् ध् ब् भ् य् र् व् परे रहने से पद के अन्त-स्थित त् के स्थान में द् होता है।[१] यथा—जगत् + अन्तः = जगदन्तः; जगत् + आदिः = जगदादिः; जगत् + इन्द्रः = जगदिन्द्रः; जगत् + ईशः = जगदीशः; भवत् + उक्तम् = भवदुक्तम्; जगत् + एतत् = जगदेतत्; महत् + ऐश्वर्य्यम् = महदैश्वर्य्यम्; महत् + औषधम् = महदौषधम्; बृहत् + गहनम् = बृहद्गहनम्; भवत् + दर्शनम् = भवद्दर्शनम्; महत् + धनुः = महद्धनुः; जगत् + बन्धुः = जगद्बन्धुः; महत् + भयम् = महद् भयम्; बृहत् + यानम् = बृहद्यानम्; बृहत् + रथः = बृहद्रथः; महत् + वनम् = महद्वनम्।

न् वा म् परे रहने से पद के अन्तस्थित वर्गीय प्रथम वर्ण के स्थान में पंचम वर्ण वा तृतीय वर्ण होता है[२]। यथा—दिक् + नागः = दिङ् नागः, दिग्नागः, जगत् + नाथः = जगन्नाथः, जगद्नाथ;, अप् + नदी = अम्नदी, अब्नदी; प्राक् + मुखः = प्राङ्मुखः, प्राग्मुखः; मधुलिट् + मत्तः = मधुलि-ण्मत्तः, मधुलिड्मत्तः; भवत् + मतम् = भवन्मतम्, भवद्मतम्।

मात्र वा मय प्रत्यय परे रहने से पद के अन्तस्थित वर्गीय प्रथम के स्थान में केवल पंचम वर्ण होता है[३]। यथा—वाक् + मयम् = वाङ्मयम्; चित् + मयम् = चिन्मयम्; मधुलिट् + मात्रम् = मधुलिण्मात्रम्।

नवति, नगरी और नाम् (नकार-युक्त आम्) परे रहने से ट के स्थान में पंचम वर्ण ण् ही होता है ड् नहीं होता[४]। यथा—षट् + नवतिः = षण्ण-वतिः; षट् + नाम् = षण्णाम्।

वर्ग के प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श्, ष्, स् परे रहने से वर्ग के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण के स्थान में प्रथम वर्ण होता

करते हैं। यथा—दिक् + हस्ती = दिग्हस्ती, दिग्हस्ती; परिव्राट् + हसति = परिव्राड्ढसति, परिव्राड् हसति; अप् + हरणम् = अब्भरणम्, अब्हरणम्।

१. झलां जशोऽन्ते। २. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा।

३. प्रत्यये भाषायां नित्यम्। ४. 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्'।

है[1] यथा—विपद् + कालः = विपत् कालः, क्षुध् + क्षमः = क्षुत्क्षमः, समिध् + सु = समित्सु।

कृ वा कृधातु निष्पन्न शब्द परे रहने से सम् शब्द के म् के स्थान में अनुस्वार और सकार आगम होता है[2]। यथा—सम् + कृतः = संस्कृतः, सम् + कर्त्ता = संस्कर्त्ता।

वर्ग के प्रथम वा द्वितीय शब्द परे रहने से सम् शब्द के म् के स्थान में अनुस्वार और श् वा स् आगम होता है[3]। यथा—पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः; पुम् + चकोरः = पुंश्चकोरः।

अभ्यास :—

१—व्यंजन सन्धि किसे कहते हैं; व्यंजन सन्धि कितने प्रकार के हैं? उदाहरण देकर समझाओ।

२—सन्धि करो :—

भवत् + उत्तम्, विश्वराट् + असौ, चिन्तयन् = आह, गच्छन् + एव, तरु + छाया, क्षुध् + पिपासा, उत् + स्तम्भः, सम् + कृतम्, वाक् + विभवः, जगत् + भारः, अप् + भाजनम्, दिक् + नागः, षट् + मासाः, वाक् + शूरः, जगत् + शरण्यम्, याच् + ना, तत् + टीका, जगत् + ढक्का, उत् + डीयते, बृहत् + ललाटम्, तत् + लीला, तद् + हेयम्, विपद् + हेतुः, धावन् + छागः, महान् + टीकाकारः, जानन् + ठक्कुरः, उत्पतन् + तरङ्गः महान् + थकारः, विद्वान् + जयति, स्फुटन् + डिम्बः, भवान् + लभते गच्छन् + शशकः, किम् + करोषि, गृहम् + गच्छ, ज्ञानम् + लभते, वं + दयति, आकृष् + तम्।

३—विश्लेष करो :—

वाग्रोघः वषड्देवेन्द्राय, तडिद्वाहः, दिङ्मुखम्, अम्मध्यम्, प्राङ्मुखः, तच्छरीरम्, बृहच्छयनम्, राज्ञी, जज्ञे, उच्चारणम्, तज्जयः, भवड्डमरुः,

---

१. खरि च। २. समः सुटि। 'संपुंकानां सो वक्तव्यः'।

३. पुमः खय्यम्परे।

उद्भिज्जः, तल्लयः, समिल्लता, जगल्लक्ष्मीः, उद्धतः, उद्धरणम्, महांच्छेदः, हसंश्चलति, चलंष्टिट्टिभः, खिद्यंस्तटतरुः; महाँस्तडागः, बुद्धिमाञ्जीवतु, महाण्ढोलः, विद्वांल्लिखति, चलञ्छशी, निन्दच्छठः, वशंवदः, संवादः, संवत्सरः, एवंविधः, नौकायां शेते, दुखं सहते, हन्तव्यम्, भ्रान्तिः, सृष्टिः, जगदिन्द्रः, परिव्राडुवाच, भगवानब्रवीत्, विच्छेदः, तत्खननम्, विद्युत्पातः, पुँल्लोकः ।

विसर्ग-सन्धि

च वा छ् परे रहने से, विसर्ग के स्थान में तालव्य श् होता है[1]। यथा—पूर्णः + चन्द्रः = पूर्णश्चन्द्रः, निः + चितः; निश्चितः; वायुः + चलति = वायुश्चलति; रवेः + छविः = रवेश्छविः; तरोः + छाया = तरोश्छाया।

ट् वा ठ् परे रहने से विसर्ग के स्थान में मूर्द्धन्य ष् होता है[2]। यथा—भीतः + टलति = भीतष्टलति; धनुः + टंकारः=धनुष्टंकार; स्थिरः + ठक्कुरः = स्थिरष्ठक्कुरः।

त् वा थ् परे रहने से विसर्ग के स्थान में दन्त्य स् होता है[3]। यथा—उन्नतःतरुः = उन्नतस्तरुः; नद्याः + तीरम् = नद्यास्तीरम्; भूमेः + तलम् = भूमेस्तलम् ; स्नातः + शुद्धयति = स्नातश्शुद्धयति।

श्, ष्, स् परे रहने से विसर्ग के स्थान में विकल्प से क्रमशः श्, ष्, स् होता है[4]। यथा—सुप्तः + शिशुः = शुप्तश्शिशुः, सुप्तः शिशुः; मत्तः + षट्पदः = मत्तष्षट्पदः, मत्तः षट्पदः; प्रथमः + सर्गः = प्रथमस्सर्गः, प्रथमः सर्गः।

दोनों अकार के परे विसर्ग हो और अकार परे हो तो पूर्व का अकार और विसर्ग के स्थान में ओ होता है। ओकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है और परे के अकार का लोप होता है[5]। यथा—नरः + अयम् = नरोऽयम्; नवः + अंकुरः + नवोंऽकुरः; ज्वलतः + अंगारः = ज्वलतोंऽगारः, वेदः + अधीतः = वेदोऽधीतः।

वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वा पंचम अथवा य् र् ल् व् ह् परे रहने से, अकार और अकार के परस्थित विसर्ग दोनों के स्थान में ओ होता है। ओकार पूर्ववर्ण में युक्त होता है[6]। शोभनः + गन्धः + शोभनो गन्धः;

---

१. स्तोः श्चुना श्चुः। २. ष्टुना ष्टुः। ३. विसर्ज्जनीयस्य सः। ४. वा शरि। ५. ससजुषो रुः; अतो रोरप्लुतादप्लुते। ६. हशि च।

नूतनः + घटः=नूतनो घटः, सद्यः + जातः = सद्योजातः; मधुरः + झंकारः= मधुरो झंकारः; नवः + डमरुः = नवो डमरुः गजः + ढौकते=गजो ढौकते, मूर्द्धन्यः + णकारः = मूर्द्धन्यो णकारः; निर्वाणः=दीपः=निर्वाणो दीपः; अश्वः + धावति = अश्वो धावति; उन्नतः + नगः = उन्नतो नगः; दृढः + बन्ध = दृढो बन्धः; अकुतः + भयः = अकुतो भयः; अतीतः + मासः = अतीतो मासः; कृतः = यत्नः=कृतो यत्नः;शान्तः + रोषः=शान्तो रोषः; कृतः=लोभः=कृतो लोभः; शीतः + वायुः=शीतो वायुः; मनः + रमः = मनोरमः; वामः + हस्तः = वामो हस्तः।

अकारभिन्न स्वरवर्ण परे रहने से अकार के परस्थित विसर्ग का लोप होता है। लोप के परे और सन्धि नहीं होती।[१] यथा—कुतः + आगतः= कुत आगतः; नरः + इव = नर इव; कः + ईहते = क ईहते; चन्द्रः + उदेति = चन्द्र उदेत; इतः=ऊद्ध्र्वम् =इत ऊद्ध्र्वम्, देवः + ऋषि; = देव ऋषि; कः + एषः = क एषः, रक्तः + ओष्ठः = रक्त ओष्ठः; राज्ञः + औदार्यम् = राज्ञ औदार्यम्।[२]

स्वरवर्ण, वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वा पंचम वर्ण अथवा य्, र्, ल् व्, ह् परे रहने से आकार के परस्थित विसर्ग का लोप होता है। लोप के परे और सन्धि नहीं होती है। यथा—अश्वा + अमी = अश्वा अमी; गजाः + इमे = गजा इमे; ताराः + उदिताः = तारा उदिताः; नराः + एते =नरा एते; हताः + गजाः=हता गजाः; कृताः + घटाः=कृता घटाः; पुत्राः=जाताः= पुत्रा जाताः; मधुराः + झंकाराः = मधुरा झंकाराः; निर्वाणाः + दीपाः = निर्वाणा दीपाः; अश्वाः + धावन्ति = अश्वा धावन्ति; उन्नताः + नगाः = उन्नता नगाः; दृढाः + बन्धाः=दृढा बन्धाः; नराः + भीताः = नरा भीताः; अतीताः + मासाः=अतीता मासाः; छात्राः + यतन्ते=छात्रा यतन्ते; एताः +

---

१. भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि। लोपः शाकल्यस्य।

२. वैयाकरण लोग विसर्ग का लोप करते हैं तथा विकल्प से विसर्ग के स्थान में य् करते हैं। यथा—कुतः + आगतः=कुत आगतः, कुतयागत; कः + एषः = क एषः, कयेष।

रथ्याः = एता रथ्याः; नराः + लभन्ते = नरा लभन्ते; वाताः + वान्ति = वाता वान्ति; बालकाः + हसन्ति = बालका हसन्ति।[1]

अ आ भिन्न स्वरवर्ण के परे विसर्ग रहने से और स्वरवर्ण, वर्ग के तृतीय चतुर्थ, पंचम वर्ण वा य्, र्, ल्, व्, ह् परे रहने से विसर्ग के स्थान में र् होता है[2]। यथा-कविः + अयम् = कविरयम्; गतिः + इयम् = गतिरियम्; रविः—उदेति = रविरुदेति; सुधीः + एषः, सुधीरेषः, बन्धुः + आगतः = बन्धुरागतः; गुरुः + उवाच = गुरुरुवाच. वधूः + एषा = वधूरेषा; भूः + इयम् = भूरियम्; मातृः + अर्च्चय = मातृरर्च्चय; रवेः + उदयः = रवेरुदयः; तैः + उक्तम् = तैरुक्तम्; विधोः + अस्तगमनम् = विधोरस्तगमनम् प्रभोः + आदेशः = प्रभोरादेशः, गौः + अयम् = गौरयम्; ऋषिः + गच्छति = ऋषिर्गच्छति; हविः + घ्राणम् = हविर्घ्राणम्; गुरुः + जयति = गुरुर्जयति; निः + धनः = निर्धनः; कृतैः + झंकारैः = कृतैर्झंकारैः; बहिः + योगः = बहिर्योगः; विधुः + लीयते = विधुर्लीयते; वायुः + वाति = वायुर्वाति, शिशुः + हसति = शिशुर्हसति।

स्वस्वर्ण, वर्ग का तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण वा य् र् ल् व् ह् परे रहने से अकार के परस्थित र-जात विसर्ग के[3] स्थान में र् होता है[4]। यथा—पुनः + अपि = पुनरपि' प्रातः + एव = प्रातरेव; अन्तः + धानम् = अन्तर्धानम्; स्वः + गतः = स्वर्गतः; भ्रातः + आगच्छ = भ्रातरागच्छः मातः + देहि = मातर्देहि; दुहितः + याहि = दुहितर्याहि।

अहन्' शब्द के विसर्ग के स्थान में 'र्' होता है[5]; किन्तु रात्र, रूप

---

१. वैयाकरण लोग, स्वरवर्ण परे रहने से आकार के परिस्थित विसर्ग के स्थान में पक्षान्तर में य् करते हैं। यथा—गजाः + इमे = गजा इमे; गजायिमे; नराः + एते = नरा एते, नरायेते।

२. ससजुषो रुः।

३. पुनः, प्रातः, अन्तः, स्वः आदि पद के विसर्ग और ऋकारान्त शब्द के सम्बोधन के एक वचन के पद के विसर्ग र-जात (अर्थात् र के स्थान में जात) विसर्ग है।

४. ससजुषो रुः, हशि च।

५. रोऽरि।

और रथन्तर शब्द परे रहने से, अथवा 'क' और विभक्ति परे रहने से, 'र्' नहीं होता; यथा—अहः + पतिः = अहर्पतिः; अहः + रूपम् = अहोरूपम्; ('क' परे) अहः + करः = अहस्करः; (विभक्ति परे) अहः + भिः = अहोभिः। किन्तु सुबन्त प्रत्यय परे रहने से नहीं होता। यथा—अहोभिः।

र् परे रहने से विसर्ग के स्थान में जो र् होता है उसका लोप[१] और पूर्व स्वर दीर्घ होता है।[२] यथा—पितः + रक्ष = पितारक्ष; निः + रसः = नीरस; निः + रोगः = नीरोगः; विधुः + राजते = विधूराजते; मातुः + रोदनम् + मातूरोदनम्।

अकार भिन्न स्वर वा कोई व्यञ्जन वर्ण परे रहने से, सः, एषः इन दो पदों के विसर्ग का लोप होता है। लोप के परे सन्धि नहीं होती।[३] यथा - सः + आगतः = स आगतः, सः + इच्छति = स इच्छति; सः + उवाच = स उवाच, सः + करोति = स करोति; सः + गच्छति = स गच्छति; सः + चलति = स चलति; सः + हसति = स हसति; एषः + आयाति = एष आयाति; एषः + धावति = एष धावति; एषः + शेते = एष शेते; एषः + सहते = एष सहते।

स्वर वर्ण, वर्ग का तृतीय, चतुर्थ पञ्चम वर्ण वा य् र् ल् व् ह् परे रहने से भोः पद के विसर्ग का लोप होता है। लोप के परे सन्धि नहीं होती।[४] यथा—भोः + अम्बरीष = भो अम्बरीष; भोः + ईशान = भो ईशान; भोः + गदाधर = भो गदाधर;भोः + जनमेजय = भो जनमेजय = भोः + दामोदर= भो दामोदर; भोः + माधव = भो माधव; भोः + यदुपते = भो यदुपते।

क् ख् प् फ् परे रहने से निः; आविः, बहिः, दुः, प्रादुः, चतुः इन शब्दों के विसर्ग के स्थान में मूर्द्धन्य ष् होता है।[५] यथा—निः + कामः =

---

१. रो रि। २. ढ्रलोपे पूर्व्वस्य दीर्घोऽणः।

३. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि।

४. भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि। हलि सर्व्वेषाम्।

५. सोऽपदादौ।

निष्काम; निः + फल=निष्फलः; आविः + कृतम् = आविष्कृतम्; बहिः + कृतः = बहिष्कृतः; निः + खेदः = निष्खेदः; निः + पीडितः = निष्पीडितः; दुः + करम् = दुष्करम्; प्रादुः + कृतम् = प्रादुष्कृतम्; चतुः + कोणम् = चतुष्कोणम्; चतुः + पथम् = चतुष्पथम्।

क् ख्, प् फ् परे रहनेसे हविः, सर्पिः, आयुः, धनुः आदि[1] के विसर्ग के स्थान में विकल्प से मूर्धन्य 'ष्' होता है।[2] यथा—हविः + पतति = हविष्पतति, हविः पतति; सर्पिः + पिबति = सर्पिष्पिबति; सर्पिः पिबति, आयुः + करोति = आयुष्करोति, आयुः करोति, धनुः + करोति + धनुष्करोति, धनुःकरोति। समास में नित्य ष् होता है। यथा—हविः + पानम् = हविष्पानम्; आयु + कामः = आयुष्कामः; धनुः + पाणिः = धनुष्पाणिः।[3]

तकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहने से, ह्रस्व इकार वा ह्रस्व उकार के परस्थित विसर्गके स्थान में ष् तथा त् के स्थान में ट् होता है।[4] यथा—अर्चिः + त्वम् = अर्चिष्ट्वम्; चतुः + तयम् = चतुष्टयम्।

कृ-धातु-निष्पन्न पद परे रहने से नमः, पुरः; तिरः इनके विसर्ग के स्थान में दन्त्य स् होता है।[5] यथा—नमः + करोति = नमस्करोति, नमः + कारः=नमस्कारः, नमः + कृत्य = नमस्कृत्य, पुरः + कारः = पुरस्कारः, पुरः + कृत्य = पुरस्कृत्य; तिरः + कारः = तिरस्कारः।

कर, कार, काम, कान्त, कुम्भ और पात्र शब्द परे रहनेसे अकारके परस्थित विसर्ग के स्थान में स् होता है।[6] यथा—श्रेयः + करः=श्रेयस्करः; पुरः + कारः=पुरस्कारः; अयः + कान्तः=अयस्कान्तः, मनः + कामः=

---

१. हविः, सर्पिः, बर्हिः, अर्चिचः, रोचिः, शोचिः, आयुः, धनुः, चक्षुः आदि।

२. इसुसोः सामर्थ्ये।

३. भ्रातुः + पुत्रः में विसर्ग के स्थान में ष् होता है। यथा—भ्रातुष्पुत्रः।

४. इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य।

५. नमस्पुरसोर्गत्योः।

६. अतः कृ कमि-कंस-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीष्वनव्ययस्य।

मनस्कामः; अयः + कुम्भः=अयस्कुम्भः, पयः + पात्रम्=पयस्पात्रम्।

तमः + कांडः, मेदः + पिंडः, भाः + करः, अहः + करः, वाचः + पतिः, दिवः + पतिः, अयः + कीलः आदि के विसर्ग के स्थान में स् होता है। यथा–तमस्कांडः, मेदस्पिडः, भास्करः, वाचस्पतिः, दिवस्पतिः, अयस्कीलः।

पद शब्द परे रहने से अधः और शिरः शब्द के विसर्ग के स्थान में स् होता है।[1] यथा—अधस्पदम्, शिरस्पदम्।

अभ्यास :—

१—विसर्गसन्धि किसे कहते हैं; उदाहरण देकर समझाओ।

२—सन्धि करो :—

वाचः + पतिः, दिवः + पतिः, निः + चितः तरोः + छाया, दुः + छेद्यः, धनुः + टङ्कारः, उड्डीनः + टिट्टिभः, निः + तारः, उन्नतः + तरुः, अग्नेः + शिखा, मधुरः + षड्जः, निः + स्पन्दः, द्वाः + स्थः, दृढः + बन्धः, नूतनः + घटः, निर्वाणः + दीपः, सः + गच्छति, मधुराः + झङ्काराः, छात्राः + यतन्ते भोः + भोः, हरेः + दया, मुहु + मुहुः, हविः + घ्राणम्, मातृः + वदति, जामातः + वद, स्वः + गतः, अन्तः + धत्ते, भ्रातः + रङ्गनाथ, पितः + रक्ष, अदः + रथन्तरम्, अहः + भ्यः, अयः + कारः, पयः + कुम्भ, पयः + पात्रम्, पुरः + करोति, तिरः + करोति, निः + प्रत्यूहम्, दुः + कृतम्, धनुः + खण्डम्, सः + अधुना, नरः + इव, छात्राः + आगताः, मतिः + इयम्, सुधीः + एषः, पुनः + अपि, मनः + ईषा, सारः + अङ्गः, आः + चर्य्यम्।

३—विश्लेष करो :—

हरेश्चरणौ, वायुश्चलति, मुनेश्छात्रः, स्थिरष्ठक्कुरः मनस्तत्त्वम्, गौश् शब्दायते, देवाष्षट्, शीतो वातः, मनोगतम्, पयोबिन्दुः शान्तो रोषः, एष महाशयः, एष शेते, प्रदीपा निर्वान्ति, गौर्याति, बहिर्योगः, स्वर्नदी, भ्रातर्दयस्व, नीरसः, पितृ रक्षणम्, अहोरात्रम्, नमस्करोति, यशस्करम्, प्रातःकल्पम्, बहिष्करणम्, तीक्ष्णोऽङ्कुशः अश्वा उद्धताः, हविरिदम्, दुराशयः, पुनरेति, रात्रिन्दिवम्, धुरन्धरः।

●

---

1. अधःशिरसी पदे।

णत्व-विधान

ऋ ॠ र् ष्—इन चार वर्णों के परिस्थित दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है; यथा :—

ऋ + न = ऋण—तृ + नम्=तृणम् ।

ॠ + न=ॠण—पितॄ + नाम् + पितॄणाम् ।

र् + न=र्ण—पूर् + नम्=पूर्णम् ।

ष् + न=ष्ण—कृष् + नः = कृष्णः ।

स्वरवर्ण, कवर्ग, पवर्ग, य् व् ह और अनुस्वार का व्यवधान [1] रहने से भी दन्त्य 'न्' मूर्द्धन्य 'ण्' होता है[2]; यथा—

मूर् + (ख् + ए) + न=मूर्खेण ।

दर् + (प् + ए) + न=दर्पेण ।

र् + (अ + य् + ए) + न=रयेण ।

गर् + (व् + ए)=गर्वेण ।

बृ + (ं + ह् + अ) न + बृंहणम् ।

पद के अन्त में स्थित (व्यञ्जनान्त) 'न्' मूर्द्धन्य नहीं होता । यथा— नर् + (आ) + न् = नरान्; पितॄ + न् = पितॄन्, वृक्ष + (आ) + न् = वृक्षान्[3] ।

त थ द ध प और भ-युक्त दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—

कृ + (न्त) + नम् = कृन्तनम् । तृ + (प्रो) + ति + तृप्रोति ।

---

१. पहले ऋ ॠ र् वा ष्, परे 'न', और इनके बीच में स्वरवर्ण-प्रभृति रहने को 'व्यवधान' कहते हैं ।

२. इनको छोड़ अन्य वर्ण का व्यवधान रहने से दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—किर + (ई + ट + ए) + न = किरीटेन; आर्त्तेन, विरलेन ।

३. जिनके उत्तर 'मात्र', और 'मयट्' प्रत्यय होते हैं, वे पद में गण्य हैं । इसलिये 'सुहृन्मात्र', 'मृन्मय' इत्यादि स्थलों में मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होगा ।

ग्र + (न्थ) + नम् = ग्रन्थनम् । क्षु + (भ्ना) + ति = क्षुभ्नाति ।

क्र + (न्द) + नम् = क्रन्दनम् । र + (न्ध) + नम् = रन्धनम् ।

एक पद में ऋ ॠ र् ष्, और अन्य पद में 'न' रहने से, मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—नृ + यानम् = नृयानम् ; त्रि + नेत्रः = त्रिनेत्रः, सर्व + नाम = सर्वनाम; मुद्रा + अङ्कनम् = मुद्राङ्कनम् ; नर + नाथः = नरनाथः, चारु + नेत्रा=चारुनेत्रा; भृङ्ग + नादः=भृङ्गनादः ।[1]

किन्तु पर पद में यदि समास के पश्चात् विभक्ति के स्थान में जात 'न', अथवा विभक्तियुक्त वा 'ईप्' प्रत्यय में मिलित नकारान्त शब्द का 'न' रहे तो विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—(विभक्ति के स्थान में जात 'न') प्र + भाव + (टा) (इन) = प्रभावेण प्रभावेन (विभक्तियुक्त 'न') हरि + भाविन् +(टा=आ) = हरिभाविणा, हरिभाविना,[2] (ईप्' प्रत्ययमिलित 'न') हरि + भाविन् + ई + हरिभाविनी ।[3]

पर पद का उस प्रकार 'न' यदि एकस्वरविशिष्ट अथवा कवर्गयुक्त शब्द के उत्तर रहे, तो नित्य ही मूर्द्धन्य होता है; यथा—(एकस्वर) प्र+ भु + ना=प्रभुणा; (कवर्ग) श्री + काम + इन = श्रीकामेण; नगर + गामिन् + ई=नगरगामिणी ।

परन्तु पक्व, युवन् और अहन् शब्द का नहीं होता; यथा—परिपक्वेन, क्षत्रिययूना; दीर्घाह्ना ।

---

१. रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः । स्वर-ह-य-व-कवर्ग-पवर्गान्तिरोऽपि [समान-पदे] । (रेफ-षकार-ऋवर्णेभ्यः परोऽनन्त्यो नकारो णत्वमापद्यते, स्वर-ह-य-व-कवर्ग-पवर्गैर्व्यवहितोऽपि ।)

२. हरिं भावयति यः=हरिभाविन् ।

३. हरिं भावयति या सा हरिभाविनी । 'स्वर्गं गामिनः—स्वर्गगामिनः'—इस स्थल में समास से पहले ही 'न' विभक्तियुक्त होने से, मूर्द्धन्य नहीं हुआ । 'हरेः कामिनी—हरिकामिनी'—इस स्थल में भी समास से पूर्व ही 'न' ईप्-प्रत्यय में मिलने से, मूर्द्धन्य नहीं हुआ ।

टवर्ग के पूर्वस्थित 'न'—ऋ, र्, और ष्, इनके परस्थित न होने से भी मूर्द्धन्य होता है; यथा—कण्टकः, कण्ठः; दण्डः, ढुण्ढिः।

दो वा तीन स्वर वाले वृक्षवाचक और ओषधिवाचक[1] शब्द के परवर्त्ती 'वन' शब्द का दन्त्य 'न' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है। यथा—(द्विस्वर) लोध्रवणम्, लोध्रवनम्, (त्रि-स्वर) मन्दारवणम्, मन्दारवनम्, बदरीवणम्, बदरीवनम्। (ओषधि) रम्भावणम्; रम्भावनम्; नीवारवणम्, नीवारवनम् इत्यादि।

किन्तु अग्रे, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र और खदिर शब्द के परवर्त्ती तथा प्र, निर् और अन्तर्—इन अव्ययों के परवर्त्ती 'वन'—शब्दका अन्त्य 'न' नित्य मूर्द्धन्य होता है; यथा—अग्रेवणम्, शरवणम्, इक्षुवणम्, प्लक्षवणम्, आम्रवणम्, खदिरवणम्, प्रवणम्, निर्वणम्, अन्तर्वणम्।

अन्यपदस्थित 'र्'—प्रभृति के परवर्त्ती 'पान-शब्दका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है; तथा—क्षीरपाणम्, क्षीरपानम्; विषपाणम्' विषपानम्।

पूर्वपद के अन्त में मूर्द्धन्य 'ष' रहने से, परपदवर्त्ती दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—निष्पानम्, दुष्पानम्, हविष्पानम्, निष्कामेन, निष्कामानाम्, आयुष्कामेन।

प्र, पूर्व, अपर प्रभृति शब्दों के परवर्त्ती 'अह्न'—शब्द का—पर, पार, उत्तर, राम, चान्द्र और नार शब्द के परवर्त्ती 'अयन'—शब्द का तथा अग्र और ग्राम शब्द के परवर्त्ती 'नी'—शब्द का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—(अह्न) प्राह्णः, पूर्वाह्णः, अपराह्णः, (अयन) परायणम्, पारायणम्, उत्तरायणम्, रामायणम्, चान्द्रायणम्, नारायणः; (नी) अग्रणीः, ग्रामणीः।

वयस् (उम्र) अर्थ समझाने से त्रि और चतुर् शब्द के परवर्त्ती 'हायन'—शब्द का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; तथा—त्रिहायणो वत्सः, चतुर्हायणी गौः।

---

१. फल पक जाने से जिन वृक्षादिकों का नाश हो जाता है, उन्हें 'औषधि' कहते हैं।—औषध्यः फलपाकान्ताः।

'शूर्प'—शब्द के परवर्ती 'नख' शब्द का,—तथा प्र, द्रु, स्वर औ वार्ध्री शब्द के परवर्ती 'नस' शब्द का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा– शूर्पणखा, प्रणसः, द्रुणसः, खरणसः, वार्ध्रीणसः ।

गिरिनदी—प्रभृति का दन्त्य 'न' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा– गिरिणदी, गिरिनदी; स्वर्णदी; स्वर्नदी; गिरिणितम्बः, गिरिनितम्बः गिरिणद्धम्, गिरिनद्धम् ।

स्वाभाविक णत्व

कङ्कणं किङ्किणी कोणः कणिका काकिणी कणः ।
कल्याणं कुणपः काणः कफोणिश्चक्कणः किणः ॥
निक्वाणो निक्वणः क्वाणो लावण्यं गणिका गणः ।
मत्कुणः शोणितं शोणः पण्यं पुण्यं पणो मणिः ॥
वाणिज्यं विपणिः शाणो वणिगापण उल्वणः ।
बाणो वीणा घुणो वेणुस्तूणः स्थाणुः फणा फणी ॥
पणवो लवणं गोणी चणकोऽणुर्ऋणः कुणिः ।
माणिक्यं पक्वणो वेणी पाणिरेणस्तथैव च ॥
भाणा वाणी-स्वतो ह्येते शब्दा णत्वं प्रपेदिरे ॥

षत्व-विधान

अ आ भिन्न स्वरवर्ण, क् और र् के परस्थित प्रत्यय का 'दन्त्य'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है; यथा—

इ + सु = इ + षु—मुनि + सु = मुनिषु।

र् + सु = षु—चतुर् + सु = चतुर्षु।

क + सु = क्षु—वाक् + सु = वाक्षु।

अनुस्वार और विसर्ग का व्यवधान रहने से भी दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य ष् होता है; यथा—

ऊ + (ं) + सि = ऊंषि—धनू + (ं) + सि = धनूंषि।

उ + (:) सु = उःषु—आयु + (:) + सु = आयुःषु[२]।

किन्तु क्लीबलिंग शब्द का प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन का अनुस्वार छोड़कर अन्य अनुस्वार के व्यवधान से नहीं होता; यथा—पुंसः, पुंसा।

'सात्'—प्रत्यय का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—अग्निसात्, नदीसात्।

टवर्ग के पूर्वस्थित दन्त्य 'स्' प्रायः मूर्द्धन्य होता है; यथा—कष्टम्, दुष्टः।

सु, वि, निर् और दुर् उपसर्ग के परवर्ती 'सम' शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य ष् होता है; यथा—सुषमः, विषमः, निःषमः, दुःषमः।

समास में—अम्ब. गो, भूमि, अङ्गु, दिवि, द्वि, त्रि और अग्नि शब्द के परवर्ती 'स्थ'—शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य होता है; यथा—अम्बष्ठः, गोष्ठम्, भूमिष्ठः, अङ्गुष्ठः, दिविष्ठः, द्विष्ठः, त्रिष्ठः, अग्निष्ठः।

---

१. प्रत्यय से आदेश और आगम का भी ग्रहण करना चाहिये।

२. नामि—क—र—परः प्रत्ययाविकारागमस्थः सिः षं नु—विसर्जनीय—षान्तरोऽपि।—(नामि—क—रेभ्यः परः प्रत्ययविकारागमस्थोऽनन्त्यः सिः षत्वमापद्यते, नु—विसर्जनीय षान्तरः; 'अपि'—शब्दादनन्तरोऽपि।)

समास में—मातृ और पितृ-शब्द के परवर्ती 'स्वसृ'—शब्द का प्रथम दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य होता है; यथा—मातृष्वसा, पितृष्वसा। विभक्ति रहने से बिकल्प से; यथा—मातुःष्वसा, मातुः स्वसा; पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।

'युधि' शब्द के परवर्त्ती 'स्थिर'-शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य होता है; यथा—युधिष्ठिरः।

समास में 'अङ्गुलि' शब्द के परवर्ती 'सङ्ग'-शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य होता है; यथा—अङ्गुलिषङ्गा (यवागूः)।

स्वाभाविक षत्व

ईषत् कोष इषुर्योषिद् भूषणं विषमोषधिः।
उत्कर्षो वर्षणं हर्षः षोडशः षण्ड ऊषरम्॥
अमर्षो दूषणं श्लेषो दोषा द्वेषः षडाननः।
परुषः पुरुषः श्लेष्मा पुष्पं भीष्मो विशेषणम्॥
विषयो मूषिको मेषो महिषो घोषणा वृषः।
वर्षा विशेष्यं भाषोष्मा पौष आषाढ़ औषधम्॥
प्रदोषः सर्षपः प्रेष्यस्तोषणं पोषणं भिषक्।
भीषणं शोषणं शेषः कषायः कलुषं तुषः॥
अभिलाष ऋषिर्ग्रीष्मो निमेषो निकषाऽऽमिषम्।
उषा तुषारः पाषाणः काषायश्च ततः परम्॥
गण्डूषः कल्मषं शष्प—स्त्वतः षत्वमिमे गताः।

षोपदेश धातु को[1] अभ्यास करने से धातु के द्वितीय दन्त्य 'स्' इ, उ, ए, ओ इन चार वर्णों से परस्थित होने से वह दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है। यथा—सिच्—सिषेच, सिषिचतुः, सिषिचुः[2]; सिध्—

१. संज्, सत्, सह, साध्, सिच्, सिव्, सिध्, सु, सू, सेव्, सो, स्तम्भ्, स्तु, स्तुम्भ्, स्त्यै, स्था, स्ना, स्निह्, स्नु, स्मि, स्वञ्ज्, स्वद्, स्वप्, स्विद् आदि।

२. षङ् प्रत्यय होने से सिच् धातु का दन्त्य स् मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता यथा—सेसिच्यते।

सिषेध; सु–सुषाव, सुषुवतुः; सू–सुषुवे; सेव्–सिषेवे, सिषेवाते, सिषेविरे, स्तु–तुष्टाव; स्निह्–सिष्णेह; स्मि–सिष्मिये; स्वप्–सुष्वाप, सुषुपतुः, सुषुपुः; स्तुभ्–तुष्टुभे; सो–सेषीयते; सेव्–सेषेव्यते, सु–सोषूयते; स्तु-तोष्टूयते।

धातु के उत्तर विहित सन् प्रत्यय का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होने से धातु का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' नहीं होता। यथा—सिच्–सिसिक्षति; सू–सुसूषते; सेव्–सिसेविषते, स्मि–सिस्मयिषते; स्तम्भ–तिस्तिम्भिषति, स्तुभ्–तुस्तोभिषत; स्नू–सुस्नूषति सन् का स दन्त्य होने से धातु का स मूर्द्धन्य ष होता है। यथा—स्था–तिष्ठासति; स्वप–सुषुप्सति; सो–सिषासति; स्ना–सिष्णासति। ण्यन्त धातु के मध्य में केवल स्विद्, स्वद् और सह धातु का नहीं होता। यथा—स्विद्–सिस्वेदयिषति; स्वद्–सिस्वादयिषति; सह–सिसाहयिषति। एतद्भिन्न ण्यन्त धातु का होता है। यथा–सुष्वापयिषति; सिच्—सिषेचयिषति; सिध्—सिषेधयिषति; स्नु–सुष्णावयिषति; सञ्ज्–सिषञ्जयिषति।

इकारान्त[2] और उकारान्त[3] उपसर्ग के परस्थित सु आदि[4] धातु का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[5] यथा—सु–अभिषुणोति, अनुषुणोति[6], सू[7]–अधिषुवति, अनुषुवति; सो–अधिष्यति; स्तु–अभिष्टौति, अनुष्टौति, स्तुम्भ–प्रतिष्टोभते, अनुष्टोभते; स्था–अधिष्ठास्यति, अनुष्ठास्यति; सेनि–अभिषेणयति; सिध[8]–प्रतिषेधति, अनुषेधति; सिच्–निषिञ्चति,

---

१. केवल स्तु का होता है। यथा—तुष्टूषति।

२. नि, वि, परि, प्रति, अति, अधि, अपि, अभि। ३. सु, अनु। ४. सु, सू, सो, स्तुभ्, स्था, सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, स्तम्भ्। ५. उपसर्गात् सुनोति—सुवति—स्यति—स्तौति—स्तोभति—स्था—सेनय—सेध—सिच—सञ्ज—स्वञ्जाम्। ६. लृट् और लृङ् विभक्ति और स्यात् प्रत्यय परे रहने से नहीं होता। यथा—लृट्–अभिसोष्यति; लृङ्–अभ्यसोष्यत्; स्यत्–अभिसोष्यत। ७. तुदादिगणीय। ८. गमनार्थक सिधु–धातु का नहीं होता। यथा–गृहं प्रतिसेधति, परिसेधति, अभिसेधति। दिवादिगणीय सिध धातु का नहीं होता। यथा—निसिध्यति।

अनुषिञ्चति; सञ्ज्–निषजति, अनुषजति; स्वञ्ज्–परिष्वजते, अनुष्वजते; सद्–विषीदति, अनुषीदति[1], स्तम्भ् अभिष्टभ्नाति, अनुष्टभ्नाति[2]–अट्-व्यवधान में भी मूर्द्धन्य 'ष' होता है यथा—अभ्यषुणोत्, अभ्यषेणयत्, अभ्यषिञ्चत्, अन्वषजत्, वाषीदत्[3]।

परि, नि, वि पूर्वक सेव्, सिव्, सद् धातु का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[4] यथा—सेव–परिषेवते, निषेवते, विषेवते; सिव्–परिषीव्यति; सह्–परिषहते[5] अट्-व्यवधान में भी होता है; किन्तु सेव् धातु का नित्य, सिव् और सह् धातु का विकल्प से। यथा—सेव्-पर्यषेवत, सिव्—पर्यषीवत् पर्यसीवत्, सह—न्यषहत, न्यसहत। णिजन्त करने से लुङ् विभक्ति में सिव् और सह् धातु के दन्त्य 'स्' को मूर्द्धन्य 'ष्' नहीं होता। यथा—पर्यसीसिवत्; सह—पर्यसीसहत्।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के परस्थित से नि आदि[6] धातु अभ्यस्त होने से दोनों दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है। यथा—सेनि–अभिषिषेणयिषति; सिधु—निषिषेध; प्रतिषिषेधयिषति, सिच्—अभिषिषेच, अभिषिषेचयिषति[7]; सञ्ज्–अनुषषञ्ज, अभिषिषञ्जयिषति; स्वञ्ज्—परिषिष्वञ्जयिषति[8], सद्–निषिषादयिषति; सेव्–परिषिषेवे, अभिषिषेव्यते।

---

१. प्रतिपूर्वक का नहीं होता। यथा—प्रतिसीदति। २. आलम्बन और सामीप्य अर्थ में अवपूर्व का भी होता है। यथा—अवलम्बन अर्थ में—और स्वञ्ज् धातु का विकल्प से होता है। यथा—पर्यष्टावीत्, पर्यस्तावीत्, यष्टिमवष्टभ्य आस्ते, यष्टिमालम्ब्य तिष्ठतीत्यर्थः, सामीप्य अर्थ में—अवष्टब्ध गौः, गोः समीपे वर्त्तते इत्यर्थः। ३. परि, नि और विपूर्वकस्तु पर्यष्वजत, पर्यस्वजत। ४. परिनिविभ्यः सेव–सित्–सय–सिवु–सह–सुट्–स्तु–स्वञ्जाम्। ५. सह् के स्थान में सोढ हाने से मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता। यथा—परिसोढा, विसोढः। ६. सेनि, सिध, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, सेव्। ७. षङ् होने से नहीं होता। यथा—अभिसेसिच्यते। ८. लिट् विभक्ति में स्वञ्ज् और सद् धातु का दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता। यथा—स्वञ्ज–परिषस्वजे, विषस्वजे; सद्–निषसाद, निषसाद।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के परस्थित अभ्यस्त स्था और स्तम्भ धातु का दन्त्य स्, त–व्यवधान में भी मूर्द्धन्य 'ष' होता है। यथा—स्था-अभितष्ठौ, अनुतष्ठौ; अधितष्ठौ; स्तम्भ्-अभितष्टम्भ, अधितष्टम्भ, अनुतष्टम्भ।[1]

परिपूर्व स्कृ धातु का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष' होता है। यथा—परिष्करोति; परिष्कारः। अट्–व्यवधानमें विकल्प से होता है। यथा— पर्यष्करोत्, पर्यस्करोत्।

अनु, वि, परि, अभि, नि पूर्वक स्यन्द धातु का दन्त्य 'स्' विकल्प से मूर्द्धन्य 'ष' होता है।[2] यथा—अनुष्यन्दते; अनुस्यन्दते; विष्यन्दते, विस्यन्दते; परिष्यन्दते, परिस्यन्दते; अभिष्यन्दते, अभिस्यन्दते; निष्यन्दते, निस्यन्दते।[3]

परि पूर्वक स्कन्द् धातु का दन्त्य 'स्' विकल्प से मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[4] यथा—परिष्कन्दति, परिस्कन्दति, परिष्कन्नः, परिस्कन्नः।

निष्ठा (क्त और क्तवतु) भिन्न-कृत्-प्रत्यय परे रहने से वि-पूर्वक स्कन्द् धातु का दन्त्य स् विकल्प से मूर्द्धन्य ष् होता है।[5] यथा—विष्कन्ता, विस्कन्ता, विष्कन्तुम्, विष्कन्तुम्। निष्ठा प्रत्यय में नहीं होता। यथा—विस्कन्नः, विस्कन्नवान्।

निर्, नि, पूर्वक स्फुर् और स्फुल् धातु का दन्त्य स् विकल्प से मूर्द्धन्य 'ष' होता है।[6] यथा—स्फुर्—निष्फुरति, निस्फुरति; विष्फुरति, विस्फुरति, स्फुल्-निष्फुलति, निस्फुलति; विष्फुलति, विस्फुलति।

वि पूर्वक स्कम्भ् धातु का दन्त्य स् मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[7] यथा—विष्कभ्नाति, विष्कम्भितुम्, विष्कम्भितव्यम्, विष्कम्भः, विष्कम्भकः।

---

१. प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध—इन दोनों का दन्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता। णिजन्त करने से लुङ् विभक्ति में स्तम्भ का दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता। यथा—पर्यतस्तम्भत्। अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु। ३. प्राणी कर्त्ता होने से नहीं होता। यथा अनुस्यन्दते मत्स्यः। ४. परेश्च। ५. वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्। ६. स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः। ७. वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्।

स्वप् स्थान में कृत् सुप् , सु, वि, निर्, दुर् उपसर्ग के परवर्त्ती होने से दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[१] यथा—सुषुप्तः, सुषुप्तिः, विषुप्तः, निःषुप्तः, दुःषुप्तः, दुःषुषुपतुः, दुःषुषुपुः।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के तथा प्रादुः शब्द के परवर्त्ती अस् धातु का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[२] यथा—निषन्ति, प्रतिषन्ति, अधिषन्ति, अनुषन्ति, परिष्यात्, प्रादुःषन्ति, प्रादुःष्यात्। किन्तु सकार त् थ् म् वकार के साथ युक्त होने से नहीं होता। यथा—अधिस्तः, अनुस्तः, अभिस्थः, प्रादुःस्थः, प्रादुस्मः, अभिस्मः, अनुस्वः, प्रादुःस्वः।

वस् धातु के स्थान में उस् होने से दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[३] यथा—उषितः, उषितवान्, ऊषतुः, ऊषुः।

घस् धातु के घ् के स्थान में क् होने से दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[४] यथा—जक्ष्मतुः, जक्ष्मुः।

सह्—धातु निष्पन्न साह् शब्द साट् और साड् होने से दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' होता है।[५] यथा—तुराषाट्, तुराषाड्, तुराषाट्सु, तुराषाड्भ्यः। साह् रहने से नहीं होता। यथा—तुरासाहौ, तुरासाहः, तुरासाहम्।

अग्नि शब्द के परवर्त्ती स्तुत्, स्तोम और सोम शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[६] यथा—अग्निष्टुत्, अग्निष्टोमः, अग्नीषोमौ।

ज्योतिस् और आयुस् शब्द के परवर्त्ती स्तोम शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[७] यथा—ज्योतिष्टोमः, आयुष्टोमः।

संज्ञा समझाने से अ, आ भिन्न स्वर के परस्थित सेना शब्द का दन्त्य 'स्' मूर्द्धन्य 'ष्' होता है।[८] यथा—सुषेणः हरिषेणः, मधुषेणः। संज्ञा न समझाने से नहीं होता। यथा—कुरुसेना, यदुसेना, कपिसेना।

---

१. सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः। २. उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः।
३. शासिवसिघसीनाञ्च। ३. सहेः साडः सः।
अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः। ६. ज्योतिरायुषः स्तोमः।
७. एति संज्ञायामगात्।

अभ्यास

णत्व--विधान और षत्व--विधान के साधारण नियम क्या हैं उदाहरण सहित बताओ।

नीचे लिखे शब्दों को शुद्ध करो :--ग्रहेन, शठेण, द्रुमेन, अर्थेण, रसेण, करिना, हरीण्, प्रणाशः, क्षीरपानम्, प्रणष्टः, स्वर्णदी, मतृष्वसा, यन्त्रेन, गोसु, परिनौति, निसहते, सर्पिस्करोति, प्रभवानि, गृहगामिना, परिवपानि, वृत्रघ्नौ, अभिषिषेण्यते, अङ्गुलिषङ्गः, कानः, कुनपः, शोनः, वसी, प्रदोस, कलुस, पाशानः, गण्डूसः।

शब्द

एक वा एकाधिक वर्ण के मेल से शब्द बनता है। यथा—(एक वर्ण) अ (विष्णु)। (अधिक वर्ण) व + आ = वा, उ + म् + आ = उमा; र् + आ + म् + अ = राम।

धातु और प्रत्यय[1] से भिन्न अर्थयुक्त वस्तुवाचक या विशेषणवाचक शब्द को 'प्रातिपदिक वा नाम' कहते हैं, यथा—(वस्तुवाचक) घट, पट, तरु, लता; (विशेषणवाचक) उत्तम, अधम, सुन्दर।

समासनिष्पन्न; कृत्प्रत्ययान्त, तद्धितप्रत्ययान्त और स्त्रीप्रत्ययान्त होने से भी प्रातिपदिक वा शब्द होता है।

शब्द-भेद

विभक्तियुक्त शब्द (प्रातिपदिक) और धातु को—अर्थात् शब्द और धातुरूप को—'पद' कहते हैं; यथा—राम + सु = रामः; भू + ति = भवति;—ये दोनों पद हैं।

पद दो प्रकार के हैं (१) सुबन्त ओर (२) तिङन्त। पद न होने से संस्कृत भाषा में प्रयोग नहीं होता।

संज्ञा

जिस शब्द से वस्तु, व्यक्ति, जाति, गुण वा क्रिया का बोध होता है उसे 'संज्ञा' या विशेष्य' कहते हैं। संज्ञा पाँच प्रकार के हैं—

---

१. भू (होना), स्था (रहना) प्रभृति क्रियावाचकों को 'धातु' कहते हैं। शब्द और धातु को 'प्रकृति' कहते हैं। प्रकृति के उत्तर अर्थविशेष में जो होता है, उसका नाम 'प्रत्यय'। प्रत्यय पाँच प्रकार के हैं (१) सुप्, (२) तिङ्, (३) कृत्, (४) तद्धित और (५) स्त्रीप्रत्यय। इनके बीच में सुप् और तिङ् प्रत्यय को 'विभक्ति' कहते हैं।

शब्द और धातु के उत्तर कई प्रत्यय होने से, समुदाय में धातु होता है: उन प्रत्ययों को 'धात्ववयव' कहते हैं।

(१) वस्तुवाचक —जलम्, प्रस्तरः, घटः, मठः, ।
(२) व्यक्तिवाचक —रामः, हिमालयः, गङ्गा, भारतवर्षम् ।
(३) जातिवाचक —मनुष्यः, पशुः, पक्षी, कीटः ।
(४) गुणवाचक —ऋजुता, साधुता, मृदुता, धैर्यम् ।
(५) क्रियावाचक —गमनम्, भोजनम्, दर्शनम्, श्रवणम् ।

विशेषण

जिस शब्द से अन्य पद के गुण वा दोष, संख्या और अवस्थादि प्रकाशित होते हैं उसे 'विशेषण' कहते हैं।

विशेषण तीन प्रकार के हैं (१) संज्ञा यानी विशेष्य का विशेषण (२) विशेषण का विशेषण और (३) क्रिया का विशेषण।

जिस पद से विशेष्य के गुण, अवस्था, आकार, वर्ण, संख्यादि प्रकाशित होते हैं उसे 'विशेष्य का विशेषण' कहते हैं; यथा—(गुण) सुन्दरः बालकः, दुष्टः मनुष्यः; (अवस्था) सन्निहितः देहः; (आकार) विशालः तरु; (वर्ण) नीलं नभः, शुक्लं वसनम्; (संख्या) एकं फलम्, पञ्चमः पाठः।

विशेष्य और विशेषण के लिङ्ग, विभक्ति और वचन समान होते हैं;[१] यथा—सुन्दरः बालकः; सुन्दरौ बालकौ; सुन्दराः बालकाः, सुन्दरम् बालकम्, सुन्दरी बालिका, सुन्दर्यौ बालिके, सुन्दर्यः बालिकाः; सुन्दरीं बालिकाम्, सुन्दरं पुष्पम्, सुन्दरे पुष्पे, सुन्दराणि पुष्पाणि।

जो शब्द नियतलिङ्ग वा अजहल्लिङ्ग (अर्थात् नित्यपुलिङ्ग नित्य स्त्रीलिङ्ग वा नित्य क्लीबलिङ्ग हैं वे विशेषण होने से लिङ्ग का परिवर्त्तन नहीं होता; यथा—आदिः कृत्यम्, वाल्मीकेः कृतिः रामायणम्; जगतः कारणं विभुः।

जिस पद से विशेषण के अर्थ को वर्द्धित अथवा संकोचित (बढ़ाया वा घटाया) जाता है, उसे 'विशेषण का विशेषण' कहते हैं;

---

१. विशेष्येषु हि यल्लिङ्गं, विभक्ति-वचने च ये।
तानि सर्वाणि योज्यानि विशेषणपदेष्वपि।

यथा—अतिसुन्दरः, अतिमन्दः, अत्यन्तं कोमलम्, नितान्तं क्षुद्रम्, अतिशयं महत् ।

जिस पद से क्रिया के गुण अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'क्रिया विशेषण' कहते हैं; यथा—मधुरं हसति, सत्वरं धाव, शीघ्रं देहि ।

सर्वनाम

जो सर्वनाम अर्थात् संज्ञा के बदले व्यवहृत होता है, ऐसे 'सर्व'—प्रभृति शब्द को 'सर्वनाम' कहते हैं ।

रूप के वैलक्षण्यानुसार सर्वनाम शब्द पाँच भागों में विभक्त हैं, यथा—

(१) सर्वादि—सर्व, विश्व, उभ, उभय, एक, एकतर, सम, सिम, नेम ।

(२) अन्यादि—अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतर, एकतम ।

(३) पूर्वादि—पूर्व, पर, अपर, अवर, अधर, दक्षिण, उत्तर, अन्तर ।

(४) यदादि—यद्, तद्, त्यद्,[1] एतद्, किम् ।

(५) इदमादि—इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद् ।

अव्यय

जिन पदों का किसी भी अवस्था में रूपान्तर नहीं होता उन्हें 'अव्यय' कहते हैं; यथा—च, वा, तु, हि, यदि, एवम् इत्यादि ।

लिङ्ग

शब्दों का लिङ्ग है । लिङ्ग तीन प्रकार के हैं—(१) पुंलिङ्ग, (२) स्त्री-लिङ्ग, (३) क्लीबलिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग । संस्कृत भाषा में बहुतेरे स्थलों में ही लिङ्ग शब्दगत होता है । यथा—आलय, वसति और गृह—ये तीन शब्द एकार्थबोधक होने पर भी, प्रथम शब्द पुंलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग और तृतीय क्लीबलिङ्ग है । दार और कलत्र शब्द स्त्रीवाचक होने पर भी,

१. तद् और त्यद् शब्द एकार्थक हैं ।

भी, दार शब्द पुंलिङ्ग, और कलत्र क्लीबलिङ्ग है । सन्तान, सन्तति और अपत्य शब्द—पुत्र और कन्या—इन दोनों के वाचक होने पर भी प्रथम शब्द पुंलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग और तृतीय क्लीवलिङ्ग हैं ।

वचन

वचन तीन प्रकार के हैं (१) एकवचन, (२) द्विवचन और (३) बहुवचन । एकवचन में एक, द्विवचन में दो और बहुवचन में तीन वा तदधिक संख्या का बोध होता है; यथा—त्वम्—तू एक आदमी, युवाम्— तुम दोनों, यूयम्—तुम तीन वा तदधिक । यहाँ हिन्दी से संस्कृत का इतना भेद है कि हिन्दी में द्विवचन का व्यवहार नहीं होता है ।

क्रिया

जिससे कार्य (अर्थात् गमन; भोजन, शयन प्रभृति किसी प्रकार कार्य का) बोध होता है; उसे 'क्रिया' कहते हैं; यथा—गमन (जाना), गत (गया है, ऐसा), गच्छति (जाता है), गत्वा (जाकर) में चार ही क्रियायें हैं । (क्रिया का नामान्तर भाव, धात्वर्थ है) ।

'मृदु गमनम्'—यहाँ 'गमनम्' क्रियावाचक विशेष्य है, 'गतं दिनम्'—यहाँ 'गतम्' क्रियावाचक विशेषण है, 'स गच्छति' (वह जाता है) कहने से वाक्य समाप्त होता है, अर्थात् श्रोता की आकाङ्क्षा निवृत्ति करती है, इसलिये 'गच्छति' समापिका क्रिया है, 'स गत्वा, (उसने जाकर) कहने से 'गत्वा' क्रिया वाक्यों को समाप्त नहीं कर सकती (अर्थात् उसने जाकर—क्या किया ?' इस प्रकार श्रोता की एक आकाङ्क्षा रह जाती है), इस लिए यह असमापिका क्रिया है ।[1]

---

१. सब तिङन्तपद समापिका क्रियायें हैं, स्थानविशेष में क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, प्रभृति कृदन्तपद भी समापिका क्रिया होते हैं; यथा—स गतः (वह गया) तेन गन्तव्यम् (वह जायेगा) । तुम्, त्वा, यप् और णमुल् प्रत्ययान्त पद असमापिका क्रिया हैं । जिसका विशेषण रहता है, वह विशेष्य होगा ही; सुतरां विशेषण रहने से समापिका और असमापिका क्रिया

काल

क्रिया के समय को 'काल' कहते हैं। काल तीन प्रकार के होते हैं-(१) भूत, (२) भविष्यत् और (३) वर्तमान। जो क्रिया पूर्व में हो चुकी, उसके काल को भूत वा अतीत काल कहते हैं। जो क्रिया पश्चात् होगी, उसके काल को 'भविष्यत् काल' कहते हैं। और जो क्रिया होरही है, उसके काल को 'वर्तमान काल' कहते हैं।

कारक

क्रिया के साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसका—कारक कहते हैं।[1]

कारक छः प्रकार के होते हैं (१) कर्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादान और (६) अधिकरण।

जो क्रिया—निष्पादन करता है, उसको 'कर्ता' कहते हैं;[2] यथा—(राम करता है) रामः-करोति; (लड़का रोता है) बालः रोदिति;–यहाँ 'रामः' और बालः' कर्तृकारक हैं।

जो क्रिया जाता है उसको 'कर्मकारक' कहते हैं;[3] यथा—(काम करता है) कार्यं करोति, (जल पीता है) जलं पिबति; (रोटी खाता है) रोटिकां भुङ्क्ते,—'यहाँ 'कार्यम्', 'जलम्' और 'रोटिकाम्' कर्म कारक हैं।

जिससे क्रिया सम्पादित की जाती है, अर्थात् जो क्रिया निष्पत्ति

भी विशेष्य होती है;—द्रुतं गच्छति (शीघ्र जाता है) ,यहाँ 'गच्छति' विशेष्य है, 'मन्द मन्दं गत्वा' (धीरे धीरे जाकर), यहाँ 'गत्वा' विशेष्य है, सुखं, स्थातुम्' (सुख से रहने के लिए), यहाँ, 'स्थातुम्' विशेष्य है क्योंकि "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते" अर्थात् भाववाच्य में कृत्प्रत्यय निष्पन्न शब्द द्रव्य के नामबोधक शब्द के तुल्य गण्य होता है ('कृ'–धातु + भाववाच्ये तुम् = कर्तुम्)।

१. क्रियान्वयि कारकम्।

२. यः करोति, स कर्ता।

३. यत् क्रियते, तत् कर्म।

का सर्वप्रधान-उपाय है, उसको 'करण कारक' कहते हैं;[1] यथा—(आँख से देखता है) चक्षुषा पश्यति ; (हाथ से लेता है) हस्तेन गृह्णाति—यहाँ 'चक्षुषा' और 'हस्तेन' करण कारक है।

जिसको कोई वस्तु दी जाती है उसे 'सम्प्रदान' कहते हैं;[2] यथा—(दरिद्र को धन देता है) दरिद्राय धनं ददाति; (भिक्षुक को भिक्षा देता है) भिक्षवे भिक्षां ददाति;—यहाँ 'दरिद्राय' और 'भिक्षवे' सम्प्रदान कारक है।

जिससे कोई पदार्थ वियुक्त (अलग) होता है, उसे 'अपादान' कहते हैं[3]; यथा—(पेड़ से फल गिरता है) वृक्षात् फलं पतति; (गाँव से आता है) ग्रामात् आयाति;—यहाँ 'वृक्षात्' और 'ग्रामात्' अपादान कारक हैं।

कर्त्ता वा कर्म का जो आधार है इसे 'अधिकरण' कहते हैं;[4] यथा—(शिवदत्त घर में सोता है) शिवदत्तः गृहे शेते; (माँ बच्चे को बिछौने पर सुलाती है) जननी शय्यायां शिशुं शाययति; यहाँ 'गृहे' और 'शय्यायाम्' अधिकरण हैं।

जो पद किसी अन्य पद के साथ सम्बन्ध प्रकाश करता है, उसे 'सम्बन्ध' कहते हैं; यथा—(वृक्ष की शाखा) वृक्षस्य शाखा; (उसकी पुस्तक) तस्य पुस्तकम्;–यहाँ 'वृक्षस्य' और 'तस्य' सम्बन्ध पद हैं।

शब्द के उत्तर 'सु', 'औ', 'जस्' प्रभृति और धातु के उत्तर 'तिप्, तस्, अन्ति; प्रभृति जो प्रत्यय होते हैं, उनको 'विभक्ति' कहते हैं। 'सु, औ, जस्' प्रभृति को 'सुप् विभक्ति', और 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृति को 'तिङ्-विभक्ति' कहते हैं।

●

---

१. येन क्रियते, तत्, करणम्। २. यस्मै दानं संप्रदानम्।
४. यतो विश्लेषोऽपादानम्। ४. आधारोऽधिकरणम्।

सुबन्त-प्रकरण

प्रयोग काल में शब्द के उत्तर सुप्-विभक्ति होती है। सुप्-विभक्ति सात प्रकार की है—प्रथमा, द्वितोया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी। प्रत्येक विभक्ति के तीन तीन वचन हैं[1]।

सुप्-विभक्ति की आकृति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (:)	औ	जस् (अः)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पञ्चमी	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप् (सु)

आद्य अक्षर 'सु' और अन्त्य अक्षर 'प्' को लेकर इन विभक्तियों का नाम 'सुप्' रखा गया। इनको शब्द के अन्त में जोड़ने से जो पद बनता है, उसे 'सुबन्त-पद' कहते हैं। स्मरण रहे कि बन्धनी के मध्यस्थित आकार (रूप) ही कार्यकाल में अवशिष्ट रहते हैं।

रूपभेद से शब्द चार भागों में विभक्त हैं—(१) साधारण संज्ञा शब्द, (२) सर्वनाम शब्द, (३) संख्यावाचक शब्द और (४) अव्यय शब्द।

साधारण शब्द फिर छः भागों में विभक्त हैं—(१) स्वरान्त पुंलिङ्ग, (२) स्वरान्त स्त्रीलिंग, (३) स्वरान्त क्लीबलिंग, (४) व्यञ्जनान्त पुंलिंग, (५) व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग, (६) व्यञ्जनान्त क्लीबलिंग।

---

१. अतः सुप्-विभक्ति की संख्या २१।

पुंलिङ्ग निर्णय

पुरुषवाचक शब्द प्रायः पुंलिग है।

चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, प्रस्तर, पर्वत, समुद्र और वृक्ष-पर्याय-शब्द[1] पुंलिग। किन्तु प्रस्तर-पर्याय के बीच में शिला और दृषद् स्त्रीलिग हैं।

स्वर्ग-पर्याय के शब्द पुंलिग हैं; यथा—स्वर्गः, नाकः, त्रिदिवः। किन्तु द्यो, दिव् शब्द स्त्रीलिंग हैं। त्रिविष्टप शब्द क्लीबलिंग है। स्वर शब्द अव्यय है।

मेघ-पर्याय के शब्द पुंलिग हैं। यथा—मेघः, वारिवाहः, वलाहकः, जलधरः, वारिदः, जलमुक्, अम्बुभृत्। किन्तु अभ्र शब्द क्लीबलिंग है।

देवता-वाचक शब्द पुंलिग हैं। यथा—देवः, अमरः, निर्जरः, सुरः, विबुधः, त्रिदशः, दिवौकाः। किन्तु देवता शब्द स्त्रीलिंग है।

असुर वाचक शब्द; यथा—असुरः, दैत्यः, दनुजः, दानवः, सुरद्विट्, पुंलिग हैं।

चन्द्र-वाचक शब्द; यथा—चन्द्रः, चन्द्रमाः, इन्दुः, सोमः, सुधांशुः, हिमांशुः, मृगाङ्कः, शशधरः, क्षपाकरः—पुंलिग हैं।

सूर्य-वाचक शब्द; यथा—सूर्यः, आदित्यः, भास्करः मार्त्तण्डः, दिवाकरः, अहस्करः, विभाकरः, विभावसुः, सविता, रविः, तपनः, मित्रः, भानुः, सहस्रांशुः, अंशुमाली-पुंलिग हैं।

अग्नि-वाचक शब्द; यथा—अग्निः, वह्निः, अनलः, पावकः, वैश्वानरः, हुतभुक्—पुंलिग हैं।

वायु-वाचक शब्द; यथा—वायुः, अनिलः, समीरः, मारुतः, पवनः, प्रभञ्जनः, वातः, मरुत्—पुंलिग हैं।

---

१. एक अर्थ में जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन सबको 'पर्य्याय-शब्द' कहते हैं।

गिरि-वाचक शब्द; यथा--पर्वतः, अचलः, शैलः, अद्रिः, गिरिः, ग्रावा—पुंलिग हैं।

समुद्रवाचक शब्द; यथा--समुद्रः, सागरः, अब्धिः, पारावारः, उदधिः, सिन्धुः, अर्णवः, जलनिधिः, रत्नाकरः, सरित्पतिः--पुंलिग शब्द हैं।

नख-वाचक शब्द; यथा—नखः, कररुहः—पुंलिग शब्द हैं।

केश-वाचक शब्द; यथा—केशः, चिकुरः, कुन्तलः, कचः, शिरोरुहः—पुंलिग शब्द हैं।

दन्त-वाचक शब्द; यथा—दन्तः, दशनः, आदि पुंलिग हैं।

स्तन वाचक शब्द; यथा—स्तनः, कुचः आदि पुंलिग हैं।

भुज वाचक शब्द; यथा—भुजः, बाहुः, दोः आदि पुंलिग हैं।

कण्ठ-वाचक शब्द; यथा—कण्ठः, गलः आदि पुंलिग हैं।

खड्ग-वाचक शब्द यथा—खड्गः, असिः, करवालः, आदि पुंलिग हैं।

शर-वाचक शब्द; यथा--शरः, बाणः, विशिखः, मार्गणः, आदि पुंलिग हैं। किन्तु इषु शब्द दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है।

पङ्क-वाचक शब्द; यथा—पङ्कः, कर्दमः, आदि पुंलिग हैं।

शत्रु-वाचक शब्द; यथा—शत्रुः, रिपुः, अरिः, वैरी, सपत्नः, द्विषत्, द्विट, अमित्रः, अरातिः आदि पुंलिग हैं।

वर्ण-वाचक शब्द; यथा—शुक्लः, श्वेतः, शुभ्रः, पाण्डुरः आदि पुंलिग हैं।

ग्रह-वाचक शब्द; यथा—रविः, सोमः, बुधः, केतुः आदि पुंलिग हैं।

वृक्ष-वाचक शब्द; यथा—वृक्षः, तरुः, विटपी, शाखी, अनोकहः, महीरुहः, द्रुमः, पादपः, आदि पुंलिग हैं।

घञबन्तः—घञ् और अप् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिग होते हैं। यथा--पाकः, त्यागः, भावः, करः, गरः।

घाजन्तश्च--घ और अच् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिग होते हैं। यथा--विस्तरः गोचरः, चयः, जयः, किन्तु भय, लिंग, भगम्, वर्ष, मुख और पद शब्द क्लीबलिंग हैं। यथा--भयम्, लिंगम्, भगम्, वर्षम्, मुखम्, पदम्।

नङन्त—नङ् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होते हैं। यथा—यज्ञः, यत्नः; किन्तु याच्ञा शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

क्यन्तो घूः—कि-प्रत्ययान्त दा और धा-धातुनिष्पन्न शब्द पुंलिङ्ग होते हैं। यथा—आधिः, उदधिः, निधिः, किन्तु इषुधि शब्द पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों होता है।

क्रतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ-पर्याय शब्द पुंलिङ्ग होता है। यथा—क्रतुः—अध्वरः, मखः, यागः, पुरुषः—नरः, कपोलः, गण्डः, गुल्फः-प्रपदः।

रश्मिदिवसाभिधानानि—रश्मि और दिवस-पर्याय शब्द पुंलिङ्ग होते हैं। यथा—रश्मिः, करः, किरणः, अंशुः, गभस्तिः मयूखः, दिवसः, घस्रः; किन्तु दीधिति शब्द स्त्रीलिङ्ग और दिन तथा अहन् शब्द क्लीबलिङ्ग हैं।

मानाभिधानानि—मान-पर्याय शब्द पुंलिंग होता है। यथा—कुडवः, प्रस्थः, किन्तु द्रोण और आढक शब्द पुंलिंग और क्लीबलिंग तथा खारी और मानिका शब्द स्त्रीलिंग होता है।

दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वञ्च—दार, अक्षत, लाज, प्राण और असु शब्द पुंलिंग और बहुबचनान्त हैं। किन्तु 'जीवन' शब्द क्लीबलिंग है।

नाडी, अप और जन शब्द के परवर्ती व्रण, अंग और पद शब्द पुंलिंग होते हैं। यथा—नाडीव्रणः, अपाङ्गः, जनपदः।

अह्न और अह भागान्त शब्द पुंलिंग होते हैं। यथा—पूर्वाह्णः, मध्याह्नः, अपराह्णः, सायाह्नः, सप्ताहः।

संख्यावाचक शब्द पूर्व में नहीं है ऐसे रात्र-भागान्त शब्द पुंलिग होते हैं। यथा—अहोरात्रः, पूर्वरात्रः। किन्तु पञ्चरात्रम्, सप्तरात्रम् आदि शब्द क्लीबलिंग हैं।

'अन्' भागान्त शब्द पुंलिंग हैं। यथा—राजन्, मज्जन्, इत्यादि। किन्तु द्विस्वर 'मन्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा—कर्मन्, वर्मन्, इत्यादि।

'तु'-अन्त और 'रु'-अन्त शब्द पुंलिंग होते हैं, यथा—(तु) हेतुः, सेतुः, केतुः; (रु) मेरुः त्सरुः। किन्तु (तु) जतु और वस्तु-क्लीबलिंग

हैं, (रु) जत्रु, दारु, कशेरु क्लीबलिंग हैं।

'ण'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिंग होते हैं, यथा—व्याधः आदि।

'अथु'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिंग होते हैं; यथा—वेपथुः श्वयथुः आदि।

'इमन्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिंग होते हैं। यथा—लघिमन्, गरिमन्, इत्यादि। किन्तु प्रेमन् शब्द—पुंलिंग तथा क्लीबलिंग है।

स्वरान्त पुलिङ्ग शब्द के साधारण सूत्र—

अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्द के 'अम्' के स्थान में 'म्' होता है; यथा—देव + अम् = देव + म् = देवम्; विधि + अम् = विधिम्; साधु + अम् = साधुम्।

ह्रस्वस्वरान्त शब्द के 'शस्' के स्थान में 'न्' होता है, और वह 'न्' परे रहने से, पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—देव + शस् = देव = न् = देवान्; विधि + शस् = विधि + न्; = विधीन्; साधु + शस् = साधून्; दातृ + शस् = दातॄन्।

अकारान्त शब्द के परस्थित 'टा' के स्थान में 'इन', भिस्' के स्थान में 'ऐस्', 'ङे' के स्थान में 'अय', 'ङसि' के स्थान में 'आत्', 'ङस्' के स्थान में 'स्य', और 'ओस्' के स्थान में 'योस् होता है; यथा—देव + टा = देव + इन = देवेन; देव + भिस् = देव + ऐस् = देवैः; देव + ङे = देव + अय + देवाय; देव + ङसि = देव + आत् = देवात्; देव + ङस् = देव + स्य = देवस्य; देव + ओस् + देव + योस् = देवयोः।

'भ्याम्' परे रहने से अकार के स्थान में आकार, और 'भ्याम्' तथा 'सुप्' परे रहने से एकार होता है; यथा—देव + भ्याम् = देवाभ्याम्; देव + भ्यस् = देवेभ्यः; देव + सुप् = देवेषु।

ह्रस्वस्वरान्त शब्द के 'आम्' के स्थान में 'नाम्' होता है, वह 'नाम्' परे रहने से, पूर्वस्वर दीर्घ होता है। यथा—देव + आम् = देव + नाम् = देवानाम्, विधि + आम् = विधि + नाम् = विधीनाम्, साधु + आम् = साधूनाम्; दातृ + आम् = दातॄणाम्।

ह्रस्वस्वरान्त शब्द के सम्बोधन में 'सु' का लोप होता; यथा—देव + सु = देवेषु।

'शस्'–प्रभृति का स्वर वर्ण परे रहने से, धातु-निष्पन्न आकारान्त शब्द के आकार का लोप होता है; यथा—विश्वपा + शस् = विश्वपा + अः = विश्वप् + अः = विश्वपः ।

इकारान्त शब्द के 'औ' के स्थान में 'ई', और उकारान्त शब्द के 'औ के स्थान में 'ऊ' होता है; यथा—विधि + औ = विधि + ई = विधी; साधु + औ = साधु + ऊ = साधू ।

'जस्', 'ङे' 'ङसि', ङस्' और सम्बोधन के एकवचन में इकारान्त शब्द के 'इ' के स्थान में 'ए', और उकारान्त शब्द के 'उ' के स्थान में 'ओ' होता है; यथा—विधि + जस् = विधि + अः = विधे + अः = विधयः, विधि + ङे = विधि + ए = विधे + ए = विधये; साधु + जस् = साधु + अः, = साधो + अः = साधवः; साधु + ङे = साधु + ए = साधो + ए = साधवे; विधि + सु(सम्बोधन)=विधे; साधु + सु = (सम्बोधन)=साधो ।

एकार वा ओकार से परे 'ङसि' और 'ङस्' के अकार का लोप होता है, यथा—विधि + ङसि = विधि + अः = विधे + अः = विधे + : = विधेः, साधु + ङसि = साधु + अः = साधो + अः = साधो + :साधोः ।

इकारान्त और उकारान्त शब्द के 'टा' के स्थान में 'ना' होता है; यथा—विधि + टा = विधि + ना = विधिना, साधु + टा = साधुना ।

इकारान्त और उकारान्त शब्द के 'ङि' के स्थान में 'औ' होता है, और अन्त्यस्वर का लोप होता है; यथा—विधि + ङि = विधि + औ = विध् + औ = विधौ; साधु + ङि = साधु + औ = साध् + औ = साधौ ।

स्वरवर्ण परे रहने से, धातुनिष्पन्न ईकारान्त शब्द के 'ई' के स्थान में प्रायः 'इय्' और ऊकारान्त शब्द के 'ऊ' के स्थान में उव होता है; यथा—सुधी + औ = सुध् + इय् + औ = सुधियौ; प्रतिभू + औ = प्रतिभ् + उव् + औ = प्रतिभुवौ; प्रतिभू + जस् = प्रतिभू + अः = प्रतिभ् + उव् + अः = प्रतिभुवः ।

ऋकारान्त शब्द के 'सु' का लोप, और 'ऋ' के स्थान में 'आ' होता है; यथा—दातृ + सु = दाता ।

'जस्', 'औ', और 'अम्' परे रहने से, ऋकारान्त शब्द के 'ऋ' के स्थान में 'आर्' होता है; किन्तु पितृ प्रभृति शब्द के 'ऋ' के स्थान में 'अर्' होता है; यथा—दातृ + जस् = दात् = आर् + अः = दातारः; दातृ + औ = दात् + आर + औ = दातारौ; दातृ + अम् = दात् + आर् + अम् = दातारम्, पितृ + औ = पित् + अर् + औ = पितरौ।

ऋकारान्त शब्द के 'ङसि' और 'ङस्' के स्थान में 'उः' होता है; 'उः' परे रहने से, ऋकार का लोप होता है; यथा—दातृ + ङसि = दातृ + उः = दातुः; पितृ + ङसि = पितृ + उः = पित् + उः = पितुः।

सम्बोधन का 'सु', अथवा 'ङि' परे रहने से, ऋकारान्त शब्द के 'ऋ' के स्थान में 'अर्' होता है; यथा—पितृ + सु = पित् + अर् = पित् + अः = पितः; दातृ + ङि = दात् + अर् + इ = दातरि।

'सु', 'जस्' अथवा 'औ' परे रहने से, ओकारान्त शब्द के 'ओ' के स्थान में 'औ' होता है; और 'अम्' तथा शस्' परे रहने से, 'आ' होता है; यथा—गो + सु = ग् + औ + : = गौः; गो + औ = ग् + औ = गौ + औ = गावौ; गो + जस् = गौ + अः = गावः; गो + अम् = ग् + आ + अम् = गाम्; गो + शस् + ग् + आ + अः = गाः।

स्वरान्त-शब्द

पुंलिङ्ग

अकारान्त—नर

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नरः	नरौ	नराः
द्वितीया	नरम्	नरौ	नरान्
तृतीया	नरेण	नराभ्याम्	नरैः
चतुर्थी	नराय	नराभ्याम्	नरेभ्यः
पञ्चमी	नरात्	नराभ्याम्	नरेभ्यः
षष्ठी	नरस्य	नरयोः	नराणाम्
सप्तमी	नरे	नरयोः	नरेषु
सम्बोधन	नर	नरौ	नराः

अंश, अंकुर, अंगुष्ठ (अंगूठा), अजगर, अधमर्ण (ऋणी), अधर (ओंठ), अध्यक्ष, अध्वर (यज्ञ), अनल, अन्त, अब्द (साल, वर्ष), अमात्य (मंत्री), अर्थ, अश्व, अस्त, आकार, (खान), आचार, आनाय (जाल), आमय (रोग), आय, आलय, इतिहास, इरम्मद (बिजली की चमक), उपल (पत्थर का चट्टान), ऊर्णनाभ (मकड़ी), कच्छप (कछुवा), कट, कटाक्ष, कण्ठ, कपोल, कफ, कम्प, कन्दर, कर, करङ्क (गोल डिबिया), कर्ण, कर्णधार, कलङ्क, कलकल, कलह, कल्प, कल्लोल, काक, काम, काश, किरण, किशोर, कुक्कुर (कुत्ता), कुंजर (हाथी), कुम्भ, कूप, कूर्म्म, कृष्णसार (हिरण), केश, कोण, कोदण्ड (धनुष), कोरक (कलि), कोश, क्रकच (आरी), क्रम, क्रमेलक (ऊँट), क्लम (थकान), क्षण, क्षय, क्षुर, खञ्ज (लंगड़ा), खल, खुर, गण, गण्ड, गद (रोग), गन्ध, गन्धक, गुच्छ, गुण गुल्फ (पैर की घुट्ठी), गुवाक

(सुपाड़ी का पेड़) गोप, ग्रह, घट, घन, घर्म्म, चारण (भाट), चूत (आम का पेड़), चोर, चोल, छाग, जन, जनरव, जम्बुक (शियार), जव, (गति), जाल्म (अभागा, दुष्ट), जोमूत (बादल), जीव, ज्वर, झङ्कार, टिट्टिभ (टिड्डी) डिम्ब, तडाग, तण्डुल (चावल), तमाल, तर्क, तल्ल (एक बड़ा तालाब), तस्कर, ताप, ताल (ताड़ का पेड़), तालवृन्त (पंखा) दण्ड, दत्तक (पालित पुत्र), दन्त, दम्भ, दर्पण, दाडिम (अनार का पेड़), दास, दिवस, दीप, दूत, देव, दोष, द्वीप, धव (पति), धूप, धूर्त्त, ध्वंस, महानस (रसोई घर), मुहूर्त्त, मूर्ख, मृग, मेघ, मेल, मोक्ष, म्लेच्छ, यव, याचक, यात्रिक, युग, योध, रङ्ग, रथ, रय (स्रोत, बल), रस, रसाल (आम का पेड़), लगुड (लाठी), ललाट, लुब्धक (चिड़ीमार) लोक, लोभ, वंश, वट, वयस्य (साथी), वर (वरदान), वर्ग, वर्ण, वल्मीक (दीमक), वसन्त, वात, वायस, वारण (हाथी), वासर (दिन), वृक्ष, वृत्तान्त वृष, वेग, वेश (पोषाक), व्यय, व्याध, व्रात (भीड़), शकट (बैलगाड़ी), शठ (दुष्ट व्यक्ति), शर, शबर (जंगली जाति का एक आदमी), शब्द, शाक, शावक, शिखण्ड (मयूरपुच्छ, शिष्य, शुक, शृगाल, श्रम, श्लोक, श्वापद (एक शिकारी जानवर), षण्ड, संग्राम, संघ, सचिव, समय, समाज, समुद्र, समूह, सर्प, सहाय, सार, सिंह, सैनिक, सोम (सोमरस) सूत (रथ-चालक), सूर्य, स्तन, स्तम्भ, स्तबक, स्तूप (ढेर) आदि प्रायः सभी पुंलिङ्ग अकारान्त शब्दों के रूप 'नर' शब्द के समान होते हैं।

अल्प, प्रथम, चरम, अर्द्ध, कतिपय (कई), द्वय, त्रय द्वितय (दो), त्रितय, चतुष्टय आदि के प्रथमा के बहुवचन में कुछ विशेषता है। यथा—अल्पे अल्पाः। द्वितीय और तृतीय शब्द के केवल चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में कुछ विशेषता है यथा—

	चतुर्थी	पञ्चमी	सप्तमी
द्वितीय	द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयस्मात् द्वितीयात्	द्वितीयस्मिन् द्वितीये
तृतीय	तृतीयस्मै तृतीयाय	तृतीयस्मात् तृतीयात्	तृतीयस्मिन् तृतीये

निर्जर (देवता)

प्रथमा—निर्जरः, निर्जरौ निजरसौ, निर्जराः निर्जरसः। द्वितीया—निर्जरम् निर्जरसम्, निर्जरौ निर्जरसौ, निर्जरान् निर्जरसः। तृतीया—निर्जरेण निर्जरसा, निर्ज़राभ्याम् निर्जरैः। चतुर्थी—निर्जराय निर्जरसे, निर्जराभ्याम्, निर्जरेभ्यः। पञ्चमी—निर्जरात् निर्जरसः, निर्जराभ्याम्, निर्जरेभ्यः। षष्ठी—निर्ज़रस्य-निर्जरसः, निर्जरयोः, निर्जरसोः निर्जराणाम् निर्जरसाम्। सप्तमी—निर्जरे निर्जरसि, निर्जरयोः निर्जरसोः, निर्जरेषु। सम्बोधन—निर्जर।

पाद (पैर)

प्रथमा—पादः, पादौ, पादाः। द्वितीया—पादम्, पादौ, पादान्, पदः। तृतीया—पादेन पदा, पादाभ्याम् पद्भ्याम्, पादैः पद्भिः। चतुर्थी—पादाय पदे पादाभ्याम् पद्भ्याम्, पादेभ्यः पद्भ्यः। पञ्चमी—पादात् पदः पादाभ्याम् पद्भ्याम्, पादेभ्यः पद्भ्यः। षष्ठी—पादस्य पदः, पादयोः पदोः, पादानाम् पदाम्। सप्तमी—पादे पदि, पदयोः पदोः पादेषु पत्सु। सम्बोधन—पाद।

दन्त (दाँत)

प्रथमा—दन्तः, दन्तौ, दन्ताः। द्वितीया—दन्तम्, दन्तौ, दन्तान् दतः। तृतीया—दन्तेन दता, दन्ताभ्याम् दद्भ्याम्, दन्तैः दद्भिः। चतुर्थी—दन्ताय दते, दन्ताभ्याम् दद्भ्याम्, दन्तेभ्यः दद्भ्यः। पञ्चमी—दन्तात् दतः दन्ताभ्याम्, दद्भ्याम्, दन्तेभ्यः दद्भ्यः। षष्ठी—दन्तस्य दतः, दन्तयोः दतोः, दन्तानाम् दताम्। सप्तमी—दन्ते दति, दन्तयोः दतोः दन्तेषु दत्सु। सम्बोधन—दन्त।

मास (माह)

प्रथमा—मासः, मासौ, मासाः। द्वितीया—मासम्, मासौ, मासान्, मासः। तृतीया—मासेन मासा, मासाभ्याम् माभ्याम्, मासैः माभिः। चतुर्थी—मासाय मासे, मासाभ्याम् माभ्याम्, मासेभ्यः माभ्यः। पञ्चमी—

मासात् मासः, मासाभ्याम् माभ्याम्, मासेभ्यः माभ्यः। षष्ठी--मासस्य मासः, मासयोः मासोः, मासानाम् मासाम्। सप्तमी—मासे मासि मासयोः मासोः, मासेषु माःसु। सम्बोधन--मास।

आकारान्त--हाहा (गन्धर्व)

प्रथमा—हाहाः, हाहौ, हाहाः। द्वितीया--हाहाम्, हाहौ, हाहान्[1]। तृतीया--हाहा, हाहाभ्याम्, हाहाभिः। चतुर्थी--हाहै, हाहाभ्याम्, हाहाभ्यः। पञ्चमी--हाहाः, हाहाभ्याम्, हाहाभ्यः। षष्ठी--हाहाः, हाहौः, हाहाम्। सप्तमी—हाहे हाहौः हाहासु। सम्बोधन--हाहाः, हाहौ, हाहाः।

धातु-निष्पन्न शब्दभिन्न सभी पुंलिंग आकारान्त शब्द के रूप ऐसे ही होते हैं।

धातु निष्पन्न आकारान्त-विश्वपा (देवता, चन्द्र, सूर्य)

प्रथमा--विश्वपाः, विश्वपौ, विश्वपा। द्वितीया--विश्वपाम्, विश्वपौ, विश्वपः। तृतीया--विश्वपा, विश्वपाभ्याम्, पिश्वपाभिः। चतुर्थी--विश्वपे, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः। पञ्चमी—विश्वपः, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः। षष्ठी--विश्वपः, विश्वपोः, विश्वपाम्। सप्तमी—विश्वपि, विश्वपोः, विश्वपासु। सम्बोधन--विश्वपाः, विश्वपौ, विश्वपाः।

सोमपा (सोमरस पीने वाला), बलदा (बल देने वाला), शंखध्मा (शंख फूंकने वाला), धूम्रपा (धूम्र पीने वाला), गोपा (अहीर, ग्वाला) आदि धातु-निष्पन्न सभी आकारान्त शब्दों के रूप ऐसे ही होते हैं।

इकारान्त--मुनि शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मुनिः	मुनी	मुनयः
द्वितीया	मुनिम्	मुनी	मुनीन्
तृतीया	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः

१. मुग्धबोध के अनुसार 'हाहाः' होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
पञ्चमी	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
षष्ठी	मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्
सप्तमी	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु
सम्बोधन	मुने	मुनो	मुनयः

(पति और सखि भिन्न) सभी पुंलिङ्ग उकारान्त शब्द के रूप 'मुनि' शब्द के समान होते हैं। यथा—'अग्नि, अञ्जलि, अतिथि, अद्रि (पहाड़), अब्धि (महासागर), अराति (शत्रु), अरि, अलि, असि, अहि, ऊर्म्मि (लहर), ऋषि, कपि (बन्दर), कवि, कुक्षि (पेट), गिरि ग्रन्थि, तिमि, ध्वनि, पाणि, वलि, पति, रवि, रश्मि, वह्नि, विधि, व्याधि, शालि, सारथि, हरि।

पति (नायक स्वामी)

प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	पते	पती	पतयः

अन्य शब्द के साथ समास होने से पति शब्द के रूप 'मुनि' शब्द के तुल्य होते हैं। अतः नरपति, नृपति, महोपति, आदि शब्दों के रूप 'मुनि; शब्द के समान हैं।[1]

सखि (सखा, मित्र)

प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः

१. पति समास एव। पति शब्द समास में ही मुनिवत् होता है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीय	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	सखे	सखायौ	सखायः

ईकारान्त—सुधी (बुद्धिमान्, विद्वान्)

प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	सुधीः	सुधियौ	सुधियः

सेनानी (सेनानायक), अग्रणी (अग्रगण्य, अगुआ), ग्रामणी (ग्राम का प्रधान, नाई) आदि कुछ शब्दों के भिन्न अपह्नी, दुर्घी, यवक्री, शुद्धधी, सुश्री, हृतधी आदि प्रायः सभी पुंलिङ्ग ईकारान्त-शब्दों के रूप ऐसे ही होते हैं।

सेनानी (सेनानायक, सिपाही)

प्रथमा	सेनानी	सेनान्यौ	सेनान्यः
द्वितीया	सेनान्यम्	सेनान्यौ	सेनान्यः
तृतीया	सेनान्या	सेनानीभ्याम्	सेनानीभिः
चतुर्थी	सेनान्ये	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः
पञ्चमी	सेनान्यः	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	सेनान्य:	सेनान्यो:	सेनान्याम्
सप्तमी	सेनान्याम्	सेनान्यो:	सेनानीषु
सम्बोधन	सेनानी:	सेनान्यौ	सेनान्य:

अग्रणी आदि के रूप भी इसी प्रकार होते हैं। प्रधी आदि कुछ शब्द सेनानी शब्द के तुल्य ही हैं, केवल विशेषता यह है कि सप्तमी के एकवचन में प्रध्यि ऐसा पद होता है। और वातप्रमी (वायु के समान वेगगामी मृग) जैसे कुछ शब्दों के रूप भी सेनानी शब्द के तुल्य होते हैं, केवल द्वितीया के एकवचन में 'वातप्रमीम्', द्वितीया के बहुवचन में वातप्रमीन्' तथा सप्तमी के एकवचन में 'वातप्रमी'—ऐसे पद होते हैं—'यही विशेषता है। ययी (घोड़ा) और पपी (सूर्य, रक्षक) शब्द वातप्रमी शब्द के तुल्य होते हैं।

उकारान्त-साधु

प्रथमा	साधु:	साधू	साधव:
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभि:
चतुर्थी	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्य:
पञ्चमी	साधो:	साधुभ्याम्	साधुभ्य:
षष्ठी	साधो:	साध्वो:	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साध्वो:	साधषु
सम्बोधन	साधो	साधू	साधव:

अंशु, अणु, इक्षु, इषु, ऋजु, ऋतु, कमण्डलु, कारु (चित्रकार), क्रतु, गुरु, गोमायु (शृगाल) चमूरु, जन्तु, डमरु, तन्तु, तरु, दस्यु, धातु, परशु (कुल्हाड़ी,) पशु, पांशु, प्रभु, फेरु, बन्धु, बाहु, बिन्दु, भानु, भिक्षु, मनु, मृत्यु, मेरु, राहु, रिपु, लघु, वटु, वायु, विधु, विभु, विष्णु, वेणु, शंकु, शत्रु, शिशु सूनु, सेतु, हनु, हेतु, आदि प्रायः सभी पुंलिङ्ग उकारान्त शब्दों के रूप 'साधु शब्द के तरह होते हैं।

क्रोष्टु (शृगाल)

प्रथमा—क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। द्वितीया—क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ, क्रोष्टून्। तृतीया—क्रोष्टुना क्रोष्ट्रा क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभिः। चतुर्थी—क्रोष्टवे क्रोष्ट्रे, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभ्यः। पञ्चमी—क्रोष्टोः क्रोष्टुः, क्रोष्टुभ्याम्; क्रोष्टुभ्यः। षष्ठी—क्रोष्टोः क्रोष्टुः, क्रोष्ट्वोः क्रोष्ट्रोः, क्रोष्टूनाम्। सप्तमी—क्रोष्टौ क्रोष्टरि, क्रोष्ट्वोः क्रोष्ट्रोः, क्रोष्टुषु। सम्बोधन—क्रोष्टो।

ऊकारान्त-प्रतिभू (तत्स्थानीय जामीनदार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
द्वितीया	प्रतिभुवम्	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
तृतीया	प्रतिभुवा	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभिः
चतुर्थी	प्रतिभुवे	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
पञ्चमी	प्रतिभुवः	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
षष्ठी	प्रतिभुवः	प्रतिभुवोः	प्रतिभुवाम्
सप्तमी	प्रतिभुवि	प्रतिभुवोः	प्रतिभूषु
सम्बोधन	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः

[सुलू, खलपू (झाड़दार), वर्षाभू (मेढक), करभू (नख), दृन्भू (साँप) आदि भिन्न ; जितभू, मनोभू, (कामदेव), अग्निभू, आत्मभू, स्वभू, अधिभू, स्वयम्भू, जितभू (राजा) आदि प्रायः सभी पुंलिङ्ग दीर्घ ऊकारान्त शब्द के तुल्य।

सुलू

प्रथमा	सुलूः	सुल्वौ	सुल्वः
द्वितीया	सुल्वम्	सुल्वौ	सुल्वः
तृतीया	सुल्वा	सुलूभ्याम्	सुलूभिः
चतुर्थी	सुल्वे	सुलूभ्याम्	सुलूभ्यः
पञ्चमी	सुल्वः	सुलूभ्याम्	सुलूभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	सुल्वः	सुल्वोः	सुल्वाम्
सप्तमी	सुल्वि	सुल्वोः	सुलूषु
सम्बोधन	सुलूः	सुल्वौ	सुल्वः

ऋकारान्त—दातृ (देने वाला)

प्रथमा	दाता	दातारौ	दातारः
द्वितीया	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृतीया	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
चतुर्थी	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
पञ्चमी	दातुः	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
षष्ठी	दातुः	दात्रोः	दातॄणाम्
सप्तमी	दातरि	दात्रोः	दातृषु
सम्बोधन	दातः	दातारौ	दातारः

(भ्रातृ आदि कुछ शब्दों से भिन्न) अधिष्ठातृ (शासक, निर्देशक), कर्त्तृ, क्रेतृ (खरीददार), गन्तृ, छेतृ, जेतृ, ज्ञातृ, त्वष्टृ, द्रष्टृ, द्वेष्टृ, धातृ, नप्तृ, परिवेष्टृ, रक्षयितृ, वप्तृ, विधातृ, श्रोतृ, सवितृ, होतृ, हर्तृ आदि शब्द 'दातृ' शब्द के तुल्य होते हैं।

भ्रातृ

प्रथमा	भ्राता	भ्रातरौ	भ्रातरः
द्वितीया	भ्रातरम्	भ्रातरौ	भ्रातॄन्
तृतीया	भ्रात्रा	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
चतुर्थी	भ्रात्रे	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
पञ्चमी	भ्रातुः	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
षष्ठी	भ्रातुः	भ्रात्रोः	भ्रातॄणाम्
सप्तमी	भ्रातरि	भ्रात्रोः	भ्रातृषु
सम्बोधन	भ्रातः	भ्रातरौ	भ्रातरः

पितृ, जामातृ, देवृ, सव्येष्टृ, नृ सभी शब्दों के रूप भ्रातृ शब्द के तुल्य होते हैं। केवल नृ शब्द के षष्ठी के बहुबचन में दो पद होते हैं। यथा—नृणाम्, नृणाम्।

ऐकारान्त—रै (धन)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	राः	रायौ	रायः

ओकारान्त—गो

प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्बोधन	गौः	गावौ	गावः

सभी पुंलिङ्ग ओकारान्त शब्द के रूप इसी प्रकार होते हैं।

औकारान्त—ग्लौ (चन्द्रमा)

प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पञ्चमी	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सम्बोधन	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः

सभी पुंलिङ्ग औकारान्त शब्द इसी प्रकार होते हैं।

अनुवाद

भूपति का मकान—भूपतेरालयः। समुद्र की लहरें—समुद्रस्य तरंगाः। ऋषियों के आश्रम में बन्दर—ऋषीणामाश्रमे कपयः। पिता के भाई को—पितुः भ्रातरम्। एक पैर का लंगड़ा—पादेन खञ्जः। हरि मोहन का मित्र है—मोहनस्य सखा हरिः। अनेक काले बैल—बहवः कृष्णाः गावः। दामाद के घर में—जामातुरालये। वाल्मीकि प्रथम कवि हैं—वाल्मीकिरादिः कविः। मित्र का अनुरोध—सख्युरनुरोधः। पति के भाई को—पत्युर्भ्रातरम्। राम के पिता के अनेक बैल—रामस्य पितुर्बह्वो गावः।

कृष्णः प्रस्तरः—काला पत्थर। उच्चस्तरुः—ऊँचा पेड़। गभीरः समुद्रः—गहरा समुद्र। उज्ज्वलः सूर्यः—उज्ज्वल सूर्य। पूर्णश्चन्द्रः—पूर्णचन्द्र। धार्मिकः जनः—धार्मिक व्यक्ति। विशाले वृक्षे—बड़े पेड़ में। उदधेरूर्म्मयः—समुद्र की लहरें। दयालुः प्रभुः—दयालु प्रभु। पुत्रः पितरं वदति—पुत्र अपने पिता से कहता है। चैनिकानाम् आक्रमणम्—चीनियों का आक्रमण। स्वतन्त्रभारतीया नागरिकाः—स्वतंत्र-भारत के नागरिक।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करोः—सुगन्धिः पवनः। शोभनश्चन्द्रः। मुनेराश्रमे। मन्देन पवनेन। सुन्दरान् बालकान्। चपलौ बालकौ। गुणेषु विनयः श्रेष्ठः। व्याधेन हतो मृगः। कर्णेन बधिरः बालकः। कुठारेण छिन्नाः पादपाः। हरेः भ्रातुः। व्याघ्रात् भीताः भिक्षवः। दरिद्राय विप्राय। दैत्याः देवानरयः।

मृन्मयः घटः । कृष्णाः गावः । महर्षेः वाल्मीकेराश्रमे । पिता परमो गुरुः । गुरोरादेशः पालनीयः । संयताः मुनयः ।

संकृत में अनुवाद करो:—शत्रुसे । विश्वस्त मित्रों के द्वारा । बलवान् शत्रु को । दयालु मालिक । सूर्य की किरणें । धार्मिक राजा । हरि का पिता । सेनापति की आज्ञा से । अनेक हरिण । उदीयमान सूर्य । राजेन्द्र का मित्र । ऊँचे पर्वत । बड़ा विद्यालय । मैले कपड़े । लाल फूल । रवीन्द्र के घर में ।

शुद्ध करो—परोपकारः परमं धर्म्मः, कालिदासः श्रेष्ठं कविः । कृष्णं मृगः । करुणामयेन गुरुभिः । निष्ठुराभ्याम् व्याधेभ्यः । प्रखरस्यातपेभ्यः सूर्यस्य । देशानाम् अधिपत्या नरपत्या । सुन्दरेभ्यः बालकात् । ग्रहाणामधिपत्या भानुना । निर्ज्जने प्रदेशेषु ।

स्त्रीलिङ्ग-निर्णय

आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—माला, शाखा, कन्या, बाला, इत्यादि।

स्त्रीजातीय प्राणिवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग[1] है। यथा—हंसी, कुमारी।

एकस्वर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। यथा—श्रीः, भूः।

भूमि, विद्युत्, नदी, लता, रात्रि, दिक्, श्रेणि, बुद्धि, वाणी, शोभा, सम्पत् और विपत् शब्दों के पर्य्याय-शब्द स्त्रीलिंग हैं।

'प्रतिपद्'-प्रभृति तिथिवाचक शब्द स्त्रीलिंग हैं।

'ऊनविंशति' से 'नवनवति' तक संख्यावाचक शब्द भी स्त्रीलिंग हैं।

अप्, अप्सरस्, जलौकस्, (पुष्पार्थे) सुमनस्, और सिकता शब्द स्त्रीलिंग हैं।

समूहार्थ और भावार्थ में विहित 'तल्'–प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। यथा—जनता (जनसमूह); लघुता, गुरुता, मूर्खता।

क्ति, अ, अङ्, क्यप्, श और अनि–प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं; यथा—(क्ति) मतिः; (अ) प्रशंसा; (अङ्) भीषा; (क्यप्) विद्या; (श) क्रिया; (अनि) तरणिः—किन्तु 'अशनि'-शब्द पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों हैं।

स्वरान्त स्त्रीलिंग शब्द के साधारण सूत्र

आकारान्त और ईकारान्त शब्द के 'सु' का लोप होता है, यथा—लता + सु = लता; नदी + सु = नदी।[2]

आकान्त और इकारान्त शब्द के 'औ' के स्थान में 'ई' और

---

१. किन्तु 'दार'–शब्द पुंलिङ्ग, 'कलत्र'–शब्द क्लीवलिङ्ग।

२. तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, श्री, ह्री, भी प्रभृति को नहीं होता।

उकारान्त शब्द के 'औ' के स्थान में 'ऊ' होता है; यथा—लता + औ = लता + ई = लते; मति + औ = मति + ई = मती; धेनु + औ = धेनु + ऊ = धेनू ।

'टा' और 'ओस्' परे रहने से, आकार के स्थान में 'अय्' होता है; यथा—लता + टा = लत् + अय् + आ = लतया; लता + ओस् = अय् + ओ: = लतयो: ।

'ङे', 'ङसि', 'ङस्' और 'ङि' परे रहने से, आकार के पश्चात् अकारान्त 'य' होता है, और 'ङि' के स्थान में 'आम्' होता है; यथा—लता + ङे = लता + य + ए = लतायै, लता + ङसि = लता + य + अ: = लताया:; लता + ङस् = लता + य + अं: = लताया:; लता + ङि = लता + य आम् = लतायाम् ।

आकारान्त शब्द के 'आम्' के स्थान में 'नाम्' होता है; यथा—लता + आम् = लता + नाम् = लतानाम् ।

आकारान्त शब्द के सम्बोधन में 'सु' का लोप, और आकार के स्थान में एकार होता है; यथा—लता + सु = लत् + ए = लते ।

'शस्' परे रहने से, पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—मति + शस् = मती + अ: = मती + : = मती:; धेनु + शस् = धेनू + अ: = धेनू + : = धेनू: ।

इकारान्त उकारान्त और धातुनिष्पन्न भिन्न ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द के 'अम्' और 'शस्' के अकारका लोप होता है; यथा - मति + अम् = मति + म् = मतिम्; धेनु + अम् + धेनु + म् = धेनुम्; नदी + अम् = नदी + म् = नदीम्; नदी + शस् = नदी + अ: = नदी + : = नदी: ।

इकारान्त और उकारान्त शब्द के ङे के स्थान में 'ऐ', और 'ङसि' तथा 'ङस्' के स्थान में 'आ' होता है—विकल्प से। विकल्पपक्ष में इकार के स्थान में एकार, और उकार के स्थान में ओकार होता है; पश्चात् 'ङसि' और 'ङस्' के अकारका लोप होता है। यथा—मति + ङे = मति + ऐ = मत्यै; पक्षे—मति + ङे = मत् + ए + ङे = मते + ए = मतये। धेनु + ङसि = धेनु + आः = धेन्वा: पक्षे—धेनु + ङसि = धेनू + ओ + ङसि = धेनो + अ: = धेनो + : = धेनो: ।

इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त शब्द के 'आम्' के स्थान में 'नाम्' होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—मति + आम् = मति + नाम् = मती + नाम् = मतीनाम् । धेनु + आम् = धेनु + नाम् = धेनूनाम् ; स्वसृ + आम् = स्वसृ + नाम् = स्वसॄणाम् ।

इकारान्त और उकारान्त शब्द के 'ङि' के स्थान में 'आम्' और 'औ' होते हैं; औकार परे रहने से, इकार और उकार का लोप होता है। यथा—मति + ङि = मति + आम् = मत्याम्; पक्षे—मति + ङि = मति + औ = मत् + औ = मतौ। धेनु + ङि = धेनु + आम् = धेन्वाम् ; पक्षे—धेनु = ङि = धेनु + औ=धेन् + औ = धेनौ।

इकारान्त और उकारान्त शब्द के सम्बोधन के एकवचन में 'इ' के स्थान में 'ए' और 'उ' के स्थान में ओ होता है; यथा—मति + सु = मते; धेनु + सु = धेनो।

ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द के 'ङे' के स्थान में 'ऐ', 'ङसि' तथा 'ङस्' के स्थान में 'आः', और 'ङि' के स्थान में आम् होता है; धातु-निष्पन्न होने से विकल्प में होता है। यथा—नदी + ङे = नदी + ऐ = नद्यै; वधू + ङसि = वधू + आः = वध्वाः; वधू + ङि = वधू + आम् = वध्वाम्। (धातुनिष्पन्न) श्री + ङे = श्री + ऐ = श्र् + इय् + ऐ = श्रियै; पक्षे—श्री + ङे = श्री + ए = श्रिये; श्री + ङसि + श्री + आः = श्र् + इय् + आः = श्रियाः; भू + ङि = भू + आम्=भ् + उव् + आम् = भुवाम् ; पक्षे—भू + ङि = भू + इ = भ् + उव् + इ = भुवि।

ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द के 'आम्' के स्थान में 'नाम्' होता है; यथा—नदी + आम् = नदीनाम्; वधू + आम् = वधूनाम्; स्त्री + आम् = स्त्री + नाम् = स्त्रीणाम्, भू + आम् = भूनाम्।

धातुनिष्पन्न—भिन्न ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द के सम्बोधन में 'सु' का लोप और अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है; यथा—नदो + सु = नदि; वधू + सु = वधु।

स्वरवर्ण परे रहने से, धातु-निष्पन्न ईकारान्त शब्द के 'ई' के स्थान में 'इय्' और ऊकारान्त शब्द के 'ऊ' के स्थान में 'उव्' होता है; 'आम्'

परे विकल्प से होता है; 'इय्' और 'उव्' होने से 'आम्' के स्थान में 'नाम्' नहीं होता; यथा—श्री + औ = श्र् + इय् + औ = श्रियौ; भू + औ= भ् + उव् + औ = भुवौ; श्री + आम् = श्र् + इय् + आम् = श्रियाम्, (पक्षे) श्रीणाम्; भू + आम् = भ् + उव् + आम् = भुवाम् , (पक्षे) भूनाम् ।

ऋकारान्त शब्द के 'शस्' के अकार का लोप होता है, और अन्त्य-स्वर दीर्घ होता है; यथा—स्वसृ + शस् = स्वसृ + अः = स्वसृ + : = स्वसॄः ।

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

आकारान्त लता (बेल)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लता	लते	लताः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
पञ्चमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	लते	लते	लताः

अम्बा, द्वितीया, तृतीया, जरा भिन्न, अंगना (स्त्री, औरत), अट्टालिका, अधित्यका, अनामिका, अर्च्चना (पूजा), आत्मजा, आशा, ऊर्णा (ऊन), कनिष्ठा, कन्था, कन्या, करुणा, कर्त्तरिका, कला, कलिका, कविता, कान्ता, कुलटा, कृतज्ञता, कृपा, क्षपा (रात), क्षमा, क्षुधा, खट्वा, भङ्गा, गणिका, गदा, गवेषणा, गाथा (गीत, कविता), गुहा, ग्रीवा, घण्टिका, घृणा, चिता, चिन्ता, चूडा, चेष्टा, छटा, छाया, जङ्घा, जटा, जनता, जाया, जिज्ञासा, जिह्वा, जीविका, ज्या, ज्योत्स्ना, ढक्का, तन्द्रा, तारा, तूलिका, तृष्णा, दशा, देवता, द्राक्षा, धरा, नासा, निद्रा पत्रिका, परिखा, पादुका, पुत्तलिका, प्रभा, प्रमदा (युवती), प्रार्थना, फणा, बाधा, बालिका, भार्या, भाषा, मदिरा, मनीषा, मल्लिका, मर्यादा, महिला, माया, मुक्ता, मुद्रा, मृत्तिका, मेखला, यवनिका, रेखा, लज्जा, ललना, वनिता, वसुधा, वार्त्ता, वासना, विद्या, शय्या, शिक्षा, शिला, सभा, सिकता, सुधा, सेना, सेवा, हत्या आदि स्त्रीलिंग आकारान्त शब्द 'लता' शब्द के तुल्य हैं ।

'अम्बा' (मातृवाचक) शब्द के सम्बोधन के एकवचन में 'अम्ब'

होता है और अन्य सभी विभक्तियों के रूप 'लता' शब्द के तुल्य हैं। यथा—हे अम्ब ! त्रायस्व। हे जगदम्ब ! मां रक्ष।

द्वितीया और तृतीया शब्द की चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एकवचन में विशेषता है। यथा—

चतुर्थी	पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी
द्वितीयस्यै	द्वितीयस्याः	द्वितीयस्याः	द्वितीयस्याम्
द्वितीयायै	द्वितीयायाः	द्वितीयायाः	द्वितीयायाम्

और सभी विभक्तियों में 'लता' शब्द के तुल्य हैं। 'तृतीया' शब्द 'द्वितीया' शब्द के तुल्य है।

जरा (बुढ़ापा)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जरा	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
द्वितीया	जरसम्, जराम्	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
तृतीया	जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी	जरसे, जरायै	जराभ्याम्	जराभ्यः
पञ्चमी	जरसः, जरायाः	जराभ्याम्	जराभ्यः
षष्ठी	जरसः, जरायाः	जरसोः, जरयोः	जरसाम्, जराणाम्
सप्तमी	जरसि, जरायाम्	जरसोः, जरयोः	जरासु
सम्बोधन	जरे	जरसौ, जरे	जरसः जराः

नासिका (नाक)

प्रथमा—नासिका, नासिके, नासिकाः। द्वितीया—नासिकाम्, नासिके, नासिकाः नसः। तृतीया—नासिकया नसा, नासिकाभ्याम्, नोभ्याम् नासिकाभिः नोभिः। चतुर्थी—नासिकायै नसे, नासिकाभ्याम् नोभ्याम्, नासिकाभ्यः नोभ्यः। पञ्चमी—नासिकायाः नसः, नासिकाभ्याम् नाभ्याम्, नासिकाभ्यः नोभ्यः। षष्ठी—नासिकायाः नसः, नासिकयोः नसोः, नासिकानाम् नसाम्। सप्तमी—नासिकायाम् नसि, नासिकयोः नसोः, नासिकासु नःसु। सम्बोधन—नासिके।

निशा (रात)

प्रथमा—निशा, निशे, निशाः। द्वितीया—निशाम्, निशे, निशाः निशः। तृतीया—निशया निशा, निशाभ्याम् निड्भ्याम्, निशाभिः निड्भिः। चतुर्थी—निशायै निशे, निशाभ्याम् निड्भ्याम्, निशाभ्यः निड्भ्यः। पञ्चमी—निशायाः निशः निशाभ्याम् निड्भ्याम्, निशाभ्यः निड्भ्यः। षष्ठी—निशायाः निशः, निशयोः निशोः, निशानाम् निशाम्। सप्तमी—निशायाम् निशि, निशयोः निशोः, निशासु निट्सु। सम्बोधन—निशे।

पृतना (सेनादल)

प्रथमा—पृतना, पृतने, पृतनाः। द्वितीया—पृतनाम्, पृतने, पृतनाः, पृतः। तृतीया—पृतनया पृता, पृतनाभ्याम् पृद्भ्याम्, पृतनाभिः पृद्भिः। चतुर्थी—पृतनायै पृते, पृतनाभ्याम्, पृद्भ्याम् पृतनाभ्यः पृद्भ्यः। पञ्चमी—पृतनायाः पृतः, पृतनाभ्याम् पृद्भ्याम्, पृतनाभ्यः पृद्भ्यः। षष्ठी—पृतनायाः पृतः, पृतनयोः पृतोः, पृतनानाम् पृताम्। सप्तमी—पृतनायाम् पृति, पृतनयोः, पृतोः, पृतनासु, पृत्सु। सम्बोधन— पृतने।

इकारान्त मति (बुद्धि)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	मते	मती	मतयः

अंगुलि, अनुरक्ति, अवनि, आवलि, आलि, आसक्ति, उन्नतिः, ओषधि, कान्ति, कीर्ति, कृति, कृषि, क्षिति, क्षेपणि, खनि, गति, गोधूलि, ग्लानि,

चक्रवृद्धि, छवि, जन्मभूमि; जाति, तरणि, तिथि, धमनि, धरणि, धूलि, धृति, नाभि, नियति, नेमि, पङ्क्ति, पद्धति, प्रकृति, प्रणति, प्रसूति, वाणि, बुद्धि, भक्ति, भूति, भूमि, मुक्ति, मूर्ति, युवति, राजि, रात्रि, रीति, वर्त्ति, विपत्ति, विरक्ति, वेणि, वेदि, व्यक्ति, शुक्ति, श्रुति, श्रेणि, समिति, सरणि, स्तुति, स्मृति आदि 'इ' कारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप 'मति' शब्द के तुल्य होते हैं। कति, यति और तति तीनों लिङ्गों में समान होते हैं, तथा नित्य बहुवचनान्त हैं।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी
कति	कति	कतिभिः	कतिभ्यः	कतिभ्यः	कतीनाम्	कतिषु

इकारान्त—नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	नदि	नद्यौ	नद्यः

(श्री, ह्री, धी, स्त्री आदि भिन्न) अटवी, उर्व्वी (पृथिवी), कठिनी (खड़िया), कदली, कवरी, कस्तूरी, काञ्ची, कामिनी, कुमारी, कौमुदी, गर्भिणी, गृहिणी, गेहिनी, चतुष्पाठी, जननी, तरङ्गिणी, तर्ज्जनी, तन्त्री, दासी, धरणी, धात्री, नगरी, नन्दिनी, नारी, पत्नी, पदवी, पुरी, पृथिवी पौत्री, प्राची, वल्ली, भगिनी; मञ्जरी, मशहरी, मही, मार्ज्जनी, मेदिनी, यामिनी, युवती, रजनी, रमणी, राज्ञी, लेखनी, वाणी; वापी, वाहिनी, विभावरी, वीथी, व्याघ्री, शर्व्वरी, श्रेणी, सखी, सिंही, सौदामनी आदि सभी ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द 'नदी' शब्द के तुल्य।

अवी, तन्त्री, तरी और लक्ष्मी आदि शब्दों की प्रथमा के एकवचन में अवीः, तन्त्रीः, तरीः, लक्ष्मीः, ऐसे विसर्गयुक्त पद होते हैं[1]। अन्य सभी विभक्तियों में 'नदी' शब्द के तुल्य हैं।

ग्रामणी (मुखिया) शब्द के स्त्रीलिंग का रूप पुंलिंग के समान है, 'नदी' शब्द के समान नहीं।

श्रीः (लक्ष्मीः, शोभा)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रियाम्, श्रीणाम्
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु
सम्बोधन	श्रीः	श्रियौ	श्रियः

ह्री, धी (बुद्धि), भी (भय)-शब्द 'श्री' शब्द के तुल्य होते हैं।[2]

स्त्री (पत्नी, नारी)

प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः

---

१. अवी तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-ह्री-श्री धीनामुणादितः।
स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानानां न सुलोपः कदाचन ॥''

२. सुष्ठु धीर्यस्याः, सुष्ठु ध्यायति वेति विग्रहे तु मतभेदेन सुधीः श्रीवत् पुंवत् च। सुष्ठु धीः इति विग्रहे तु श्रीवदेव।

षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सम्बोधन	स्त्रि	स्त्रियौ	स्त्रियः

उकारान्त—धेनु (गौ)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
सम्बोधन	धेनो	धेनू	धेनवः

कुहू, चञ्चु, तनु, रज्जु, रेणु, स्नायु, हनु, आदि सभी ह्रस्व उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप 'धेनु' के तुल्य होते हैं।

ऊकारान्त—वधू (बहू, पतोहू)

प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सम्बोधन	वधु	वध्वौ	वध्वः

भू, भ्रू, सुभ्रू आदि भिन्न कर्कन्धू, चञ्चू, चमू, तनू, पुत्रवधू, पुत्रसू, पुनर्भू, प्रसू, यवसू, वीरसू, श्वश्रू, सरयू आदि सभी दीर्घ ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप 'वधू' शब्द के तुल्य होते हैं।

भू (भूमि, पृथ्वी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूः	भुवौ	भुवः
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृतीया	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
चतुर्थी	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पञ्चमी	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
षष्ठी	भुवाः, भुवः	भुवोः	भुवाम्, भूनाम्
सप्तमी	भुवाम्, भुवि	भुवोः	भूषु
सम्बोधन	भूः	भुवौ	भुवः

भ्रू (भौंह) और सुभ्रू शब्द 'भू' शब्द के समान हैं।[1] स्वयम्भू शब्द के स्त्रीलिंग के रूप पुंलिग के समान हैं, 'भू' शब्द के समान नहीं।

ऋकारान्त

स्त्रीलिङ्ग ऋकारान्त शब्द कुल पाँच हैं; दुहितृ, मातृ, यातृ, ननान्दृ और स्वसृ; उनमें दुहितृ, मातृ, यातृ, ननान्दृ—'भ्रातृ' शब्द के तुल्य हैं, केवल अन्तर इतना है कि द्वितीया के बहुवचन में दुहितॄः, मातॄः, यातॄः, ननान्दॄः होते हैं। स्वसृ शब्द 'दातृ' शब्द के समान होता है, केवल द्वितीया के बहुवचन में स्वसॄः होता है। दातृ, धातृ आद पुंलिग ऋकारान्त शब्द के स्त्रीलिंग में दात्री, धात्री आदि होते हैं। इनके रूप नदो शब्द के समान हैं।

ओकारान्त और औकारान्त

स्त्रीलिंग ओकारान्त और औकारान्त शब्द पुंलिंग ओकारान्त और औकारान्त शब्द के समान हैं, कोई भेद नहीं है। द्यो शब्द 'गो' शब्द के समान है ! नौ शब्द 'ग्लौ' शब्द के समान है।

---

१. सुभ्रू शब्द के सम्बोधन में 'सुभ्रूः' के स्थान में कोई कोई 'सुभ्रु' लिखते हैं। यथा —'हा पितः, क्वासि हे सुभ्रु' इति भट्टिः। 'प्रमाद एवायमिति बहवः, अनेकों के मतानुसार यह भूल है।

अनुवाद

अनुरक्ता पत्नी—अनुगत स्त्री। क्षुद्रा लता—छोटी लता। बालानां क्षुधा बलवती—बच्चों की क्षुधा तीव्र होती है। क्षमा शक्तौ—शक्ति रहने पर क्षमा युक्त होना। सुशीले बालिके—दो सुशीला बालिकाएँ। मुक्तेरिच्छा—मुक्ति की इच्छा। सुधियः बुद्धिः सूक्ष्मा—ज्ञानी की बुद्धि तीव्र होती है। विशाला पृथिवी—विशाल दुनिया। कृशा तनुः—पतला शरीर। नृपतेः चम्वा—राजा की सेना से।

सुन्दरी स्त्री—लावण्यमयी ललना। गौरी हिमालय की पुत्री हैं—हिमालयस्य दुहिता गौरी। लक्ष्मी विष्णु की स्त्री हैं—विष्णोर्वनिता लक्ष्मीः। पेड़ की छाया में—तरोश्छायायाम्। तीव्र क्षुधा से—प्रबलया क्षुधया। सती स्त्री—साध्वी नारी। समुद्र की लहरें—उदधेर्वीचयः। पढ़ी लिखी लड़की से—विदुष्या बालिकया। साधुओं की गायें—मुनीनां धेनवः। पेड़ की शाखा में—वृक्षस्य शाखायाम्।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो :—वृक्षस्य भग्ने शाखे। पूर्णिमायां तिथौ। बालिकाया बुद्धिः। नदीनां गत्या। पृथिव्याः पत्या। पुष्पिते लते। छिन्नाः लताः। गतायां निशायाम्। वेगवत्याः नद्याः। वृक्षस्य भग्नायां शाखायाम्। पतिर्गुरुः स्त्रीणाम्। वाप्यां बह्व्यः कुमार्यः। चञ्चला मतिः। उज्ज्वला शिखा दीपस्य। हिंसा जन्तूनां प्रकृतिः। विपत्तौ हरिं स्मरति। गोपाः धेनूः नयन्ति। क्षितिपं गच्छति भृत्यः।

संस्कृत में अनुवाद करो :—सुन्दरी स्त्री, स्मृति से, लता से, सुन्दरी लड़कियों को, सास की बहन, अरुन्धती वसिष्ठ की स्त्री हैं। पृथ्वी गोल है। रानी की सखियों के द्वारा। नरम विस्तर में। सुन्दर वधू। गंगा नदी के तट पर। लड़की तारे की ओर देख रही है। हरि के मकान में दुर्गा की मूर्त्ति नहीं है। चिड़िया चोंच से खाती है।

क्लीबलिङ्ग-निर्णय

वन, आकाश, गृह, हिम, छिद्र, मांस, रक्त, मुख, नेत्र, धन, पत्र, नृत्य, गीत, वाद्य, चिह्न और जल-वाचक शब्द क्लीबलिंग होते हैं। किन्तु (वनवाचक) अटवी शब्द -स्त्रीलिंग, (आकाशवाचक) आकाश और विहायस् शब्द—पुं० और क्लीबलिंग, (गृहवाचक) निकाय्य, निलय और आलय शब्द—पुंलिंग; (धनवाचक) अर्थ, रै और विभव शब्द—पुंलिंग, (पत्रवाचक) छद शब्द—पुंलिंग; (चिह्नवाचक) कलङ्क और अङ्क शब्द-पुंलिंग; (जलवाचक) अप् शब्द—स्त्रीलिंग, घनरस-पुंलिंग हैं।

हल, स्वर्ण लौह, ताम्र, लवण, पुष्प, फल, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, शुभ और अशुभवाचक शब्द क्लीबलिंग हैं। किन्तु (हलवाचक) सीर शब्द—पुंलिंग, लोह वा लौह शब्द—पुंलिंग और क्लीबलिंग; (लवण-वाचक) सैन्धव शब्द—पुंलिंग, (पापवाचक) पाप्मन् शब्द—पुंलिंग, (पुण्यवाचक) धर्म शब्द—पुंलिंग, और क्लीबलिंग हैं। विशेष फल और पुष्प के नामवाचक शब्द अन्यान्य लिंग भी हो सकते हैं, यथा—रम्भा, जपा इत्यादि।

व्यञ्जन और अनुलेपन-वाचक शब्द क्लीबलिंग हैं।

मित्र' शब्द क्लीबलिंग है, किन्तु सूर्य—अर्थ में पुंलिंग होता है।

शतादि संख्यावाचक शब्द क्लीबलिंग हैं, किन्तु वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख पद्म और सागर शब्द पुंलिंग हैं।

अन्न और वस्त्रवाचक शब्द क्लीबलिंग हैं किन्तु (अन्नवाचक) ओदन—पुंलिंग और क्लीबलिंग है, (वस्त्रवाचक) पट-शब्द—पुंलिंग है।

द्विस्वर विशिष्ट 'अस्', 'इस्' और 'उस्'-भागान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा—पयस्, हविस्, धनुस्। किन्तु वेधस् शब्द—पुंलिंग है।

जिन शब्दों की उपधा में 'य' और 'ल' रहते हैं वे क्लीबलिंग होते हैं; यथा—धान्यम्, कुलम् इत्यादि।

भाववाच्य में 'अनट्' (ल्युट्)-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--पानम्, ज्ञानम्, गमनम्।

'इत्र'--प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा—लवित्रम्, चरित्रम्।

भावे 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--भाषितम् (भाषण), गीतम् (गान)।

भावार्थ में 'ष्ण' 'ष्ण्य' और 'त्व'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--(ष्ण) यौवनम्; (ष्ण्य) साम्यम्; (त्व) साधुत्वम्।

समूहार्थ में 'ष्ण' 'ष्ण्य' और 'कण्'--प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--(ष्ण) भैक्षम्; (ष्ण्य) गाणिक्यम्; (कण्) राजकम्।

विशेष्य होने में 'अयट्' और 'तयट्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--द्वयम्, त्रितयम्।

भाववाच्य में 'कृत्य'- प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा-- (तव्य) भवितव्यम्, (अनीय) भवनीयम्, (य) भव्यम्, (ण्यत्) भाव्यम्, (घ्यण्) वाक्यम्; (क्यप्) कृत्यम्।

अव्ययीभाव और समाहारद्वन्द्व-समासनिष्पन्न शब्द क्लीबलिंग होता है। यथा—प्रतिदिनम्; पाणिपादम्।

संख्यावाचक शब्द पूर्व में रहने से 'रात्र' भागान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--एकरात्रम् द्विरात्रम्।

समाहार द्विगुसमासनिष्पन्न पात्रादि-शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा--पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम् इत्यादि। पात्रादि-भिन्न—त्रिलोकी-- स्त्रीलिंग शब्द है।

संख्या और अव्यय-पूर्वक कृत् समासान्त 'पथ' शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा—त्रिपथम्, चतुष्पथम्, विपथम् इत्यादि।

'पुण्य' और 'सुदिन'-शब्द-पूर्वक 'अह्'-भागान्त शब्द क्लीबलिंग होते हैं। यथा—पुण्याहम् सुदिनाहम्।

क्रिया का विशेषण और अव्यय-शब्द का विशेषण क्लीबलिंग होता है। यथा—स्तोकं पचति; शोभनं स्वः।

स्वरान्त क्लीबलिङ्ग शब्द के साधारण सूत्र

अकारान्त क्लीबलिंग शब्द के 'सु' और 'अम्' के स्थान में 'म्' होता है। यथा—फल + सु = फल + म् = फलम्; फल + अम् = फल + म् फलम्।

क्लीबलिंग शब्द के औ के स्थान में 'ई' और 'जस्' तथा 'शस्' के स्थान में 'नि' होता है; 'नि' और 'आम्' परे पूर्वस्वर दीर्घ होता है। यथा—फल + औ = फल + ई = फले; वन + जस् = वन + नि = वना + नि = वनानि; वारि + आम् = वारि + नाम् = वारी + नाम् = वारी + णाम् = वारीणाम्।

सम्बोधन में क्लीबलिंग शब्द के 'सु' का लोप होता है। यथा—फल + सु = फल।

इकारान्त और उकारान्त शब्द के 'सु' और 'अम्' का लोप होता है, और स्वरवर्ण परे रहने से 'न्' होता है। यथा—वारि + सु = वारि; मधु + सु = मधु; वारि + औ = वारि + न + ई = वारिणी।

सम्बोधन के एकवचन में इ के स्थान में 'ए', और 'उ' के स्थान में 'ओ' होता है—विकल्प से। यथा—वारि + सु = वारे, पक्षे—वारि। अम्बु + सु = अम्बो, पक्षे = अम्बु।

क्लीबलिङ्ग

क्लीबलिंग अकारान्त शब्द पुंलिंग के समान होता है, केवल प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में विशेषता है। यथा—

अकारान्त—फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
तृतीया	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
चतुर्थी	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
षष्ठी	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
सप्तमी	फले	फलयोः	फलेषु
सम्बोधन	फल	फले	फलानि

अंशुक (सुन्दर कपड़ा), अंक, अंग, अंगन, अजीर्ण, अज्ञान, अंजन, अन्तःकरण, अन्तर, अन्तरिक्ष, अन्तरीप, अन्न, अपत्य, अब्ज (पद्म), अभ्र (मेघ), अमृत, अरविन्द अर्द्ध, आलेख्य, आसन, इन्दीवर, इन्द्रिय, इन्धन, उत्तरीय, उत्पल, उदर, उद्यान, उपधान (तकिया), ऋण, औषध, कंकण, कंकर, कनक, कन्दर, कलेवर, कार्य, काव्य, काष्ठ, किरीट, किसलय, कुटीर, कुटुम्ब, कुमुद, कुल, कुशल, कुशीद, कुसुम, कुहर (गुफा), कूल, काकनद, कोशागार, क्रन्दन, क्षेत्र, ख (आसमान), खाद्य, गरल, गीत, गुल्म, गृह, गेह, घृत, घ्राण, चक्र, चत्वर, चारण, छत्र,छल, जघन, जठर, जल, जाल, ज्ञान,तत्त्व, तन्त्र, तल,तल्प (बिस्तार), ताम्र, तुन्द, तृण, तौल, दुर्ग, दैव, द्रव्य, द्वन्द्व, धन, ध्यान, नक्षत्र, नाट्य, निधन, निपान, निशीथ, नृत्य, नैराश्य, पण्य, पत्र, पद, पर्ण, पलित, पात्र, पाप, पिञ्जर, पित्त, पिष्टक, पीयूष, पुच्छ, पुण्य, पुर, पुष्प, पुस्तक, पृष्ठ, प्रत्यूष, प्रभात, प्रसून, बल, बिम्ब, भद्र, भाग्य, भाण्डार, भाजन, भुवन, मद्य, माणिक्य, मांस, मित्र, मुकुट, मुख, मूल, मूल्य यन्त्र, युद्ध, योजन, रक्त, रजत, रण, रन्ध्र, रसायन, रहस्य, राज्य, राष्ट्र, रुधिर, रूप, ललाट, लवण, लावण्य, वचन, वन, वल्कल, वसन, वस्त्र, वातायन; विज्ञान, वित्त, विल, विवर, विष, वृत्त, वृन्त, वैर, व्यसन; व्याकरण, व्रण, व्रत, शरण, शरव्य (चिह्न), शव, शस्त्र, शस्य, शास्त्र शिल्प, शिव, शीर्ष, शील, श्मशान, श्रवण, श्राद्ध, संकट, संगीत, सत्त्व, सन्तान, समीप, सलिल, साक्ष्य, सादृश्य, सामर्थ्य, साहस, साहित्य, सिंहासन, सोपान, सौन्दर्य, स्वत्व, स्वर्ण, स्वास्थ्य, हर्म्य (महल), हलाहल, हास्य, आदि सभी अकारान्त क्लीबलिंग शब्दों के रूप 'फल' शब्द के समान होते हैं।

हृदय (वक्षःस्थल, मन)

प्रथमा—हृदयम्, हृदये, हृदयानि। द्वितीया—हृदयम्, हृदये, हृदयानि हृन्दि। तृतीया—हृदयेन हृदा, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयैः हृद्भिः। चतुर्थी—हृदयाय हृदे, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम् हृदयेभ्यः हृद्भ्यः। पञ्चमी—हृदयात् हृदः, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्यः हृद्भ्यः। षष्ठी—हृदयस्य हृदः, हृदययोः हृदोः, हृदयानाम् हृदाम्। सप्तमी—हृदये हृदि, हृदययोः हृदोः, हृदयेषु हृत्सु। सम्बोधन—हृदय।

उदक (जल)

प्रथमा—उदकम्, उदके, उदकानि। द्वितीया—उदकम्, उदके, उदकानि उदानि। तृतीया—उदकेन उद्ना, उदकाभ्याम्, उद्भ्याम्, उदकैः उद्भिः। चतुर्थी—उदकाय उद्ने, उदकाभ्याम् उद्भ्याम्, उदकेभ्यः उद्भ्यः। पञ्चमी—उदकात् उद्नः, उदकाभ्याम्, उद्भ्याम्, उदकेभ्यः उद्भ्यः। षष्ठी—उदकस्य उद्नः, उदकयोः उद्नोः, उदकानाम् उद्नाम्। सप्तमी—उदके उद्नि उदनि, उदकयोः उद्नोः, उदकेषु उदन्षु। सम्बोधन—उदक।

आस्य (मुख)

प्रथमा—आस्यम्, आस्ये, आस्यानि। द्वितीया—आस्यम्, आस्ये, आस्यानि आसानि। तृतीया—आस्येन आस्ना; आस्याभ्याम् आसभ्याम्, आस्यैः आसभिः। चतुर्थी—आस्याय आस्ने, आस्याभ्याम् आसभ्याम्, आस्येभ्यः आसभ्यः। पञ्चमी—आस्यात् आस्नः, आस्याभ्याम् आसभ्याम्, आस्येभ्यः आसभ्यः। षष्ठी—आस्यस्य आस्नः, आस्ययोः आस्नोः, आस्यानाम् आस्नाम्। सप्तमी—आस्ये आस्नि आसनि, आस्ययोः आस्नोः आस्येषु आससु। सम्बोधन—आस्य।

इकारान्त—वारि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीय	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	वारे, वारि	वारिणी	वारीणि

[अक्षि (आँख), अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (जाँघ) भिन्न] सभी ह्रस्व इकारान्त क्लीबलिंग शब्द के रूप 'वारि' शब्द के समान हैं।

अक्षि (आँख)

प्रथमा	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
द्वितीया	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृतीया	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
चतुर्थी	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
पञ्चमी	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
षष्ठी	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
सप्तमी	अक्ष्णि, अक्षणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु
सम्बोधन	अक्षि, अक्षे	अक्षिणी	अक्षीणि

अस्थि, सक्थि और दधि शब्द के रूप इसी प्रकार हैं।

शुचि (पवित्र)

प्रथमा—शुचि, शुचिनी, शुचीनि। द्वितीया—शुचि, शुचिनी, शुचीनि। तृतीया—शुचिना, शुचिभ्याम्, शुचिभिः। चतुर्थी– शुचिने शुचये, शुचिभ्याम्, शुचिभ्यः। पञ्चमी—शुचिनः शुचेः, शुचिभ्याम्, शुचिभ्यः। षष्ठी—शुचिनः शुचेः, शुचिनोः शुच्योः, शुचीनाम्। सप्तमी—शुचिनि शुचौ, शुचिनोः शुच्योः, शुचिसु। सम्बोधन—शुचे शुचि।

सभी इकारान्त क्लीबलिंग विशेषण शब्द के रूप 'शुचि शब्द के समान हैं।

उकारान्त—मधु (शहद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	मधो,मधु	मधुनी	मधूनि

अम्बु, अलावु (लौकी), अश्रु, जतु, जत्रु, जानु, तालु, त्रपु, दारु, मस्तु, मरु, वसु, वस्तु, श्मश्रु, स्नु आदि सभी विशेष्य ह्रस्व उकारान्त क्लीबलिंग शब्द के रूप 'मधु' शब्द के समान हैं।

सानु (पर्वत शिखर की समतल भूमि)

प्रथमा—सानु, सानुनी, सानूनि। द्वितीया—सानु, सानुनी, सानूनि स्नूनि। तृतीया—सानुना स्नुना, सानुभ्याम् स्नुभ्याम् सानुभिः स्नुभिः। चतुर्थी—सानुने, स्नुने, सानुभ्याम् स्नुभ्याम्, सानुभ्यः स्नुभ्यः। पञ्चमी—सानुनः स्नुनः, सानुभ्याम् स्नुभ्याम्, सानुभ्यः स्नुभ्यः। षष्ठी—सानुनः, स्नुनः सानुनोः स्नुनोः, सानूनाम् स्नूनाम्। सप्तमी—सानुनि स्नुनि, सानुनोः; स्नुनोः सानुषु स्नुषु। सम्बोधन—सानो सानु।

स्वादु (मीठा)

प्रथमा	स्वादु	स्वादुनी	स्वादूनि
द्वितीया	स्वादु	स्वादुनी	स्वादूनि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	स्वादुना	स्वादुभ्याम्	स्वादुभिः
चतुर्थी	स्वादुने, स्वादवे	स्वादुभ्याम्	स्वादुभ्यः
पञ्चमी	स्वादुनः, स्वादोः	स्वादुभ्याम्	स्वादुभ्यः
षष्ठी	स्वादुनः; स्वादोः	स्वादुनोः, स्वाद्वोः	स्वादूनाम्
सप्तमी	स्वादुनि,स्वादौ	स्वादुनोः स्वाद्वोः	स्वादुषु
सम्बोधन	स्वादो, स्वादु	स्वादुनी	स्वादूनि

सभी उकारान्त क्लीबलिङ्ग विशेषण शब्दों के रूप 'स्वाद' शब्द के समान होते हैं।

ऋकारान्त—धातृ (धाता, रक्षक)

प्रथमा	धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वितीया	धातृ	धातृणी	धातॄणि
तृतीया	धातृणा, धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धातृणे, धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातृणः, धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातृणः, धातुः	धातृणोः	धातॄणाम्
सप्तमी	धातृणि, धातरि	धातृणोः	धातृषु
सम्बोधन	धातः, धातृ	धातृणी	धातॄणि

सभी ह्रस्व ऋकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्द 'धातृ' के सामान हैं।

अनुवाद

छिन्नं पत्रम्–छिन्न पत्र। शुभ्रं वसनम्–सफेद कपड़ा। निर्मलं वारि–स्वच्छ जल। उष्णं मधु–गरम शहद। आम्रं स्वादु–मीठा आम। श्रमः भाग्यस्य प्रसूतिः–श्रम भाग्य की माँ है।

भीगे कपड़े–आर्द्राणि वसनानि। उज्ज्वल नक्षत्र–उज्ज्वलानि नक्षत्राणि। दो कठिन–हड्डियाँ–कठिने अस्थिनी। बाग के बहुत से मीठे फल–उद्यानस्य स्वादूनि फलानि। नीला कमल–नीलमुत्पलम्। नारियल

मीठा होता है--नारिकेलं स्वादु। समुद्र का पानी खारा होता है--समुद्रस्य जलं लवणम्। गहरा वन--गहनं वनम्। ठंढा पानी--शीतलं वारि। पेड़ की सूखी पत्तियाँ--तरोः शुष्काणि पत्राणि। बच्चा दूध पीता है--शिशुः दुग्धं पिबति। पेड़ से पत्तियाँ गिरती हैं--वृक्षात् पत्राणि पतन्ति। भौंरे फूलों से पुष्परस पीते हैं--भ्रमराः पुष्पेभ्यः पुष्परसानि पिबन्ति।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो--छिन्नं वसनम्। सुन्दरमाननम्। उष्णेन वारिणा। गङ्गायास्तीरे। पीडितस्यौषधं पथ्यम्। अनित्यं जीवनं नराणाम्। श्यामलानि तृणानि। नयनयोरमृतम्। अमृतं बालानां वचनम्। वसन्ते भ्रमणं हितकरम्। वृद्धस्य वचनं ग्राह्यम्। दधि वातघ्नम्। शीतलं जलं कूपस्य। अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। मूर्खस्य हृदयं शून्यम्। बालानां रोदनं बलम्। छात्रः पुस्तकं पठति। नृत्यं पश्यन्ति बालकाः।

संस्कृत में अनुवाद करो :--गंगा नदी का जल शुद्ध है। हरि के पिता की सफेद दाढ़ी है। एक काला छाता। योद्धाओं का अस्त्र। प्रकृति का सौन्दर्य। कपड़े का दाम। नदी का गन्दा पानी। मीठा शहद। संतोष सुख का मूल है। जंगल के सफेद फूल। मालिक नौकरों को वेतन देता है। बच्चा घुटनों के बल चलता है।

व्यञ्जनान्त शब्द

पुंल्लिङ्ग

चकारान्त—जलमुच् (मेघ) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः
द्वितीया	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृतीया	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
चतुर्थी	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
पञ्चमी	जलमुचः	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
षष्ठी	जलमुचः	जलमुचोः	जलमुचाम्
सप्तमी	जलमुचि	जलमुचोः	जलमुक्षु
सम्बोधन	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः

(प्राच्–प्रत्यच्, तिर्यच्, उदच्, आदि शब्दों को छोड़कर)— पयोमुच् (मेघ), वारिमुच् (मेघ), सत्यवाच् (सत्यवादी) आदि पुंल्लिग तथा ऋच् (ऋग्वेद), त्वच् (त्वचा), रुच् (प्रकाश, सुन्दरता), वाच् (वाक्य), शुच् (दुःख, शोक), स्रुच् (काठ का स्रुवा) आदि स्त्रीलिंग चकारान्त शब्दों के रूप जलमुच् शब्द के तुल्य हैं।

प्राच्, प्रत्यच् आदि स्त्रीलिंग में चकारान्त नहीं रहते, प्राची, प्रतीची आदि दीर्घ ईकारान्त हो जाते हैं। इस कारण उनके केवल पुंल्लिग रूप ही नीचे प्रदर्शित किये जाते हैं—

प्राच् (पूर्व, पौर्वात्य)—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वितीया	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राचः
सम्बोधन	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः

अन्यान्य विभक्तियों में जलमुच् शब्द के तुल्य रूप होते हैं।

प्रत्यच् शब्द (पश्चिम, पाश्चात्य)—पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
द्वितीया	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः
तृतीया	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
चतुर्थी	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
पञ्चमी	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
षष्ठी	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
सप्तमी	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु
सम्बोधन	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः

सम्यच् (योग्य, यथार्थ, ठीक, सुन्दर), सध्र्यच् (सहचर, सहाय), न्यच् (निम्न, नीच, क्षुद्र)—इन शब्दों के रूप प्रत्यच् शब्द के तुल्य हैं।

तिर्यच् शब्द (वक्रगामी, पशु, पक्षी) पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
द्वितीया	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः
तृतीया	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
चतुर्थी	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
पञ्चमी	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
षष्ठी	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
सप्तमी	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु
सम्बोधन	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः

उदच् शब्द (उत्तर दिक्, देश वा काल)

प्रथमा	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः
द्वितीया	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीचः
तृतीया	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
पञ्चमी	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
षष्ठी	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
सप्तमी	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु
सम्बोधन	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः

अन्वच् शब्द (अनुगामी) पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	अन्वङ्	अन्वञ्चौ	अन्वञ्चः
द्वितीया	अन्वञ्चम्	अन्वञ्चौ	अनूचः
तृतीया	अनूचा	अन्वग्भ्याम्	अन्वग्भिः
चतुर्थी	अनूचे	अन्वग्भ्याम्	अन्वग्भ्यः
पञ्चमी	अनूचः	अन्वग्भ्याम्	अन्वग्भ्यः
षष्ठी	अनूचः	अनूचोः	अनूचाम्
सप्तमी	अनूचि	अनूचोः	अन्वक्षु
सम्बोधन	अन्वङ्	अन्वञ्चौ	अन्वञ्चः

विष्वच् (सर्वव्यापी) शब्द भी इसी प्रकार है।

जकारान्त वणिज् शब्द (व्यवसायी, बनिया)—पुंल्लिग

प्रथमा	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
द्वितीया	वणिजम्	वणिजौ	वणिजः
तृतीया	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
चतुर्थी	वणिजे	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
पञ्चमी	वणिजः	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
षष्ठी	वणिजः	वणिजोः	वणिजाम्
सप्तमी	वणिजि	वणिजोः	वणिक्षु
सम्बोधन	वणिक्	वणिजौ	वणिजः

सम्राज्, देवराज् विराज (सौन्दर्य, आभा); परिव्राज् (संन्यासी), विश्वसृज् (सृष्टिकर्ता) इन शब्दों को छोड़ कर ऋत्विज् (यज्ञ करने वाला), बलिभुज् (अग्नि), भिषज् (चिकित्सक), भूभुज् (राजा), भृतिभुज् (नौकर, सेवक) आदि पुंलिङ्ग तथा रुज् (रोग), स्रज् (माला) आदि सभी जकारान्त शब्दों के रूप वणिज् शब्द के तुल्य हैं।

सम्राज् (सम्राट्) शब्द—पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राजः
द्वितीया	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः
तृतीया	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
चतुर्थी	सम्राजे	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
पञ्चमी	सम्राजः	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
षष्ठी	सम्राजः	सम्राजोः	सम्राजाम्
सप्तमी	सम्राट्	सम्राजोः	सम्राजाम्
सम्बोधन	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राजः

परिव्राज्, देवराज्, व्राज् (दल सेना), राज् (राजा), भ्राज् (प्रकाश, सुन्दरता); मृज् (ढोण), सृज् (सृष्टिकर्ता) आदि शब्दों के रूप सम्राज् शब्द के तुल्य हैं।

विश्वसृज् शब्द के दो प्रकार के रूप होते हैं, एक वणिज् शब्द के तुल्य और दूसरा सम्राज् शब्द के तुल्य। यथा—विश्वसृक्, विश्वसृट् आदि।

तकारान्त भूभृत् शब्द (राजा, पर्वत) पुंल्लिग

प्रथमा	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
सम्बोधन	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः

अत् (शतृ), स्यत्, मत्; वत्, तवत् प्रत्ययान्त शब्द तथा महत् शब्द को छोड़कर कर्मकृत (कर्म करने वाला; कारीगर); गरुत् (पक्षी का पर), तनूनपात् (अग्नि), दत् (दाँत), दिनकृत् (सूर्य),' दुष्कृत् (दुष्कर्मकारी, पापी), परभृत् (कोयल), पापकृत् (जिसने पाप किया है) बृहत्, मरुत् (वायु), महीक्षित् (राजा), महीभृत् (पर्वत), विपश्चित् (विद्वान्), विश्वजित्, (संसार का जय करनेवाला), शशभृत् (चन्द्र), हरित् (हरा) आदि पुंल्लिङ्ग तथा क्षुत् (छींक), तडित् (बिजली), पृत् (सेना), योषित् (स्त्री), विद्युत् (बिजली), सरित् (नदी), आदि स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भूभृत् शब्द के तुल्य हैं।

अत् (शत्) आदि प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में तकारान्त नहीं रहते, दीर्घ ईकारान्त हो जाते हैं, अतः उनके केवल पुंल्लिङ्ग रूप ही दिखाये जाते हैं। इन शब्दों के केवल प्रथमा और द्वितीया के रूप हैं। दूसरी विभक्तियों में भूभृत् शब्द के तुल्य हैं।

अत् (शतृ), स्यत् प्रत्ययान्त शब्द

अत् और स्यत् प्रत्ययान्त शब्द के रूप एक ही प्रकार हैं।

अत् (शतृ) प्रत्ययान्त धावत् (दौड़ता हुआ) शब्द—पुंलिङ्ग

प्रथमा	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः
द्वितीया	धावन्तम्	धावन्तौ	धावतः
सम्बोधन	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः

अवशिष्ट विभक्तियों में 'भूभृत्' शब्द के तुल्य हैं।

भवत् (स्थितिशील), कुर्वंत् (करनेवाला), ब्रुवत् (बोलनेवाला), जानत् (जाननेवाला), करिष्यत् (करनेवाला), गमिष्यत् (जानेवाला), प्रभृति सब 'शतृ' (अत्) और 'स्यतृ' (स्यत्) प्रत्ययान्त तकारान्त शब्द और जरत् तथा बृहत् शब्द के रूप धावत् शब्द के तुल्य हैं। किन्तु जक्षत् (खानेवाला), जाग्रत्, चकासत् (चमकनेवाला), शासत्, दरिद्रत्, ददत् (देनेवाला), दधत् (लेने या देनेवाला), बिभ्रत् (वहन करने वाला), बिभ्यत्, जहत्, लेलिहत् प्रभृति शब्द के रूप 'भूभृद्' शब्द के तुल्य हैं।

मत्, वत्, तवत्, प्रत्ययान्त शब्द

अंशुमत् (सूर्य), आयुष्मत् (दीर्घायु), ज्योतिष्मत् (सूर्य), दीप्तिमत् (प्रकाशमान्), धनुष्मत् (धनुर्धारी), धीमत् (बुद्धिमान्), भानुमत् (प्रकाशमान्), मतिमत् (बुद्धिमान्), मूर्तिमत् (रूपवाला), बुद्धिमत् (बुद्धिमान्), श्रीमत् (लक्ष्मीवान्), सानुमत् (पर्वत), हनुमत् (हनूमान्) आदि मत् प्रत्ययान्त इयत् (इतना), एतावत् (इतना), कियत् (कितना), ज्ञानवत् (बुद्धिमान्), तावत् (उतना), नभस्वत् (वायु), प्रज्ञावत् (बुद्धिमान्), भगवत् (भगवान्), भवत् (आप), भास्वत् (चमकदार, उज्ज्वल), यावत् (जितना), राजन्वत् (राजाद्वारा शासित), लज्जावत् (लज्जाशील), बलवत् (बलवान्), विद्यावत् (विद्वान्), विद्युत्वत् (मेघ), विवस्वत् (सूर्य), हिमवत् (हिमालय) आदि वत् प्रत्ययान्त शब्द तथा उक्तवत् (कथित), कृतवत् (किया हुआ), जितवत् (विजित), गतवत् (गया हुआ), ज्ञातवत् (जाना हुआ), दृष्टवत् (देखा हुआ), श्रुतवत् (सुना हुआ), स्थितवत् (स्थितिशील) आदि तवत् प्रत्ययान्त शब्द धावत् शब्द के तुल्य हैं। केवल प्रथमा के एकवचन में नकार के पूर्व वृत्ति अकार आकार बन जाता है। यथा—श्रीमत्–श्रीमान्, धीमत्-धीमान्, ज्ञानवत्–ज्ञानवान्, प्रज्ञावत्–प्रज्ञावान्, श्रुतवत्–श्रुतवान्, कृतवत्-कृतवान् इत्यादि, किन्तु सम्बोधन में अकार के स्थान पर आकार नहीं होता यथा—श्रीमन्, धीमन् इत्यादि।

धीमत् शब्द (बुद्धिमान्)–पुंल्लिंग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
द्वितीया	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमतः
संबोधन	धीमन्	धीमन्तौ	धीमन्तः

अवशिष्ट विभक्तियों में भूभृत् शब्द के तुल्य है।

महत् शब्द (बड़ा प्रबल)

प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
संबोधन	महन्	महान्तौ	महान्तः

अवशिष्ट विभक्तियों में भूभृत् शब्द के तुल्य है।

सुहृद् शब्द (मित्र)–पुंल्लिंग

प्रथमा	सुहृद्	सुहृदौ	सुहृदः
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
चतुर्थी	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पञ्चमी	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु
संबोधन	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः

प्रायः सब दकारान्त शब्द के रूप सुहृद् शब्द के तुल्य हैं। यथा—सभासद् (सभ्य), दिविषद् (देवता), उद्भिद् (तरु-लता प्रभृति), निरापद् (आपद् शून्य), गोत्रभिद् (पहाड़ तोड़ने वाला), तमोनुद् (अन्धकार हटाने वाला), पद् (पैर), ब्रह्मविद् (ब्रह्मज्ञ) आदि पुंलिंग तथा आपद्–विपत्ति, उपनिषद् (वेद का अन्तिम भाग), ज्ञानशास्त्र, ब्रह्मविद्या, परिषद् (समिति), मुद् (प्रमोद), मृद् (मृत्तिका), विपद् (विपत्ति), शरद्

(शरत्काल), संविद् (ज्ञान), संसद् (समिति–सभा), संपद् (संपत्ति) आदि स्त्रीलिंग शब्दों के रूप सुहृद् शब्द के तुल्य हैं।

द्विपाद्, त्रिपाद्, चतुष्पाद्-प्रभृति "पाद"-भागान्त शब्द के "पाद" के स्थान में टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् विभक्ति में "पद" होता है। यथा—द्विपदा-द्विपाद्भ्याम्, द्विपाद्भिः, द्विपदे इत्यादि। नकारान्त शब्द त्रिविध हैं—अन्‌भागान्त, इन्‌भागान्त और हन्‌भागान्त।

नकारान्त 'अन्' भागान्त–महिमन् शब्द (माहात्म्य)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महिमा	महिमानौ	महिमानः
द्वितीया	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृतोया	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
चतुर्थी	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पञ्चमी	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
षष्ठी	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
सप्तमी	महिम्नि	नहिम्नोः	महिमसु
संबोधन	महिमन्	महिमानौ	महिमानः

आत्मन्, युवन्, मघवन्, श्वन् आदि को छोड़कर अर्यमन् (सूर्य), गरिमन् (गुरुता, भारीपन), लघिमन् (लघुता-हल्कापन), द्रढिमन् (दृढ़ता), प्रथिमन् (बृहत्त्व), प्रेमन् (प्रेम-प्यार-स्नेह), मूर्धन् (मस्तक), म्रदिमन् (मृदुता), वेमन् (ताँत–करघा); आदि पुंलिंग शब्द तथा पामन् (चर्मरोग-खुजली), सीमन् (सीमा) आदि स्त्रीलिंग शब्दों के रूप महिमन् शब्द के तुल्य हैं।

राजन् शब्द (नृपति)–पुंल्लिग

प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	राजन्	राजानौ	राजानः

वृत्रहन् शब्द (इन्द्र)–पुंल्लिग

प्रथमा	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
द्वितीया	वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः
तृतीया	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
चतुर्थी	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
पञ्चमी	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
षष्ठी	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
सप्तमी	वृत्रघ्नि, वृत्रहणि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
सम्बोधन	वृत्रहन्	वृत्रहणौ	वृत्रहणः

अर्यमन् शब्द (सूर्य)–पुंलिंग

प्रथमा और द्वितीया के एकवचन और द्विवचन में इसके रूप वृत्रहन् शब्द के तुल्य हैं। और-और विभक्तियों में महिमन् शब्द के सदृश हैं। यथा—अर्यमा, अर्यमणौ, अर्यमणः; अर्यमणम्, अर्यमणौ, अर्यम्णः इत्यादि।

पूषन् शब्द (सूर्य)--पुंल्लिग

इसके रूप अर्यमन्–शब्द के तुल्य हैं। केवल सप्तमी के एकवचन में "पूष्णि, पूषणि" ये दो रूप होते हैं। यथा–पूषा, पूषणौ, पूषणः इत्यादि।

आत्मन् शब्द (स्वयम्, अपना, मन, जीव, परमात्मा) पुंलिंग

प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	आत्मन्	आत्मानौ	आत्मानः

अर्वन् (घोड़ा), अश्मन् (पत्थर), यक्ष्मन् (क्षयरोग), ब्रह्मन् (विधाता), द्विजन्मन् (ब्राह्मण), यज्वन् (यागकर्ता), कृष्णवर्त्मन् (अग्नि) आदि अन् भागान्त शब्दों का अकार म-संयुक्त वा व-संयुक्त वर्ण में मिलित रहता है, उनके रूप प्रायः आत्मन् शब्द के तुल्य हैं।

श्वन् शब्द (कुत्ता)—पुंल्लिग

प्रथमा	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्य:
पञ्चमी	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
षष्ठी	शुनः	शुनोः	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनोः	श्वसु
सम्बोधन	श्वन्	श्वानौ	श्वानः

युवन् शब्द (तरुण) पुंल्लिग

प्रथमा	युवा	युवानौ	युवानः
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यूनः
तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पञ्चमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
षष्ठी	यूनः	यूनोः	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनोः	युवसु
सम्बोधन	युवन्	युवानौ	युवानः

मघवन् शब्द (इन्द्र)—पुंल्लिग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मघवा	मघवानौ, मघवन्तौ	मघवानः, मघवन्तः
द्वितीया	मघवानम्, मघवन्तम्	मघवानौ, मघवन्तौ	मघोनः, मघवतः
तृतीया	मघोना, मघवता	मघवभ्याम्, मघवद्भ्याम्	मघवभिः, मघवद्भिः
चतुर्थी	मघोने, मघवते	मघवभ्याम्, मघवद्भ्याम्	मघवभ्यः, मघवद्भ्यः
पञ्चमी	मघोनः, मघवतः	मघवभ्याम्, मघवद्भ्याम्	मघवभ्यः, मघवद्भ्यः
षष्ठी	मघोनः, मघवतः	मघोनोः, मघवतोः	मघोनाम्, मघवताम्
सप्तमी	मघोनि, मघवति	मघोनोः, मघवतोः	मघवसु, मघवत्सु
सं०	मघवन्	मघवानौ	मघवानः

अर्वन् शब्द (घोड़ा)—पुंल्लिग

(१मा) अर्वा, अर्वन्तौ, अर्वन्तः; (२या) अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वतः; (३या) अर्वता, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भिः; (४र्थी) अर्वते, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भ्यः, (५मी) अर्वतः, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भ्यः; (६ष्ठी) अर्वतः, अर्वतोः, अर्वताम्; (७मी) अर्वति, अर्वतोः, अर्वत्सु; (सम्बोधन) अर्वन् ।

इन्--भागान्त—धनिन् शब्द (धनवान्)

प्रथमा	धनी	धनिनौ	धनिनः
द्वितीया	धनिनम्	धनिनौ	धनिनः
तृतीया	धनिना	धनिभ्याम्	धनिभिः
चतुर्थी	धनिने	धनिभ्याम्	धनिभ्यः
पञ्चमी	धनिनः	धनिभ्याम्	धनिभ्यः
षष्ठी	धनिनः	धनिनोः	धनिनाम्
सप्तमी	धनिनि	धनिनोः	धनिषु
सम्बोधन	धनिन्	धनिनौ	धनिनः

पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् (इन्द्र) को छोड़कर गुणिन् (गुणवान्); बलिन् (बलवान्), ज्ञानिन् (ज्ञानवान्); मेधाविन्

(मेधाविशिष्ट); मनोहारिन् (मनोहर); एकाकिन् (अकेला); हस्तिन्, करिन् (हाथी), पक्षिन् (चिड़िया), अर्थिन् (याचक), मन्त्रिन् (अमात्य), वाजिन् (घोड़ा), विषयिन् (संसारी), स्वामिन् (अधिपति), आततायिन् (शत्रु); आत्मघातिन् (आत्महत्या करने वाला); कंचुकिन् (कचुकी), कल्याणिन् (सुखी), कामिन् (प्रेमी); कुटुम्बिन् (कुटुम्बी), कुशलिन् (सुखी), कृतिन् (पुण्यवान्); केशरिन् (सिंह); क्रयिन् (खरीदने वाला), क्षमिन् (धैर्यशील), गृहिन् (गृहस्थ), चक्रवर्तिन् (सम्राट्), तपस्विन् (तपस्वी), तेजस्विन् (तेजस्वी), दंष्ट्रिन् (तेज दाँत वाला), दमिन् (इन्द्रियदमन करने वाला), दूरदर्शिन् (दूरदर्शी), देहिन् (शरीरधारी), द्वेषिन् (द्वेष रखने वाला), धन्विन् (धनुर्धारी); प्रत्यर्थिन् (प्रतिवादी); प्राणिन् (जन्तु); मनीषिन् (बुद्धिमान्), रोगिन् (बीमार), वाग्मिन् (द्रुत बोलने वाला), वादिन् (वादी), विटपिन् (वृक्ष), वैरिन् (शत्रु), शरीरिन् (शरीरधारी), शाखिन् (वृक्ष), शिखिन् (मोर), साक्षिन् (साक्षी) आदि इन भागान्त शब्दों के रूप धनिन् शब्द के तुल्य हैं।

पथिन् शब्द (पथ)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः

मथिन् (मन्थन दण्ड) शब्द के रूप पथिन् शब्द के तुल्य हैं।

ऋभुक्षिन् (इन्द्र)-शब्द—(प्रथमा) ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, (द्वितीया) ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षः इत्यादि 'पथिन्' शब्द के तुल्य हैं।

शकारान्त विश् शब्द (वैश्य)--पुंल्लिग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विट्	विशौ	विशः
द्वितीया	विशम्	विशौ	विशः
तृतीया	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
चतुर्थी	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पञ्चमी	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
षष्ठी	विशः	विशोः	विशाम्
सप्तमी	विशि	विशोः	विट्सु
सम्बोधन	विट्	विशौ	विशः

दिश्, दृश्, स्पृश को छोड़कर निश् (रात्रि), विपाश् (एक नदी) आदि स्त्रीलिंग शकारान्त शब्दों के रूप विश् शब्द के तुल्य हैं।

दृश् और स्पृश् द्विविध हैं :—स्वतन्त्र और दूसरे शब्दों के साथ सम्मिलित। यथा—पुंल्लिग—ईदृश् (ऐसा), एतादृश् (ऐसा), कीदृश् (किस प्रकार का), तादृश् (वैसा), भवादृश् (आप जैसा), मर्मस्पृश् (मर्मस्पर्शी) आदि।

पुरोडाश् शब्द (यज्ञीय अन्न) पुंल्लिग

प्रथमा—पुरोडाः, पुरोडाशौ, पुरोडाशः। द्वितीया—पुरोडाशम्, पुरोडाशौ, पुरोडाशः। तृतीया—पुरोडाशा, पुरोडोभ्याम्, पुरोडोभिः। चतुर्थी—पुरोडाशे, पुरोडोभ्याम्, पुरोडोभ्यः। पञ्चमी—पुरोडाशाम्:, पुराडोभ्याम्, पुरोडोभ्यः। षष्ठी—पुरोडाशः, पुरोडाशाः, पुरोडाशाम्। सप्तमी—पुरोडाशि, पुरोडाशोः, पुरोडःसु। सम्बोधन—पुरोडाः।

तादृश् शब्द (वैसा, उसके सदृश)

प्रथमा	तादृक्	तादृशौ	तादृशः
द्वितीया	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृतीया	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
पञ्चमी	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
षष्ठी	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
सप्तमी	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु

सब 'दृश्'-भागान्त और 'स्पृश्'-भागान्त के रूप 'तादृश्' शब्द के तुल्य हैं। यथा—यादृश् (जैसा)। कीदृश् (कैसा), ईदृश्, एतादृश् (ऐसा), त्वादृश् (तेरे सदृश), भवादृश् (आपके सदृश), युष्मादृश् (तुम्हारे सदृश); मादृश् (मेरे सदृश), अस्मादृश् (हमारे सदृश), मर्मस्पृश् (हृदयस्पर्शी)।

षकारान्त द्विष् शब्द (शत्रु)

प्रथमा	द्विट	द्विषौ	द्विषः
द्वितीया	द्विषम्	द्विषौ	द्विषः
तृतीया	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः
चतुर्थी	द्विषे	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
पञ्चमी	द्विषः	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
षष्ठी	द्विषः	द्विषोः	द्विषाम्
सप्तमी	द्विषि	द्विषोः	द्विट्सु
सम्बोधन	द्विट्	द्विषौ	द्विषः

अतिरुष् (अति क्रोधी), धर्मद्विष् (धर्मद्रोही, पापी), विद्विष्, (शत्रु); आदि पुंल्लिग तथा तृष् (तृष्णा—प्यास), त्विष् (प्रकाश), रुष् (क्रोध), विप्रष् (जलबिन्दु), विष् (लड़की, विष्ठा) आदि षकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप द्विष् शब्द के तुल्य हैं।

दोष् (भुजा)

प्रथमा	दोः	दोषौ	दोषः
द्वितीया	दोषम्	दोषौ	दोषः, दोष्णः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	दोषा, दोष्णा	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भिः, दोषभिः
चतुर्थी	दोषे, दोष्णे	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भ्यः, दोषभ्यः
पञ्चमी	दोषः, दोष्णः	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भ्यः, दोषभ्यः
षष्ठी	दोषः, दोष्णः	दोषोः, दोष्णोः	दोषाम्, दोष्णाम्
सप्तमी	दोषि, दोष्णि, दोषणि	दोषोः, दोष्णोः	दोःषु, दोषसु
सम्बोधन	दोः	दोषौ	दोषः

सकारान्त अस्-भागान्त—वेधस् शब्द (विधाता)-पुंल्लिंग

प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पञ्चमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	वेधःसु
सम्बोधन	वेधः	वेधसौ	वेधसः

विद्वस्, जग्मिवस्, लघीयस्, आशिस्, पुमस्—आदि कुछ शब्दों को छोड़कर चन्द्रमस् (चन्द्रमा), दिवौकस् (देवता), दुर्मनस् (दुःखी), प्रचेतस् (वरुण), विमनस् (घबड़ाया हुआ, व्याकुल), विहायस् (आकाश) आदि पुंल्लिङ्ग तथा अप्सरस् (परी), सुमनस् (पुष्प) आदि स्त्रीलिंग सकारान्त शब्दों के रूप वेधस् शब्द के तुल्य हैं।

अनेहस् (काल, समय), उशनस् (शुक्राचार्य) शब्द भी वेधस् शब्द के तुल्य हैं किन्तु अनेहस् शब्द के प्रथमा के एकवचन में अनेहा तथा उशनस् शब्द की प्रथमा के एक वचन में उशना और संबोधन के एकवचन में उशनन्, उशन, उशनः, ये तीन पद होते हैं।

विद्वस्-शब्द (ज्ञानी)-पुंल्लिग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्वन्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पञ्चमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
षष्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सम्बोधन	विद्वन्	विद्वांसौ	विद्वांसः

जग्मिवस् (जो व्यक्ति चला गया) शब्द-पुंल्लिग

प्रथमा	जग्मिवान्	जग्मिवांसौ	जग्मिवांसः
द्वितीया	जग्मिवांसम्	जग्मिवांसौ	जग्मुषः
तृतीया	जग्मुषा	जग्मिवद्भयाम	जग्मिवद्भिः
चतुर्थी	जग्मुषे	जग्मिवद्भयाम्	जग्मिवद्भयः
पञ्चमी	जग्मुषः	जग्मिवद्भयाम्	जग्मिवद्भयः
षष्ठी	जग्मुषः	जग्मुषोः	जग्मुषाम्
सप्तमो	जग्मुषि	जग्मुषोः	जग्मिवत्सु
सम्बोधन	जग्मिवन्	जग्मिवांसौ	जग्मिवांसः

निषेदिवस् (बैठा हुआ), तस्थिवस् (अवस्थित), पेचीवस् (रसोइया), आदि सभी वस् भागान्त शब्द इसी प्रकार हैं। परन्तु स्त्रीलिंग में वस् भागान्त शब्द सकारान्त नहीं रहते, दीर्घ ईकारान्त हो जाते हैं। और शुश्रवस् (सेवा करने वाला) शब्द की द्वितीया के बहुवचन में शुश्रुवुषः, तृतीया के एकवचन में शुश्रुवुषा, चतुर्थी के एकवचन में शुश्रुवुषे, पञ्चमी के एकवचन में शुश्रुवुषः, षष्ठी के एकवचन में शुश्रुवुषः, द्विवचन में शुश्रुवुषोः, सप्तमी के एकवचन में शुश्रुवुषि, द्विवचन में शुश्रुवुषोः, ऐसे पद होते हैं।

लघीयस् शब्द (हल्का-लघु)-पुंल्लिग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लघीयान्	लघीयांसौ	लघीयांसः
द्वितीया	लघीयांसम्	लघीयांसौ	लघीयसः
तृतीया	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभिः
चतुर्थी	लघीयसे	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्यः
पञ्चमी	लघीयसः	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्यः
षष्ठी	लघीयसः	लघीयसोः	लघीयसाम्
सप्तमी	लघीयसि	लघीयसोः	लघीयःसु
सम्बोधन	लघीयन्	लघीयांसौ	लघीयांसः

कनीयस् (कनिष्ठ), गरीयस् (भारी), ज्यायस् (ज्येष्ठ), द्रढीयस् (कठिनतर), प्रेयस् (प्रियतर), यवीयस् (कनिष्ठ), श्रेयस् (श्रेष्ठतर), स्थेयस् (दृढतर) आदि पुंल्लिग इयस् प्रत्यय-निष्पन्न शब्दों के रूप लघीयस् शब्द के तुल्य हैं। ईयस्-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द स्त्रीलिङ्ग में सकारान्त नहीं रहते, दीर्घ ईकारान्त हो जाते हैं।

पुमस् (पुरुष, मनुष्य) शब्द-पुंल्लिग

प्रथमा	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वितीया	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
चतुर्थी	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
चञ्चमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
षष्ठी	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
सप्तमी	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सम्बोधन	पुमन्	पुमांसौ	पुमांसः

उस्-भागान्त—दीर्घायुस् शब्द (दीर्घजीवी)

प्रथमा	दीर्घायुः	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
द्वितीया	दीर्घायुषं	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	दीर्घायुषा	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भिः
चतुर्थी	दीर्घायुषे	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भ्यः
पंचमी	दीर्घायुषः	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भ्यः
षष्ठी	दीर्घायुषः	दीर्घायुषोः	दीर्घायुषाम्
सप्तमी	दीर्घायुषि	दीर्घायुषोः	दीर्घायुःसु
सम्बोधन	दीर्घायुः	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः

हकारान्त मधुलिह् शब्द (भ्रमर)—पुंल्लिग

प्रथमा	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वितीया	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृतीया	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
चतुर्थी	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पञ्चमी	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
षष्ठी	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
सप्तमी	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु
सम्बोधन	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः

उपानह् (पादुका, जूता), अनडुह् (साँड़) आदि कुछ शब्दों को छोड़ कर सभी पुंल्लिग और स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप हकारान्त 'मधुलिह्' शब्द के तुल्य हैं, ट् या ड् परे रहने से, 'तुरासाह्' (इन्द्र का एक नाम) शब्द का स्, ष् बन जाता है, यथा—तुराषाट्, तुरासाहौ, तुरासाहः। तुराषाड्भ्याम्, तुराषाड्भिः। तुराषाट्सु।

अनडुह् (साँड़) शब्द—पुंल्लिग

प्रथमा	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वितीया	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृतीया	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
चतुर्थी	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
षष्ठी	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
सप्तमी	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
सम्बोधन	अनड्वन्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः

विश्ववाट् (विश्व का पालन करने वाला) शब्द

प्रथमा—विश्ववाट्-विश्ववाड्, विश्ववाहौ, विश्ववाहः। द्वितीया—विश्ववाहम्, विश्ववाहौ, विश्वौहः। तृतीया—विश्वौहा, विश्ववाड्भ्याम्, विश्ववाड्भिः। चतुर्थी—विश्वौहे, विश्ववाड्भ्याम्, विश्ववाड्भ्यः। पञ्चमी—विश्वौहः, विश्ववाड्भ्याम्, विश्ववाड्भ्यः। षष्ठी—विश्वौहः, विश्वौहोः, विश्वौहाम्। सप्तमी—विश्वौहि, विश्वौहोः, विश्ववाट्सु।

दुह् (दुहना) शब्द

प्रथमा—धुक् धुग्, दुहौ, दुहः। द्वितीया—दुहम् दुहौ दुहः। तृतीया—दुहा धुग्भ्याम् धुग्भिः। चतुर्थी—दुहे धुग्भ्याम् धुग्भ्यः। पञ्चमी—दुहः धुग्भ्याम् धुग्भ्यः। षष्ठी—दुहः दुहोः दुहाम्। सप्तमी—दुहि दुहोः धुक्षु।

अनुवाद

(१) बलवान् शत्रु द्वारा—बलवता रिपुणा। हरि बुद्धिमान् बालक है—हरिः बुद्धिमान् बालकः। दो सुन्दर पक्षी—सुन्दरौ पक्षिणौ। तेजस्वी घोड़ा द्वारा—तेजस्विना वाजिना। बुद्धिमान् मनुष्य को—ज्ञानवन्तं जनम्। सौभाग्य के समय का मित्र—सम्पदि सुहृत्। छोटा भाई—कनीयान् भ्राता, बड़े वृक्ष—महान्तः पिटपिनः। शक्तिशाली शत्रु—बलवन्तः द्विषः। महान् संत लोग—महान्तः साधवः। ईश्वर की महिमा से—भगवतः महिम्ना। विद्वान् का उपदेश—विपश्चित उपदेशः। विज्ञ चिकित्सक के द्वारा—अभिज्ञेन भिषजा। सिंह के चर्म में—केशरिणः त्वचि।

(२) देहस्य त्वचि—शरीर के चर्म में। वेगवान् वाजी—द्रुतगामी अश्व वाचि वीर्यम् द्विजानाम्—ब्राह्मणों की वाणी में शक्ति है। मूर्ध्नि शशिनः कला—भाल पर अर्ध चन्द्र। विपदि धैर्यम्—विपत्ति में धीरता। सम्पदः पदमापदाम्—धन विपत्तियों का मूल है। धनवान् बलवान् लोके—धनी व्यक्ति संसार में बलवान् है। द्युतिमतः तपस्विनः सन्निधौ—कान्तिमान् महात्मा के सामने। ईश्वरस्य महिम्ना जीवति लोकः—ईश्वर के प्रभाव से मनुष्य जीवित रहता है। धनिनोऽर्थिने धनानि ददति—धनी लोग भिक्षुक को धन देते हैं। पक्षिणः विहायसा गच्छन्ति—पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं। सूर्यः पश्चिमायां दिशि अस्तं याति—सूर्य पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है। गृहं गच्छन्तं भृत्यं पृच्छति प्रभुः—घर जाते हुए नौकर से मालिक पूछता है।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—महान्तौ गिरी। कृपावान् भगवान्। राज्ञः मन्त्रिणा। पथि गच्छता वाजिना। हसन्तं बालकम्। उदारचेताः तपस्वी। दरिद्राः गृहिणः। भगवतः महिम्ना। शीतलेन चन्द्रमसा। जलमुचां वारिणा। गुणवन्तं युवानम्। विषमा विपत्। गोदावर्याः सरितः तीरे। महान्तौ भुजौ। फलवन्तः तरवः। यशस्विनः मन्त्रिणः। सुगमः पन्थाः। बलवता हस्तिना। दुर्जनस्य महती विपत्। मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्। विद्यानाम् पारदृश्वनः। धनवतः गरिम्णा। कनीयान् भ्राता। आत्मनः मुक्तिमिच्छति साधुः। विपश्चिते उपहारं ददति राजा। पुंसः सेवां कुर्वन्ति योषितः। यूनः पृच्छन्ति महान्तः। वनानि दहतः वह्नेः सखा भवति मारुतः। महतः पुत्रः महान् भवति। नृत्यन् आगच्छति बालः। आयान्तं युवानं पश्यति भृत्यः।

संस्कृत में अनुवाद करो—विद्वान् मनुष्य। साहसी युवक। बलवान् सिंह। राजा के मन्त्री को। हरे वृक्ष में। भूपति हरि का छोटा भाई है। पत्थर के भारीपन से। बहुत सी बुद्धिमती लड़कियाँ। कठोर वचन। मेघ में बिजली। फूलों की माला द्वारा। ईश्वर की महिमा से। भारी विपत्ति में पड़ा हुआ। मकान की सीमा। पुण्यवान् लोग। साधु की कुटिया। लड़कियाँ

हाथी देख रही हैं। राजा अपने मन्त्री से पूछते हैं। शरद् ऋतु में आकाश स्वच्छ हो जाता है।

शुद्ध करो—महान्तौ तरुः। गुणवानस्य बालकस्य। संपदे सुहृद्। चञ्चलस्य विद्युतस्य। दिशः शून्यः। दुर्गमेन पथेन। महतानां जनानां कृपया। तादृशः सुहृदः। महानः कलरवः। सम्राटस्य आज्ञा। कृपाबाणेन भगवानेन। महान्तं तरुमारोहति भृत्यः। कुशलेन पथेन गच्छति विप्रः। ज्ञानीं वदन्ति मन्त्रिणः।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द के साधारण सूत्र

'सु', 'सुप्' और 'भ' परे रहने से, धातुनिष्पन्न भकारान्त शब्द के पूर्ववर्ती इकार और उकार दीर्घ होत हैं। यथा—गिर् + सु = गीः, पुर् + भ्याम् = पूर्भ्याम्, पुर् + सुप् + पूर् + सु = पूर् + षु = पूर्षु।

षकारान्त शब्द के 'ष्' के स्थान में—'सु' और 'सुप्' परे 'ट्' और 'भ' परे 'ड्' होता हैं। यथा—त्विष् + सु = त्विट्; त्विष् + भ्याम् = त्विड्भ्याम्; त्विष् + सुप् = त्विट्सु।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिग शब्द

चकारान्त

सब चकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के रूप पुंलिङ्ग 'जलंमुच्'-शब्द के तुल्य हैं। यथा—वाच् (वाक्य), त्वच् (चर्म, वल्कल), रुच् (शोभा, दीप्ति, स्पृहा); ऋच् (वेदमंत्र)।

जकारान्त

सब जकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के रूप पुंल्लिग 'वणिज्' शब्द के तुल्य हैं। यथा—स्रज् (माला), रुज् (रोग)।

तकारान्त

सब तकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के रूप पुंलिङ्ग 'भूभृत्' शब्द के तुल्य है। यथा—योषित् (नारी), सरित् (नदी), तडित्, विद्युत् (सौदामिनी, बिजली)।

दकारान्त

सब दकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के रूप पुंलिग 'सुहृद्' शब्द के तुल्य हैं। यथा—आपद्, विपद् (अमङ्गल), सम्पद् (सम्पत्ति), संसद्, परिषद् (सभा), दृषद् (प्रस्तर), संविद् (ज्ञान), उपनिषद् (वेदान्त), शरद् (ऋतु विशेष)।

धकारान्त-क्षुध् शब्द (क्षुधा)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः
द्वितीया	क्षुधम्	क्षुधौ	क्षुधः
तृतीया	क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भिः
चतुर्थी	क्षुधे	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
पञ्चमी	क्षुधः	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
षष्ठी	क्षुधः	क्षुधोः	क्षुधाम्
सप्तमी	क्षुधि	क्षुधोः	क्षुत्सु
सम्बोधन	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः[1]

युध् (युद्ध), समिध् (यज्ञकाष्ठ), वीरुध् (लता) आदि सब धकारान्त शब्दों के रूप क्षुध् शब्द के तुल्य हैं[2]।

नकारान्त

सीमन् (सीमा, अवधि), पामन् (खुजली) प्रभृति नकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द के रूप महिमन् शब्द के तुल्य हैं।

पकारान्त अप् शब्द (जल) नित्य बहुवचनान्त

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
आपः	अपः	अद्भिः	अद्भ्यः
पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी	सम्बोधन
अद्भ्यः	अपाम्	अप्सु	आपः

१. धकारान्त शब्द के 'ध्' के स्थान में सु और सुप् परे रहने से त्, और भ परे रहने से द् होता है।

२. पद के अन्त में और विभक्ति का व्यञ्जन वर्ण परे रहने से बुध् शब्द के ब के स्थान में भ होता है। यथा—भुत्, बुधौ, बुधः। बुधम्, बुधौ, बुधः। बुधा, भुद्भ्याम्, भुद्भिः इत्यादि।

भकारान्त ककुभ् शब्द (दिक्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ककुप्[1]	ककुभौ	ककुभः
द्वितीया	ककुभम्	ककुभौ	ककुभः
तृतीया	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः
चतुर्थी	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
पञ्चमी	ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
षष्ठी	ककुभः	ककुभोः	ककुभाम्
सप्तमी	ककुभि	ककुभोः	ककुप्सु
सम्बोधन	ककुप्	ककुभौ	ककुभः

अनुष्टुभ् और त्रिष्टुभ् आदि भकारान्त शब्दों के रूप ककुभ् शब्द के तुल्य हैं।

रकारान्त द्वार् (दरवाजा, उपाय)

प्रथमा	द्वाः	द्वारौ	द्वारः
द्वितीया	द्वारम्	द्वारौ	द्वारः
तृतीया	द्वारा	द्वार्भ्याम्	द्वार्भिः
चतुर्थी	द्वारे	द्वार्भ्याम्	द्वार्भ्यः
पञ्चमी	द्वारः	द्वार्भ्याम्	द्वार्भ्यः
षष्ठी	द्वारः	द्वारोः	द्वाराम्
सप्तमी	द्वारि	द्वारोः	द्वार्षु
सम्बोधन	द्वाः	द्वारौ	द्वारः

सब 'आर्' भागान्त शब्द के रूप 'द्वार्' शब्द के तुल्य हैं।

---

१. भकारान्त शब्द के भ के स्थान में—सु और सुप् परे रहने से प् और भ परे रहने से ब् होता है।

रकारान्त गिर् शब्द (वाक्य)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गीः	गिरौ	गिरः
द्वितीया	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृतीया	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
चतुर्थी	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पञ्चमी	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीर्षु
सम्बोधन	गीः	गिरौ	गिरः

रकारान्त पुर् शब्द (नगरी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूः	पुरौ	पुरः
द्वितीया	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृतीया	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
चतुर्थी	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पञ्चमी	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
षष्ठी	पुरः	पुरोः	पुराम्
सप्तमी	पुरि	पुरोः	पूर्षु
सम्बोधन	पूः	पुरौ	पुरः

धुर् (भार) शब्द के रूप पुर् शब्द के तुल्य हैं।

वकारान्त दिव् शब्द (स्वर्ग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वितीया	दिवम्, द्याम्	दिवौ	दिवः
तृतीया	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
चतुर्थी	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
पञ्चमी	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	दिवः	दिवोः	दिवाम्
सप्तमी	दिवि	दिवोः	द्युषु
सम्बोधन	द्यौः	दिवौ	दिवः

शकारान्त

दिश् (दिक्), दृश् (नेत्र) शब्द के रूप तादृश् शब्द के तुल्य हैं। और निश् (रात्रि) शब्द के रूप विश् शब्द के तुल्य हैं।

षकारान्त

रुष् (क्रोध), विष् (विष्ठा), विप्रुष् (बूँद); त्विष् (तेज, कान्ति) प्रभृति षकारान्त शब्द के रूप द्विष् शब्द के तुल्य हैं।

सकारान्त

अस् भागान्त (अप्सरस्-प्रभृति) शब्द के रूप 'वेधस्' शब्द के तुल्य हैं।

आस् भागान्त—भास् शब्द (दीप्ति)

प्रथमा	भाः	भासौ	भासः
द्वितीया	भासम्	भासौ	भासः
तृतीया	भासा	भाभ्याम्	भाभिः
चतुर्थी	भासे	भाभ्याम्	भाभ्यः
पञ्चमी	भासः	भाभ्याम्	भाभ्यः
षष्ठी	भासः	भासोः	भासाम्
सप्तमी	भासि	भासोः	भाःसु
संबोधन	भाः	भासौ	भासः

इस् भागान्त—अर्चिस् शब्द[1] (शिखा, ज्वाला)

प्रथमा	अर्चिः	अर्चिषौ	अर्चिषः
द्वितीया	अर्चिषम्	अर्चिषौ	अर्चिषः

---

१. अर्चिस्-शब्द क्लीबलिङ्ग भी होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	अर्चिषा	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भिः
चतुर्थी	अर्चिषे	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्यः
पञ्चमी	अर्चिषः	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्यः
षष्ठी	अर्चिषः	अर्चिषोः	अर्चिषाम्
सप्तमी	अर्चिषि	अर्चिषोः	अर्चिःषु
सम्बोधन	अर्चिः	अर्चिषौ	अर्चिषः

सब इस् भागान्त शब्द के रूप अर्चिस्-शब्द के तुल्य हैं।

आशिस् शब्द (शुभाकाङ्क्षा, अभिलाष)

प्रथमा	आशीः	आशिषौ	आशिषः
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पञ्चमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीःषु
सम्बोधन	आशीः	आशिषौ	आशिषः

हकारान्त उपानह् शब्द (जूता)

प्रथमा	उपानत्	उपानहौ	उपानहः
द्वितीया	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृतीया	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
चतुर्थी	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पञ्चमी	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
षष्ठी	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
सप्तमी	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
सम्बोधन	उपानत्	उपानहौ	उपानहः

व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्द के साधारण सूत्र

'सु' 'अम्' और संबोधन के 'सु' का लोप होता है, यथा—जगत् + सु = जगत् , जगत् + अम् = जगत् ।

'औ' के स्थान में 'ई' और जस् तथा शस् के स्थान में 'इ' होता है। तथा जगत् + औ = जगत् + ई = जगती, ददत् + जस् = ददत् + इ = ददति ।

जस् और शस् परे रहे तो चकारान्त शब्द के 'च' स्थान में 'ञ्च' और जकारान्त शब्द के 'ज' के स्थान में 'ञ्ज' होता है। यथा— प्राच् + जस् = प्राञ्च् + इ (१९५सू.) = प्राञ्चि, असृज् + जस् = असृञ्ज् + इ = असृञ्जि ।

जस् और शस् परे रहे तो अन्त्य स्वर के पश्चात् न् होता है। नान्त शब्द के नहीं होता, तथा—जगत् + जस् = जगन्त् + इ = जगन्ति।

जस् और शस् परे रहने से, अभ्यस्त शब्द के त् के स्थान में विकल्प न्त् होता है, यथा—जाग्रत् + जस् = जाग्रन्त् + इ = जाग्रन्ति, पक्षे—जाग्रत् + जस् = जाग्रत् + इ = जाग्रति ।

जस् और शस् परे रहने से नकारान्त और 'न्स्' भागान्त शब्द का अन्त्य स्वर दीर्घ होता है। यथा—नामन् + जस् + नामान् + इ = नामानि, हविस् + जस् = हविन्स् (१९७ सू.) + जस् = हवीन्स् + इ = हवींस् (६३ सू.) + इ = हवींषि ।

सु परे रहने से नकार का लोप होता है। सम्बोधन के सु में विकल्प से होता है, यथा = नामन् + सु (सम्बोधन) = नाम, (पक्षे) नामन् ।

इ परे रहते अन् भागान्त शब्द के आकार का विकल्प से लोप होता है। यथा—नामन् + औ = नामन् + ई = नाम्न् + ई = नाम्नी, पक्षे नामन् + औ = नामन् + ई = नामनी ।

व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्द

व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्द रूप प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधन में समान हैं और तृतीया से सप्तमी तक पुंल्लिङ्ग के तुल्य हैं। अतः उनकी केवल प्रथमा विभक्ति के रूप ही यहाँ लिखे जाते हैं। जिस शब्द के सब रूप पुंल्लिङ्ग समान न होंगे उनकी सभी विभक्तियों के रूप लिखे जायेंगे।

चकारान्तप्राच् (पूर्व) शब्द

प्रथमा	प्राक्	प्राची	प्राञ्चि

दूसरी विभक्तियों के रूप जलमुच् शब्द की तरह हैं।

प्रत्यच्, तिर्यंच्, उदच् इन तीन शब्दों को छोड़ कर सभी क्लीबलिङ्ग चकारान्त शब्द प्राच् शब्द के तुल्य हैं।

प्रत्यच (पश्चिम)

प्रथमा	प्रत्यक्	प्रतीची	प्रत्यञ्चि

तिर्यंच् (टेढ़ा)

प्रथमा	तिर्यक्	तिरश्ची	तिर्यञ्चि

उदच् (उत्तर)

प्रथमा	उदक्	उदीची	उदञ्चि

जकारान्त असृज् शब्द (शोणित, रक्त)

प्रथमा	असृक्	असृजी	असृञ्जि

दूसरी विभक्तियों के रूप वणिज् शब्द के तुल्य हैं। सभी जकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्द इसी प्रकार हैं।

तकारान्त जगत् शब्द (विश्व)

प्रथमा	जगत्	जगती	जगन्ति

दूसरी विभक्तियों के रूप भूभृत् शब्द के तुल्य हैं।

गच्छत् शब्द (जाने वाला)

प्रथमा	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ति

भ्वादि, दिवादि, चुरादि और णिजन्त प्रभृति धातु के उत्तर शतृ प्रत्ययान्त सब क्लीबलिङ्ग शब्द के रूप गच्छत् शब्द के तुल्य हैं।

इच्छत् (इच्छा करने वाला)

प्रथमा	इच्छत्	इच्छती, इच्छन्ती	इच्छन्ति

तुदादिगणीय धातु के उत्तर शतृ प्रत्ययान्त सब क्लीबलिंग शब्द के रूप इच्छत् शब्द के तुल्य हैं।

यात् शब्द (जाने वाला)

प्रथमा	यात्	याती, यान्ती	यान्ति

आकारान्त अदादिगणीय धातु के उत्तर शतृ प्रत्ययान्त सब क्लीबलिङ्ग शब्द के रूप यात् शब्द के तुल्य हैं।

दरिद्रत् शब्द

प्रथमा	दरिद्रत्	दरिद्रती	दरिद्रति, दरिद्रन्ति

जाग्रत् शब्द

प्रथमा	जाग्रत्	जाग्रती	जाग्रति, जाग्रन्ति

जक्षत्, चकासत् प्रभृति शब्द के रूप क्लीबलिङ्ग में जाग्रत् शब्द के तुल्य हैं।

भविष्यत् शब्द (भविष्य)

प्रथमा	भविष्यत्	भविष्यति भविष्यन्ती	भविष्यन्ति

सब 'स्य + शतृ' प्रत्ययान्त क्लीबलिङ्ग शब्द के रूप भविष्यत् शब्द के तुल्य हैं।

महत् शब्द

प्रथमा	महत्	महती	महान्ति

यकृत् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यकृत्	यकृती	यकृन्ति
द्वितीया	यकृत्	यकृती	यकृन्ति, यकानि
तृतीया	यकृता, यक्ना	यकृद्भ्याम्, यकभ्याम्	यकृद्भिः, यकभिः
चतुर्थी	यकृते, यक्ने	यकृद्भ्याम्, यकभ्याम्	यकृद्भ्यः, यकभ्यः
पञ्चमी	यकृतः, यक्नः	यकृद्भ्याम्, यकभ्याम्	यकृद्भ्यः, यकभ्यः
षष्ठी	यकृतः, यक्नः	यकृतोः, यक्नोः	यकृताम्, यक्नाम्
सप्तमी	यकृति, यक्नि, यकनि	यकृतोः, यक्नोः	यकृत्सु, यकसु
सम्बोधन	यकृत्	यकृती	यकृन्ति

शकृत् (विष्ठा, गोबर) शब्द इसी प्रकार है।

दकारान्त हृद् शब्द (वक्षःस्थल, छाती, मन)

प्रथमा	हृत्	हृदी	हृन्दि

दूसरी विभक्तियों के रूप सुहृद् शब्द के तुल्य हैं।

अन्यान्य दकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दों के रूप 'हृद्' के तुल्य हैं।

द्विपाद् शब्द (दो पैर वाला) द्विपात्, द्विपादी, द्विपान्दि— इस प्रकार हैं।

अन्यान्य पाद् भागान्त शब्द इसी प्रकार हैं।

नकारान्त अन्-भागान्त नामन् शब्द (आख्या)

प्रथमा	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
सम्बोधन	नाम, नामन्	नाम्नी, नामनी	नामानि

अन्यान्य विभक्तियों के रूप पुंल्लिङ्ग महिमन् शब्द के समान हैं।

कर्मन् आदि कुछ शब्दों तथा अहन् शब्द को छोड़कर दामन् (स्रक्), प्रेमन् (प्रेम), धामन् (मकान), लोमन् (रोम), वेमन् (कर्घा), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद) आदि सभी अन्भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दों के रूप नामन् शब्द के तुल्य हैं।

कर्मन् (कर्म)

प्रथमा	कर्म	कर्मणी	कर्माणि
सम्बोधन	कर्म, कर्मन्	,,	,,

चर्मन् (चमड़ा), छद्मन् (भेस), जन्मन् (जन्म), नर्मन् (दिल्लगी-परिहास), पर्वन् (त्यौहार-गाँठ), भस्मन् (राख), मर्मन् (मर्मस्थान), लक्ष्मन् (चिह्न, दाग), वर्त्मन् (मार्ग), वर्मन् (कवच), वेश्मन् (घर, मकान), शर्मन् (सुख), सद्मन् (मकान) आदि जिन शब्दों के अन्तिम अन् का अकार म-संयुक्त या र्-संयुक्त वर्ण में मिलित रहता है उनके रूप कर्मन् शब्द के तुल्य हैं।

अहन् शब्द (दिन)

प्रथमा	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु
सम्बोधन	अहः	अह्नी, अहनी,	अहानि

इन्-भागान्त—स्थायिन् शब्द (स्थितिशील)

प्रथमा	स्थायि	स्थायिनी	स्थायीनि

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंलिङ्ग धनिन् शब्द के तुल्य हैं।

अन्यान्य इन्-भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दों के रूप स्थायिन् शब्द के तुल्य हैं।

रकारान्त वार्-शब्द (जल)

प्रथमा	वाः	वारी	वारि

अन्यान्य विभक्तियों के रूप स्त्रीलिङ्ग द्वार् शब्द के तुल्य हैं।

शकारान्त तादृश् शब्द

प्रथमा	तादृक्	तादृशी	तादृंशि

सकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्द तीन प्रकार के हैं। यथा—अस् भागान्त, इस् भागान्त, उस् भागान्त।

अस् भागान्त पयस् शब्द (दुग्ध, जल)

प्रथमा	पयः	पयसी	पयांसि

अन्यान्य विभक्तियों के रूप पुंल्लिङ्ग वेधस् शब्द के तुल्य हैं।

अम्भस् (जल), अयस् (लोहा), आगस् (पाप, दोष), उरस् (छाती), ऊधस् (स्तन), एनस् (पाप), ओकस् (घर), ओजस् (प्रकाश), चेतस् (मन), छन्दस् (छन्द), तपस् (तप), तमस् (अन्धकार), तेजस् (प्रकाश, उष्णता), नभस् (आकाश), मनस् (मन), यशस् (यश), रक्षस् (राक्षस), रजस् (धूल), रहस् (रहस्य), रोधस् (नदी का तट या बाँध), वक्षस् (छाती), वयस् (उमर), वर्चस् (प्रकाश, दीप्ति), वासस् (वस्त्र), शिरस् (मस्तक), प्रेयस् (प्रिय), सदस् (संसद्, सभा), सरस् (पोखरा) आदि सभी अस् भागान्त क्लीबलिंग पयस् शब्द के तुल्य हैं।

तस्थिवस् शब्द की प्रथमा में तस्थिवत्, तस्थुषी, तस्थिवांसि। क्वसु (वसु) प्रत्ययान्त विद्वस् (विद्वान्) शब्द-विद्वत्, विदुषी, विद्वांसि। शुश्रुवस् शब्द—शुश्रुवत्, शुश्रुवुषी, शुश्रुवांसि।

इस्-भागान्त हविस् शब्द (घृत)

प्रथमा	हविः	हविषी	हवींषि

दूसरी विभक्तियों के रूप पूर्वोक्त अर्चिस् शब्द के तुल्य हैं।

ज्योतिस् (प्रकाश), रोचिस् (चमक), बर्हिस् (प्रकाश, कुश), शोचिस् (प्रकाश), सर्पिस् (घी), आदि सभी इस् भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दों के रूप इसी प्रकार हैं।

उस्-भागान्त धनुष् शब्द (धनुष)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वितीया	धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृतीया	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
चतुर्थी	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
पञ्चमी	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
षष्ठी	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
सप्तमी	धनुषि	धनुषोः	धनुःषु
संबोधन	धनुः	धनुषी	धनूंषि

अरुष् (घाव), आयुष् (उमर), चक्षुष् (नेत्र), वपुष् (शरीर), यजुष् (यजुर्वेद) आदि उस् भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दों के रूप इसी प्रकार हैं।

अनुवाद

जीर्णानि वासांसि—फटे वस्त्र। सदसि वाक्पटुता—सभा में बोलने की शक्ति। यशसि अभिरुचिः—यश की इच्छा। कुक्कुरस्य व्याघ्रात् महत् भयम्—बाघ से कुत्ते को महान् भय।

कठोर वचन—दारुणानि वचांसि। सरल चित्त—सरलं मनः। एक आँख का काना—चक्षुषा काणः। शुद्ध जल—निर्मलमम्भः। बच्चे की मीठी बोली—शिशोः मधुराणि वचांसि। अर्जुन के धनुष के द्वारा—अर्जुनस्य धनुषा। बलवान् शरीर—बलवत् वपुः। नीला आकाश—सुनीलं नभः। महान् व्यक्ति का जन्म—महतः जन्म। सूर्य की उष्णता के द्वारा—आतपस्य तेजसा। मुनियों की विशाल सभा में—मुनीनां विस्तीर्णे सदसि।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—मधुरेण पयसा। चञ्चलं मनः। सरसः पयांसि। भास्वन्ति रत्नानि। शुभस्य कर्मणः। विपदि धैर्यं श्रेयः। चलज्जीवनम्। मुण्डितं

शिरः । तारकिते नभसि । हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः । मूर्खस्य जन्म निरर्थकम् । विपुलानि यशांसि । वपुः पीडां ददाति । शिशुः पयांसि पिबति । शोकश्चेतः दहति । प्रेम्णा मानुषं जयति सुधीः । चर्मणा बहूनि द्रव्याणि करोति नरः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—चमड़े से बना हुआ । तालाब का ठण्ढा जल । बड़े धनुष के द्वारा । अनेक जन्म । चौड़ी छाती । आवश्यक कार्य । शुभ दिन । संसार का रक्षक । हरिण के चमड़े से । सूर्य की किरणों के द्वारा । चाण्डाल के घर में । शिवजी ने अर्जुन को एक धनुष दिया था ।

शुद्ध करो—मधुं पिबन्ति शिशवः । तपस्य फलम् । शीतलं पयांसि । हरेर्गोपस्य कुले जन्मः । निर्मले नभे । मधुराः वचः । जगते स्वभावः प्रबलः । दैवः बलवान् । कर्म करोति भृत्यः । धनुं ददाति योधाय नृपः । चक्षुणा पश्यति लोकः । आत्माः यशमिच्छति । चण्डालस्य धामे गच्छति चोरः ।

रूप लिखो—धनुष् द्वितीया, पथिन् प्रथमा, यकृत् सप्तमी, विद्वस् तृतीया, कियत् षष्ठी, महत् पञ्चमी, गायत् तृतीया, श्रीमत् पञ्चमी, अहन् पञ्चमी, असृज् प्रथमा, ज्वलत् द्वितीया, चन्द्रमस् पञ्चमी, श्रेयस् द्वितीया ।

सर्वनाम

रूप की विलक्षणता के अनुसार सर्वनाम शब्द पाँच श्रेणियों में विभक्त हैं, यथा—सर्वादि, अन्यादि, पूर्वादि, यदादि और इदमादि।

सर्वादि—सर्व (समस्त), विश्व (समस्त), उभय (दोनों), एक, एकतर (दो में एक), सम (समस्त)।

अन्यादि—अन्य (दूसरा), अन्यतर (दो में एक), इतर (दूसरा), कतर (दो में कौन), कतम (अनेकों में कौन), एकतम (अनेकों में एक)।

पूर्वादि—पूर्व (पिछला, पूर्व का), पर (बाद), अपर (दूसरा), अवर (अगला, पश्चिम), अधर (भीतरी, पश्चिम), दक्षिण (दाहिना, दक्षिण), उत्तर, स्व (अपना)।

यदादि—यद् (जो), तद् (वह, यह) एतद् (यह), त्यद् (वह), किम् (कौन, क्या)।

इदमादि—इदम् (यह), अदस् (वह), युष्मद् (तू, तुम), अस्मद् (मैं, हम)।

सर्व और विश्व शब्दों से 'समस्त' अर्थ का बोध होने पर ही वे सर्वनाम होते हैं। यथा—सर्वे नराः (सारे मनुष्य), विश्वे देवाः (सभी देवता), अन्यथा उनके रूप साधारण अकारान्त शब्द के तुल्य हैं। यथा—सर्वाय नमः (शिवजी को नमस्कार है) विश्वे कोऽपि न सुखी (संसार में कोई सुखी नहीं हैं)।

उभय शब्द एकवचन और बहुवचन में प्रयुक्त होता है। यथा उभयम् अहिनकुलम् (दोनों साँप नेवले), उभये देवमनुष्याः अनिशं सुखमिच्छन्ति (देवता और मनुष्य दोनों सदा सुख चाहते हैं)।

उभ शब्द द्विवचन में प्रयुक्त होता है। यथा—उभौ विप्रौ।

एक शब्द एकवचनान्त है। यथा—एकः बालकः, एका बालिका, एकं फलम्। परन्तु कोई कोई ऐसा अर्थ प्रकट होने से बहुवचन में भी

प्रयुक्त हो सकता है, यथा—एके वदन्ति (कुछ लोग कहते हैं), एके मृताः (कुछलोग मर गये) ।

पूर्व, अपर, उत्तर और दक्षिण शब्द दिशा, देश तथा काल का वाचक होने पर अर्थात् पूर्व दिशा, पूर्व काल, पूर्व देश आदि अर्थ प्रकट करें तो वे सर्वनाम होते हैं। यथा—पूर्वस्यां दिशि उदितो भानुः (पूर्व दिशा में सूर्य उगा है), अपरस्यां दिशि रविरस्तं याति (दूसरी दिशा अर्थात् पश्चिम में सूर्य अस्त जाता है), उत्तरस्यां दिशि हिमालयोऽस्ति, दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितः विप्रः। किन्तु 'प्रश्न का उत्तर' अर्थ प्रकट करने से उत्तर शब्द संज्ञा हो जाता है। यथा—बालकोऽयम् उत्तरे प्रत्युत्तरे च निपुणः (यह बालक उत्तर और प्रत्युत्तर में दक्ष है)। 'अन्य' अर्थ में अपर शब्द और 'शत्रु' अर्थ में पर शब्द सर्वनाम हैं। यथा—अपरे एवं वदन्ति (दूसरे) लोग ऐसा कहते हैं। परेषां दर्पमपहर (शत्रुओं का घमंड तोड़ो)। निपुण याकुशल अर्थ में दक्षिण शब्द सर्वनाम नहीं होता। यथा—दक्षिणाय (निपुणाय) गायकाय देहि (दक्ष गायक को दो)।

नीचे या अधम अर्थ में अधर शब्द सर्वनाम है। यथा—अधरस्मिन् बालके कोऽपि न विश्वसिति (नीच बालक पर कोई विश्वास नहीं करता)। परन्तु निम्नोष्ठ अर्थ में अधर शब्द संज्ञा है। यथा—अधरे ताम्बूलरागः (अधर में पान की लाली)।

स्व शब्द निजवाचक होने से सर्वनाम है। यथा—स्वस्मिन् विषये (अपने विषय में)। किन्तु धन या ज्ञाति (पैतृक सम्बन्धी) या धन अर्थ में स्व शब्द संज्ञा है। जैसा—स्वानाम् (ज्ञातीनाम्) निधनं कोऽपि न वाञ्छति (अपने ज्ञातियों का निधन कोई नहीं चाहता) परस्वाय मा स्पृहय (दूसरे के धन पर स्पृहा न करो)।

बहिर्योग और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द सर्वनाम है। यथा—अन्तरे अन्तराः वा गृहाः, अन्तरे अन्तरे वा शाटकाः। नगरी-वाचक शब्द के विशेषण होने से अन्तर शब्द सर्वनाम नहीं होता। यथा—अन्तरायां पुरि (शहर के बाहर)। अवकाश या व्यवधान अर्थ में अन्तर शब्द संज्ञा है। यथा—अत्रान्तरे स गृहं प्रविष्टः (इतने में वह घर में

प्रविष्ट हुआ)। प्रयाग-पाटलिपुत्रयोरिवान्तरम् (प्रयाग और पाटलिपुत्र की तरह दूर है)।

निकटवर्ती वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में इदम् , अधिकतर निकटवर्ती वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में एतद् तथा दूरवर्ती वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में अदस् शब्द का प्रयोग होता है। परोक्ष वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में तद् शब्द का प्रयोग होता है। यथा—आगच्छत्ययं बालकः (यह बालक आ रहा है), एष दाशरथिः रामः (यह दशरथनन्दन रामचन्द्र हैं), हसत्यसौ शिशुः (वह बच्चा हँस रहा है), विद्यालयं गच्छति सः (वह विद्यालय जाया करता है)।

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

आदरार्थं में युष्मदर्थक भवत् शब्द की क्रिया प्रथम पुरुष में रहती है, यथा—आगच्छतु भवान् (आप आवें)।

शब्द-रूप

सर्व शब्द (सब, समस्त)

पुंल्लिग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	सर्व	सर्वौ	सर्वे

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

क्लीबलिङ्ग

प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंलिङ्ग की तरह हैं।

विश्व (समस्त), उभ, उभय, एक, एकतर, सम (समस्त), सिम (समस्त), नेम (आधा) आदि तथा अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम, एकतम आदि शब्दों के रूप सर्व शब्द के तुल्य हैं। केवल क्लीबलिङ्ग की प्रथमा और द्वितीया के एक वचन में अन्यत्, अन्यतरत्, इतरत्, कतरत्, कतमत्, एकतरत् ऐसे पद होते हैं।

पूर्वशब्द पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुबचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पञ्चमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः

षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

स्त्रीलिङ्ग में सर्व शब्द की तरह रूप होते हैं।

क्लीबलिङ्ग

प्रथमा	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंल्लिग की तरह हैं।

यद्, तद्, एतद्, त्यद्, किम् शब्दों के स्थान में य, त, एत, त्य, क, ऐसे अकारान्त हो जाते हैं। इनके रूप सर्वादि के तुल्य हैं। केवल क्लीबलिंग की प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में यत्, तत्, एतत्, त्यत् और किम् होते हैं। और तद्, एतद्, त्यद्, शब्दों की प्रथमा के एकवचन में पुंल्लिग में सः, एषः, स्यः तथा स्त्रीलिंग में सा, एषा, स्या ऐसे रूप होते हैं।

यद् शब्द (जो)—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा—यः, यौ, ये। द्वितीया—यम्, यौ, यान्। तृतीया—येन, याभ्याम् यैः। चतुर्थी—यस्मै, याभ्याम्, येभ्यः। पञ्चमी—यस्मात्, याभ्याम्, येभ्यः। षष्ठी—यस्य, ययोः, येषाम्। सप्तमी—यस्मिन्, ययोः, येषु।

यद् शब्द—स्त्रीलिंग

प्रथमा—या, ये याः। द्वितीया—याम्, ये, याः। तृतीया—यया, याभ्याम्, याभिः। चतुर्थी—यस्यै, याभ्याम्, याभ्यः। पञ्चमी—यस्याः, याभ्याम्, याभ्यः। षष्ठी—यस्याः, ययोः, यासाम्। सप्तमी—यस्याम्, ययोः, यासु।

यद् शब्द—क्लीबलिंग

प्रथमा—यत्, ये, यानि। द्वितीया—यत्, ये, यानि।

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंल्लिग की तरह हैं।

तद् शब्द (वह)—पुंल्लिग

प्रथमा—सः, तौ, ते। द्वितीया—तम्, तौ, तान्। तृतीया—तेन, ताभ्याम्, तैः। चतुर्थी—तस्मै, ताभ्याम्, तेभ्यः। पञ्चमी—तस्मात्, ताभ्याम्; तेभ्यः। षष्ठी—तस्य, तयोः, तेषाम्। सप्तमी—तस्मिन्, तयोः, तेषु।

तद् शब्द—स्त्रीलिंग

प्रथमा—सा, ते, ताः द्वितीया—ताम्, ते, ताः। तृतीया—तया, ताभ्याम्, ताभिः। चतुर्थी—तस्यै, ताभ्याम्, ताभ्यः। पञ्चमी—तस्याः, ताभ्याम्, ताभ्यः। षष्ठी—तस्याः, तयोः तासाम्। सप्तमी—तस्याम्, तयोः, तासु।

तद् शब्द—क्लीबलिंग

प्रथमा—तत्, ते, तानि। द्वितीया—तत्, ते, तानि।
दूसरी विभक्तियों के रूप पुंल्लिग की तरह हैं।

एतद् शब्द (यह)—पुंल्लिग

प्रथमा—एषः, एतौ, एते। द्वितीया—एतम्, एतौ, एतान्। तृतीया—एतेन, एताभ्याम्, एतैः। चतुर्थी—एतस्मै, एताभ्याम्, एतेभ्यः। पञ्चमी—एतस्मात्, एताभ्याम्, एतेभ्यः। षष्ठी—एतस्य, एतयोः, एतेषाम्। सप्तमी—एतस्मिन्, एतयोः, एतेषु।

एतद् शब्द—स्त्रीलिंग

प्रथमा—एषा, एते, एताः। द्वितीया—एताम्, एते, एताः। तृतीया—एतया, एताभ्याम्, एताभिः। चतुर्थी—एतस्यै, एताभ्याम्, एताभ्यः। पञ्चमी—एतस्याः, एताभ्याम्, एताभ्यः। षष्ठी—एतस्याः, एतयोः, एतासाम्। सप्तमी—एतस्याम्, एतयोः, एतासु।

एतद् शब्द—क्लीबलिंग

प्रथमा—एतत्, एते, एतानि। द्वितीया—एतत्, एनत् एते एने, एतानि, एनानि।

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंलिग की तरह हैं।

किम् शब्द (कौन, क्या)—पुंल्लिग

प्रथमा—कः, कौ, के। द्वितीया—कम्, कौ, कान्। तृतीया—केन, काभ्याम्, कैः। चतुर्थी—कस्मै, काभ्याम्, केभ्यः। पञ्चमी—कस्मात्, काभ्याम्, केभ्यः। षष्ठी—कस्य, कयोः, केषाम्। सप्तमी—कस्मिन्, कयोः, केषु।

किम् शब्द—स्त्रीलिंग

प्रथमा—का, के, काः। द्वितीया—काम्, के, काः। तृतीया—कया, काभ्याम्, काभिः। चतुर्थी—कस्यै, काभ्याम्, काभ्यः। पञ्चमी—कस्याः, काभ्याम्, काभ्यः। षष्ठी—कस्याः, कयोः, कासाम्। सप्तमी—कस्याम्, कयोः, कासु।

किम् शब्द—क्लीबलिंग

प्रथमा—किम्, के, कानि। द्वितीया—किम्, के, कानि।

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंलिग की तरह हैं।

इदम् शब्द (यह)—पुंल्लिग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

इदम् शब्द स्त्रीलिंग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	इमे, एने	इमाः; एनाः
तृतीया	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

इदम् शब्द क्लीबलिंग

प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंल्लिग की तरह हैं।

अदस् शब्द (वह)—पुंल्लिग

प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

अदस् शब्द—स्त्रीलिंग

प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

अदस् शब्द क्लीबलिंग

प्रथमा	अदः	अमू	अमूनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमूनि

दूसरी विभक्तियों के रूप पुंल्लिग की तरह हैं।

युष्मद् शब्द (तू , तुम—मध्यमपुरुष)—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम् , त्वा	युवाम् , वाम्	युष्मान् , वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम् , ते	युवाभ्याम् , वाम्	युष्मभ्यम् , वः
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव , ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम् , वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

तीनों लिङ्गो के रूप एक प्रकार के हैं।

अस्मद् शब्द (मैं, हम-उत्तम पुरुष)-पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम् , मा	आवाम् , नौ	अस्मान् , नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम् , मे	आवाभ्याम् , नौ	अस्मभ्यम् , नः
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम् , नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

तीनों लिंगों के रूप एक प्रकार के हैं।

कोई पद पूर्व में रहने से, युष्मद् और अस्मद् शब्द निष्पन्न त्वाम्, तुभ्यम् तथा तव, युवाम् तथा युवाभ्याम्, युष्मभ्यम् तथा युष्माकम् एवम् माम्, मह्यम् तथा मम, आवाम् तथा आवाभ्याम्, अस्यभ्यम् तथा अस्माकम् के स्थान में त्वा, ते, वाम्, वः तथा मा, मे, नौ, नः ये पद विकल्प से व्यवहृत होते हैं। यथा—(ईश्वर तेरी रक्षा करे) ईश्वरः त्वा अथवा त्वां पातु; (राजा तुझे अर्थ देगा) भूपः ते अथवा तुभ्यम् अर्थं दास्यति; (हमारे मनोरथ पूर्ण हुए) पूर्णाः नः मनोरथाः (वह हम दोनों को उपहार देगा) सः नौ अथवा आवाभ्याम् उपहारं दास्यति; (परमेश्वर हमारी रक्षा करेगा) परमेश्वरः नः अथवा अस्मान् रक्षिष्यति।

च, वा, ह, अह, एव—इन अव्यय शब्दों के योग से त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, वः, नः—इन पदों का व्यवहार नहीं होता। यथा—सः त्वां मां च उपदिशति, मित्रः तव मम च वचनं शृणोति, इह युवयोरावयोश्च गतिर्नास्ति, तेन युष्माकम् अस्माकम् च का हानिः ऐसे प्रयोग होंगे। त्वा, मा, च आदि नहीं होगा।

वाक्य के या श्लोक के चरण के आरम्भ में भी इन पदों का प्रयोग नहीं होता। जैसे—मम पुस्तकं देहि, युष्माकं प्रीतिर्वर्धते, अस्माकं सकाशमागच्छति—ऐसे प्रयोग होंगे। मे पुस्तकं देहि ऐसा प्रयोग नहीं होगा।

श्लोक के चरण के आरम्भ में—

त्वां स रक्षति यत्नेन, मां स द्वेष्टि निरन्तरम्।
तवैव दोषो नैवात्र मम दोषोऽस्ति कश्चन॥

—ऐसा प्रयोग होता है।

प्रति, धिक्, यावत्, अनु, अन्तरेण, अन्तरा और निकषा शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—दरिद्रं प्रति सदयो भव, यो हि दरिद्रं प्रति सदयो न भवति धिक् अस्तु तं निष्ठुरम्; प्राणात्ययं यावत् आचार्याधीनो भव, शिक्षकम् अनुयाहि, श्रमम् अन्तरेण विद्यालाभो न भवति, आचारम् अन्तरेण धर्मो न भवति, त्वां मां च अन्तरा स उपविशतु, शिवं निकषा अन्नपूर्णा।

पश्चिम शब्द कभी सर्वनाम नहीं होता। यह पुंल्लिङ्ग में नर शब्द, स्त्रीलिंग में लता शब्द और क्लीबलिंग में फल शब्द के समान है। यथा—पश्चिमे देशे, पश्चिमायां दिशि इत्यादि।

अनुवाद

अन्य स्त्रियाँ—अन्याः स्त्रियः। उन दोनों लड़कियों को—अमू बालिके। सब दिशाओं से—सर्वस्याः दिशः। उन सब गायों का—तासां धेनूनाम्। उत्तर दिशा में—उत्तरस्यां दिशि। इस लता के द्वारा—अनया लतया। तुम्हारी माता को—तव मातरम्। आप विद्वान् हैं—यूयम् विद्वांसः। इस स्त्री के द्वारा—अनया नार्या। सारे काम—सर्वाणि कर्माणि। आपके, तुम्हारे या तेरे पिता कौन हैं—कस्ते पिता ?

इयं गेहे लक्ष्मीः—यह स्त्री घर की लक्ष्मी है। त्वं कौमुदी नयनयोः—तुम मेरे नेत्रों की चन्द्रिका हो। शिवास्ते सन्तु पन्थानः—तुम्हारे मार्ग मंगलमय हों। रमणीयमेतत् सरः—यह तालाब रमणीय है। सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्—जिसके मन में संतोष है उसके लिए सभी सम्पत्ति है। पूर्वस्यां दिशि उदेति रविः—सूर्य पूर्व दिशा में उगता है। स तस्य स्वो भावः—वह उसका स्वभाव है। त्वमतिथिः मम—तुम मेरे अतिथि हो। अहं पुस्तकं पठामि—मैं पुस्तक पढ़ता (पढ़ती) हूँ। वयं वनं गच्छामः—हम लोग जंगल जा रहे हैं। येषु गृहेषु यूयं पठथ—जिन घरों में तुम लोग पढ़ते हो।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—उत्तरस्यां दिशि गच्छति भृत्यः। अस्मिन् वने मृगाः चरन्ति। कौ वनं गच्छतः ? तस्यां शाखायां पत्राणि सन्ति। वयं सर्वे तव सेवां करिष्यामः। भगवान् सर्वेषां नियन्ता। अन्यत् जन्म। सुखिनः वयम्। सुशीलाम् इमां योषितम्। कस्मिन् ग्रामे तव निवासः। एतस्या देवतायाः पूजायाम्। सा मे प्रियसखी। अनित्योऽयं संसारः। एष भगवान् हरिः। विफलं मे जीवनम्। शरीरं सर्वस्य प्रियम्। सुशीलोऽयं बालकः। स मे प्रियः सुहृत्।

महाजनो येन गतः सः पन्थाः। सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्। परिश्रमः सर्वस्य सुखस्य प्रसूतिः। येनास्य पलितं शिरः। कोऽयं पदे पदे महाननध्यवसायः। एषः धर्मः सनातनः। मिष्टान्नमितरे जनाः। का तव कान्ता। कस्ते पुत्रः। विचित्रोऽयं संसारः। तद् अस्माकम् मित्रम्। ममैते पुत्राः मूर्खाः। आवयोः सिद्धिर्ध्रुवा। अस्य व्रतस्य अयं प्रभावः।

संस्कृत में अनुवाद करो—तुम्हारा नाम क्या है ? उसके भाई का साला, मेरी बहिन का पुत्र। दोनों कुत्ते उनके हैं। यह मेरे भाई का मकान है। किस गाँव में रहते हो ? बालक दूसरा फल अपनी बहन को देता है। मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। हम दोनों भाई अपनी बहन के मकान में जाते हैं। कृपा करके तुम अपनी पुस्तक मुझे दो। मैंने इस बिल्ली की जान बचाई है। हम लोग ठण्डा जल पियेंगे। सुस्त लड़के सो रहे हैं।

शुद्ध करो—असौ बालिके। एषः जन्मः। ते पितुः सखा। अन्यतरे जन्मनि। सर्वेभ्यः विपदेभ्यः। कस्ते नाम। पश्चिमस्यां दिशि अस्तं याति रविः। मे वचने सो न विश्वसिति। कश्चित् दूतं प्रेरय।

रूप बताओ—अदस् द्वितीया, इदं पञ्चमी, किम् तृतीया, युष्मत् षष्ठी, अस्मद् सप्तमी, पूर्व तृतीया, सर्व पञ्चमी, यद् षष्ठी, तद् तृतीया, एतद् सप्तमी।

जहाँ तीनों लिङ्गों की योग्यता है वहाँ तीनों लिङ्गों के रूप बताने होंगे।

संख्यावाचक शब्द

एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पञ्चन्, षष्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, चतुर्दशन्, पञ्चदशन्, षोडशन्, सप्तदशन्, अष्टादशन्, ऊनविंशति[1], विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य, परार्द्ध[2] ये संख्यावाचक शब्द हैं[3]।

---

१. अथवा—एकोनविंशति, एकाद्नविंशति, एकान्नविंशति।

२. विंशति और त्रिंशत् शब्द परे रहने से—द्विशब्द के स्थान में 'द्वा' 'त्रि' शब्द के स्थान में 'त्रयः' और 'अष्टन्' शब्द के स्थान में 'अष्टा' होता है। यथा—द्वाविंशति, त्रयोविंशति, अष्टाविंशति, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत्, अष्टात्रिंशत्।

चत्वारिंशत् पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति और नवति शब्द परे रहने से विकल्प से होता है। यथा—द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत्, त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत्, अष्टचत्वारिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत्।

अशीति शब्द परे रहने से नहीं होता; यथा—द्व्यशीति, त्र्यशीति, अष्टाशीति। ९९ = नवनवति अथवा एकोनशतम्।

समाससूत्रानुसार 'षष्' शब्द के स्थान में 'षट्' आदेश, और पञ्चन्, सप्तन् प्रभृति नकारान्त शब्दों के नकार का लोप होता है। यथा—षड्विंशति, पञ्चविंशति इत्यादि।

१०१, १०२, १०३, १०४, १०५, इत्यादि = एकोत्तरशत अथवा एकाधिकशत, द्व्युत्तरशत अथवा द्व्यधिकशत, त्र्युत्तरशत वा त्र्यधिकशत, चतुरुत्तरशत वा चतुरधिकशत, पञ्चोत्तरशत वा पञ्चाधिक शत इत्यादि।

३. एकं दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरर्बुदमेव च॥
वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खपद्मौ च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्ध्या यथोत्तरम्॥

एकशब्द

'एक' शब्द तीनों लिङ्गों में ही सर्व शब्द के तुल्य है। 'अनेक' शब्द सर्वनाम है। अतः इसके रूप भी सर्व शब्द के समान हैं। ये शब्द प्रायः एकवचन तथा बहुवचन में व्यवहृत होते हैं।

द्विशब्द-द्विवचनान्त

पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी
द्वौ	द्वौ	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

स्त्रीलिङ्ग और क्लीबलिङ्ग

द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रिशब्द—बहुवचनान्त

पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	द्वितोया	तृतोया	चतुर्थी	पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमो
त्रयः	त्रीन्	त्रिभिः	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	त्रयाणाम्	त्रिषु

स्त्रीलिङ्ग

तिस्रः	तिस्रः	तिसृभिः	तिसृभ्यः	तिसृभ्यः	तिसृणाम्	तिसृषु

चतुर् (चार)—बहुवचनान्त

पुंल्लिग

चत्वारः	चतुरः	चतुर्भिः	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतुर्णाम्	चतुर्षु

स्त्रोलिग

चतस्रः	चतस्रः	चतसृभिः	चतसृभ्यः	चतसृभ्यः	चतसृणाम्	चतसृषु

क्लोबलिंग

चत्वारि	चत्वारि	चतुर्भिः	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतुर्णाम्	चतुर्षु

षष् (छ) शब्द—बहुवचनान्त

षट् षट् षड्भिः षड्भ्यः षड्भ्यः षण्णाम् षट्सु
तीनों लिङ्गों में एक ही रूप हैं।

अष्टन् (आठ) शब्द—बहुवचनान्त

प्रथमा—अष्टौ, अष्ट। द्वितीया—अष्टौ, अष्ट। तृतीया—अष्टाभिः, अष्टभिः। चतुर्थी—अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः। पञ्चमी—अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः। षष्ठी—अष्टानाम्, सप्तमी—अष्टासु, अष्टसु।

तीनों लिङ्गों में एक ही रूप हैं।

पञ्चन् (पाँच) शब्द—बहुवचनान्त

पञ्च पञ्च पञ्चभिः पञ्चभ्यः पञ्चभ्यः पञ्चानाम् पञ्चसु।

सप्तन्, नवन्, दशन्, एकादशन्, आदि सभी नकारान्त संख्यावाचक शब्दों में रूप पञ्चन् शब्द के तुल्य है।

इसके सिवाय संख्या-वाचक शब्दों के रूप अन्तिम वर्ण तथा लिङ्ग के अनुसार साधारण शब्दों की तरह होते हैं। यथा—विंशति, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति आदि शब्द स्त्रीलिंग तथा ह्रस्व इकारान्त हैं, इनके रूप मति शब्द के तुल्य हैं। त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत् शब्द तकारान्त और स्त्रीलिङ्ग हैं, इनके रूप भूभृत् शब्द के तुल्य हैं। शत, सहस्र आदि शब्द अकारान्त और क्लीबलिङ्ग हैं। इनके रूप फल शब्द की तरह हैं।

विंशति से संख्या-वाचक शब्द एकवचनान्त हैं। बहुवचनान्त पद के विशेषण होने पर भी एकवचनान्त प्रयोग करना होता है, यथा—विंशतिः पुरुषाः, त्रिंशत् स्त्रियः, चत्वारिंशत् वृक्षाः, पञ्चाशत् सैनिकाः, षष्टिर्नद्यः, सप्ततिस्तरवः, अशीतिः सरांसि, नवतिः पुस्तकानि, शतं लताः, सहस्रं फलानि।

संख्यावाचक शब्द

१ एक
२ द्वि
३ त्रि
४ चतुर्
५ पञ्चन्
६ षष्
७ सप्तन्
८ अष्टन्
९ नवन्
१० दशन्
११ एकादशन्
१२ द्वादशन्
१३ त्रयोदशन्
१४ चतुर्दशन्
१५ पञ्चदशन्
१६ षोडशन्
१७ सप्तदशन्
१८ अष्टादशन्
१९ नवदशन् एकोनविंशति
२० विंशति
२१ एकविंशति
२२ द्वाविंशति
२३ त्रयोविंशति
२४ चतुर्विंशति
२५ पञ्चविंशति
२६ षड्विंशति
२७ सप्तविंशति
२८ अष्टाविंशति
२९ ऊनत्रिंशत्, एकोनत्रिंशत्
३० त्रिंशत्
३१ एकत्रिंशत्
३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्
३८ अष्टात्रिंशत्
३९ नवत्रिंशत्, एकोनचत्वारिंशत्
४० चत्वारिंशत्
४१ एकचत्वारिंशत्
४२ द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत्
४३ त्रिचत्वारिंशत्, त्रयश्चत्वारिंशत्
४४ चतुश्चत्वारिंशत्
४५ पञ्चचत्वारिंशत्
४६ षट्चत्वारिंशत्
४७ सप्तचत्वारिंशत्
४८ अष्टचत्वारिंशत्,अष्टाचत्वारिंशत्
४९ नवचत्वारिंशत्, एकोनपञ्चाशत्
५० पञ्चाशत्
५१ एकपञ्चाशत्
५२ द्वि (द्वा) पञ्चाशत्

५३ त्रि (त्रयः) पञ्चाशत्
५४ चतुःपञ्चाशत्
५५ पञ्चपञ्चाशत्
५६ षट्पञ्चाशत्
५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ अष्ट (अष्टा) पञ्चाशत्
५९ नवपञ्चाशत्, एकोनषष्टि
६० षष्टि
६१ एकषष्टि
६२ द्वि (द्वा) षष्टि
६३ त्रि (त्रयः) षष्टि
६४ चतुःषष्टि
६५ पञ्चषष्टि
६६ षट्षष्टि
६७ सप्तषष्टि
६८ अष्ट (अष्टा) षष्टि
६९ नवषष्टि, एकोनसप्तति
७० सप्तति
७१ एकसप्तति
७२ द्वि (द्वा) सप्तति
७३ त्रि (त्रयः) सप्तति
७४ चतुःसप्तति
७५ पञ्चसप्तति
७६ षट्सप्तति
७७ सप्तसप्तति
७८ अष्ट (अष्टा) सप्तति
७९ नवसप्तति, एकोनाशीति
८० अशीति
८१ एकाशीति
८२ द्व्यशीति
८३ त्र्यशीति
८४ चतुरशीति
८५ पञ्चाशीति
८६ षडशीति
८७ सप्ताशीति
८८ अष्टाशीति
८९ नवाशीति, एकोननवति
९० नवति
९१ एकनवति
९२ द्वि (द्वा) नवति
९३ त्रिनवति
९४ चतुर्णवति
९५ पञ्चनवति
९६ षण्णवति
९७ सप्तनवति
९८ अष्ट (अष्टा) नवति
९९ नवनवति, एकोनशतम्
१०० शतम्
१०० एक शतम्
३०० द्वे शते, द्विशती
३०० त्रीणि शतानि, त्रिशती
४०० चत्वारि शतानि, चतुःशती
५०० पञ्चशतानि, पञ्चशती
६०० षट्शतानि, षट्शती
७०० सप्तशतानि, सप्तशती
८०० अष्टशतानि, अष्टशती

९००	नव शतानि, नवशती
१०००	दश शतानि
१०००	सहस्रम्
२०००	द्वे सहस्रे
३०००	त्रीणि सहस्राणि
४०००	चत्वारि सहस्राणि
५०००	पञ्च सहस्राणि
६०००	षट् सहस्राणि
७०००	सप्त सहस्राणि
८०००	अष्ट सहस्राणि
९०००	नव सहस्राणि
१००००	दश सहस्राणि
१०००००	अयुतम्
१०००००	लक्षम्
१००००००००	कोटिः
१०१	एकाधिकं शतम्
१०२	द्व्यधिकं शतम्
१०३	त्र्यधिकं शतम्
१०४	चतुरधिकं शतम्
१०५	पञ्चाधिकं शतम्
१०६	षडधिकं शतम्
१२७	सप्ताधिकं शतम्
१०८	अष्टाधिकं शतम्
१०९	नवाधिकं शतम्
११०	दशाधिकं शतम्
१११	एकादशाधिकं शतम्
११२	द्वादशाधिकं शतम्
१२०	विंशत्यधिकं शतम्
१२९	ऊनत्रिंशदधिकं शतम्
१३०	त्रिंशदधिकं शतम्
१४०	चत्वारिंशदधिकं शतम्
१५०	पञ्चाशदधिकं शतम्
१६०	षष्ट्यधिकं शतम्
१७०	सप्तत्यधिकं शतम्
१८०	अशीत्यधिकं शतम्
१९०	नवत्यधिकं शतम्
१९९	नवनवत्यधिकं शतम्
१००१	एकाधिकं सहस्रम्
१००२	द्व्यधिकं सहस्रम्
१००३	त्र्यधिकं सहस्रम्

पूरणवाचक शब्द

संख्या	पूरण	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	क्लीबलिंग
एक	प्रथम	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
द्वि	द्वितीय	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
त्रि	तृतीय	तृतीयः	तृतीया	तृतीयम्
चतुर्	चतुर्थ	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
पञ्चन्	पञ्चम	पञ्चमः	पञ्चमी	पञ्चमम्

संख्या	पूरण	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग	क्लीबलिंग
षष्	षष्ठ	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
सप्तन्	सप्तम	सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
अष्टन्	अष्टम	अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्
नवन्	नवम	नवमः	नवमी	नवमम्
दशन्	दशम	दशमः	दशमी	दशमम्
एकादशन्	एकादश	एकादशः	एकादशी	एकादशम्
विंशति	विंश	विंशः	विंशी	विंशम्
विंशति	विंशतितम	विंशतितमः	विंशतितमी	विंशतितमम्
त्रिंशत्	त्रिंश	त्रिंशः	त्रिंशी	त्रिंशम्
त्रिंशत्	त्रिंशत्तम	त्रिंशत्तमः	त्रिंशत्तमी	त्रिंशत्तमम्
षष्टि	षष्टितम	षष्टितमः	षष्टितमी	षष्टितमम्

विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि आदि शब्द विशेषण और विशेष्य उभय भाव से ही व्यवहृत होते हैं। विशेषण रूप से व्यवहृत होने पर (विशेष्य या संज्ञा किसी भी लिंग में क्यों न हो) वे सदा अपने ही लिंग के एकवचनान्त रहते हैं। यथा—विंशतिः बालकाः फलानि खादन्ति, त्रिंशत् नार्यः जलाशयं गच्छन्ति, षष्टिः छात्राः विद्यालयं प्रविशन्ति, शतं फलानि आनय, सहस्रं पुष्पाणि मे देहि, शतं बालकाः क्रीडन्ति।

विशेष्य के रूप से व्यवहृत होने पर विंशति आदि संख्या-वाचक शब्दों के आवश्यकतानुसार एकवचन, द्विवचन और बहुवचन होते हैं। यथा—छात्राणां तिस्रः विंशतयः शिक्षकं पृच्छन्ति, बालिकानां विंशतिं पश्य, पुष्पाणां शतानि मे देहि, फलानां द्वे सहस्रे आहर।

अनुवाद

द्वे लते (दो लतायें)। षट् फलानि (छः फल)। अस्माकं त्रिभिर्भृत्यैः (हमारे तीन नौकरों के द्वारा)। चत्वारिंशः बालकः (४० वाँ बालक)। नवतिः पुष्पाणि (नब्बे फूल)। शतमश्वाः (सौ घोड़े। द्वे शते

धेनूनाम् (दो सौ गायें) । सहस्रं मुद्राः (हजार रुपये) । त्रीणि सहस्राणि अश्वानाम् (३ हजार घोड़े) । द्वे सहस्रे फलानाम् (दो हजार फल) । शतं लताः (सौ लतायें) । पञ्च भ्रातरः (पाँच भाई) ।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—तिस्रः कन्यकाः । त्रीणि भुवनानि । चत्वारि युगानि । चतस्रः नार्यः । त्रिंशत् रमण्यः । एकं फलम् । द्वौ मासौ । पञ्च बाणाः । षट् ऋतवः । सप्त वाराः । अष्टौ दिक्पालाः । नव ग्रहाः । दश दिशः । एकादश रुद्राः । द्वादश राशयः । पञ्चदश तिथयः । विंशतिरुपसर्गाः । सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि । शतं विप्राः । एकस्मिन् मासे द्वौ पक्षौ । द्वादशभिर्मासैरेको वत्सरः । द्वादशेऽहनि । इयं मे द्वितीया मूर्तिः । विप्रस्य चत्वार आश्रमाः । सहस्रं लताः । त्रीणि सहस्राणि पुष्पाणाम् ।

संस्कृत में अनुवाद करो—राम के चार मकान । दो चिड़ियाँ वृक्ष की शाखा पर । शिव के तीन नेत्र । बीस पुष्प । अहीर की चालीस गायें । राजा के सत्तर घोड़े । दो पक्ष । छह ऋतुएँ । एक सौ सोने की मुद्रायें । हजारों व्यक्ति । दशवाँ बालक । दूसरी कन्या ।

नीचे लिखे शब्दों के संस्कृत शब्द बताओ—उन्तालीस, एक सौ पाँच, उन्तीस घोड़े, सत्तरवाँ बालक, चालीस व्यक्तियों के द्वारा ।

निम्नलिखित शब्दों के रूप लिखो—विंशति, त्रि, नियुत, अशीति, चतुर्दशन्, शत, कोटि, सागर, द्वादशन्, पञ्चन्, लक्ष ।

शुद्ध करो—अष्टानि फलानि अत्र सन्ति । एकानां बालकानाम् । द्वे चक्षुः अन्धे मम । शताः नार्यः सरं गच्छन्ति । महाराजस्य तदा तिस्रः पुत्राः आसन् । चतुर्दशानि लोकानि सन्ति ।

अव्यय

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

किसी लिङ्ग में, किसी विभक्ति में, अथवा किसी वचन में जिन शब्दों का रूपान्तर नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' कहते हैं। यथा—च, वा, तु, हि इत्यादि।

अव्यय शब्दों में कई विशेष्य और कई विशेषण हैं। स्वर्, अन्तर, प्रातर्, दिवा, सायम्, नक्तम्, अद्य, ह्यस्, श्वस्, यदा, यत्र, तदा, तत्र, इदानीम्, अधुना इत्यादि द्रव्यवाचक अव्यय शब्द विशेष्य हैं[1]। उच्चैस्, नीचैस्, शनैस्, मृषा, मिथ्या, वृथा, नाना इत्यादि गुणवाचक अव्यय शब्द विशेषण हैं। च, वा, तु हि प्रभृति कई अव्यय विशेष्य भी नहीं हैं, विशेषण भी नहीं हैं, केवल अव्यय के नाम से परिचित है।

अव्यय का व्यवहार

च (और)—रामो लक्ष्मणश्च[2], रामः सीता लक्ष्मणश्च, त्वम् अहञ्च, गच्छति गायति च।

हिन्दी में दो शब्दों के बीच में 'और' बैठता है परन्तु संस्कृत में 'च' अन्त में रहता है।

अपि (भी)—अहं यास्यामि सोऽपि यास्यति, धातुषु विद्वांसोऽपि भ्राम्यन्ति।

वा (अथवा)—अहं त्वं वा, अन्नं व्यञ्जनं वा, गच्छतु न वा गच्छतु।

तु (परन्तु)—स यातु अहन्तु न यास्यामि, "स सर्वेषां सुखानां प्रायः अन्तं ययौ एकन्तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे।" स तु भवति दरिद्रः।

---

१. 'प्रातर्'—से 'अधुना' पर्यन्त तेरह शब्द अधिकरण कारक में ही प्रयुक्त होते हैं।

२. प्रत्येक पद का प्राधान्य अथवा प्रत्येक क्रिया की समकालता समझाने के लिए प्रत्येक पद के पीछे 'च' बैठाया जा सकता है, यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च; पपात च ममार च।

हि (ही)—"सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु"। मूढो हि मदनेन आयास्यते।

एव (ही)—हंस एव जलाद् दुग्धम् उद्धरति, अहमेव गच्छामि।

न, नो, मा[1] (नहीं)—ईदृक् प्रयोगो न युज्यते, नो गमिष्यामि, मा कुरु (न करो)।

ये निषेधवाचक अव्यय प्रायः क्रिया पद के पूर्व में बैठते हैं।

प्रश्नार्थक 'या नहीं' और 'क्या'—इनका अनुवाद 'न वा' और 'किम्' 'अपि' द्वारा करना होता है; इनमें से 'अपि' का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में ही होता है; यथा—तव पुत्रोऽस्ति न वा ?, भवतः पिता जीवति किम् ?, अपि जीवति ते पिता ?, अपि कुशली भवान् ?, अपि कुशलं भवतः ?

इव (तुल्य)—उपमा द्योतक 'तुल्य', 'सदृश' और उत्प्रेक्षा-व्यञ्जक 'जैसा', 'सा', 'मानो'—इनका संस्कृत 'इव' शब्द द्वारा किया जाता है। यथा—स सिंह इव अवलोकयति, वज्रस्य निनादेन पृथिवी कम्पितेव बभूव।

अधुना, इदानीम्, एतर्हि, सम्प्रति, साम्प्रतम् (अब, इस समय, आज कल)—अधुना किं विधेयम् ?, साम्प्रतं ब्राह्मणा वेदं न अधीयते।

अधुनाऽपि, इदानीमपि (अब भी)—अधुनाऽपि तिष्ठति।

इदानीमेव, अधुनैव (अभी)—इदानीमेव (अधुनैव) गच्छ।

कदा, कर्हि (कब, किस समय)—कदा स आयातः ?।

कदाचित्, कर्हिचित्, कदाचन, जातु, कदाऽपि (कभी, किसी समय)—कदाचिदेष वृत्तान्तो व्यक्तो भविष्यति, न कदाऽपि अनृतं वक्तव्यम्, "न जातु कामः कामानानुपभोगेन शाम्यति।"

यदा, यर्हि (जब, जिस समय), तदा, तदानीम्, तर्हि (तब, उस समय)—यदा स पठति, तदा केनापि सार्द्धं न आलपति, स तदानीं ध्यानस्थ आसीत्।

यदैव (जब ही), तदैव (तब ही)—यदैव भवति, तदैव म्रियते।

---

१. मा—निवारणार्थक है, न—अस्वीकारार्थक है, नो—अभावार्थक है।

यावत् (जब तक), तावत् (तब तक)—यावत् स नायाति, तावत् पठ।

सद्यः, तत्क्षणात्, तत्क्षणम्, तत्कालम्, सपदि (उसी समय)—भक्त्या ऐकाग्र्येण च ईश्वरस्य स्मरणं मानवं सद्यः पुनाति।

अचिरात्, अचिराय, अचिरेण, अह्नाय, द्राक्, द्रुतम्, मङ्क्षु, झटिति, आशु, अञ्जसा (शीघ्र)—सः अचिरात् आगमिष्यति, क्रियतामेतत् चिकित्सितं द्राक्।

अकस्मात्, सहसा, एकपदे, अकाण्डे (अचानक), सहसा विदधीत न क्रियाम्, माम् एकपदे विहाय गच्छसि ?

सदा, सर्वदा, अभीक्ष्णम्, शश्वत्, अजस्रम्, अनिशम्, निरन्तरम् (हर समय)— शश्वत् पठति सच्छात्रः, सदा सत्यं ब्रूयात्।

एकदा (एक समय)—एकदा नारदः आत्मज्ञानाय सनत्कुमारम् उपससाद।

अन्यदा (अन्य समय)—अन्यदा गमिष्यामि।

युगपत्, एकदा, समम् (एक साथ)—युगपत् सर्वे हसन्ति।

प्रायशः, प्रायः, प्रायेण (बहुधा, अक्सर)—शुभे कर्मणि प्रायशः बहवः अन्तरायाः भवन्ति।

पुरा (प्राचीन समय में)—पुरा ऋषयः तपोवनेषु न्यवसन्।

अद्य (आज)—अद्य मे सफलं जीवितम्।

अद्यापि (आज भी)—नाद्यापि दग्धप्राणाः प्रयान्ति।

अद्यैव (आज ही)—अद्यैव स यास्यति।

ह्यः, पूर्वेद्युः (कल, पूर्व दिन)—ह्यः तस्य लिपिः प्राप्ता।

श्वः, परेद्युः, परेद्यवि (कल, आगामी, पर दिन)—श्वः अहं विद्यालयं न यास्यामि।

परश्वः वा परःश्वः (परसों)—परश्वः अस्माकं परीक्षा भविष्यति।

उभयेद्युः वा उभयद्युः (उभय दिन)—उभयेद्युः षष्ठी विद्यते।

ऐषमः (इस वर्ष में)—ऐषमः प्रभूतं शस्यम् उत्पन्नम्।

परुत् (गत वर्ष में)—परुत् स परीक्षोत्तीर्णः अभूत्।

परारि (गत वर्ष के पूर्व वर्ष में)—परारि दुर्भिक्षं सञ्जातम्।

दिवा (दिन में)—मा दिवा स्वाप्सीः।

प्रातः, प्रगे (प्रातःकाल में)—प्रातः स्नात्वा सन्ध्याम् उपास्स्व।

सायम् (सायाह्न में शाम को)—सायं भोजनं शयनम् अध्ययनञ्च न कर्त्तव्यम्।

दोषा, नक्तम् (रात्रि में)—नक्तं नाधिकं जागृयात्।

पूर्वं, प्राक् (पहले, पूर्व में) मासात् पूर्वं वृत्तम् इदं सङ्घटितम्। ज्ञानदातारं पूर्वम् अभिवादयेत्।

पश्चात्; परस्तात्, अनु (पीछे)—परस्तात् इदम् अवगतम्। अध्यापकम् अनु उपविविशुः सर्वे विद्यार्थिनः।

पश्चात्, पृष्ठतः, अन्वक्, अनुपदम् (पीछे, पश्चाद्भाग में)—तव पश्चात् पुस्तकं वर्तते। पितुः पश्चात् गच्छति बालकः।

पुरः, पुरतः, पुरस्तात्, अग्रतः (आगे सामने)—पुरतो भाति चन्द्रमाः।

अथ, अथो (अनन्तर)—अथ सोऽब्रवीत्।

अनतिपूर्वम्, किञ्चित् पूर्वम् (कुछ पहले)—अनतिपूर्वं वृष्टिरभवत्।

अतः परम् (इससे पीछे)—अतः परम् मम भाषणं निरर्थकम् (व्यर्थं वा)।

ततः परम्, तत्परम् (उससे पीछे)—ततः परं स प्रस्थितः।

यतः परम्, यत्परम् (जिससे पीछे)—शिक्षकस्तं छात्रम् अदण्डयत्, यतः परं स दुर्वृत्ततां परिहृतवान्।

चिरम्, चिरेण, चिराय, चिरात्, चिरस्य दीर्घकाल)—यः कर्त्तव्यं न पालयति, स चिरं दुःखं भजते। प्रीताऽस्मि ते तात! चिराय जीव।

कुत्र, कुतः, क्व (कहाँ)—कुत्र ते दया? ईदृग् विनोदः कुतः? क्व गम्यते?

कुतः (कहाँ से)—कस्य त्वं वा कुत आयातः।

कुत्रापि, कुत्रचित्, कुत्रचन, क्वचित्, क्वचन (कहीं)—एतादृक् पुस्तकं नान्यत्र कुत्रापि वर्तते।

यत्र (जहाँ, जिसमें); तत्र (वहाँ, उसमे)—यत्र विद्वान् नास्ति, तत्र न वसेत् ।

ततः (वहाँ से)—ततः प्रस्थितः सः बालकः ।

यत्र कुत्रचित् (जहाँ कहीं)—यत्र कुत्रचित् तिष्ठतु ।

अत्र, इह, इतः (यहाँ, इसमें)—अत्र दोषं न पश्यामि । इतो निषीद (यहाँ बैठो) ।

दक्षिणेन (द्वितीया और षष्ठी के साथ) (दक्षिण दिशा में)—गृहं दक्षिणेन पुष्पोद्यानं विद्यते । दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् आलाप इव श्रूयते । ग्रामस्य दक्षिणेन ।

उत्तरेण (द्वितीया और षष्ठी के साथ), (उत्तर दिशा में)—गृहम् उत्तरेण जलाशयः । निषधस्योत्तरेण ।

सर्वतः, समन्ततः, समन्तात्, परितः, अभितः, (सब दिशाओं में, चारों ओर)—सर्वतो वायुर्वहति । सूर्यम् अभितः कुत्रान्धकारः ?

उपरि, उपरिष्टात् (ऊपर)—इदानीं मस्तकस्योपरि भास्करो वर्तते । वृक्षस्योपरि कपोत आसीत् । "इदम् उपरिष्टात् व्याख्यातम्" ।

अधः, अधस्तात् (नीचे)—वटविटपिनः अधस्तात् श्रमं शमयति पान्थः ।

उच्चैः, उच्चकैः (ऊँचा, उन्नत)—आत्मन उच्चैः कुलं विचार्य नीचकर्मणि मा प्रवर्त्तस्व । स उच्चैर्विहस्य अवदत् ।

अत्यन्त अर्थ में भी उच्चैः शब्द प्रयुक्त होता है । यथा—"विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ताः" (वन प्रदेश दृश्यमान होकर अत्यन्त भय उत्पादन करते हैं) ।

नीचैः (नीचा, निम्न)—नीचैः शंस (धीरे बोलो) ।

अन्तः (भीतर), बहिः (बाहर)—अन्तर्वेश्मनि बहिरन्तश्च भूतानाम् । बहिर्गच्छ ।

अन्तरा (बीच में)—रामं श्यामञ्चान्तरा सोऽस्ति । एनम् अन्तरा मा प्रतिबध्नीत (इसे बीच में मत रोको) ।

समया, निकषा, आरात् (पास)—मां निकषा तिष्ठ (मेरे पास रहो)। कूपोऽयम् आरात् दृश्यते।

एकत्र (एक स्थान में) एकत्र ते तिष्ठन्ति।

साक्षात् (प्रत्यक्ष में)—साक्षात् वदिष्यामि। साक्षाद् यमः।

रहः, उपांशु, मिथः (छिपे छिपे, निर्जन में)—ते रह आनयन्ति। उपांशु वस (छिप कर रहो)। स तं मिथो वक्तुं प्राक्रमत (उसने उसे निर्जन में कहना आरम्भ किया)।

इतस्ततः, इतश्चेतश्च (इधर-उधर)—शाखामृगाः इतस्ततो धावन्ति। इतश्चेश्च धावतां धनलुब्धानां सुखं क्व ?

प्रति (द्वितीया के साथ) (ओर)—असौ शिशुः सुन्दरं पक्षिणं प्रति दृष्टिं निक्षिपति।

प्रेत्य, अमुत्र, परत्र (परलोक में)—यावज्जीवं च तत् कुर्याद् येनामुत्र सुखं वसेत्। सन्ततिः शुद्धवंश्या हि, परत्रेह च शर्मणे। शुद्ध वंश के पुत्र इस लोक और परलोक में सुख के लिए हैं।

कथम्, कथङ्कारम् (कैसा, किस प्रकार)—कथम् अहं त्वयि विश्वासं कुर्याम् ?

कथम्, किम्, कुतः (क्यों)—कथं हसानि। किं नोत्तरयसि ? कुतो न पठ्यते ?

यथा—(जैसा, जिस प्रकार), तथा (वैसा, उस प्रकार)—यथा वृक्षस्तथा फलम्। यथा बीजं तथाऽङ्कुरः।

इत्थम्, एवम् (ऐसा, इस प्रकार)—स इत्थम् वदति।

कथमपि, कथञ्चित्, कथञ्चन (किसी प्रकार से, कष्ट से)—दीनः कथमपि जीवनं यापयति।

यथा कथञ्चित्, यथा कथमपि, यथा तथा (जिस किसी प्रकार से)–यथा कथञ्चित् विद्याम् उपार्जयेत्।

सुष्ठु, सम्यक्, साधु (अच्छे प्रकार से, बहुत अच्छा)—स कृत्यमिदं सुष्ठु सम्पादितवान्। सोधु गीतम्। साधु साधु (वाह वाह ! शाबाश !)।

यथार्थतः, यथायथम्, यथातथम्, यथास्वम्, वस्तुतः, अद्धा, अञ्जसा (यथार्थ रूप से, ठीक, यथायोग्य)—यथातथं वक्ति सभासु विद्वान्। यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद।

सर्वथा (सब प्रकार से)—सर्वथा कालोचितमेव कर्त्तव्यम्।

अन्यथा (नहीं तो; अन्य प्रकार)—त्वं याहि अन्यथा स न यास्यति। स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्त्तुमन्यथा।

त्रिधा (तीन प्रकार)—त्रिधा गतिः। एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा।

चतुर्द्धा (चार प्रकार)—इमं चतुर्द्धा विभज्य स्थापय।

शनैः (धीरे)—शनैर्व्रज (धीरे चलो)।

शनैः शनैः (धीरे धीरे)—कूर्मः शनैः शनैरगच्छत्।

प्रसह्य (बलपूर्वक, जबरन)—रक्षा-पुरुषा मलिम्लुचं प्रसह्य धृत्वा अधिकरणम् प्रापयन्ति।

(पुलिस चोर को बलपूर्वक पकड़ कर अदालत ले जाती है)।

सकृत् (एक बार)—सकृत् अवलोकय।

द्विः (दो बार)—वाक्यमेतत् द्विः पठ।

त्रिः (तीन बार)—त्रिः आचाम।

चतुः (चार बार)—औषधमिदं चतुः पायय।

पुनः, भूयः (फिर)—एवं भूयो मा वोचः।

पुनः पुन, भूयोभूयः, असकृत्, अभीक्ष्णम्, मुहुः, मुहुर्मुहुः (बार बार)—अधीतविषयाणां मुहुरालोचनं विधेयम्।

दिष्ट्या[1] (भाग्यवशात्)—"दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्", "दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्द्धनः"।

अर्थे कृते, [षष्ठी के साथ अथवा समास में] (लिए)—आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्। कस्य कृते वित्तं सञ्चिनोषि।

इतः (इसलिए), यतः, यत्, हि (जिस कारण), ततः, तत् (उस कारण)—यतोऽहं केवलं तदेव चिन्तयामि, ततो दृष्टस्तथाविधः स्वप्नः।

---

१. 'दिष्ट्या' इति आनन्देऽव्ययम्।

नूनम्, अवश्यम्, ध्रुवम्, खलु, हि एव (निश्चित)—नूनम् अनेन परोक्षोत्तीर्णेन भाव्यम् ।

चेत्, यदि (यदि)—स चेत् आयाति ।

'चेत्' वाक्य के आरम्भ में नहीं बैठता, 'यदि' के पश्चात् 'तदा' 'तर्हि' और कहीं-कहीं 'ततः' 'तत्' अथवा 'अत्र' व्यवहृत होता है ।

आहो, आहोस्वित्, उत, उताहो, किमु, किमुत, नु (वितर्क, संशय)—देव आहो गन्धर्वः । रज्जुरियम्, उत सर्पः ? "किमु विषविसर्पः किमु मदः ?" "स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ?

किम्, किमु, कच्चित्, अपि, किंस्वित् (वितर्के) (क्या)—स किम् आगमिष्यति । "कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ।"

बाढम्, अथ किम्, ओम्, एवम्, परमम् (हाँ)—"चाणक्यः—चन्दनदास ! एष ते निश्चयः ? चन्दनः—बाढम्, "एष मे स्थिरो निश्चयः ।" "अपि वृषलम् अनुरक्ताः प्रकृतयः ?" "अथ किम् ?" (वृषलम्–चन्द्रगुप्तम्) । "सीता—अहो ! जाने, तस्मिन्नेव काले वर्ते । रामः—एवम् ।" (जाने—जानता हूँ), वर्त्ते (हूँ), "ततः परममित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनिमण्डलम्" (ओम् इत्युक्त्वा–अनुमत्य इत्यर्थः); उक्त्वा (कहकर), प्रतस्थे (प्रस्थान किया); परमम् (अच्छा) । ओं ज्ञातम् ।

अति, अतीव, अत्यन्तम्, नितराम्, सुतराम्, बलवत्, निकामम्, प्रकामम्, परम्, परमम् (अत्यन्त)—तस्य साधुतां वीक्ष्य नितरां प्रसीदति मे चेतः ।

किञ्चित्, किञ्चन, ईषत्, मनाक् (कुछ, थोड़ा)—सः सिंहः किञ्चित् विहस्यार्थपतिं बभाषे । रे पान्थ ! विह्वलमना न मनागपि स्याः ।

वरम् (कुछ अच्छा, किसी की अपेक्षा उत्कृष्ट)—गृहात् वनं वरम् ।

"वरं मौनं कार्यं, न च वचनमुक्तं यदनृतम्"

"वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्"

"वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः"

तूष्णीम् , जोषम् (चुप)—तूष्णीं भव—जोषम् आस्स्व यावत् अहम् आकर्णयामि, किं भवांस्तूष्णीम् आस्ते ?

अलम् (निष्प्रयोजन), (तृतीया अथवा 'क्त्वा' प्रत्ययान्त पद के साथ), कृतम् (तृतीया के साथ)—विवादेनालम्। अलम् अन्यथा गृहीत्वा। कृतं सन्देहेन।

अलम् (समर्थ, चतुर्थी अथवा तुमन्त पद के साथ) अलं स विचाराय।

आलप्यालमिदं, बभ्रोर्यत् स दारानपाहरत्।
कथाऽपि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः॥

लोकान् अलं दग्धुं हि तत्तपः।

वृथा, मुधा (निरर्थक)—वृथा अनेहसं मा क्षपय। "वृथा श्रमः"।

स्थाने, साम्प्रतम् (युक्त, उचित)—स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुः। सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने स्ववृत्तिं विदुः।

साचि, तिरः, तिर्यक् (टेढ़ा)—स मां साचि विलोकयति।

मिथ्या, मृषा (झूठ)—न कस्मिन्नपि मृषा दोषम् आरोपय। "यदुवाच न तन्मिथ्या"।

स्वयम् (आप, खुद)—स्वकीयं कर्म स्वयमेव सम्पाद्यम्।

प्रादुः, आविः (प्रकाश)—भू, कृ और अस् धातु के साथ व्यवहृत होते हैं, यथा—प्रादुर्भवति, आविर्भवति, आविरस्ति, (प्रकाशित होता है)। प्रादुष्करोति, आविष्करोति (प्रकाशित करता है), प्रादुरासीद् दिवाकरः।

अस्तम् (अदर्शन)—गम्, या, इ और आप् धातु के साथ व्यवहृत होता है। यथा—अस्तं गच्छति, अस्तं याति, अस्तमेति, अस्तं प्राप्नोति। रविः अस्तमेति।

अन्त, बत, अहह, अहो, अहोबत, हा, कष्टम् (हाय, खेद)—अहह अरुन्तुदं वचः श्रुतम्। हा धिक् कष्टम्।

आः (कोप, स्पर्द्धा, वेदना)—आः पापे, तिष्ठ तिष्ठ। आः शीतम्।

धिक् (छिः छिः तिरस्कार)—धिगिमां देहभृतामसारताम्।

विना, अन्तरेण, ऋते, अन्तरा (बिना, सिवा)

"यथा तानं विना रागो, यथा मानं विना नृपः।
यथा दानं विना हस्ती, तथा ज्ञानं विना यतिः॥"

"पङ्कैर्विना सरो भाति, सदः खलजनैर्विना ।
कटुवर्णैर्विना काव्यं, मानसं विषयैर्विना ॥"
"रत्नाकरात् ऋते कुतश्चन्द्रलेखायाः प्रसूतिः" ?
"नच प्रयोजनमन्तरा चाणक्यः स्वप्नेऽपि चेष्टते ॥"

साकम्; सार्द्धम्, समम्, सह (साथ)—तेन साकं व्रज ।

प्रभृति, आरभ्य पंचमी के साथ (से)—शैशवात् प्रभृति धार्मिको भव, ततः प्रभृति, तदा प्रभृति, अतः प्रभृति, अद्य प्रभृति ।

अङ्ग, अयि, अथ, हे, भोः (सम्बोधन)—अङ्ग ! कश्चित् कुशली तातः ? अयि भो महर्षिपुत्र ! कः कोऽत्र भोः ।

रे, अरे, अरेरे (नीच सम्बोधन)—रे नीचाशय ! गर्वं मा कुरु ।

मिथः (परस्पर)—ते मिथः सौहार्देन वसन्ति ।

नमः (नमस्कार)—नमो देवेभ्यः ।

स्वाहा, स्वधा, वषट् मन्त्रार्थ में—इन्द्राय स्वाहा, पितृभ्यः स्वधा, पूष्णे वषट् ।

स्वस्ति (मङ्गल)—स्वस्त्यस्तु सर्वजनेभ्यः ।

उपसर्ग

प्र, परा, अप, सम् आदि उपसर्ग प्रायः धातु के पहले प्रयुक्त होते हैं । उनका अपना कोई अर्थ नहीं है । परन्तु धातु के साथ लगने पर धातु का अर्थ ही बदल जाता है । यथा—हृ धातु (चुराना) से प्र-हृ (मारना), आ-हृ (खाना), सम्-हृ (हत्या करना), वि-हृ (विहार करना), परि-हृ (त्यागना) ।

प्र—प्रकरणम्, प्रकाशः, प्रकृतिः, प्रकोष्ठः, प्रक्रमः, प्रक्रिया, प्रणयः, प्रणामः, प्रदानम्, प्रभावः, प्रमादः, प्रयाणम्, प्रवर्तनम्, प्रवाहः, प्रसादः, प्रस्तावना, प्रस्थानम्, प्रस्रावः, प्रहारः ।

परा—पराकरणम्, पराक्रमः पराजयः पराभवः परामर्शः परावर्तः (पलायन) ।

अप—अपकर्षः, अपकारः, अपचयः (हानि), अपगमः (प्रस्थान), अपघातः (हत्या), अपनयनम्, अपमानः अपमृत्युः, अपयशः, अपराधः,

अपवादः (निन्दा), अपव्ययः, अपहरणम् (चोरी,) अपायः (नाश)।

सम्—संख्या, संगमः, संज्ञा, संयमः, संयोगः, संश्रयः (विश्राम-स्थान), संसर्गः, संसारः, संकल्पः, संकोचः, संघातः (समूह), सन्ततिः, सन्देशः, सन्देहः, सन्धिः, सन्निधिः, सम्पर्कः, सम्भवः, सम्भ्रमः (शीघ्रता, घबराहट), सम्मोहः।

नि—निकषः (कसौटी का पत्थर), निक्षेपः (संचित निधि, धरोहर), निगमः (वेद), निग्रहः, निचयः, निदानम् (मूल कारण), निदेशः (आज्ञा), निपातः (मृत्यु), निमन्त्रणम्, नियतिः, नियमः, निषेधः, निश्वासः, निसर्गः (प्रकृति)।

अव—अवकाशः, अवगाहनम् (स्नान), अवगुण्ठनम् (घूँघट), अवचयः (फूलों और फलों का संग्रह), अवच्छेदः (अङ्ग काटना, सीमा), अवतरणम् , अवतारः, अवधानम् (एकाग्रता), अवमानः, अवलेपः (घमण्ड, मलहम), अवलेहः (चाटने योग्य औषधि), अवसरः।

अनु—अनुकम्पा, अनुकरणम्, अनुगमः, अनुग्रहः, अनुचरः, अनुतापः, अनुधावनम् (पीछे दौड़ना), अनुमरणम् (किसी के बाद या साथ मरना), अनुमानम् , अनुयोगः (उलाहना, निन्दा), अनुरञ्जनम् (प्रसन्न करना), अनुरागः, अनुरोधः, अनुवादः।

अनुशयः (पश्चात्ताप), अनुष्ठानम् , अनुसंधानम् (खोज, जाँच), अनुसरणम्।

निर्—निःश्वासः, निःसंगः (बेहोश), निराकरणम् (खण्डन)। निर्गमः (पथ, नाली), निर्घण्टुः (सूची), निर्झरः (झरना), निर्णयः, निर्देशः, निर्दोषः, निर्धनः, निर्बन्धः (अनुरोध), निर्यासः, निष्कृतिः (रिहाई, मुक्ति)।

दुस्, दुर्—दुःशीलः (दुराचरण), दुःसहः (असहनीय), दुराचारः, दुर्जनः, दुर्दशा, दुर्भिक्षम्, दुष्करः, दुष्कृतम् (पाप), दुष्कृतिः (पाप, कुकर्म)।

वि—विकर्षणम् (अलगाव), विकारः, विकृतिः, विक्रमः, विक्रयः, विग्रहः (युद्ध, शरीर), विघ्नः, विजयः, विज्ञानम् , विदेशः, विपक्षः,

विपत्तिः, विप्लवः, विमार्गः (कुपथ), वियोगः, विवाहः, विवृतिः (व्याख्या), विवेकः, विशुद्धिः, विश्रामः, विषादः, विस्तारः, विस्मयः।

अधि—अधिकारः, अधिक्षेपः (निन्दा), अधिगमनः (प्राप्ति), अधिरोहणी (सीढ़ी), अधिवासः।

सु—सुकृतिः (अच्छा काम), सुकरः (सहज), सुगमः, सुचरितम् (अच्छा चरित्र), सुजनः, सुशासितः, सुषुप्तिः (गहरी नींद)।

उत्—उच्छ्वासः (निश्वास, उत्साह), उच्छेदः (नाश), उत्कण्ठा (उत्सुकता), उत्कर्षः, उत्तापः, उत्क्रमः (ऊपर या बाहर जाना), उत्थानम् (उठना), उत्पत्तिः, उत्पाटनम् (खींच कर निकालना), उत्पातः, उत्सङ्गः (गोदी), उत्सर्गः (त्याग), उत्सवः, उत्साहः, उदयः, उद्गमः (मूल, ऊपर जाना, प्रकट होना), उद्गारः (बमन), उद्वाहः (विवाह)।

परि—परिकरः (नौकर), परिक्रमः (भ्रमण), परिग्रहः (दान ग्रहण), परिचरः (नौकर), परिचयः, परिच्छदः (पोशाक), परिजनः (सम्बन्धी साथी, नौकर), परिणतिः (फल), परिणयः (विवाह), परिणामः, परितापः, परिवेदना (शोक), परिधि, (घेरा), परिभावः (पराजय, अवनति), परिमलः (सुगन्ध), परिवर्तनम्, परिवादः (निन्दा, गाली), परिवारः, परिवाहः (प्लावन, बाढ़), परिशिष्टम्, परीक्षा, पर्यटनम् (भ्रमण)।

प्रति—प्रतिकारः (बदला, उपाय), प्रतिकायः (चिह्न), प्रतिकूलः (विरुद्ध), प्रतिकृतिः (प्रतिमा, नकल), प्रतिक्रिया, प्रतिग्रहः (स्वीकार, ग्रहण, विवाह). प्रतिगमनम् (लौटना), प्रतिज्ञा, प्रतिध्वनिः (गूँज), प्रतिनिधिः, प्रतिपक्षः (शत्रु), प्रतिपत्तिः (प्रभाव, यश), प्रतिबन्धः (बाधा, रोक), प्रतिवादः (उत्तर, अस्वीकार), प्रतिबिम्बम् (परछाईं), प्रतिष्ठा, प्रतिरोधः (विरोध), प्रतिहिंसा (बदला), प्रत्ययः (ज्ञान, विश्वास)।

अभि—अभिगमः (सामने जाना), अभिजनः (वंश, जाति), अभिज्ञानम् (चिह्न), अभिनयः, अभिभवः (पराजय), अभिमानः (घमण्ड), अभिवादनम्, अभ्यासः, अभिषेकः।

अति—अतिक्रमः, अतिपातः (असम्मान), अतिसर्जनम् (उपहार), अतिसारः (दस्त की बीमारी), अतिपानम् (अधिकपान), अत्ययः (मृत्यु, विपत्ति, पाप)।

अपि--अपिगमः (सामने जाना), अपिधानम् (आच्छादन), अपिहितः (बन्द, मुँदा हुआ) अप्ययः (नाश) ।

उप--उपकरणम् (सामान); उपकारः, उपगमः (निकट जाना), उपचयः (अधिकता, संग्रह), उपचारः (सेवा), उपदेशः, उपनेत्रम् (चश्मा), उपभोगः, उपयमः (विवाह), उपवासः, उपवेषणम्, उपशमः, उपहारः।

आ--आकरः (खान), आकाङ्क्षा, आकारः, आक्रमः, आक्रोशः (क्रोध प्रकाश, गाली), आक्षेपः (फेंकना, निन्दा), आख्यानम् (कहानी), आगमः (पहुँच), आघातः, आचारः, आज्ञा, आतपः (धूप), आदानम् (ग्रहण), आदरः, आधारः, आनयनम् (लाना), आपद् (विपत्ति, दुर्भाग्य), आरामः (बगीचा), आकम्पः (थरथराहट), आसक्तिः, आसत्तिः (मिलन, संयोग) ।

अनुवाद

इह नाम सीता भविष्यति (सीता यहाँ होगी)। न मे मरणात् भयम् (मुझे मरने का भय नहीं है)। दन्ताश्च मे कोमलाः (मेरे दाँत कोमल हैं)। नीतिः तावदीदृश्येव (नीति इसी प्रकार है)। ननु अयमलंकारः क्षत्रियस्य (यह निश्चय ही क्षत्रियों का महत्त्व है)। बलीयान् खलु ते संतापः (तुम्हारा दुःख प्रबल है)। किमिव हि मधुराणाम् मण्डनं नाकृतीनाम् (सुन्दर पुरुषों का अलङ्कार क्या नहीं है)? ममापि ईदृशी आशङ्का हृदयस्य (मेरे भी हृदय को ऐसी आशंका है)। नीचैः वहन्ति नद्यः (नदियाँ नीचे की ओर बहती हैं)। कदाचित् मन्दिरम् अहम् अपश्यम् (किसी समय मैंने एक मन्दिर देखा)। क्वचित् स दृष्टः (वह कदाचित् दिखाई पड़ता है)। मनो मे सदा संशयं गाहते (मेरा मन हर समय संदिग्ध रहता है)। नूनं सत्यमेव वक्ष्यामि (मैं निश्चित सत्य कहूंगा)। अचिरादेव प्रत्यागमिष्यति बालकः (वह बालक शीघ्र ही लौट आयेगा)। ते चिरं जीवन्तु (वे चिरजीवी हों) यथैव वृक्षस्तथैव फलम् (जैसा वृक्ष वैसा फल) तब तक ठहरो। कल तुम यहाँ अवश्य आओगे। अप्रिय होने पर भी मेरा वाक्य सत्य है। मक्खी को भी दुःख न दो। क्या इससे

तुम संतुष्ट होगे ? आप के यहाँ आने का कोई कारण नहीं था। वह कल वहाँ अपने भाई के साथ गया था। विमान वायु-मार्ग से ही द्रुत जाता है। मैं वातानुकूलित प्रेक्षागृह में उपविष्ट हूँ। अमेरीका निवासी मंगल ग्रह में जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। रूसी राकेट चन्द्रलोक पहुँच गया है। हम हिमालय शिखर पर जाकर चीनी फौज का हमला रोकेंगे।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—कुत्र मे सखा ? स खलु महापुरुषः। रमणीय-मिदं प्रातः। न कश्चित् कस्यचिन्मित्रम्। प्रातर्भ्रमणं हितकरम्। अप्रियस्यापि पथ्यस्य परिणामः सुखावहः। चत्वारो वेदा एव हिन्दुधर्मस्य मूलम्। शीलं हि विदुषां धनम्। चञ्चलं हि नवं वयः। एक एवात्र उपायोऽस्ति। कुतो हि विना गुरोरुपदेशात् सिद्धिः। दिष्ट्या दानस्य प्रसङ्गोऽनया अङ्गीकृतः। नाहंकारात् परो रिपुः। एतेषां फलं किम्। राजा नाम साक्षात् विष्णोरवतारः। लक्ष्मीः स्थिरेति न मन्तव्या वारीव चञ्चला। अहो बत महत् पापम्। पूर्वमेव स आगतः। गुणा एव पूजास्थानम् गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। बुद्धिरेव परं मित्रम् न पुरुषकारः।

संस्कृत में अनुवाद करो—वे बलवान् भी नहीं दुर्बल भी नहीं। अब दिन है। सूर्य अस्त हो गया, हाय मेरा दुर्भाग्य। मेरा एक मात्र पुत्र हार गया। एक दिन प्रातः काल मैं एक लँगड़े आदमी से मिला था। राम शीघ्र आयेगा, आप कहाँ जा रहे हैं। दरवाजे पर कौन खड़ा है ? मुझे अकेला जाने दो। आज से तुम मेरे मित्र बने। केवल राम ही नहीं श्याम भी वहाँ गया था। इसके बाद वह सुखी होगा। यद्यपि वह गरीब है तथापि वह सज्जन है।

अव्यय किसे कहते हैं ? नीचे लिखे अव्ययों का प्रयोग दिखाओ।

पृथक्, मिथ्या, नमस्, उच्चैः, शनैः, स्वर् किम्, बहिस्, मृषा, धिक्, विना, अलम्।

उपसर्ग क्या है ? नीचे लिखे उपसर्गों का प्रयोग दिखाकर छोटे-छोटे वाक्य बनाओ :—

अव, अप, अनु, प्र, सम्, अधि, वि, अभि, अति, उप।

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

७२

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत

संस्कृत-
व्याकरण-कौमुदी

(द्वितीय भाग)

अनुवादकः—

पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २२१००१

आमुख

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत संस्कृत व्याकरण-कौमुदी के द्वितीय भाग का यह विशुद्ध हिन्दी रूपान्तर संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें तिङन्त-प्रकरण अर्थात् क्रियापदों और धातुरूपों का विस्तार से विवरण दिया गया है। संस्कृत व्याकरण में क्रिया ही प्रधान है। क्रियापद के बिना कोई वाक्य बन ही नहीं सकता। यहाँ तक कि केवल क्रियापद से भी वाक्य बन सकता है जैसे— आगच्छ, अपसर, गच्छामि आदि।

यह व्याकरण-कौमुदी इतनी सरल रीति से लिखी गयी है कि इससे अब तब लाखों छात्र संस्कृत भाषा सीखने में समर्थ हुए हैं।

इस नवीन संस्करण में प्रत्येक धातु का हिन्दी अर्थ, धातुरूप-गठन के नियम, उपसर्ग युक्त धातुओं के अर्थभेद के साथ-साथ साहित्य ग्रन्थों से अनेक प्रयोगों के उदाहरण, अभ्यास के लिए प्रत्येक गण के धातुरूप के अन्त में अनुवाद के उदाहरण और प्रश्न आदि अनेक नये विषय संयोजित कर दिये गये हैं। इससे क्रिया का प्रयोग तथा अनुवाद करने में विद्यार्थियों को बहुत ही सहायता मिलेगी।

अनेक शिक्षित व्यक्ति आजकल संस्कृत-भाषा सीखना चाहते हैं। यदि वे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विरचित हिन्दी रूपान्तर हमारी 'संस्कृत व्याकरण की उपक्रमणिका' पढ़ कर यह 'व्याकरण-कौमुदी' पढ़ेंगे तो सहज में संस्कृत भाषा उत्तम रूप से सीखने में समर्थ होंगे।

निवेदक—

गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

संस्कृत

व्याकरणकौमुदी

द्वितीय भाग

तिङन्त-प्रकरण

क्रियावाचक प्रकृति को 'धातु' कहते हैं। यथा—भू, स्था, गम्, दृश्, रुद्, हस् आदि[1]।

प्रयोगकाल में धातु के उत्तर तिङ्[2]-विभक्ति होती है 'तिङ्'-विभक्ति के योग से जो पद निष्पन्न होता है, उसको 'तिङन्त पद' कहते हैं।

'तिङ्-विभक्ति' दश प्रकार की होती है—लट् (वर्त्तमान), लोट् (अनुज्ञा), लङ् (सामान्यभूत), विधिलिङ् (विधि), लृट् (भविष्यत्), लिट् (पूर्णभूत), लुङ् (आसन्नभूत), लुट् (भविष्यत्), लृङ् (हेतुहेतुमद्भूत) और आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)। 'लट्'-प्रभृति को लकार कहते हैं[3]। प्रत्येक लकार दो पदों में विभक्त है—परस्मैपद और आत्मनेपद। प्रत्येक पद के तीन तीन पुरुष हैं—प्रथम पुरुष,

---

१. भूवादयो धातवः।

२. प्रथम विभक्ति 'तिप्'—का आद्य अक्षर 'ति' और अन्तिम विभक्ति 'महिङ्' का अन्त्य अक्षर 'ङ्' लेकर धातु-विभक्तियों का नाम 'तिङ्' रखा गया है।

३. 'दशलकार' कहने से लट्, लोट् प्रभृति दशों को ही समझना चाहिए; और 'चतुर्लकार' कहने से लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन प्रथम चार लकारों को समझना चाहिए।

मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष[१]। और प्रत्येक पुरुष के तीन-तीन वचन हैं[२] एकवचन, द्विवचन और बहुवचन[३]।

तिङ्-विभक्ति की आकृति

लट्—वर्त्तमान

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ति	तस्	अन्ति
मध्यम पुरुष	सि	थस्	थ
उत्तम पुरुष	मि	वस्	मस्

आत्मनेपद

प्र० पु०	ते	आते	अन्ते
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

लोट्—अनुज्ञा

परस्मैपद

प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु
म० पु०	हि	तम्	त
उ० पु०	आनि	आव	आम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ताम्	आताम्	अन्ताम्
म० पु०	स्व	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

---

१. 'तिङस्त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रथममध्यमोत्तमाः', 'अस्मद्युत्तमः' युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' 'शेषे प्रथमः'।

२. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः।

३. अतः 'तिङ्' विभक्ति की संख्या १८० है।

लङ्—सामान्यभूत और लुङ्—आसन्नभूत

परस्मैपद

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स्	तम्	त
उ० पु०	अम्	व	म

आत्मनेपद

प्र० पु०	त	आताम्	अन्त
म० पु०	थास्	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

विधिलिङ्—विधि

परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	याताम्	युस्
म० पु०	यास्	यातम्	यात
उ० पु०	याम्	याव	याम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट्—भविष्यत्

परस्मैपद

प्र० पु०	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति
म० पु०	स्यसि	स्यथस्	स्यथ
उ० पु०	स्यामि	स्यावस्	स्यामस्

आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लिट्—पूर्णभूत

परस्मैपद

प्र० पु०	अ	अतुस्	उस्
म० पु०	थ	अथुस्	अ
उ० पु०	अ	व	म

आत्मनेपद

प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

लुट्—भविष्यत्

परस्मैपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तारस्
म० पु०	तासि	तास्थस्	तास्थ
उ० पु०	तास्मि	तास्वस्	तास्मस्

आत्मनेपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तारस्
म० पु०	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० पु०	तासे	तास्वहे	तास्महे

लृङ्—हेतुहेतुमद्भूत

परस्मैपद

प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
म० पु०	स्यस्	स्यतम्	स्यत्
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यथास्	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ० पु०	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

आशीर्लिङ्—आशीर्वाद

परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यासुस्
म० पु०	यास्	यास्तम्	यास्त
उ० पु०	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
म० पु०	सीष्ठास्	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उ० पु०	सीय	सीवहि	सीमहि

धातु-विभाग

संस्कृत धातुएँ दश श्रेणियों में विभक्त हैं। प्रत्येक श्रेणी को गण कहते हैं। भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि, चुरादि—ये दश गण हैं[१]।

साधारण नियम

विभक्ति का अकार और एकार परे रहने से, पूर्ववर्ती अकार का लोप होता है[२]। यथा—भव + अन्ति = भवन्ति; सेव + ए = सेवे।

विभक्ति का 'म' और 'व' परे रहने से, पूर्ववर्ती अकार के स्थान में आकार होता है[३]। यथा—भव + वस् = भवावः, भव + मस् = भवामः।

अकार के परस्थित आते, आथे, आताम् आथाम्—इन विभक्तियों के आकार के स्थान में इकार होता है[४]। यथा—सेव + आते = सेवेते; सेव + आथे = सेवेथे; सेव + आताम् = सेवेताम्; सेव + आथाम् = सेवेथाम्।

---

१. भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिदिवादी स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादिचुरादयः।

२. अतो गुणे। ३. अतो दीर्घो यञि। ४. आतो ङितः।

अकार के परस्थित विधिलिङ् के युस् के स्थान में इयुस् और याम् के स्थान में इयम् होता है। तद्भिन्न सभी या-भाग के स्थानों में इ होता है[1]। यथा—भव + युस् = भवेयुः; भव + याम् = भवेयम्; भव + यात् = भवेत्; भव + याताम् = भवेताम्।

अकार के तथा उ, नु इन दो आगम के परस्थित हि विभक्ति का लोप होता है[2]। यथा—भव + हि = भव; कुरु; + हि = कुरु; शृणु + हि = शृणु। नु अन्य वर्ण के साथ युक्त रहने से हि विभक्ति का लोप नहीं होता। यथा—आप्नु + हि = आप्नुहि।

वर्ग का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण वा श्, ष्, स्, ह्,—इन वर्णों के परस्थित हि के स्थान में धि होता है।[3] यथा—वच् + हि = वग्धि, विद् + हि = विद्धि, वश् + हि = वड्ढि, शिष् + हि = शिण्ढि, चकास् + हि = चकाद्धि।

अकार भिन्न वर्ण के परस्थित अन्त, अन्ताम्, अन्ते—इन तीन विभक्तियों के नकार का लोप होता है[4]। यथा—आस + अन्त = आसत, आस + अन्ताम् = आसताम्; आस + अन्ते = आसते। धातु अभ्यस्त होने से अन्ति और अन्तु विभक्ति के भी नकार का लोप होता है। यथा—जुहु + अन्ति = जुह्वति; जुहु + अन्तु = जुह्वतु।

अभ्यस्त धातु के परस्थित लङ् के अन् के स्थान में उस् होता है[5]। उस् परे रहने से अन्त्य स्वर का गुण होता है। यथा—अजुहु + अन् = अजुहवुः।

लङ्, लुङ् लृङ् विभक्ति परे रहने से धातु के आदि में अकार होता है[6]। यथा—अभवत्, अभूत्, अभविष्यत्। मा तथा मास्म शब्द के योग में नहीं होता। यथा—मा भवत्; मास्म भूत्।

लङ्, लुङ् तथा लृङ् विभक्ति में धातु के आदिस्थित इ ई के

---

१. अतो येयः। २. अतो हेः। ३. हुझल्भ्यो हेर्धिः ४. आत्मनेपदेष्वनतः। ५. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च। ६. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः।

स्थान में ऐ, उ ऊ के स्थान में औ तथा ऋ के स्थान में आर् होता है[१]। यथा—इन्द्—ऐन्दीत्; ईह्—ऐहिष्ट; उख्—औखीत्; उह्—औहिष्ट; ऋच्छ्—आर्च्छत् । मा तथा मास्म शब्द के योग में नहीं होता[२]। यथा, मा ईहिष्ट; मास्म ऋच्छत् ।

व्यञ्जन् वर्ण के परे रहने से लङ् के द् तथा स् विभक्ति का लोप होता है[३]। यथा—अवेद्+त्=अवेत्, अहन्+त्=अहन्, अवेद्+स्=अवेत् ।

स्वरवर्ण परे रहने से, धातु के अन्तस्थित इ ई के स्थान में इय् तथा उ ऊ के स्थान में उव्[४] होता है[५]। यथा—अधि+इ+अते=अधीयते; स्तु+अन्ति=स्तुवन्ति; ब्रू+अन्ति=ब्रुवन्ति ।

यदि धातु एकाधिक स्वरविशिष्ट हो[६] तो इ, ई के स्थान में य्[७] होता है[८]। यथा—दीधी+ईत=दीध्यीत; निनी+इरे=निन्यिरे; चिकि+इरे=चिक्यिरे ।

असमान स्वर वर्ण परे रहने से अभ्यस्त धातु के पूर्वभागस्थित इ ई के स्थान में इय् तथा उ ऊ के स्थान में उव् होता है[९]। यथा—इ+आय्=इयाय; ऊ+ओष=उवोष ।

च्, छ्, ज्, श्, ष्, ह्, घ्—इनके परे दन्त्य स् रहने से दोनों

---

१. आडजादीनाम् । आटश्च ।

२. न माङ्योगे ।

३. संयोगान्तस्य लोपः।

४. गुण और वृद्धि की सम्भावना रहने से नहीं होता ।

५. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ।

६. अभ्यस्त करके एकाधिक स्वरविशिष्ट होने से भी होता है ।

७. इकार और ईकार संयुक्त वर्ण में मिलित होने से इय् होता है ।

८. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ।

९. अभ्यासस्यासवर्णे ।

मिलकर क्ष् होता है। यथा—वच् + स्यति = वक्ष्यति; प्रछ् + स्यति = प्रक्ष्यति; यज् + स्यति = यक्ष्यति; अश् + स्यते = अक्ष्यते; अकृष् + स्यत् = अकृक्ष्यत्; मोह् + स्यति = मोक्ष्यति; धघ् + स्यति = धक्ष्यति।

छ् वा स् के परे त् रहने से दोनों मिलकर ष्ट् होता है तथा थ् परे रहने से ष्ठ् होता है। यथा—प्रछ् + ता = प्रष्टा, द्रश् + ता = द्रष्टा।

छ्, श्, ष् इन तीनों के परे ध् रहने से छ्, श्, ष्, के स्थान में ड् होता है, ध् के स्थान में ढ् होता है[1]। यथा—आप्रछ् + ध्वम् = आप्रड्ढ्वम्; अवेश् + ध्वम् = अवेड्ढ्वम्; अवेष् + ध्वम् = अवेड्ढ्म्।

त् वा थ् परे रहने से च् और ज् के स्थान में क् होता है तथा ध् परे रहने से ग् होता है[2]। यथा-मोच् + ता=मोक्ता; योज् + ता=योक्ता; उवच् + थ = उवक्थ; वच् + धि = वग्धि।

मृज्, सृज्, यज्—इन तीन धातुओं के जकार के परे त् रहने से दोनों मिलकर ष्ट् तथा थ रहने से ष्ठ् होता है[3] और ध् रहने से, ज् के स्थान में ड् और ध् के स्थान में ढ् होता है। यथा यज् + ता = यष्टा; असृज् + था = असृष्ठाः, मृज् + तः = मृष्टः; मृज् + धि = मृड्ढि।

त्, थ्, ध् परे रहने से हकार का लोप होता है तथा त्, थ्, ध् के स्थान में ढ् होता है; लुप्त हकार के पूर्वस्थित ह्रस्व[4] स्वर दीर्घ[5] होता

---

१. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः।

२. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः। झलां जशोऽन्ते। ष्टुना ष्टुः। चोः कुः। षढोः कः सि।

३. ऋकार भिन्न। यथा—दृह् + तः = दृढः।

४. (सहिवहोरोदवर्णस्य) सह् और वह् धातु के लुप्त हकार के पूर्ववर्त्ती अकार के स्थान में ओकार होता है—यथा—सह् + ता = सोढा।

५. हो ढः; ढो ढे लोपः। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः।

है। यथा—गुह् + तः = गूढः, लिह् + तः = लीढः, अलिह् + ध्वम् = अलीढ्वम्।

दह्, दिह् दुह् आदि के हकार के परे त्, थ् या ध् रहने से दोनों मिलकर ग्ध् होता है[1]। यथा—दह् + तम्=दग्धम्; दिह् + तम् = दिग्धम्; दुह् + तम् = दुग्धम्; अदह् + थाः = अदग्धाः[2], दुह् + ध्वम्= दुग्ध्वम्।

मुँह् आदि के हकार के परे त्, थ् वा ध् रहने से दोनों मिलकर ग्ध होता है या हकार का लोप होता है तथा त्, थ्, ध् के स्थान में ढ् होता है और लुप्त हकार के पूर्वस्थित ह्रस्व स्वर दीर्घ[3] होता है। यथा—मुह् + तः = मुग्धः, मूढः; मुमोह् + थ = मुमोग्ध, मुमोढ।

विभक्ति का स् वा ध् परे रहने से, या विभक्ति का लोप होने से दह्, बुध् आदि धातुओं के आदिस्थित वर्ग के तृतीय वर्ण के स्थान में चतुर्थ वर्ण होता है[4]। यथा दह् + स्यति = धक्ष्यति, अबुध् + साताम्= अभुत्साताम्।

विभक्ति का ध् परे रहने से, स् के स्थान में द् होता है या सकार का लोप होता है।[5] यथा—असेविस् + ध्वम् = असेविद्ध्वम्, असेविध्वम्।

अ आ भिन्न स्वर के परवर्ती होने से लिट् लुङ्, आशीर्लिङ्—इन तीन विभक्तियों के ध् के स्थान में ढ् होता है।[6] लिट्—चकृ + ध्वे =

---

१. दादेर्धातोर्घः।

२. 'नहो धः' नह् धातु के हकार के परे त् थ् ध् रहने से दोनों मिलकर द्ध होता है। यथा—नह् + तम् = नद्धम्।

३. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्। हो ढः। ढो ढे लोपः। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः।

४. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः।

५. धि च।

६. इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात्।

चकृढ्वे, लुङ्—अकृस् + ध्वम्=अकृढ्वम्, आशीर्लिङ्—कृ + सीध्वम्= कृषीढ्वम् । य्, र्, ल्, व्, ह्, इन पाँच वर्णों में युक्त इट् के परवर्ती होने से विकल्प से होता है[1] । यथा–लिट्–शिशयि + ध्वे = शिशयिढ्वे, शिशयिध्वे; लुङ्—असयि + ध्वम् = अशयिढ्वम्; अशयिध्वम्, अशयिद्-ध्वम्, आशीर्लिङ्—शयि + सीध्वम् = शयिषीढ्वम्, शयिषीध्वम् ।

धकार के परे त्, थ् वा ध् रहने से दोनों मिलकर द्ध होता है। यथा—सिध् + तम् = सिद्धम्, विध् + तम् = विद्धम् ।

भकार के परे त्, थ् वा ध् रहने से, दोनों मिलकर ब्ध होता है[2] । यथा—आरभ् + तम् = आरब्धम्, लभ् + तम् = लब्धम् ।

त्, थ् वा दन्त्य स् परे रहने में द् के स्थान में त् होता है[3] । यथा–वेद् + ता = वेत्ता; विद् + थ = वित्थ; छेद् + स्यति = छेत्स्यति ।

स् परे रहने से ध् के स्थान में त् और भ् के स्थान में प् होता है[4] । यथा—सेध् + स्यति = सेत्स्यति; लभ् + स्यते = लप्स्यते ।

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् से भिन्न विभक्ति का स् परे रहने से धातु के अन्तस्थित स् के स्थान में त् होता है[5] । यथा—अवास् + सीत् = अवात्सीत; वस् + स्यति = वत्स्यति ।

पद के अन्तस्थित र् तथा स् के स्थान में विसर्ग होता है । यथा—भवतस्—भवतः, भवेयुस्—भवेयुः ।

पद के अन्तस्थित वर्ग के तृतीय और चतुर्थ वर्ण के स्थान में प्रथम वर्ण होता है[6] । यथा—अभूद्–अभूत्; अभवद्–अभवत् ।

पद के अन्तस्थित च् और ज् के स्थान में क् होता है[7] । यथा अवच् —अवक् ।

---

१. विभाषेटः । २. क्षषस्तथोर्धोऽधः । झलां जश् झशि । ३. खरि च । ४. सः स्यार्द्धधातुके । ५. ससजुषो रुः । खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ६. वाऽवसाने । ७. चोः कुः । पद के अन्तस्थित मृज् धातु के ज् के स्थान में ट् होता है ।

पद के अन्तस्थित छ्, श्, ष् और ह् के स्थान में ट् और ड् होता है। यथा—अद्वेष्-अद्वेट्, अद्वेड्; अलेह्-अलेट् अलेड्।

दकारादि धातु के पद के अन्तस्थित ह् के स्थान में क् होता है। यथा—अदोह्-अधोक्।

एकवर्गीय तीन वर्ण एकत्र होने से मध्यवर्ण का लोप होता है[1]। यथा—रुन्ध्+धि=रुन्धि।

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् भिन्न विभक्ति में एकारान्त, ऐकारान्त और ओकारान्त धातु आकारान्त होता है[2]। यथा—धे+स्यति=धास्यति।

पुरुष

पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष। 'युष्मद्' 'अस्मद्' भिन्न नाम (शब्द) मात्र को ही 'प्रथम पुरुष' कहते हैं। 'युष्मद्' शब्द को 'मध्यम पुरुष'[3] और 'अस्मद्'—शब्द को 'उत्तम पुरुष' कहते हैं।

तिङन्त क्रिया के तीन वाच्य हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। क्रियापद जिसको समझाता है उसे वाच्य कहते हैं। जो क्रिया कर्त्ता को समझाती है, उसे 'कर्तृवाच्य' कहते हैं और जो क्रिया कर्म को समझाती है उसे 'कर्मवाच्य' और जो क्रिया 'भाव'[4] अर्थात् धातु के अर्थ मात्र को समझाती है उसे भाववाच्य कहते हैं। यथा–सः पश्यति (वह देखता है) यहाँ 'देखता है' यह क्रिया जो देखता है उसको समझाती

---

१. झरो झरि सवर्णे।

२. आदेच उपदेशेऽशिति।

३. भवत् शब्द का अर्थ 'युष्मद्' होने पर भी, वह 'युष्मद्' शब्द से भिन्न है, इसलिए उसकी क्रिया में प्रथम पुरुष की विभक्ति होगी। यथा—भवान् गच्छति। किन्तु 'भवत्' शब्द का प्रयोग न करने से, 'युष्मद्' शब्द ही ऊह्य होता है, इसलिए मध्यम पुरुष ही होगा।

४. 'धात्वर्थः केवलः शुद्धो भाव इत्यभिधीयते'।

है, इसलिए यह कर्तृवाच्य है। तेन चन्द्रो दृश्यते (उससे चन्द्र देखा जाता है)—यहाँ 'देखा जाता है' यह क्रिया जो देखा जाता है उसको समझाती है, इसलिए यह कर्मवाच्य है। तेन दृश्यते (उसका देखना) —यहाँ 'देखना' यह क्रिया 'दृश'—धातु के अर्थ को ही समझाती है, इसलिए यह भाववाच्य है।

कर्तृवाच्य प्रयोग

कर्तृवाच्य में धातु तीन प्रकार के हैं—परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी। परस्मैपदी धातु के उत्तर परस्मैपद की विभक्ति, आत्मनेपदी धातु के उत्तर आत्मनेपद की विभक्ति और उभयपदी धातु के उत्तर उभयपद की विभक्ति होती है[1]।

कर्तृवाच्य में—कर्त्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है और क्रियापद के पुरुष और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं (अर्थात् नाम—'युष्मद्' 'अस्मद्' भिन्न-शब्द कर्त्ता होने से प्रथम पुरुष की विभक्ति होती है; 'युष्मद्' शब्द कर्त्ता होने से मध्यमपुरुष की विभक्ति होती है; और 'अस्मद्' शब्द कर्त्ता होने से उत्तमपुरुष की विभक्ति होती है; और कर्त्ता का जो वचन है, क्रिया का भी वही वचन होता है।) यथा– (बालक पुस्तक पढ़ता है) शिशुः पुस्तकं पठति; (दो बालक पुस्तक पढ़ते हैं) शिशू पुस्तकं पठतः; (अनेक बालक पुस्तक पढ़ते हैं) शिशवः पुस्तकं पठन्ति; (तू सत्य का पालन कर) त्वं सत्यं पालय, (तुम दोनों सत्य का पालन करो) यवां सत्यं पालयतम्, (तुम लोग सत्य

---

१. जहाँ फलाकांक्षा रहती है, वहाँ कर्त्ता स्वयं फलभोगी होने से, उभय-पदी धातु के उत्तर आत्मनेपद होता है और दूसरा कोई फलभागी होने से परस्मैपद होता है; यथा—(मैं दान करूँगा) अहं दान करिष्ये; (मैं पिता जी की स्वर्गकामना से दान करूँगा) अहं पितुः स्वर्गकामः दानं करिष्यामि। उपसर्गविशेष के योग से कोई कोई परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी और आत्मने-पदी धातु परस्मैपदी होता है।

का पालन करो) यूयं सत्यं पालयत; (मैं चन्द्र देखता हूँ) अहं चन्द्रं पश्यामि, (हम दोनों चन्द्र देखते हैं) आवां चन्द्रं पश्याव:; (हम लोग चन्द्र देखते हैं) वयं चन्द्रं पश्याम: ।

धातु के दो प्रकार हैं—अकर्मक और सकर्मक[1] । जिन धातुओं का कर्म नहीं रहता वे अकर्मक[2] जिनका कर्म रहता है, वे सकर्मक हैं ।

सकर्मक धातुओं के बीच में दुह्, याच् आदि कई धातुओं के कभी-कभी दो कर्म रहते हैं, तब उनको 'द्विकर्मक' कहते हैं[3] ।

सकर्मक धातु कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में, और अकर्मक धातु कर्तृवाच्य तथा भाववाच्य में प्रयुक्त होते हैं ।

---

१. सत्ता-लज्जा-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम् ।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्था धातव एते कर्मविहीना: ।।

कर्मकारक का उल्लेख न रहने से सकर्मक धातु अकर्मक होता है, यथा—स चन्द्रं पश्यति—यहाँ 'दृश्' धातु सकर्मक है; स पश्यति—यहाँ अकर्मक है । उपसर्ग के योग से अर्थान्तर होने पर अकर्मक धातु भी सकर्मक होता है; यथा—दु:खमनुभवति (दु:ख भोगता है) । अकर्मक धातु णिजन्त होने से सकर्मक होता है ।

२. दुहिर्याच्ञा-ब्रुवर्थौ च पचतिश्चि-जि-दण्डय: ।
रुधि: प्रच्छिर्मन्थतिश्च मुषि: शासिर्दुहादय: ।
न्यादय: नयति: प्रोक्ता: कर्षतिर्हरतिर्वहि: ।।

दुह्, याच् (याच्ञार्थ—अर्थ, नाथ्, भिक्ष् प्रभृति समस्त धातु), ब्रू (कथनार्थ—कथ्, वच्, वद्, भाष् प्रभृति समस्त धातु), पच्, चि, जि, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ् (प्रश्नार्थ समस्त धातु), मन्थ्, मुष्, शास्—ये दुहादि, और नी, कृष्, हृ, वह्—ये न्यादि हैं ।

३. जब एक ही कर्म रहता है, तब केवल सकर्मक होता है ।

संज्ञा

सगुण विभक्ति

'तिङ्' विभक्तियों में, लट्—ति, सि, मि; लोट्—तु, आनि, आव आम, ऐ, आवहै, आमहै; लङ्—द्, स्, अम्; लिट्—प्रथम और उत्तम पुरुष के 'अ' मध्यमपुरुष के एकवचन का 'थ'; लुङ्, लुट्, लृट् और लृङ् की समस्त विभक्तियाँ तथा आशीर्लिङ् आत्मनेपद की समस्त विभक्तियाँ होती हैं[१]।

अगुण विभक्ति

ति, सि, मि भिन्न समस्त लट्; तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै भिन्न समस्त लोट्; द्, स्, अम् भिन्न समस्त लङ्; प्रथम तथा उत्तम पुरुष के एकवचन के 'अ' और मध्यमपुरुष के एकवचन के 'थ' भिन्न समस्त लिट्; समस्त विधिलिङ्; और आशीर्लिङ् और समस्त परस्मैपद अगुण हैं।

गुण—इ, ई के स्थान में 'ए' उ, ऊ के स्थान में 'ओ' ऋ, ॠ के स्थान में 'अर्' और 'लृ' के स्थान में 'अल्' होने का नाम 'गुण' है।

वृद्धि—'अ' के स्थान में 'आ', इ, ई के स्थान में 'ऐ' उ, ऊ के स्थान में 'औ', ऋ, ॠ, के स्थान में 'आर्' और लृ के स्थान में 'आल्' होने का नाम 'वृद्धि' है।

उपधा—अन्त्य वर्ण के पूर्व वर्ण को 'उपधा' कहते हैं; यथा—र्+उ+च्=रुच्—यहाँ चकार से पूर्व वर्ण 'उकार' उपधा है।

---

१. कुछ वैयाकरण ति, सि, मि, तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै—इन विभक्तियों के अन्त में 'प्' युक्त करके पढ़ते हैं; यथा—तिप्, सिप् इत्यादि; और लङ् के द्, स्, अम् के स्थान में दिप्, सिप् अम्प्, तथा लिट् के परस्मैपद के एकवचन में णप्, थप्, पढ़ते हैं।

आगम—प्रकृति और प्रत्यय का अनिष्ट न करके जो होता है, उसे 'आगम' कहते हैं; यथा—भू + ति = भू + अ + ति—इस स्थल में मध्य स्थित 'अ' आगम है[1]।

आदेश—प्रकृति वा प्रत्यय के स्थान में जो होता है, उसका नाम आदेश है। यथा—स्था + ति = तिष्ठ + अ + ति = तिष्ठति—यहाँ 'स्था' के स्थान में 'तिष्ठ्' आदेश हुआ है[2]।

टि—प्रकृति का शेष स्वरवर्ण और तत्परस्थित व्यञ्जन वर्ण को 'टि' कहते हैं।

उपसर्ग

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस् निर्, दुस्, दुर्, अभि, वि, अधि, सु, उत्, अति, नि प्रति, परि, अपि, उप, आङ्—ये अव्यय धातु के पूर्व संयुक्त होने से उपसर्ग कहाते हैं[3]। यथा–प्र + हृ = प्रहारः; अनु + रुध् = अनुरोध; अति + पत् = अतिपातः; उप + हृ = उपहारः।

---

१. मित्रवदागमः। २. शत्रुवदादेशः।

३. प्र-पराप-समन्वव-निस्-निर्-दुस्-दुरभि-व्यधि-सूदति-नि-प्रति-पर्य्यपयः। उप आङिति विंशतिसंख्यमिमं कुरु कण्ठगतं ह्युपसर्गगणम्॥

प्रादि के अर्थ हैं—प्र = प्रकर्ष; परा = अपकर्ष, प्रत्यावृत्ति; अप–अपकर्ष; सम्–सम्यक्; अनु–पश्चात्, सादृश्य, वीप्सा; सामीप्य; अव = निश्चय, अपकर्ष, निस्, निर् = निश्चय, निषेध, बहिष्करण; दुस्, दुर् = कष्ट, निन्दा; अभि = समन्तात्, उभय, आभिमुख्य; वि = विशेष, वैपरीत्य; अधि = उपरि, सु = शोभन, प्रशंसा, आतिशय्य; उद्, उत् = ऊद्ध्र्व, उत्कर्ष; अति—आतिशय्य, अतिक्रम, प्रशंसा; नि = निश्चय, निषेध; प्रति = प्रत्यर्पण, सादृश्य, वीप्सा; परि = सर्वतोभाव, वीप्सा; अपि = सम्भावना, समुच्चय; उप = सामीप्य, पश्चात्, आधिक्य; आङ् = समन्तात्, ईषत्, सीमा, व्याप्ति।

उपसर्गों के योग से धातु के भिन्न-भिन्न अर्थ भी होते हैं[1]। यथा— हृधातु का अर्थ है—हरण, किन्तु प्र+हृ=प्रहार, आ+हृ=आहार, सम्+हृ=संहार, वि+हृ=विहार, परि+हृ=परिहार।

'धात्वर्थं बाधते कश्चित्'—कोई उपसर्ग धातु के अर्थ का निरास करता है; यथा—'आदत्ते'—यहाँ दानार्थक 'दा' धातु में–'आ' उपसर्ग युक्त होने से दान का निरास यानी ग्रहण का अर्थ हो गया।

'कश्चित् तमनुवर्तते'—कोई उपसर्ग धातु के अर्थ का अनुसरण करता है यथा—'प्रसूते'–तहाँ 'प्रसव—उत्पादन' 'सू'–धातु का अर्थ है, 'प्र'–उपसर्ग के योग से भी पूर्ववत् रहा।

'तमेव विशिनष्टयन्यः'—और कोई उपसर्ग धातु के अर्थ को बढ़ाता है; यथा–'सन्तुष्यति' 'सम्पश्यति'–यहाँ 'तुष्'–धातु का अर्थ 'तुष्ट होना' है और 'दृश्'–का अर्थ है देखना। 'सम्' उपसर्ग के योग से 'अत्यन्त तुष्ट होना' और 'अच्छे प्रकार से देखना' हुआ।

उपसर्गगतिस्त्रिधा'—इस रीति से उपसर्ग की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है।

'अव' और 'अपि' उपसर्ग के आदिस्थित अकार का विकल्प से लोप होता है; यथा—अवगाह-वगाह, अवगाहते–वगाहते; अवगाह्य-वगाह्य, अपिधानम्–पिधानम्; अपिहितम्–पिहितम्; अपिदधाति-पिदधाति; अवतंसः–वतंसः।

क्विप् घञ् प्रभृति प्रत्ययान्त शब्द परे रहने से, उपसर्ग का अन्त्य-स्वर कभी-कभी दीर्घ होता है; यथा—प्रावृट्, नीवृत्, उपानत्, प्रासादः (देव-भूभुजां गृहे), नीकाशः, अपामार्गः, नीहारः, नीशारः, नीवारः, प्राकारः (प्राचीरे); अतीसारः, प्रतीकारः (प्रतिकारः), प्रतीहारः (प्रतिहारः) परीहासः (परिहासः), परीवादः (परिवादः), प्रतीकाशः, (प्रतिकाशः) इत्यादि।

---

१. उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहार–विहार–परिहारवत्॥

अय् धातु परे रहने से, उपसर्ग के 'र' के स्थान में 'ल' होता है यथा—प्र + अयते = प्लायते; परा + अयनम् = पलायनम् ।

लकारार्थ-निर्णय

वर्तमान काल में लट्; अतीत काल में लङ्, लिट् और लुङ्, भविष्यत् काल में-लुट् और लृट्; अनुज्ञा में लोट्; विधि अर्थ में—विधिलिङ्, आशीर्वाद अर्थ में आशीर्लिङ्, और क्रियातिपत्ति अर्थात् क्रियाद्वय की अनिष्पत्ति अर्थ में लृङ् होता है ।

लट्—स गच्छति (वह जाता है) ।

वर्तमान काल सामीप्य में अर्थात् वर्त्तमान के समीपस्थ अतीत और भविष्यत् काल में भी 'लट्' होता है; यथा-एषोऽहमागच्छामि, अयमागच्छामि; अयमहमागच्छामि (मैं अभी आया हूँ) । इदानीमेव आगच्छामि (मैं अभी आता हूँ-आऊँगा); अयमहं गच्छामि; एष गच्छामि (मैं अभी जाऊँगा) ।

'स्म'–शब्द के योग से अतीत काल में 'लट्' होता है; यथा—स मद्गृहम् आगच्छति स्म; (वह मेरे घर आया था) स व्याकरणम् अधीते स्म (उसने व्याकरण पढ़ा) ।

'यावत्' और 'पुरा' शब्द के योग से भविष्यत् काल में 'लट्' लकार होता है; यथा—"यावत् अस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि, (भेजूँगा) "आलोके ते निपतति पुरा" (दृष्टि में पड़ेगी) "पुरा सप्त-द्वीपां जयति वसुधाम्" । (सप्तद्वीपसमन्विता वसुमती की जय करेगा); "(सा) व्रजति पुरा परासुतां त्वदर्थे" (वह तेरे लिए मरेगी); "प्रत्या-सीदति मुक्तिस्त्वां पुरा" (मुक्ति तेरे पास आयेगी); "पुरा दूषयति स्थलीम् (गन्धेनाशुचिना)" (दुर्गन्ध से आश्रमस्थान को दूषित करेगा) ।

'जब तक' इस अर्थ में भी 'यावत्'–शब्द के योग से 'लट्' होता है; यथा—स यावत् न आगच्छति तावत् पठिष्यामि; (वह जब तक

नहीं आएगा, तब तक पढ़ूँगा) "यावन्न परापतति तावत् अपसर्पत अनेन तरुगहनेन" (जब तक वह न लौटे, तब तक इस जंगल से चले जाओ)।

'कदा' और 'कर्हि' शब्द के योग से भविष्यत् काल में विकल्प से 'लट्' होता है; यथा—न जाने, कदा गच्छामि गमिष्यामि वा (न जाने, कब जाऊँगा)।

प्रश्नोत्तर-कथन में 'ननु'—शब्द के योग से अतीत काल में लट्' होता है; यथा—(प्रश्न) स किमागच्छत् ? (वह आया है क्या ?) (उत्तर) ननु आगच्छति (आया है)।

लोट्—वर्त्तमान काल में अनुज्ञा (अनुमति) अर्थ में 'लोट्' होता है; यथा—वत्स ! गृहं गच्छ। (बच्चा, घर जा) अत्र उपविश। सर्वे पठन्तु।

समर्थना अर्थात् अशक्य कर्म में उत्साह समझाने से 'लोट्' होता है; यथा—सिन्धुमपि शोषयाणि (समुद्र को भी शोषण कर सकता हूँ)।

आशीर्वाद अर्थ में भी 'लोट्' होता है, (तब 'तु' और 'हि' विभक्ति के स्थान में विकल्प से 'तात्' होता है; यथा—स चिरं जीवतु, जीवतात् वा; (वह दीर्घकाल जीता रहे) त्वं चिरं जीव, जीवतात् वा (तू दीर्घकाल जीता रह।)

अनेक क्रियाओं के प्रयोग से पौनःपुन्य वा आतिशय्य अर्थ में सब कालों, सब पुरुषों और सब वचनों में ही 'हि' 'त' 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं (परस्मैपदी धातु के उत्तर 'हि' तथा 'त' और आत्मनेपदी धातु के उत्तर 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं); यथा—"पुरीमवस्कन्द, लुनीहि नन्दनं, मुषाण रत्नानि, हरामराङ्गनाः" (रावण पुनः पुनः नगर पर आक्रमण करता, पुनः पुनः नन्दन कानन को छेदन करता, पुनः पुनः रत्नों को छीन लेता, पुनः पुनः देवपत्नियों को हरण करता)।

विधिलिङ्—वर्तमान-काल में 'विधि' अर्थ में "विधिलिङ्" होता है। विधि दो प्रकार की है—प्रवर्त्तना और निवर्त्तना। सत्कर्म में

प्रवर्त्तित करने का नाम 'प्रवर्त्तना' है; यथा—दीने दयां कुर्यात् (दीन में दया करना), क्षुधिताय अन्नं दद्यात् (क्षुधार्त्त को अन्न देना चाहिए), असत्कर्म से निवर्त्तित करने का नाम 'निवर्त्तना' है; यथा— गुरून् न निन्देत् (गुरुओं को निन्दा न करना), परस्वं नापरेत्; (परधन हरण नहीं करना), क्रोधं यत्नेन वर्जयेत्; (यत्नपूर्वक क्रोध त्यागना चाहिए), आलस्यं परिहरेत् (आलस्य छोड़ना चाहिए)।

सम्भावना और शक्ति अर्थ में 'विधिलिङ्' होता है; यथा–सम्भावना–पठिष्यामि, यदि स पाठयेत् (पढ़ूँगा, यदि वह पढ़ावे)। शक्ति —अहं भारं वहेयम् (मैं भार वहन कर सकता हूँ)।

दो क्रियाओं का कार्य-कारण भाव समझाने से, दोनों के ही उत्तर भविष्यत् काल में विकल्प से 'विधिलिङ्' होता है; यथा– यदि बाल्ये पठेत्, यावज्जीवं सुखम् आप्नुयात; (पक्षे) यदि बाल्ये पठिष्यति, यावज्जीवं सुखम् आप्स्यति; (यदि लड़कपन में पढ़े तो, जीवन भर सुख पायेगा)। यहाँ बाल्यकाल का अध्ययन यावज्जीवन सुख लाभ का कारण है।

निमन्त्रण (विधिपूर्वक आह्वान), आमन्त्रण[1] (आह्वान), अध्येषणा (सम्मान-पूर्वक प्रवर्त्तन अर्थात् प्रेरणा), सम्प्रश्न (निरूपणार्थ जिज्ञासा) और प्रार्थना (याच्ञा) अर्थ में 'विधिलिङ्' और 'लोट्' दोनों होते हैं; यथा—निमन्त्रण—अद्य मे पितृश्राद्धेऽत्र भुञ्जीत भवान्; (पक्षे) भुंक्ताम्। (आज मेरे पितृश्राद्ध में आप यहाँ भोजन करेंगे)। आमन्त्रण—इह आसीत भवान्; (पक्षे) आस्ताम् (आप यहाँ बैठिए) (इच्छा हो तो)। अध्येषणा–मम पुत्रम् अध्यापयेद् भवान्; (पक्षे) अध्यापय (आप मेरे पुत्र को पढ़ाइए)। संप्रश्न–किं भो व्याकरणम्

---

१. जिसके प्रत्याख्यान अर्थात् अस्वीकार से प्रत्यवाय होता है, उसको 'निमन्त्रण' कहते हैं। जिसके प्रत्याख्यान से प्रत्यवाय नहीं होता परन्तु जिसका स्वीकार वा अस्वीकार इच्छानुसार किया जा सकता है, उसको 'आमन्त्रण' कहते हैं।

अधीयीय उत साहित्यम् ?; (पक्षे) अध्यय, (कहिये–मैं ,व्याकरण पढ़ूँ, या साहित्य ?) । प्रार्थना—भो भिक्षां लभेय; (पक्षे) देहि मे भिक्षाम् (मैं भिक्षा पाऊँ अथवा मुझे भिक्षा दो) ।

इच्छार्थ धातु के योग से 'विधिलिङ्' और 'लोट्' दोनों होते हैं; यथा—इच्छामि, भवान् पुस्तकमेतत् पठेत् पठतु वा (मैं चाहता हूँ, आप इस पुस्तक को पढ़ें) ।

लङ्—अनद्यतन अतीत काल में 'लङ्' होता है; (वर्त्तमान दिन, पूर्ण रात्रि के शेष अर्ध और पररात्रि के प्रथम अर्ध को 'अद्यतन' कहते हैं, तद्भिन्न काल 'अनद्यतन' हैं); यथा—ह्यः सोऽगच्छत् (वह कल गया)।

'मास्म'—शब्द के योग से सब कालों में ही 'लुङ्' होता है; यथा–मास्म गच्छेः (मत जा) ।

लिट्—अनद्यतन अथवा परोक्ष (जो वक्ता का प्रत्यक्ष नहीं ऐसे) अतीत काल में 'लिट्' होता है, यथा—रामः रावणं जघान (राम ने रावण को मारा था) । उत्तम पुरुष की क्रिया किसी प्रकार से वक्ता का परोक्ष नहीं हो सकती, इसलिए उत्तम पुरुष में कभी भी लिट् का प्रयोग नहीं होता है; केवल चित्तविक्षेप (मन की चञ्चलता) और अत्यन्तापह्लव (सम्पूर्ण रूप से अस्वीकार) समझाने से होता है; यथा—सुप्तोऽहं रुरोद; (मैं सोता-सोता रोया था) 'त्वं नदीं सन्तरन् दृष्टोऽसि'—(तुझे नदी में तैरते हुए देखा है) । ऐसा किसी से कहने पर, उसने उत्तर दिया—'नाहं नदीं जगाम' (मैं नदी नहीं गया) ।

लुङ्—अद्यतन, अनद्यतन और परोक्ष–सर्व प्रकार अतीत काल में ही 'लुङ्' होता है । यथा—अद्यासौ अगात् (आज वह गया है) ।

मा[1] और मास्म शब्द के योग से सब कालों में ही 'लुङ्' होता है; यथा—का कार्षीः, मास्म कार्षीः (मत कर) ।

---

१. 'मा'—शब्द के योग से 'लोट्' भी होता है; यथा—"मद्वाणि ! मा कुरु विषादमनादरेण" ।

लुट्—अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट् होता है; यथा—श्वो गन्तास्मि (कल जाऊँगा)।

लृट्—भविष्यत् काल मात्र में ही 'लृट्' होता है; यथा—अहं गमिष्यामि (मैं जाऊँगा)।

लृङ्—क्रियातिपत्ति अर्थात् दो क्रियाओं की अनिष्पत्ति (असम्पूर्णता) समझाने से, अतीत और भविष्यत् काल में 'लृङ्' होता है; यथा—ज्ञानं चेत् अभविष्यत्, सुखम् अभविष्यत् (ज्ञान होता, तो सुख होता) (अर्थात् ज्ञान भी नहीं हुआ, सुख भी नहीं हुआ); सागरश्चेत् शुष्कोऽभविष्यत्, तदा मानुषाः अमराः अभविष्यन् (यदि समुद्र शुष्क हो, तो मनुष्य अमर होंगे) (अर्थात् समुद्र भी शुष्क नहीं होगा; मनुष्य भी अमर नहीं होंगे)।

आशीर्लिङ्—आशीर्वाद अर्थ में भविष्यत् काल में 'आशीर्लिङ्' होता है; यथा—तव कुशलं भूयात् (तेरी कुशल हो); सज्जनश्चिरं जीव्यात् (सज्जन बहुत दिन जीता रहे)।

द्रष्टव्य—व्याकरण में लङ् और लुङ् का अर्थभेद रहने पर भी प्रयोग में उनका कुछ भेद नहीं दीखता; सुतरां अतीतकाल मात्र में ही उनका प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे ही लुट् और लृट् के भी प्रयोग में कुछ भेद नहीं है।

धातुसम्बन्धी णत्व-विधि

प्र. परा, परि, निर्—इन चार उपसर्गों के परवर्त्ती नद्[1]-प्रभृति धातुओं का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा-प्रणदति प्रणमति, परिहण्यते इत्यादि। किन्तु हन्धातु के 'हन' के स्थान में 'घ्न' होने से मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होता; यथा—परिघ्नन्ति।

---

१. नद्, नम्, नश्, नह्, नी, नु, नुद्, अन्, हन्।
नदो नमो नशश्चैव नह-नी-नु-नुदस्तथा।
अनो हनश्चेति नव नदादिर्गण इष्यते ॥

'नश्'—धातु के 'श्' के स्थान में 'ष्' होने से दन्त्य 'न्' मूर्द्धन्य नहीं होता: यथा—प्रनष्ट, परिनष्ट इत्यादि। किन्तु 'प्रणाश'—इस शब्द में मूर्द्धन्य 'ण' हुआ है।

प्र, परा, परि, निर्—इन उपसर्गों के और 'अन्तर्—शब्द के परवर्त्ती, धातु के उत्तर विहित लोट् की 'आनि'—विभक्ति का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—प्रभवाणि।

'गद्'—प्रभृति[1] धातु परे रहने से प्र, परा, परि, निर्—इन उपसर्गों के और 'अन्तर'—शब्द के परवर्त्ती 'नि' उपसर्ग को 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—प्रणिगदति, प्रणिपतति इत्यादि।

प्र, परा, परि, निर् और 'अन्तर्' शब्द के परवर्त्ती 'हिनु' और 'मीना' (मी वधे) का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—प्रहिणोति, प्रहिणुत:, प्रहिण्वन्ति, प्रमीणाति।

प्र, परा, परि, निर्, और 'अन्तर'—शब्द के परवर्त्ती धातु का 'न' व अथवा म-संयुक्त होने से विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—प्रहण्मि, प्रहन्मि, प्रहण्व:, प्रहन्व:।

प्र, परा, परि निर् और अन्तर्—शब्द के परवर्त्ती निन्द्, निक्ष् (चुम्बने) और निस्, (चुम्बने) धातु का दन्त्य 'न' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—प्रणिन्दति, प्रनिन्दति, प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्, प्रणिसितव्यम्, प्रनिसितव्यम्।

प्र, परा, परि, निर् और 'अन्तर्' शब्द के परवर्त्ती धातु के उत्तर विहित 'कृत्' प्रत्यय का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—प्रमाणम्, परिमाणम्।

किन्तु भा, भू, पू, कम्, गम्, प्याय्, वेप् और कम्प् धातु के पर में विहित कृत्—प्रत्यय का 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(भू) परिभवनीयम्।

---

१. गद्, नद्, पद्, पत्, वप्, वह्, शम्, हन्, दिह्, दा, धा, या, वा, द्रा, प्सा (भक्षणे), चि।

प्र, परा, परि, निर्, और 'अन्तर्'-शब्द के परवर्त्ती व्यञ्जनादि धातु के पर में विहित 'कृत्' प्रत्यय का 'न' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—(कुप्) प्रकोपणीयम्, प्रकोपनीयम्; (गुप्) परिगोपणम्, परिगोपनम् ।

किन्तु धातु की उपधा में 'अ' अथवा 'आ' रहने से नित्य होता है; यथा (वह) प्रवहणम् । प्रवहमाणः ।

प्र, परा, परि, निर् और अन्तर शब्द के परवर्त्ती णिजन्त धातु के पर में विहित 'कृत्' प्रत्यय का 'न' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—(यापि) प्रयापणम्; प्रयापनम् ।

किन्तु 'भा' प्रभृति धातु णिजन्त होने से भी मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होता; यथा—(भू) परिभावनीयम् ।

व्यञ्जन वर्ण में मिलित होने 'कृत'-प्रत्यय का 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा–प्रभग्नः, परिमग्नः ।

धातुसम्बन्धी षत्व-विधि

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के परस्थिति 'सु'–प्रभृति[1] धातुका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' होता है; यथा—(सु) अभिषुणोति[2]; (सू) अभिषुवति; (सो) अभिष्यति; (स्तु), अभिष्टौति; (स्तुभ्)प्रतिष्टोभते; (स्था) अधिष्ठास्यति, अनुष्ठास्यति; (सेनि) अभिषेणयति; (सिध)[3]

---

१. सु, सू (तुदादि), सो, स्तु, स्तुभ्, स्था, सेनि ('सेना'—शब्द+ णिच्), सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, स्तम्भ् ।

सुः सूः सोः स्तुः स्तुभश्चैव स्थाः सेनिश्च सिधः सिचः ।

सञ्जः स्वञ्जः सदः स्तम्भः—स्वादिरेते त्रयोदश ।।

२. लृट् और लृङ् विभक्ति तथा 'स्यत्'–प्रत्यय परे रहने से नहीं होता, यथा—(लृट्) अभिसोष्यति; (लृङ्) अभ्यसोष्यत्; (स्यत्) अभिसोष्यत् ।

३. गमनार्थ 'सिध्' धातु का नहीं होता; यथा–स गङ्गां विसेधति ।

प्रतिषेधति; (सिच्) निषिञ्चति; (सञ्ज्) निषजति, अनुषजति; (स्वञ्ज्) परिष्वजते; (सद्) विषीदति;[१] (स्तम्भ्) प्रतिष्टभ्नोति[२]।

'अट्'—व्यवधान से भी मूर्द्धन्य होता है; यथा—अभ्यषेणयत्, न्यषिञ्चत्, व्यषीदत्[३]।

भोजन-अर्थ में 'वि' और 'अव' पूर्वक 'स्वन्'-धातु का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—विष्वणति अवष्वणति (सशब्दं भुङ्क्ते इत्यर्थः)। (अन्यत्र) विस्वनति वीणा (शब्दायते इत्यर्थः)।

नि, वि, परि उपसर्ग के परवर्त्ती सेव्, सिव् और सह[४] धातु का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—निषेवते, परिषीव्यति, विषहते 'अट्'—व्यवधान से भी होता है; किन्तु 'सेव्'—धातुका नित्य तथा 'सिव्' और 'सह्' धातुओं का विकल्प से होता है; यथा-(सेव्) पर्य्यषेवत; (सिव्) पर्य्यषीव्यत्, पर्य्यसीव्यत्; (सह) न्यषहत्, न्यसहत । णिजन्त करने से, लुङ्-विभक्ति में सिव् और सह धातुओं का 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा (सिव्) पर्य्यसीसिवत्, (सह्) पर्य्यसीसहत्।

'परि' उपसर्ग के परवर्त्ती 'स्कु'-धातु का 'स' मूर्द्धन्य होता है;

---

१. 'प्रति'-पूर्वक 'सद्' धातुका नहीं होता; यथा-प्रतिसीदति।

२. आलम्बन और सामीप्य अर्थ में 'अव'-पूर्वक 'स्तम्भ'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा-अवष्ठभ्नाति यष्टिम् (अवलम्बते) अवष्टभ्यते गौः (सामीप्ये निरुध्यते) 'क्त'-प्रत्यय करने से, नि और प्रति उपसर्ग के परवर्त्ती 'स्तम्भ'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा-निस्तब्धः प्रतिस्तब्धः। णिजन्त करने से, लुङ्-विभक्ति में, 'स्तम्भ' धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—पर्यतस्तम्भत।

३. परि, नि, वि-पूर्वक 'स्तु' और 'स्वञ्ज' धातु का विकल्प से होता है; यथा—पर्य्यष्टावीत्, पर्य्यस्तावीत, पर्य्यष्वजत, पर्य्यस्वजत।

४. 'सह्' के स्थान में 'सोढ' होने से मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता; यथा-परिसोढा, निसोढुम्, विसोढः।

यथा—परिष्करोति, परिष्कारः। 'अट्'-व्यवधान में विकल्प से; यथा-पर्य्यष्करोत्, पर्य्यस्करोत्।

अनु, नि, वि, परि और अधि उपसर्ग के परवर्त्ती 'स्यन्द्'-धातु का 'स' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—अनुष्यन्दते निष्यन्दते विष्यन्दते घृतम्; (पक्षे) अनुस्यन्दते इत्यादि। किन्तु प्राणी कर्त्ता होने से मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता; यथा—निस्यन्दते मत्स्यः।

परि और वि उपसर्ग के परवर्त्ती 'स्कन्द्'-धातु का 'स' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा-परिष्कन्दति, परिस्कन्दति; विष्कन्दति विस्कन्दति। किन्तु 'निष्ठा'-प्रत्यय (क्त, क्तवतु) परे रहने से, वि-पूर्वक स्कन्द्धातु का 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा-विस्कन्नः, विस्कन्नवान्।

निर्, नि और वि उपसर्ग के परवर्त्ती स्फुर् और स्फुल् धातुओं का 'स' विकल्प से मूर्द्धन्य होता है; यथा—(स्फुर्) विष्फुरति, विस्फुरति; (स्फुल्) विष्फुलति, विस्फुलति।

'वि'-पूर्वक 'स्कम्भ्'-धातु का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—विष्कभ्नाति, विष्कम्भः, विष्कम्भकः।

सु, वि, निर् और दुर् उपसर्ग के परवर्त्ती 'स्वप्'—धातु के स्थान में जात सुप् का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—सुषुप्तः, दुःषुषुपतुः।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के और 'प्रादुः'—शब्द के परस्थित 'अस्'-धातु का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—निषन्ति, निष्यात्; प्रादुःषन्ति, प्रादुःष्यात्। किन्तु व, म और त-संयुक्त 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—निस्वः, निस्मः, निस्तः।

षोपदेश धातु को[1] अभ्यस्त (द्विरुक्त) करने से परभाग का 'स'

---

१. सञ्ज्, सद्, सह्, साध्, सिच्, सिव्, सु, सू, सेव्, सो, स्तम्भ्, स्तु, स्तुभ्, स्त्यै, स्था, स्ना, स्निह, स्नु, स्मि, स्वञ्ज, स्वद्, स्वप् स्विद् इत्यादि।

यदि इ, उ, ए, ओ–इन चार वर्णों के परस्थित हो, तो मूर्द्धन्य होता है; यथा– (सिच्) सिषेच,[1] (सिध्) सिषेध; (स्तु) तुष्टाव ।

धातु के पर में विहित 'सन्'—प्रत्यय का 'स' मूर्द्धन्य होने से धातु का 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(सिच्) सिसिक्षति; (सेव्) सिसेविषते ।

'सन्' का 'स' दन्त्य रहने से, धातु का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—तिष्ठासति; (स्वप्) सुषुप्सति । किन्तु 'स्तु'–धातु के पर में विहित 'सन्'–प्रत्यय का 'स' और धातु का 'स'—दोनों ही मूर्द्धन्य होते हैं; यथा तुष्टूषति ।

णिजन्त धातु के बीच में, 'सन्'–प्रत्यय का 'स' मूर्द्धन्य होने से, केवल स्विद् स्वद्, और सह् धातु का 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(स्विद्) सिस्वेदयिषति; (स्वद्) सिस्वादयिषति; (सह) सिसाहयिषति । एतद्भिन्न णिजन्त धातु का होता है; यथा—(सिच्) सिषेचयिषति इत्यादि ।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के परस्थित 'सेनि'–प्रभृति धातु[2] अभ्यस्त होने से, दोनों 'स' मूर्द्धन्य होते हैं, यथा—(सेनि) अभिषिषेणयिषति; (सिच्) अभिषिषेच; (सेव्) परिषिषेवे ।

सञ्जः सदः सहः साधः सिच्सिधौ सिव् च सुस्तथा ।
सूः सेवः सोस्तथा स्तम्भः स्तुस्तुभौ स्त्यायतिस्तथा ।।
स्था-स्ना स्निह-स्नवः स्मिश्च स्वञ्जः स्वद-स्वप्स्विदस्तथा ।
एते चान्ये च बहवः षोपदेशाः प्रकीर्त्तिताः ।।

१. 'यङ्'–प्रत्यय होने से, 'सिच्'–धातु का 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा–सेसिच्यते ।

२. सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज, सद्, सेव् ।
सेनिः सिधः सिचश्चैव सञ्जः स्वञ्जः सदस्तथा ।
सेव इत्येष विज्ञेयः सेन्यादिः सप्तको गणः ।।

लिट्-विभक्ति में स्वञ्ज् और सद् धातु के अभ्यस्त परभाग का 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(स्वञ्ज) परिषस्वजे; (सद्) निषसाद ।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के परस्थिति अभ्यस्त स्था और स्तम्भ धातु का 'स' 'त' व्यवधान से भी मूर्द्धन्य होता है; यथा—(स्था) अनुतष्ठौ, अधितष्ठौ; (स्तम्भ) अभितष्टम्भ ।

वस्, घस्, शास् और सह् यथाक्रम—उस्, जक्स्, शिस् और साट् होने से 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—उष्यते; जक्षतुः, शिष्यते; तुराषाट् ।

कर्तृवाच्य में लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् विभक्ति और शतृ, शानच् प्रत्यय परे रहने से, धातु के उत्तर गणानुसार कई 'आगम' होते हैं। किस गण में क्या आगम होता है, वह नीचे लिखा जाता है :—

गणों के नाम	**आगम**	**उदाहरण**
१. भ्वादि	अ (शप्)	भू—भवति
२. अदादि	कुछ नहीं	अद्—अत्ति
३. जुहोत्यादि	कुछ नहीं	हु—जुहोति
४. दिवादि	य (श्यन्)	दिव्—दीव्यति
५. स्वादि	नु (श्नु)	सु—सुनोति, सुनुते
६. तुदादि	अ (श)	तुद्—तुदति, तुदते
७. रुधादि	न (श्नम्)	रुध्—रुणद्धि, रुन्धे
८. तनादि	उ	तन्–तनोति, तनुते
९. क्र्यादि	ना (श्ना)	क्री–क्रीणाति, क्रीणीते
१०. चुरादि	अ	चुर्–चोरयति

ये आगम के वर्ण धातु के अन्तिम वर्ण के साथ युक्त होते हैं; केवल रुधादि-गण में आगम का 'न' धातु के अन्त्य स्वर में मिलता है।

तुदादि

क्रियाघटन-सूत्र

[निम्नलिखित तारा (ॐ) चिह्नित सूत्रों को साधारण सूत्र समझना चाहिए; अर्थात् विशेष-सूत्रों द्वारा बाधित न होने पर समस्त तिङन्त-प्रकरण और कृदन्त प्रकरण में उन चिह्नित सूत्रों का कार्य होगा।]

ॐ चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में तुदादि और भ्वादिगणीय धातु तथा स्वार्थ में अथवा प्रेरणार्थ में विहित णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त और नामधातु के उत्तर 'अ' आगम होता है; यथा—विश् + ति = विश् + अ + ति = विशति।

ॐ विभक्ति का आकार वा एकार परे रहने से, पूर्ववर्त्ती अकार का लोप होता है; यथा—विश् + अन्ति = विश् + अ + अन्ति = विशन्ति।

ॐ विभक्ति का 'व' अथवा 'म' परे रहने से, पूर्ववर्ती अकार के स्थान में आकार होता है; यथा–विश् + अ + मि = विश् + आ + मि = विशामि।

ॐ अ, उ, नु—इन तीन आगमों के परस्थित 'हि' विभक्ति का लोप होता है; यथा—(अ) विश् + हि = विश् + अ + हि = विश् + अ = विश; (उ) कृ + हि = कुरु; (नु) श्रु + हि = शृणु। किन्तु 'नु' व्यञ्जन वर्ण में मिलित होने से लोप नहीं होता है; यथा—आप्नुहि।

ॐ अकार के परस्थित विधिलिङ् के 'याम्' के स्थान में 'इयम्', 'युस्' के स्थान में 'इयुस्', तद्भिन्न, 'या'-भाग के स्थान में 'इ' होता है; यथा–विश् + याम् = विश् + अ + इयम् = विशेयम्; विश् + युस् = विश् अ + इयुस् = विशेयुः; विश् + यात् = विश् + अ + इत् = विशेत्।

ॐ पद के अन्त में स्थित 'धुट्'—वर्ण के स्थान में प्रथम वर्ण होता है।

ॐ लङ्, लुङ्, लृङ् विभक्ति परे रहने से, धातु के आदि में 'अट्' होता है; 'अट्' का 'अ' रहता है; यथा—विश् + द् = अ +

विश् + अ + द् = अविशद् = अविशत् । किन्तु 'मा' और 'मास्म' के योग से 'अट्' नहीं होता; यथा—मा विशत्, मास्म विशत् ।

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में, इष्—इच्छ्, कृत्—कृन्त्, प्रच्छ्—पृच्छ्, मस्ज्—मज्ज् होता है; यथा—इष् + ति = इच्छ् + अ + ति = इच्छति; कृत् + ति = कृन्त् + अ + ति = कृन्तति; प्रच्छ् + ति = पृच्छ् + अ + ति = पृच्छति इत्यादि ।

ॐ 'अट्' होने से, धातु के आदिस्थित इ ई के स्थान में 'ए', उ ऊ के स्थान में 'ओ', ऋ ॠ के स्थानों में 'अर्' होता है; यथा–इष् + द् = अ + इच्छ् + अ + द् = अ + एच्छ् + अ + द् = ऐच्छत् ।

चतुर्लकार परे रहने से, ऋ–रिय्, ॠ–इर् होता है; यथा–मृ + ते = म् + रिय् + अ + ते = म्रियते; कॄ + ति = क् + इर् + अ + ति=किरति ।

ॐ आकार के परवर्त्ती आते, आथे, आताम्, आथाम्, विभक्ति में 'आ' के स्थान में 'इ' होता है; यथा–मृ + अ + आते = म् + रिय् + अ + इते = म्रियते ।

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में, मुच्—मुञ्च्, सिच्–सिञ्च्, लुप्—लुम्प्, लिप—लिम्प्, विद्—विन्द्, भ्रस्ज्—भृज्ज् होता है ।

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन चार विभक्तियों में गणभेद से धातु के रूप की विभिन्नता है; इस कारण, इन चार विभक्तियों में एक एक गण के धातु के ही रूप यहाँ प्रदर्शित होते हैं। एतद्भिन्न और विभक्तियों में गणभेद से रूपभेद नहीं होता; इसलिए उनकी एक विभक्ति में सब गणों के धातु के ही रूप पश्चात् दिखलाये जायेंगे। परन्तु संस्कृत रचनाभ्यास के लिए 'लृट्' के रूप भी यहाँ लिखे जाते हैं, 'लृट्' की साधारण प्रणाली पश्चात् प्रदर्शित होगी ।

कर्तृवाच्य में धातुरूप

तुदादि

सकर्मक परस्मैपदी धातु

विश्[1] प्रवेशे—घुसना, प्रविष्ट होना।

लट् (वर्तमान)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	विशति[2]	विशतः	विशन्ति
मध्यम पुरुष	विशसि	विशथः	विशथ
उत्तम पुरुष	विशामि	विशावः	विशामः

लोट् (अनुज्ञा)

प्र० पु०	विशतु	विशताम्	विशन्तु
म० पु०	विश	विशतम्	विशत
उ० पु०	विशानि	विशाव	विशाम

लङ् (सामान्यभूत)

प्र० पु०	अविशत्	अविशताम्	अविशन्
म० पु०	अविशः	अविशतम्	अविशत
उ० पु०	अविशम्	अविशाव	अविशाम

विधिलिङ् (विधि)

प्रथम पुरुष	विशेत्	विशेताम्	विशेयुः
मध्यम पुरुष	विशेः	विशेतम्	विशेत
उत्तम पुरुष	विशेयम्	विशेव	विशेम

---

१. 'कथ्'—प्रभृति कई चुरादिगणीय धातु अकारान्त हैं; उनको 'अदन्त चुरादि' कहते हैं; तद्भिन्न सभी धातु हलन्त होते हैं; किन्तु उनको अकारान्त करके उच्चारण करना चाहिये; यथा—'विश्' धातु को 'विश' धातु पढ़ना चाहिये।

२. विशति, विशतः, विशन्ति; विशसि, विशथः; विशथ; विशामि, विशावः, विशामः—ऐसा पढ़ना होगा।

लृट् (भविष्यत्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वेक्ष्यति	वेक्ष्यतः	वेक्ष्यन्ति
म० पु०	वेक्ष्यसि	वेक्ष्यथः	वेक्ष्यथ
उ० पु०	वेक्ष्यामि	वेक्ष्यावः	वेक्ष्यामः

आ + विश्—प्रवेशे। उप + विश्—उपवेशने (बैठना); अकर्मक। नि + विश्–प्रवेशे; अवस्थाने (अकर्मक); उपवेशने च (अकर्मक)–आत्मनेपदी; निविशते। नि + विश् + णिच्—स्थापने; निवेशयति। अभि + नि + विश्—मनोनिवेशे; आश्रये च; आत्मनेपदी निर् + विश–उपभोगे; विवाहे च। प्र + विश्—प्रवेशे। सम् + विश्—निद्रायाम् (अकर्मक)।

प्रच्छ् जिज्ञासायाम्—पूछना

लट् (वर्तमान)

प्र० पु०	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
म० पु०	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उ० पु०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लोट् (अनुज्ञा)

प्र० पु०	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
म० पु०	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उ० पु०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

लङ् (सामान्यभूत)

प्र० पु०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
म० पु०	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उ० पु०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

विधिलिङ् (विधि)

प्र० पु०	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
म० पु०	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उ० पु०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

लृट् (भविष्यत्)

प्र० पु०	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
म० पु०	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उ० पु०	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

आ + प्रच्छ्—आमन्त्रणे (गमनानुज्ञार्थं, प्रस्थानकाले, सम्भाषणे-विदा लेना); आत्मनेपदी; आपृच्छते ।

इष् (इषु) इच्छायाम्—चाहना

लट् (वर्तमान)

प्र० पु०	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
म० पु०	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उ० पु०	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

लोट् (अनुज्ञा)

प्र० पु०	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
म० पु०	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उ० पु०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

लङ् (सामान्य भूत)

प्र० पु०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
म० पु०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उ० पु०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

विधिलिङ् (विधि)

प्र० पु०	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
म० पु०	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उ० पु०	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

लृट् (भविष्यत्)

प्र० पु०	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
म० पु०	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उ० पु०	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

अनु+इष्—अभिलाषे। अनु+इष्+णिच्—अनुसन्धाने; अन्वेषयति। प्रति+इष्—ग्रहणे; सम्माननें; प्रतीक्षायाञ्च।

स्पृश् स्पर्शे—छूना

लट्

प्र० पु०	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
म० पु०	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
उ० पु०	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः

लोट्

प्र० पु०	स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
म० पु०	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
उ० पु०	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम

लङ्

प्र० पु०	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
म० पु०	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत
उ० पु०	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः
म० पु०	स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत
उ० पु०	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लृट्

प्र० पु०	स्प्रक्ष्यति स्पर्क्ष्यति	स्प्रक्ष्यतः स्पर्क्ष्यतः	स्प्रक्ष्यन्ति स्पर्क्ष्यन्ति
म० पु०	स्प्रक्ष्यसि स्पर्क्ष्यसि	स्प्रक्ष्यथः स्पर्क्ष्यथः	स्प्रक्ष्यथ स्पर्क्ष्यथ
उ० पु०	स्प्रक्ष्यामि स्पर्क्ष्यामि	स्प्रक्ष्यावः स्पर्क्ष्यावः	स्प्रक्ष्यामः स्पर्क्ष्यामः

स्पृश्+णिच्—दाने; स्पर्शयति। उप+स्पृश्–आचमने; स्नाने च।

अनुवाद करो–मैं आम चाहता हूँ। तूने क्या पूछा ? मुझे मत छूना। माता सर्वदा सन्तान का मंगल चाहती है। यह धन ग्रहण करो। कभी लोभ से परद्रव्य का स्पर्श नहीं करना चाहिये। इससे तुझे पाप स्पर्श करेगा। आप लोग पूछिये। कल एक चोर उसके घर में घुसा था। तू क्या पूछता है ? भोजन के पूर्व आचमन करना चाहिए। उसने राजा से धन नहीं चाहा। मेरी पुस्तक ढूँढ़ो। पूर्वकाल में पतिव्रताएँ पति के साथ अग्नि में प्रवेश करती थीं ('स्म'—योग से भी क्रिया बनाओ)। स्वतन्त्र भारत के नागरिकों को शिष्ट और विश्वासी होने की इच्छा करनी चाहिए।

तुदादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

उज्झ् त्यागे—छोड़ना—(लट्) उज्झति; (लृट्) उज्झिष्यति। 'सपदि वियतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार।'

उञ्छ् (उछि) कणश आदाने (भूमौ पतितानामेकैकस्योपादाने)–चुनना, बिनना—उञ्छति; उञ्छिष्यति;। 'शिलानप्युञ्छतः'। 'सुलभं शस्यमुञ्छन्ति यद्देशे व्रतिनो द्विजाः'।

प्र+उञ्छ्—मार्जने; 'प्रोञ्छन्ति प्रचुरेणैषामन्नेन दीनतां प्रजाः'।

कृत् (कृती) छेदने—काटना—कृन्तति; कर्त्तिष्यति, कर्त्स्यति। 'कृन्तत्यरिशिरांसि सः'।

नि+कृत्—छेदने।

कॄ विक्षेपे (क्षेपणे)—बिखेरना, फेंकना—किरति; करिष्यति, करीष्यति। 'नरि नरि किरति द्राक् सायकान् पुष्पधन्वा'।

अव+कॄ—आच्छादने। उत्+कॄ—उत्क्षेपणे। प्रति+कॄ—हिंसायाम्; प्रतिस्किरति। वि+कॄ—विक्षेपे। वि+नि+कॄ–निक्षेपे। प्र+कॄ—प्रक्षेपे।

गुम्फ (गुन्फ) ग्रन्थने—गूथना—गुम्फति; गुम्फिष्यति;। 'गुम्फति मालां मालिकः'।

गॄ—निगरणे (भक्षणे)—निगलना, खाना—गिरति, गिलति; गरिष्यति, गरीष्यति। 'गिरत्यन्नं लोकः'।

उत्+गॄ—वमने; वागादीनां बहिष्करणे च। नि+गॄ—निगरणे। सम्+गॄ—प्रतिज्ञायाम्; आत्मनेपदी; सङ्गिरते।

मिष् स्पर्द्धायाम्—दर्शने '(हव्यं) जातवेदोमुखान्मायी मिषतामाच्छिनत्ति नः'।

उत्+मिष्—(अकर्मक) नेत्रोन्मीलने (आँख खोलना); 'उन्मिमेष तदा मुनिः'; विकासे; प्रकाशे च।

नि+मिष्—(अकर्मक) नेत्र-निमीलने (आँख मींचना); 'मत्स्यः सुप्तो न निमिषति'।

मृश् स्पर्शे—छूना—मृशति; म्रक्ष्यति, मर्क्ष्यति। प्रायशः उपसर्ग के साथ ही प्रयुक्त होता है।

अभि+मृश्, अव+मृश्—स्पर्शे। आ+मृश्–स्पर्शे; आक्रमणे च। परा+मृश्–स्पर्शे; चिन्तने, विचारे, उद्देशे च। वि+मृश्—विचारणे।

रुज् (रुजो)—(१) भञ्जने—तोड़ना–रुजति; रोक्ष्यति। 'नदी कूलानि रुजति' (२) पीड़ने 'तस्य धर्मरते रोगा न रुजन्ति प्रजामपि'; 'महते रुजन्नपि गुणाय महान्'।

लिख्—(१) अक्षरविन्यासे (लेखने)—लिखना—लिखति, लेखिष्यति, लिखिष्यति। 'लिखति पुस्तकं लेखकः'।—(२) चित्रीकरणे 'मृगमदतिलकं लिखती'।

घर्षणे; न किञ्चिदूचे, चरणेन केवलं लिलेख बाष्पाकुललोचना भुवम्'।

अभि+लिख्—चित्रीकरणे (तसवीर खींचना)। आ+लिख्, वि+लिख–चित्रीकरणे; घर्षणे च। उत्+लिख्–विदारणे; कथने च।

सृज् * (१) निर्माणे—उत्पादन (पैदा) करना—सृजति; स्रक्ष्यति।

---

* दिवादि आत्मनेपदी भी होता है; सृज्यते। 'उपासनामेत्य पितुः स्म सृज्यते'।—[सम्+सृज्—मिलने; 'संसृज्यते सरिसजैररुणांशुभिन्नैः']

'भूतानि कालः सृजति' ।—(२) त्यागे, 'बाणमसृजद् वृषध्वजः'; 'बाष्पवृष्टिमिव हिमस्रुतिं ससर्ज' ।

अति + सृज्—दाने । उत् + सृज्, वि + सृज्—त्यागे ।

तुदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु

कुच् सङ्कोचे—सिकुड़ना, सिमटना–कुचति; कुचिष्यति । प्रायशः 'सम्' उपसर्ग के साथ ही प्रयुक्त होता है; सङ्कुचति; 'सङ्कुचत्यरिनारीणां मुखं पङ्केरुहद्युति' ।

त्रुट् भेदे—टूटना—त्रुटयति, त्रुटति, त्रुटिष्यति । 'त्रुटन्ति सर्वसन्देहास्त्रुटयन्ति ग्रन्थयो हृदि ।' 'यावन्मम दन्ता न त्रुटयन्ति; तावत् तव पाशं छिनद्मि' । 'अयं ते बाष्पौघस्त्रुटति इव मुक्तामणिसरः' ।

मज्ज् (टुमस्जो)—(१) अवगाहने, सशिरस्क-स्नाने च—नहाना–मज्जति; मङ्क्ष्यति ।—(२) जलान्तःप्रवेशे (डूबना); 'मज्जति प्रस्तरो जले', 'लज्जे ! त्वं मज्ज सिन्धौ ।'

उत् + मज्ज—उन्मज्जने । नि + मज्ज—निमज्जने ।

लुठ् संश्लेषणे, सम्बन्धीभावे*—लोटना—लुठति, लुठिष्यति । 'मणिर्लुठति पादेषु'; 'लुठति न सा हिमकरकिरणेन'; 'गृहे गृहे पश्य तवाङ्गवर्णा मुग्धे ! सुवर्णावलयो लुठन्ति' ।

स्फुट्—(१) विकसने—खिलना—स्फुटति, स्फुटिष्यति । 'स्फुटति केतकीकोरकः'—(२) भेदे (फटना); 'हा हा देवि ! स्फुटति हृदयम्' ।

प्र + स्फुट् + णिच्–निस्तुषीकरणे (फटकना); प्रस्फोटयति ।

स्फुर्—(१) सञ्चलने—हिलना, फड़कना—स्फुरति, स्फुरिष्यति । 'स्फुरति चामरम्'; 'सव्यं नेत्रं स्फुरति' । (२) प्रकाशे; 'सप्तर्षिमण्डलं स्फुरति' ।

संस्कृत में अनुवाद करो—गात्र मार्जन करो, प्रातःकाल में नहाना

---

* 'लुठ् विचेष्टने (अङ्गपरिवर्तने)—ऐसा अर्थ करने से प्रयोग सङ्गत होता है ।

चाहिये। विधाता ने इस पृथ्वी को बनाया। इस पुष्प को ठाकुरजी के लिए (चतुर्थी) उत्सर्ग करेंगे (उत्+सृज्)। उसकी समस्त सम्पत्ति को जल में विसर्जन किया। राजा अन्तःपुर में घुसता है। तू मेरे पास (अन्तिके) बैठ। मुनि लोग कुशासन पर निद्रा लेते हैं (सम्+विश्)। रात्रि में पद्म संकुचित होता है। उसने इस कार्य का दोष नहीं विचारा (वि+मृश्)। लौकी (अलाबु—क्लीबलिंग) समुद्र के जल में डूब जाती है। लड़कों ने एक एक करके (एककशः) पाठशाला में प्रवेश किया। नेत्रों को निमीलित करो। मैंने गुरुजी से परामर्श किया। काम करने के पहले विचार करना चाहिए। प्रकाश-गोलक (बिजली बत्ती के लट्टू) को किसने तोड़ा ?

तुदादि आत्मनेपदी धातु

मृ (मृङ्) प्राणत्यागे (मरणे)—मरना

लट्

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्र० पु०	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
म० पु०	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
उ० पु०	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे

लोट्

प्र० पु०	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
म० पु०	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
उ० पु०	म्रिये	म्रियावहै	म्रियामहै

लङ्

प्र० पु०	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
म० पु०	अम्रियथा	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
उ० पु०	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियायहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
म० पु०	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
उ० पु०	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि

लृट्

('लृट्'—विभक्ति में परस्मैपदी होता है)

प्र० पु०	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
म० पु०	मरिष्यसि	मरिष्यथः	मरिष्यथ
उ० पु०	मरिस्यामि	मरिष्यावः	मरिष्यामः

+ + +

तुदादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु

जुष् (जुषी) सेवने (आश्रये, उपभोगे); प्रीतौ च (अकर्मक)—सेवन करना; आनन्दित होना—जुषते; जुषिष्यते। 'पौलस्त्योऽजुषत शुचं विपन्नबन्धुः'; 'पीत्वोज्झितां राहुमुखेन चान्द्रीं न किं सुधां नाक-जुषो जुषन्ते ?'

दृ (दृङ्) आदरे—आदर करना–'आ' उपसर्ग के साथ ही इसका प्रयोग होता है :—आद्रियते, आदरिष्यते। धर्मम् आद्रियते बुधः।

तुदादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु

धृ (धृङ्) अवस्थितौ (जीवने)—रहना, जीता रहना—ध्रियते, धरिष्यते। 'ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम् ?'

पृ (पृङ्) व्यापारे—व्यापृत होना (मश्ग़ूल या मस्रूफ होना–'प्रायेणायं, व्याङ्-पूर्वः'—वि+आ='व्या'—उपसर्ग के साथ ही प्रयुक्त होता है—व्याप्रियते; व्यापरिष्यते। 'धर्मे व्याप्रियते सुधीः'।

वि+आ+पृ+नियोजन प्रवर्त्तने; व्यापारयति।

लज्ज् (ओलस्जो) व्रीडायाम्—लजाना, शर्माना—लज्जते, लज्जिष्यते। 'लज्जते न रसना तव वाक्यात् ?

विज (ओविजी) भये; चलने च—डरना, विचलित होना—'उत्' उपसर्ग के साथ ही प्रयुक्त होता है—उद्विजते (उद्विग्न होता है, घबराता है); उद्विजिष्यते। 'मनो मे संसारात् उद्विजते'। 'नहि लोकापवादेभ्यः सतामुद्विजते मनः'। 'यस्मान्नोद्विजते लोकः'।

तुदादि उभयपदी धातु

तुद् व्यथने—दुःखाना
(सकर्मक—'तुदति मर्माणि वाक्शरैः')

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्र० पु०	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदावः	तुदामः

लोट्

प्र० पु०	तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

लङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

लृट्

प्र० पु०	तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति
म० पु०	तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ
उ० पु०	तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
म० पु०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उ० पु०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

लोट्

प्र० पु०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
म० पु०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उ० पु०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

लङ्

प्र० पु०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
म० पु०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उ० पु०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
म० पु०	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उ० पु०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

लृट्

प्र० पु०	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
म० पु०	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
उ० पु०	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे

तुदादि सकर्मक उभयपदी धातु

क्षिप् प्रेरणे (क्षेपणे)–फेंकना–क्षिपति, क्षिपते, क्षेप्स्यति, क्षेप्स्यते। 'क्षिपति क्षिपते'[1] शरं योधः।

अधि + क्षिप्–निन्दायाम्, तिरस्कारे। आ + क्षिप–आकर्षणे; निन्दायाम्, दूषणे च। उत् + क्षिप्–उत्तोलने (उठाना)। नि + क्षिप्–क्षेपणे; अर्पणे, स्थापने च। परि + क्षिप्–वेष्टने। प्र + क्षिप्–क्षेपणे। वि + क्षिप्–विकिरणे (बिखेरना)। सम् + क्षिप–अल्पीकरणे।

दिश् दाने; आज्ञापने च—(१) देना; (२) आज्ञा करना—दिशति, दिशते, देक्ष्यति, देक्ष्यते। (१) 'दिदेश कौत्साय समस्तमेव'। (२) 'दिदेश यानाय निदेशकारिणः'। 'कथनेऽपि धर्मं दिशति देशिकः'।

अप् + दिश्, वि + अप् + दिश्—व्याजे (छल करना); कथने च। आ + दिश्—आज्ञायाम्; 'मार्गमादिश'। प्रति + आ + दिश्—निराकरणे; निवारणे। उत् + दिश्—अभिप्राये। उप + दिश्—हितोक्तौ, कीर्त्तने च। निर् + दिश्—सूचने, कथने; अङ्गुल्या निर्दिशति। प्र + दिश्—दाने, निर्देशे च। सम् + दिश्—दाने; वार्त्ता-कथने।

नुद् (णुद्) प्रेरणे, क्षेपणे; निरासे—(१) चलाना; (२) दूर करना—नुदति, नुदते, नोत्स्यति, नोत्स्यते। (१) नुदति वाजिनं सारथिः; (२) 'पापं नुदति साधूनां दर्शनं क्षणमात्रतः'।

अप + नुद्—दूरीकरणे। वि + नुद् + णिच्—अपाकरणे (दूर-करना); प्रीणने च (बहलाना); विनोदयति।

भ्रस्ज् पाके (भर्जने)—भूनना—भृज्जति, भृज्जते; भ्रक्ष्यति, भ्रक्ष्यते। भृज्जति भृज्जते मत्स्यं सूपकारः।

---

१. जिस पर कुछ फेंका जाता है, उसमें सप्तमी वा चतुर्थी विभक्ति होती है; यथा—'शिलां वा क्षेप्स्यते मयि'। 'शतघ्नीं शत्रवेऽक्षिपत्'।

मुच् (मुच्लृ) मोक्षणे (त्यागे)-छोड़ना—मुञ्चति, मुञ्चते; मोक्ष्यति, मोक्ष्यते। मुञ्चति मुञ्चते धनं दाता।

कर्मकर्त्तरि—मुच्यते, प्रमुच्यते (मुक्त होता है); 'महापातकिनस्तपसैव मुच्यन्ते किल्विषात् ततः।' अव + मुच्—उन्मोचने (खोलना); अवमुञ्चति वासांसि। आ + मुच्—परिधाने; आभरणम् आमुञ्चति। उत् + मुच्—उन्मोचने। प्रति + मुच्—प्रत्यर्पणे; परिधाने च। वि + मुच्—त्यागे 'नादान् विमुञ्चति।'

लिप् लेपने–लीपना,पोतना–लिम्पति, लिम्पते; लेप्स्यति, लेप्स्यते। 'लिम्पति लिम्पते चन्दनेन गात्रं सुखी'। 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि'।

आ + लिप्, उप + लिप्, वि + लिप्—लेपने।

लुप् छेदने (विनाशने)—लोप करना, नाश करना–लुम्पति, लुम्पते; लोप्स्यति, लोप्स्यते। 'अनुभवं वचसा सखि! लुम्पसि'।

लुप्—कर्मकर्त्तरि—लुप्त होना; लुप्यते; 'तस्य भागो न लुप्यते'।

विद् (विद्लृ) लाभे—पाना—विदन्ति, विदन्ते; वेदिष्यति, वेदिष्यते, वेत्स्यति, वेत्स्यते। पुण्यात्मा विदन्ते सुखम्।

सिच् सेचने (आर्द्रीकरणे)—सींचना—सिञ्चति, सिञ्चते, सेक्ष्यति, सेक्ष्यते। सिञ्चति धरणीं वारिवाहः।

अभि + सिच्—सेचने; राज्यादौ प्रतिष्ठापने च, अभिषिञ्चति।

तुदादि अकर्मक उभयपदी धातु

मिल् सङ्गमे (मिलने)—मिलना (एकत्र होना, संयुक्त होना)—मिलति, मिलते, मेलिष्यति, मेलिष्यते, मिलिष्यति—इति सङ्क्षिप्तसारम्। 'मिलति, मिलते लता वृक्षेण'। 'मिलन्ति प्रत्यहं यस्य वाजिवारणसम्पदः'।

अनुवाद

मैंने उससे तीन प्रश्न पूछे—अहं तं त्रीन् प्रश्नानपृच्छम्। नौकर कुल्हाड़ीसे लकड़ी काटता है—भृत्यः कुठारेण काष्ठं कृन्तति। कृपया भविष्य आचरण के लिए मुझे आदेश दें—कृपया भविष्यदाचरणं

मामुपदिशतु भवान्। वे उस फल को चाहते थे—ते तत् फलमैच्छन्। वह लड़की मर रही है—म्रियते सा बालिका।

अङ्गारः शतधौतेन मलिनत्वं न मुञ्चति—लाख धोने पर भी कोयला अपना रंग नहीं छोड़ता, काले पर कोई रंग नहीं चढ़ता। 'धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्'—ज्ञानी व्यक्ति को धन तथा जीवन दूसरों की भलाई के लिए छोड़ देना चाहिए। 'परं ज्योतिस्ते प्रकाशताम्'—तुम पर परम आलोक प्रकाशित हो। 'नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः'—शिकार सोये हुए सिंह के मुँह में नहीं जाता। 'अयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः'—अस्तबल से बन्दर राजा के मकान में घुस रहा है।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—रामः मातरमिदम् अपृच्छत्। धनिनः सततं सुखमिच्छन्ति। बालिकाः लाजान् विकिरन्ति। प्रभुः भृत्यानादिशति। ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्। यो विश्वमिदमसृजत् सोऽस्माकं सर्वेषां पिता। सव्यं नेत्रं स्फुरति। स च मूर्खः पाशेन स्वयमेव बद्धो म्रियते। भूतानि कालः सृजति। साधवः शठं न स्पृशन्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो—वह वृक्ष की शाखा पर बैठा था। अपवित्र वस्तुओं को न छूओ। क्या तुमने उसका नाम पूछा था? उसने एक निबन्ध लिखा है। वह खेत से अनाज काट लाता है। रसोइये ने समोसा भूना। चीजों को इधर-उधर मत बिखेरो। वह चारों ओर जल छिड़क रहा है। हमें मन्दिर को न छूना चाहिए।

शुद्ध करो—अहं त्वां पृच्छावः। भवन् मा स्पृश। बालकाः स्वास्थ्यमिच्छतु। गात्राणि मे त्वं मा स्पृशत। पयमुचौ अद्रिं स्पृशति। भृत्या चन्दनं लिप्येताम्। राजानः वन्दिनः मुञ्चतु। पर्वताः अभ्रान् स्पृशति।

भ्वादि

क्रियाघटन-सूत्र

[तुदादि के बीच तारा (❀)-चिह्नित जो साधारण सूत्र हैं, भ्वादि-गणीय धातु में भी उन सूत्रों का कार्य होगा।]

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में, यम् और दाण्—यच्छ्, घ्रा-जिघ्र, स्था—तिष्ठ, ध्मा—धम्, पा—पिब्, गम्—गच्छ्, ऋ—ऋच्छ्, दृश्—पश्य होता है।

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में ष्ठिव्—ष्ठीव, गुह्—गूह्, आ+चम्—आचाम्, सन्ज्—सज्, स्वन्ज्—स्वज्, दन्श्+दश्, सद्—सीद् और परस्मैपद में क्रम—क्राम् होता है।

चतुर्लकार में भ्वादिगणीय धातु के उत्तर विहित 'अ' परे रहने से, धातु के अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वर का गुण होता है; यथा—
(अन्त्यस्वर) जि+ति=जि+अ+ति=जे+अ+ति=जयति;
(उपधा लघुस्वर) शुच्+ति=शुच्+अ+ति=शोच्+अ+ति=शोचति।

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में, स्रन्स्—स्रंस्, भ्रन्श्—भ्रश्, क्रुप्—कल्प् और शन्स्—शंस् होता है।

भ्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु

पत् (पत्ऌ) पतने❀-गिरना

[पतति पत्रं वृक्षात्। (२) धर्मभ्रंशे; 'पलाण्डुं गृञ्जनञ्चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः'।]

❀ 'पत्ऌ गतौ' इति धातुपाठः; पत—आना—सकर्मक; यथा—'(सः) पपात पथः' (सः अर्जुनः पथः मार्गान् पपात जगाम इत्यर्थः)।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पतति	पततः	पतन्ति
म० पु०	पतसि	पतथः	पतथ
उ० पु०	पतामि	पतावः	पतामः

लोट्

प्र० पु०	पततु	पतताम्	पतन्तु
म० पु०	पत	पततम्	पतत
उ० पु०	पतानि	पताव	पताम

लङ्

प्र० पु०	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
म० पु०	अपतः	अपततम्	अपतत
उ० पु०	अपतम्	अपताव	अपताम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
म० पु०	पतेः	पतेतम्	पतेत
उ० पु०	पतेयम्	पतेव	पतेम

लृट्

प्र० पु०	पतिष्यति	पतिष्यतः	पतिष्यन्ति
म० पु०	पतिष्यसि	पतिष्यथः	पतिष्यथ
उ० पु०	पतिष्यामि	पतिष्यावः	पतिष्यामः

अनु + पत्—अनुसरणे। अभि + पत्-अभिधावने; आक्रमणे च। आ + पत्-आगमने, उपस्थितौ च। उत् + पत्-उड्डयने, (उड़ना)। नि + पत्—अधःपतने; उपस्थितौ च। प्र + नि + पत्—प्रणामे; प्रणिपतति। सन् + नि + पत्—मिलने। निर् + पत्—निर्गमे (निकलना); निष्पतति।

हस् (हसे) हसने—हँसना

[मधुरं हसति शिशुः। उपहासे—दोषदर्शनपूर्वकहासे (ठट्ठा करना) तु सकर्मकः; 'हसन्ति साधवश्चौरम्'।]

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसति	हसतः	हसन्ति
म० पु०	हससि	हसथः	हसथ
उ० पु०	हसामि	हसावः	हसामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसतु	हसताम्	हसन्तु
म० पु०	हस	हसतम्	हसत
उ० पु०	हसानि	हसाव	हसाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
म० पु०	अहसः	अहसतम्	अहसत
उ० पु०	अहसम्	अहसाव	अहसाम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
म० पु०	हसेः	हसेतम्	हसेत
उ० पु०	हसेयम्	हसेव	हसेम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
म० पु०	हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ
उ० पु०	हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः

अव + हस्, उप + हस्—उपहासे। परि + हस्—परिहासे।

भू सत्तायाम्—होना, रहना।
('सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानाम्')

लट्

प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः

लोट्

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

लङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

ऌट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

अनु+भू=बोधे। अभि+भू=पराजये। उत्+भू=उत्पत्तौ। परा+भू=पराभवे। परि+भू=अनादरे। प्र+भू=उत्पत्तौ; सामर्थ्ये च (सकना)। वि+भू+णिच्—चिन्तायाम्, ज्ञाने, प्रकाशने च; विभावयति। सम्+भू—सम्भावनायाम् (मुमकिन होना) उत्पत्तौ;

मिलने च। सम्+भू+णिच्—सम्मानने, चिन्तने, विवेचने च, 'विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन सम्भाव्य' इत्यत्र 'सम्भाव्य अलंकृत्य' इत्यर्थः।

स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ (अवस्थाने)—रहना

लट्

प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लोट्

प्र० पु०	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
म० पु०	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उ० पु०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ्

प्र० पु०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
म० पु०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उ० पु०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
म० पु०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उ० पु०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

अधि+स्था—स्थितौ; पराभवे; प्रभुत्वे च—(सकर्मक) "आश्रमबहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति"। अनु+स्था–करणे। अव+स्था–अवस्थितौ;

आत्मनेपदी, अवतिष्ठते । प्रति+अव+स्था—विरोधे, आक्षेपे, शङ्कायाम्, प्रातिकूल्ये च । आ+स्था—आश्रये; "संयमे यत्नमातिष्ठेत्"। उत्+स्था+उत्थाने (उठाना)। उप+स्था–उपस्थितौ (हाजिरहोना); आत्मनेपदी; उपतिष्ठते । प्र+स्था–प्रस्थाने (चला जाना); आत्मनेपदी; प्रतिष्ठते । सम्+स्था—अवस्थाने; आत्मनेपदी; सन्तिष्ठते ।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—वृक्ष से पत्ता गिरता है शिशु खूब हँसता है। आपकी पत्रिका प्राप्त कर (अवाप्य) मैं सुखी हुआ । अब यदि वृष्टि हो, तो प्रचुर शस्य होगा । उनका मंगल हो । तुम लोग चिरजीवी हो । तुम दोनों भाई यहाँ रहो । वे क्या घर में थे ? जो लोग सर्वदा गुरु के पास रहते हैं, उनका कभी अमंगल नहीं होता । यहाँ और अधिक दिन नहीं रहूँगा । तू मिथ्यावादी होगा, तो नरक में गिरेगा । आँधी में (तृतीया) वृक्ष से आम गिरते हैं । ऐसी आँधी से सब फल गिर जायेंगे । उसकी बात सुनकर (श्रुत्वा) सब हँस पड़े । नहुष ऋषियों के शाप से स्वर्ग से गिरा । दूसरे का दुःख देखकर (दृष्ट्वा) कभी हँसना नहीं चाहिए । अन्धे और लँगड़े का (द्वितीया) उपहास न करना । उसे देखकर मैं आसन से उठा ।

सकर्मक परस्मैपदी धातु

गम् (गमॢ) गतौ—जाना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म० पु०	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ० पु०	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

लोट्

प्र० पु०	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
म० पु०	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उ० पु०	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लङ्

प्र० पु०	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
म० पु०	अगच्छ	अगच्छतम्	अगच्छत
उ० पु०	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गच्छेत	गच्छेताम्	गच्छेयु:
म० पु०	गच्छे:	गच्छेतम्	गच्छेत
उ० पु०	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लृट्

प्र० पु०	गमिष्यति	गमिष्यत:	गमिष्यन्ति
म० पु०	गमिष्यसि	गमिष्यथ:	गमिष्यथ
उ० पु०	गमिष्यामि	गमिष्याव:	गमिष्याम:

गम् + णिच्—अवबोधने (समझाना); गमयति, "द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयत:" । अति + गम्—अतिक्रमे । अधि + गम्—प्राप्तौ; ज्ञाने च । अनु + गम—अनुसरणे । अप + गम्—अपसरणे, दूरीभावे । अव + गम्–ज्ञाने । आ + गम्–आगमने; प्राप्तौ च । उप + आ + गम्–मिलने । उत् + गम्—उद्भवे । प्रति + उत् + गम्—प्रत्युद्गतौ, सम्मानार्थं पुरोपुरोगमने । उप + गम्–प्राप्तौ । अभि + उप + गम् + स्वीकार । निर् + गम्—बहिर्गगने । परि + गम्–प्राप्तौ; ज्ञाने; वेष्टने च । सम् + गम्—मिलन; 'साधु: साधुभि: सह सङ्गच्छते' (२) योग्यतायाञ्च; 'तन्न सङ्गच्छते' ।

पा पाने—पीना

लट्

पिबति पय: पान्थ:

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पिबति	पिबत:	पिबन्ति
म० पु०	पिबसि	पिबथ:	पिबथ
उ० पु०	पिबामि	पिबाव:	पिबाम:

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
म० पु०	पिब	पिबतम्	पिबत
उ० पु०	पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ्

प्र० पु०	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
म० पु०	अपिबः	अपिबतम्	अपिबत
उ० पु०	अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
म० पु०	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
उ० पु०	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

लृट्

प्र० पु०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
म० पु०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उ० पु०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

दृश (दृशिर्) प्रेक्षणे (ज्ञाने, साक्षात्कारे)—देखना

पश्यति मन्दिरं पुरुषः । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः' ।

पशुः पश्यति गन्धेन, बुद्धया पश्यन्ति पण्डिताः ।
राजा पश्यति कर्णाभ्यां भूते पश्यन्ति बर्बराः ।।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लोट्

प्र० पु०	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
म० पु०	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
उ० पु०	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

लङ्

प्र० पु०	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
म० पु०	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उ० पु०	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
म० पु०	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उ० पु०	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

अनु + दृश्—आलोकने (देखना); आलोचनायाञ्च। उप, परि, प्र, सम् + दृश + णिच्—प्रदर्शने (दिखलाना); उपदर्शयति।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—बालक चन्द्र देखता है। कौन जल पीता है ? बच्चा तू जा; वह भी जाय, परन्तु मैं नहीं जाऊँगा। वे कल पढ़ने (पठितुं) गये थे; तू गया था क्या ? यदि श्याम आवे, तो मैं भी जाऊँगा। पहले इसे देखो, पीछे जल पीना। शरीर की पुष्टि के लिए घृत पान करना चाहिए। कभी मद्य नहीं पीना। प्रणिधान से क्या देखते हो ? मैं शीघ्र उस देश को देखूँगा। तू जल पीयेगा क्या ? अच्छी तरह इतिहास पढ़ो। मेहमान एक दिन से अधिक नहीं ठहरता। घर जाकर खाना खाओ। कल

पाठशाला देखने के लिए अधीक्षक महोदय आयेंगे। उत्तर प्रदेश-शासन की हिन्दी समिति उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकों पर प्रति वर्ष पुरस्कार देती है। विद्या विनय देती है। एक अक्षर की भी शिक्षा जिससे पाते हो उसे गुरुवत् मानो।

भ्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

अञ्च् (अञ्चु) गतौ; पूजने च—(१) जाना; (२) पूजा या आदर करना—अञ्चति; अञ्चिष्यति (१) "स्वतन्त्रता कथमञ्चसि ?" (२) "भीमोऽयं शिरसाऽञ्चति"।

अट् भ्रमणे—घूमना—अटति; अटिष्यति। "महीमटति परिव्राट्।" "अटति ग्रामीणो जनः।"

परि+अट्—पर्यटने; "तीर्थानि पर्यटस्व"। अर्च् पूजायाम्—पूजा करना—अर्चति, अर्चिष्यति। "रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च पादयोः।"

अर्ज् अर्जने—कमाना—अर्जति, अर्जिष्यति। "यदघमर्जति दाता"। "धनमर्जन्ति विद्वांसः।"

अर्द् गतौ; याचने; पीडने च—(१)जाना;(२)माँगना;(३) सताना, मारना—अर्दति, अर्दिष्यति। (२) 'शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि"।

अर्ह् योग्यत्वे; पूजने च—(१) योग्य होना, (२) पूजा करना—अर्हति; अर्हिष्यति। (१) दण्डमर्हति दुर्वृत्तः, (अकर्मक) "अर्हति विप्रो वेदं पठितुम्।"

'तुमुनन्त'—पद के साथ मध्यमपुरुष में और कभी प्रथमपुरुष में प्रयुक्त होने से, 'अर्ह्'—धातु—मृदु अनुज्ञा, उपदेश, वा विनीत प्रार्थना सूचित करता है; यथा—"द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्।" "नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्।" "तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति।"

अव् रक्षणे; प्रीणने च—(१) रक्षा करना; (२) प्रसन्न करना (खुश करना)—अवति; अविष्यति। (१) "अवतु वो गिरिसुता"; (२)"न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी।""अवतु मां पापेभ्यः।"

इ गतौ—अयति; एष्यति ।

उत्+इ—उदये; "उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् । वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ।" "अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीनाम्", "उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे ।"

उक्ष् सेचने—सींचना—उक्षति, उक्षिष्यति । उक्षति वृक्षं मेघः ।

अभि+उक्ष्, प्र+उक्ष्—समन्तात् वारिबिन्दुप्रक्षेपे (छिड़कना), "प्रोक्षितं भक्षयेन्माँसम्" ।

ऋ गतौ; प्राप्तौ च—(१)जाना, (२)पाना—ऋच्छति; अरिष्यति । (२) "ऋच्छति धनं कृती"; "चाण्डालपुक्कसानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति ।"

ऋ+णिच् (१) दाने; (२) स्थापने च; अर्पयति । (३) "अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः" "धनमर्पयन्ति राजानः।"

कष्-(१) हिंसायाम्; (२) घर्षणे (३) परीक्षणे (निकषोपरि घर्षणेन स्वर्णस्य)—कसौटी पर घिसकर सुवर्णकी परीक्षा करना । कषति, कषिष्यति । "छदहेम कषन्निवालसत् कषपाषाणनिभे नभस्तले ।"

कस् गतौ—कसति; कसिष्यति ।

वि+कस्—विकासे (खिलना और विस्तृत होना—अकर्मक) "विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम् ।" वि+कस्+णिच् विकासयति; "कोपकुसुमं व्यचीकसत् ।" "चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।" प्र+नि+कस्—प्रकाशे । निर्+कस्+णिच्—निःसारणे; निष्कासयति । "विद्युदुत्पादनगृहस्थो नलो धूम्रं निष्कासयति ।"

काङ्क्ष् (कांक्षि) वाञ्छायाम्—आकाङ्क्षा करना, चाहना, माँगना—काङ्क्षति; काङ्क्षिष्यति । "काङ्क्षति धनं दरिद्रः ।

आ+काङ्क्ष्—आकाङ्क्षायाम् ।

कित्+रोगापनयने (व्याधिप्रतीकारे)—इलाज करना—चिकित्सति; चिकित्सिष्यति ।

वि + कित्—संशये । "नाहं विचिकित्सामि तत्त्वनिर्णये ।"

कृष् आकर्षणे; विलेखने च—(१) खींचना,(२) जोतना—कर्षति; कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति । (१) कर्षन्ति तुरगा रथम्; (२) इक्षुक्षेत्रं कर्षति कृषीबलः । (३) प्रापणे द्विकर्मकः—कर्षति शाखां ग्रामम् ।

आ + कृष्, वि + कृष्—आकर्षणे । अप + कृष्—अपसारणे (हटाना), नाशने; "धैर्य्यं शोकोऽपकर्षति" (२) न्यूनीकरणे च (घटाना) । उत् + कृष्—उत्तोलने; उद्धरणे (निकाल लेना, छुड़ाना); आकर्षणे, वर्द्धने च (बढ़ाना) । निर् + कृष् बलाद्ग्रहणे, आहरणे च । प्र + कृष्, उत् + कृष्—कर्मकर्त्तरि—आधिक्ये, वृद्धौ, श्रेष्ठतायाम् । वि + प्र + कृष्-दूरीकरणे ।

क्रम् (क्रमु) पादविक्षेपे (गतौ)—कदम रखना, चलना-क्रामति क्राम्यति, क्रम्यति; क्रमिष्यति । आक्रमणे च, "कृष्णोरगौ पदा क्रामसि पुच्छदेशे ।"

अति + क्रम्—(१) उल्लङ्घने (पार होना); (२) अतिवाहने (व्यतीत करना, काटना); (३) अत्यये च (गुजरना—अकर्मक); यथा—(२) "आहारवेलां नातिक्रामेत्"; (३) अतिक्रामति देवार्चन-विधिवेलाम् ।" वि + अति + क्रम=उल्लङ्घने, भङ्गे (तोड़ना) । "कृच्छ्रेष्वपि न मर्यादां व्यतिक्रमेत्"। अप् + क्रम्—अपसरणे (हटना)। आ + क्रम्—आक्रमणे । उत् + क्रम्—उद्गमने, अतिक्रमे च । उप + क्रम्, प्र + क्रम्—आरम्भे, आत्मनेपदी—उपक्रमते, प्रक्रमते । निर् + क्रम्—निर्गमने । परा + क्रम्, वि + क्रम्—शौर्य्याविष्कारे (बहादुरी या हिम्मत दिखाना) "वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्" । परि + क्रम्–इतस्ततः पादचारे (चलना-फिरना) । सम् + क्रम्—प्रवेशे ।

खाद् भक्षणे—खाना—खादति; खादिष्यति । "खादति पृष्ठ-मांसम्" (चुगली खाता है) ।

गद् भाषणे–कहना–गदति; गदिष्यति । "वेदान् गदति विस्पष्टम्" । नि + गद्—कथने । "निगदति पूर्ववृत्तम् ।"

गुप् (गुपू) रक्षणे—रक्षा करना, बचाना—गोपायति, गोप्स्यति, गोपिष्यति, गोपायिष्यति। "गोपायन्ति कुलस्त्रिय आत्मानम् आत्मना"।

गै गाने (कीर्त्तने)-गाना-गायति; गास्यति। "गीतं गायति गायकः"। "प्राणरक्षणाच्च न परं पुण्यजातं जगति गीयते जनेन"। उत्+गै—उच्चैर्गाने। परि+गै—कीर्त्तने। वि+गै—निन्दायाम्।

घृष् (घुषु) घर्षणे—घिसना—घर्षति; घर्षिष्यति। घर्षति चन्दनं लोकः।

घ्रा—गन्धग्रहणे (आघ्राणे)—सूँघना-जिघ्रति; घ्रास्यति। जिघ्रति पुष्पं लोकः। "दीपनिर्वाणगन्धश्च न जिघ्रन्ति गतायुषः।"

अव, आ, उप+घ्रा—आघ्राणे।

चम् (चमु) भक्षणे—खाना; पीना—चमति, चमिष्यति। "चचाम मधु माध्वीकम्"। "चमति श्वानः अस्थिकम्"।

आ+चम्-आचमने; आचामति। पाने-"मण्डम् आचामति मृगः।"

चर् गतौ (भ्रमणे); भक्षणे च—(१) विचरना;(२) खाना;-चरति चरिष्यति। "नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति"; (२) गावः तृणानि चरन्ति। (३) आचरणे; "शम्बूको नाम तपश्चरति"।

अति+चर्—लङ्घने, अतिक्रमणे च। अनु+चर्—अनुगमने; सेवायाञ्च। अभि+चर्—(१) अतिक्रमे, "पतिं या नाभिचरति"। (२) मारणे च; "श्येनेनाभिचरन्"। वि+अभि+चर्—अतिक्रमे; अन्यथाभावे च। आ+चर्—व्यवहारे; "जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्"। सम्+आ+चर्—अनुष्ठाने, करणे। उत्+चर्—उदये (उठना); मूत्रपुरीषोत्सर्गे, उच्चारणे च। उत्+चर्+णिच्—उच्चारणे उच्चारयति। उप+चर्—पूजायाम्, सेवायाम्। परि+चर्—सेवायाम्। वि+चर्—भ्रमणे। वि+चर्+णिच्—मीमांसायाम्, निर्णये; विचारयति। सम+चर्—गमने; करणकारक का प्रयोग होने से आत्मनेपदी—अश्वेन सञ्चरते।

चुम्ब्—(चुबि) वक्त्रसंयोगे (चुम्बने) चूमना—चुम्बति, चुम्बिष्यति। चुम्बति बालं माता। "श्मश्रुकण्टक-वेधेन बाले रुदति तत्पिता। चुम्बत्येव न सा प्रीतिः बालार्थे स्वार्थ एव सा।"

चूष-पाने—चूसना—चूषति। चूषत्याम्रं लोकः।

जप्—मानसे (हृदुच्चारे)—जप करना—जपति; जपिष्यति "मन्त्रं जपति साधकः।"

उप+जप्—भेदे।

जल्प कथने—कहना, बात करना—जल्पति; जल्पिष्यति। "एकेन जल्पन्त्यनल्पाक्षरम्"।

जि—अभिभवे; उत्कर्षप्राप्तौ च—(१) जीतना (२) जययुक्त होना (अकर्मक)—जयति; जेष्यति। (१) जयति शत्रुं बली; (२) "जयति रघुवंशतिलकः।"

निर्+जि—अभिभवे; परा+जि—पराजये; आत्मनेपदी; पराच जयते। वि+जि—(१) पराभवे (सकर्मक); (२) उत्कर्षप्राप्तौ (अकर्मक) आत्मनेपदी; विजयते; यथा—(१) "चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते।" (२) "भो राजन्! विजयतां भवान्।"

तक्ष् (तक्षु)—तनू करणे (कृशीकरणे)—छीलना; कतरना—तक्षति, तक्ष्णोति; तक्षिष्यति, तक्ष्यति। तक्षति तक्ष्णोति काष्ठं तक्षा।

तप्—सन्तापे (दाहे, शोके)—सन्तापित करना (दुःखाना—सकर्मक) सन्तप्त होना (दुःख पाना—अकर्मक)—तपति; तप्स्यति। "तपति तनुगात्रि! मदनस्त्वाम्"। "तपति न सा किसलयशयनेन"। प्रकाशेऽपि—रविस्तपति। अर्जनार्थे आत्मनेपदं यक् च—"तप्यते तपस्तापसः।"

अनु+तप्—कर्मकर्त्तरि—पश्चात्तापे (अकर्मक) अनुतप्यते। परि+तप्—परितापे, व्यथायाम् (कर्मकर्त्तरि); 'परितप्यते नोत्तमः परवृद्धिभिः'। सम्+तप्—सन्तापे (कर्मकर्त्तरि); "दिवाऽपि मयि निष्क्रान्ते सन्तप्येते गुरू मम"।

तॄ—तरणे (अतिक्रमणे); प्लवने (जलोपरि स्थितौ) च—(१) पार होना; (२) तैरना (अकर्मक)—तरति; तरिष्यति। (१) तरति नदीं भेलकेन पान्थः; "तरति सकलदुःखं वामनं भावयेद्यः।" (२) तरति शुष्ककाष्ठं जले।

अति+तॄ—अतिक्रमे। अव+तॄ—अवरोहणे (उतरना)। उत्+तॄ, निर्+तॄ—अतिक्रमे; निस्तरति। प्र+तॄ+णिच्—वञ्चने (ठगना); प्रतारयति। वि+तॄ—दाने। सम्+तॄ—सन्तरणे (तैरना); अतिक्रमे च; "सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।"

त्यज्—त्यागे—छोड़ना—त्यजति; त्यक्ष्यति। त्यजति दुष्टलोकं जनः। परि+त्यज्, सम्+त्यज्—वर्जने।

दंश् (दन्श्)—दंशने (दन्तव्यापारे)—डसना, काटना; दशति, दङ्क्ष्यति। "पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः"; "दशति बिम्बफलं शुकशावकः।"

दह्—भस्मीकरणे, दाहे; सन्तापे च—(१) जलाना; (२) दुःख देना—दहति; धक्ष्यति। (१) दहत्यग्निः काष्ठम्; (२) "आत्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति"।

निर्+दह्—दाहे; प्रणाशे च, "एनो निर्दहत्याशु तपसा"।

दा (दाण्) दाने—देना—यच्छति; दास्यति।

प्र+दा प्रदाने। प्रयच्छति।

द्रु—गतौ (पलायने); द्रवीभावे च–(१) जाना, भागना; (२) पिघलना (अकर्मक)—द्रवति; द्रोष्यति(१)"नद्यः समुद्रं द्रवन्ति"। "रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति"(२)"द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः"।

अनु+द्रु—अनुसरणे। उप+द्रु—अभिमुखधावने आक्रमणे च। प्र+द्रु, वि+द्रु—पलायने।

धे (धेट्) पाने—पीना—धयति; धास्यति। "न वारयेद् गान्धयन्तीम्"। "धयति पानीयं वटुः"।

ध्मा + शब्दे (शङ्खादिवादने); अग्निसंयोगे (अग्नेरुज्ज्वलीकरणे, अग्निफूत्कृतौ च) फूँकना, धौंकना—धमति; धास्यति। "धमति शङ्खं जनः" (सशब्दं करोति); "धमति सुवर्णं वणिक्" (अग्नि-संयुक्तं करोति); "को धमेच्छान्तश्च पावकम्" ?

आ + ध्मा—स्फीतौ (फूलना); दर्पाध्मात; "अध्मातमुदरं भृशम्"।

ध्यै–चिन्तने—ध्यान करना—ध्यायति; ध्यास्यति। "ध्यायति विष्णुं वैष्णवः" 'ध्यायत्यनिष्टं चेतसा'।

अनु + ध्यै—चिन्तायाम्; अनुग्रहे च। नि + ध्यै–स्मरणे; दर्शने च; "चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः"।

नम् (णम्)–नतौ, नमस्करणे; नम्रीभावे च;—(१) नमस्कार करना (सकर्मक); (२) झुकना (अकर्मक)—नमति; नमस्यति। (१) नमति गुरुं शिष्यः (२) "नमन्ति फलिनो वृक्षाः"।

अव, आ + नम्—अवनतौ। उत् + नम्—उन्नतौ। उप + नम्—उपस्थितौ। परि + नम् + परिपाके, जीर्णीभावे–'शाखाभृतां परिणमन्ति न पल्लवानि", रूपान्तरीभावे च (तृतीया के साथ) "क्षीरं जलं वा स्वयमेव दधिहिमभावेन परिणमते"।

वि + परि + नम्—विरूपावस्थायाम्। प्र + नम्—प्रणामे (प्रणमति चरणाब्जे)।

निन्द् (णिदि)–कुत्सायाम्—निन्दा करना—निन्दति; निन्दिष्यति। निन्दति दुष्टं लोकः, 'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।"

पठ्–पाठे (पठने)–पढ़ना—पठति; पठिष्यति। पठति श्लोकं बालकः; पठिष्यामि राष्ट्रभाषाम्।

भण—कथने—कहना—भणति; भणिष्यति। "छिन्नबन्धे मत्स्ये पलायिते निर्विण्णो धीवरो भणति—धर्मो मे भविष्यतीति"।

म्ना–अभ्यासे (पौनःपुन्येनानुशीलने) आवृत्ति करना, दुहराना—मनति; म्नास्यति। "मनति सन्ध्यां ब्राह्मणः"।

आ + मन्—आवृत्तौ, उक्तौ च; "प्रायश्चित्त इव राजदण्डेऽप्येनसो निष्क्रयमामनन्ति धर्माचार्य्याः" ।

रक्ष्-पालने (रक्षणे)—पालना, बचाना, रक्षा करना—रक्षति; रक्षिष्यति । "आत्मानं सततं रक्षेद् दारैपि धनैरपि" ।

लप्-कथने-कहना-लपति; लपिष्यति । "लपति स्निग्धया वाचा ।"

अप + लप्—अपह्नवे, अस्वीकारे (इनकार करना) । अभि-लप्-कथने । आ + लप्—आलापे (बातचीत करना) प्र + लप्—प्रलापे, अनर्थवाक्ये (बकना) । वि + लप्—विलापे (अफसोस करना) । सम् + लप्—मिथोभाषणे ।

लिङ्ग (लिगि) गतौ—लिङ्गति, लिङ्गिष्यति । "लिङ्गति माता पुत्रम्" । आ + लिङ्ग—आलिङ्गने (गले लगाना) ।

वद् कथने—बोलना—वदति, वदिष्यति । "सत्यं वदति सर्वत्र"; "वद, प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ।"

वद् + णिच्—वादने (बजाना); वादयति; "वादयते मृदु वेणुम्" । अनु + वद्—अनुकरणे; पुनः कथने च । अप + वद्-निन्दायाम् । अभि + वद् + णिच्—अभिवादने, प्रणामे च; "भगवन् अभिवादये"; "तात ! प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते" । परि + वद्—निन्दायाम् । प्रति + वद्—प्रतिवचने (जबाब देना) । वि + वद्—कलहे; आत्मनेपदी; विवदते । सम् + वद्—सादृश्ये । वि + सम् + वद्—वैलक्षण्ये, विरोधे !

वम्-(टुवम्)-उद्गिरणे (वमने)—उबकना-वमति, वमिष्यति । "फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलम्" ।

उत् + वम्—निःसारणे प्रकटने ।

वाञ्छ् (वाछि)—कामे—इच्छा करना—वाञ्छति, वाञ्छिस्यति । "(धनुर्भृतस्तस्य) प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ।"

वृष् (वृषु)—सेचने (बर्षणे)—बरसाना—वर्षति; वर्षिष्यति । "वर्षतीवाञ्जनं नभः" । "काले वर्षन्तु मेघाः" (अकर्मक) ।

व्रज् गतौ—(१) जाना; (२) पाना–व्रजति; व्रजिष्यति। (१) "नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्य्यैः"; "इयं व्रजति यामिनी, त्यज नरेन्द्र ! निद्रा-रसम्"; (२) 'व्रजति शुचिपदं त्वयि प्रीतिमान्"; "मामेकं शरणं व्रज"।

अनु+व्रज्–अनुगमने; समीपगतौ, आश्रये, सहवासे च–"मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति"। परि+व्रज्—सन्न्यासपूर्वकभ्रमणे। प्र+व्रज्—सर्वसङ्गत्यागपूर्वक–चतुर्थाश्रमग्रहणे। प्र+व्रज्+णिच्–प्रवासने, निर्वासने; "चतुर्दश समा रामं प्राव्राजयत्"।

शंस् (शन्सु)—कथने; स्तुतौ च—(१) कहना; (२) प्रशंसा करना शंसति; शंसिष्यति। (१) 'न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितम्"; (२) "साधु साध्विति भूतानि शशंसुर्मारुतात्मजम्"।

आ+शंस्—कथने। प्र+शंस्—प्रशंसायाम्।

शुच्–शोके (पुत्रादेरदर्शनाद् दुःखानुभवे)—शोक करना, गम खाना—शोचति; शोचिष्यति। "न शोचति सदाचारी यो मृतानपि बान्धवान्" "मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि भारत।"

अनु+शुच्—अनुशोचने (अफसोस करना); "नष्टं मृतमतिक्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिताः"। "गतासूनगतासूँश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः"।

ष्ठिव (ष्ठिवु) निरसने (मुखेन श्लेष्मादेर्वमने)—थूकना, उगलना—ष्ठीवति; ष्ठेविष्यति। "पीतमिन्दुं ष्ठीवाम्"। यह दिवादिगणीय परस्मैपदी भी होता है; ष्ठीव्यति।

नि+ष्ठिव्—निष्ठीवने (थूकना); निक्षेपे च।

सिध् (षिधु) गत्याम्—जाना—सेधति; सेधिष्यति।

सिध् (षिधू) शासने; माङ्गल्ये च—सेधति, सेत्स्यति, सेधिष्यति।

नि+सिध्, प्रति+सिध्—निवारणे (रोकना); निषेधति प्रतिषेधति।

सृ-गतौ—चलना—सरति (वेगगमने—धावति), सरिष्यति।

अनु+सृ—अनुगमने। अप+सृ—पलायने (भागना, हटना

सरकना)। अभि + सृ–सङ्केतस्थानगमने ('णिच्'—भी होता है)। उत् + सृ + णिच्—दूरीकरणे; उत्सारयति। उप + सृ—समीपगमने। निर् + सृ—निष्क्रमणे (निकलना); निःसरति। प्र + सृ, वि + सृ—व्याप्तौ। सम् + सृ—देहधारणे।

सृप् (सृप्लृ)—गतौ—सर्पति; सप्स्र्यति, स्रप्स्यति।

अप + सृप्–अपसरणे। उत् + सृप्–ऊर्ध्वगमने; उल्लङ्घने च। उप + सृप्—समीपगमने। प्र + सृप्, वि + सृप्–गमने; विस्तारे च (फैलना)। सम् + सृप्—सङ्क्रमणे, सञ्चारे।

स्कन्द (स्कन्दिर्)—गतौ, शोषणे च—स्कन्दति, स्कन्दिष्यति। सशब्दोऽयं स्कन्दति वनम्।

अव + स्कन्द्, आ + स्कन्द्—आक्रमणे। प्र + स्कन्द्—लम्फप्रदाने (कूदना); पतने च—"तस्य रेतः प्रचस्कन्द"। स्कन्द् + णिच्—निःस्सारणे, विमोचने, पातने; "एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्"।

स्मृ—चिन्तायाम् (स्मरणे)—याद करना—स्मरति; स्मरिष्यति। हरिं स्मरति मुमूर्षुः।

वि + स्मृ—विस्मरणे (भूलना)।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—राष्ट्रपति चले गये। चोर भागा। नमस्य को नमस्कार करना उचित है। किसी को कटुवाक्य नहीं कहना चाहिए। साधु लोग तीर्थ पर्य्यटन करते हैं। जो धर्म का (द्वितीया) आचरण करता है, छोटे-बड़े सब उसका (द्वितीया) आदर करते हैं। पुत्र-शोक से कौशल्या देवी ने विलाप किया था। शरणागत का (द्वितीया) परित्याग करना नहीं चाहिए। प्रातःकाल में प्रतिदिन (अनुनिम्) अपना पाठ पढ़ना उचित है। ईश्वर हमारी (द्वितीया) रक्षा करेंगे। जननी पुत्र के मुख का चुम्बन करती है। राजा दशरथ ने राम के लिये अत्यन्त शोक किया। जापान पुनः बलवान हो गया है। ब्रह्मदेश-निवासी बौद्ध हैं।

भ्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु

इङ्ग (इगि) गतौ (चलते, कम्पने)-चलना, हिलना—इङ्गति, इङ्गिष्यति। "त्वया सृष्टमिदं विश्वं यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति।" "यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते" आत्मनेपदम् आर्षम्।

एज् (एजृ)—कम्पने—काँपना, विचलित होना-एजति; एजिष्यति। "धृतराष्ट्रोऽयमेजति"।

कूज्—अव्यक्तशब्दे (कूजने)—चहचहाना—कूजति; कूजिष्यति। कूजति कोकिल:; 'चुकूज कूले कलहंसमण्डली।"

क्रन्द् (क्रदि)—रोदने—रोना—क्रन्दति; क्रन्दष्यति। "मा पित: क्रन्द मा तात"। (२) सकरुणाह्वाने च (रोकर पुकारना-सकर्मक) "क्रन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतान्"।

आ+क्रन्द्+रोदने; आह्वाने च।

क्रीड्—विहारे (खेलने)-खेलना—क्रीडति, क्रीडिष्यति। क्रीडति बाल: शिशुभि:।

क्रुश्—रोदने, आह्वाने च (चीत्कारे) च—(१) रोना, (२) चिल्लाना—क्रोशति, क्रोक्ष्यति। (२) "एष क्रोशति दात्यूह:"।

आ+क्रुश्—(१) चीत्कारे, (२) भर्त्सने च, "शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति"। वि+क्रुश्—चीत्कारे, "आक्रोश विक्रोश, लपाधिचण्डम्"।

क्वण् शब्दे (वीणादिरवे)—झङ्कारना—क्वणति, क्वणिष्यति। "क्वणन्मणिनूपुरौ"।

क्षर्—स्रवणे, मोचने च—(१) बहना, झरना, टपकना, (२) बहाना, निकालना (सकर्मक)—क्षरति, क्षरिष्यति। (१) क्षरति क्षतजं क्षतात्, (२) "स्रोतोभिस्त्रिदशगजा मदं क्षरन्त:।"

खेल् (खेऌ) क्रीडायाम्—खेलना—खेलति, खेलिष्यति। खेलति सखिजन:।

"भास्वत्कन्या सैका धन्या,
यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत् ।"

गर्ज्—शब्दे (गर्जने)—गरजना । गर्जति, गर्जिष्यति । गर्जति सिंहः, गर्जति वारिदपटली, "गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।"

गल्—क्षरणे, पतने च—(१) झरना, (२) गिरना—गलति, गलिष्यति । (१) "स्वयं हाहाकारा गलति जलधारा कुवलयात्" (२) "प्रतोदा जगलुः" । (३) नाशे; "किं शास्त्रं ? श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदयः ।"

निर+गल्—निःसरणे; निष्कषर्पे च—इति निर्गलितोऽर्थः । वि+गल्—भ्रंशे ।

गुञ्ज् (गुजि)-अव्यक्तशब्दे (गुञ्जने)—गुनगुनाना, भिनभिनाना-गुञ्जति; गुञ्जिष्यति । भ्रमरोऽयं गुञ्जति भृशम् ।

अपि दलदरबिन्द ! स्यन्दमानं मरन्दं तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गाः" ।

ग्लै-विषादे क्लमे च—उदास होना, थकना—ग्लायति, ग्लास्यति ग्लायति लोकः शोकात् ।

चञ्च् (चञ्चु) चलने—चलना, हिलना—चञ्चति । "चण्डि चञ्चन्ति वाताः" ।

चल्-कम्पने (अस्थैर्ये) गतौ च—(१) काँपना (अस्थिर होना) हिलाना; (२) जाना (सकर्मक) चलति, चलिष्यति । (१) "न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्", (२) "चल सखि ! कुञ्जम्" ।

उत्+चल्—प्रस्थाने । प्र+चल्—गमने, कम्पे प्रसिद्धौ च । वि+चल्—कम्पे, क्षोभे भ्रंशे च ।

च्युत् (च्युतिर्) क्षरणे (स्खलने च)—चूना, गिरना-च्योतति, च्योतिष्यति । च्योतति रसं पात्रात् ।

जीव् (१) प्राणधारणे (जीवने)—जीता रहना—जीवति; जीविष्यति। "त्वयि जीवति जीवामि।" (२) जीविकानिर्वाहे (गुजारा करना); "स्वाहारात् किञ्चिदुद्धृत्य ददाति, तेनासौ जीवति।

चौराः प्रमत्ते जीवन्ति, व्याधितेषु चिकित्सकाः।
प्रमदाः कामयानेषु, यजमानेषु याचकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः॥

अनु + जीव्, उप + जीव्—आश्रये। उत् + जीव-पुनर्जीवने। सम् + जीव—जीवने।

ज्वर् रोगे—रोग-ग्रस्त होना, बीमार होना; ज्वर युक्त होना—ज्वरति; ज्वरिष्यति। "एतस्मिन् भ्रान्तिकालेऽयं शरीरेषु ज्वरत्स्वथ। स्वयमेव ज्वरामीति मन्यते हि कुटुम्बिवत्।"

ज्वल् दीप्तौ (ज्वलने) —जलना-ज्वलति; ज्वलिष्यति। ज्वलति वह्निः।-दाहे; "धिगिदमंशुकं ज्वलति।"

उत् + ज्वल्, प्र + ज्वल्—दीप्तौ।

दल् (१) भेदे—फटना-दलति; दलिष्यति। "दलति न सा हृदि विरहभरेण।"—(२) विकासे (खिलना); "दलन्नवनीलोत्पलश्यामलं देहसौभाग्यम्।"

ध्वन् रवे-ध्वनि करना; बजाना-ध्वनति, ध्वनिष्यति। "अयं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः।"

नट् नर्तने—नाचना—नटति। केन सह नटिष्यसि ?

नट् + णिच्—नटयति। "तत् त्वां पुनः पलितवर्णकभाजमेनं नाटयेन केन नटयिष्यति दीर्घमायुः।"

नद् (णद्) शब्दे—नाद करना—नदति। नदति घण्टा। "नवाम्बुमत्ताः शिखिनो नदन्ति।"

नन्द् (टुनदि) हर्षे—खुश होना—नन्दति; नन्दिष्यति। "ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीः।"

अभि + नन्द्—सत्कारे; प्रशंसायाम्; अनुमोदने; कामनायाञ्च।

आ + नन्द्—आनन्दे । प्रति + नन्द्—संवर्द्धने, सम्मानने । "भक्षये-दशनं नित्यं······प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।"

फल् (१) निष्पत्तौ (पूर्त्तौ)—फलना, सफल होना–फलति; फलिष्यति । "भाग्यं फलति सर्वत्र ।" (२) निष्पादने (सकर्मक); "वाल्मीकिः फलति स्म दिव्या गिरः ।"

प्रति + फल्—प्रतिबिम्बने । मुखं प्रतिफलति दर्पणे ।

फुल्ल् विकासे—फूलना—फुल्लति । फुल्लति मल्लीकलिका ।

भ्रम् चलने (भ्रमणे)—घूमना—भ्रमति; भ्रमिष्यति । "भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा ।" क्वचित् सकर्मकोऽपि; "दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस ! चापलेन ।" "भिक्षां भ्रमति भिक्षुकः ।"

उत् + भ्रम्—परिभ्रमणे ।

मील् निमेषे (सङ्कोचे)—मूँद जाना, सिकुड़ना—मीलति; मीलिष्यति । मीलति चक्षुः (पक्ष्मभिरावृतं स्यात्); "मीलन्ति रिपुनारीणां मुखपद्मवनानि च ।"

उत् + मील्—उन्मेषे, विकासे । नि + मील—मुद्रणे ।

मूर्च्छ् (मूर्च्छा) मोहे (ज्ञानरहितीभावे); वृद्धौ च—(१) बेहोश होना; (२) बढ़ना—मूर्च्छति; मूर्च्छिष्यति (१) "मूर्च्छति रोगी मुहुर्मुहुः ।" (२) "मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य ।"

म्लै कान्तिक्षये—मलिन होना, कुम्हलाना—म्लायति, म्लास्यति । म्लायति चन्द्रो दिवसे । "घनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता ।"

यम् (१) उपरमे (निवृत्तौ)—उपरत या निवृत्त होना, परहेज करना–यच्छति; यंस्यति । यच्छति पापात् साधुः । (२) निग्रहे च (सकर्मक); "धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।"

आ + यम्—दीर्घीकरणे । उत् + यम्–उत्तोलने, उद्योगे च । उप + यम्–विवाहे, स्वीकारे च । सब आत्मनेपदी, यथा–आयच्छते, उद्यच्छते, उपयच्छते । नि + यम्—दमने, निवारणे, शासने, व्यवस्थापने । प्र + यम्—दाने । सम् + यम्—नियमने, बन्धने च ।

रस् शब्दे—आवाज करना—रसति, रसिष्यति । "करीव वन्यः

परुषं ररास;" "राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः।" "रसतु रसना।"

रुह् उद्भवे—उत्पन्न होना—रोहति; रोक्ष्यति। "छिन्नोऽपि रोहति तरुः।"

रुह् + णिच्–रोपणे (रोपना; बोना); रोहयति, रोपयति। अधि + रुह् आ + रुह्—आरोहणे (चढ़ना—सकर्मक), "मूर्द्धानमधिरोहति" "सिंहासनमारुरोह।" अव + रुह्—अवतरणे (उतरना)। प्र + रुह्, वि + रुह्, सम् + रुह्–उत्पत्तौ; "न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति।" वि + रुह् + णिच्—व्रणप्रशमने (घाव आराम करना); व्रणं विरोपयति।

लग् (लगे) सङ्गे—लगना—लगति; लगिष्यति। "ओष्ठेऽधरो लगति" "हंसस्य पश्चाल्लगति स्म।"

लड् विलासे (क्रीडायाम्)—खेलना—लडति। ड-लयोरेकत्वस्मरणात्—ललति। "पनसफलानीव वानरा ललन्ति।" "गजकलभा इव बन्धुला ललामः।"

लस् दीप्तौ—चमकना—लसति; लसिष्यति। "मुक्ताहारेण लसता हसतीव स्तनद्वयम्।" "भण मसृणवाणि! करवाणि चरणद्वयं सरसलसदलक्तकरागम्।"

उत + लस्—स्फुरणे। वि + लस्—प्रकाशे; क्रीडायाञ्च।

वल्ग् गतौ (चलने; प्लुतगतौ) (१) हिलना; (२) कूदना, उपटना, सरपट जाना—वल्गति; वल्गिष्यति। प्रतियोगिनोऽश्वा वल्गन्ति; (१) "वल्गदुत्तरीयःस्तनकम्प्रकञ्चुकम्।" (२) "ववल्गुश्च पदातयः।" "वल्गु वल्गन्ति सूक्तयः।" (३) नर्त्तने (नाचना); "द्वारे हेमविभूषणाश्च तुरगा वल्गन्ति यद् दर्पिताः।"

वस् निवासे—बसना; रहना–वसति; वत्स्यति। "वसति वने वनमाली।" "वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि।"

अधि + वस्, आ + वस्—वासे (सकर्मक)।

उप + वस्–उपवासे, भोजननिवृत्तौ; "एकादशीमुपवसन्ति निरम्बुभक्षाः।" नि + वस्—निवासे। निर् + वस् + णिच्–निर्वासने, नगराद्-

बहिष्करणे (निकाल देना); निर्वासयति। प्र + वस्—विदेशावस्थाने। प्र + वस् + णिच्, वि + वस् + णिच्—निवासने। प्रति + वस्–निवासे। "अस्मिन् वने सिंहः प्रतिवसति।"

वेल्ल् कम्पने–हिलना, चलना-वेल्लति; वेल्लिष्यति। भयाद् वेल्लति बालिकाः। "उद्वेल्लन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः।"

श्च्युत् (श्च्युतिर्) क्षरणे—टपकना–श्च्योतति; श्च्योतिष्यति। मधुनो धाराः श्च्योतन्ति।

सञ्ज् (षन्ज्) सङ्गे (संश्लेषे)—सटना, चिपटना—सजति; सङ्क्षयति। "सजति वपुषि वासः।"

अनु + सञ्ज्—सम्बन्धे; आसक्तौ (कर्मकर्त्तरि); अनुषज्यते; "धर्म-पूते च मनसि नभसीव न जातु रजोऽनुषज्यते।" अव + सञ्ज्–योजने, स्थापने। प्र + सञ्ज्–आसक्तौ; "प्रसजन्निन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति।" कर्मकर्त्तरि—प्रसङ्गे, सम्बन्धे—प्रसज्यते।

सद् (षद्लृ) विषादे (आकुलीभावे) उदास होना—सीदति; सत्स्यति। "सीदति राधा वासगृहे।" नि + सद् उपवेशने; नाशे, क्लेशे; क्लान्तौ च।

अव + सद्—श्रान्तौ; विनाशे च। आ + सद्—सन्निकर्षे (निकट आना)। उत् + सद्—नाशे। उत् + सद् + णिच्—उन्मूलने; उत्सादयति उप + सद्–समीपगतौ। नि + सद्–उपवेशने; "उष्णालुः शिशिरे निषी-दति तरोर्मूलालवाले शिखी।" प्र + सद्—अनुग्रहे; प्रसन्नतायाम् (प्रसन्न होना); निर्मलीभावे च (निर्मल होना)। वि + सद्—विषादे; विषीदति।

स्खल्—सञ्चलने (स्खलने, भ्रंशे)—स्खलित होना, खिसकना, फिसलना, रपटना—स्खलति; स्खलिष्यति। स्खलति चरणं भूमौ। स्खलति पत्रं वृक्षस्य।

स्रु क्षरणे—बहना, झरना—स्रवति; स्रोस्यति। नहि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रम् (मधु)।

स्वन् शब्दे—शब्द करना—स्वनति। 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः।"

ह्रस् अल्पीभावे-घटना-ह्रसति, ह्रसिष्यति। "आयुर्ह्रसति पादशः।" गोमत्याः प्लावनजलं मन्दं मन्दं ह्रसति।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—मेरा भाई पुल से गिर पड़ा। राजा दशरथ कैकेयी के उस कठोर वाक्य से मूर्च्छित हुए। इस वर्ष दुर्भिक्ष के कारण हम अतिकष्ट से जीते हैं। सर्वदा साधु के सङ्ग में वास करना चाहिये। इस स्थान में प्रतिदिन लड़के खेलते हैं। तुम्हारे व्यवहार से वे सर्वदा सन्तप्त होते हैं। वहाँ बहुत आम के पेड़ उगे थे। मेरी बात से वे हँसेंगे; परन्तु मेरा चित्त उससे कुछ भी विचलित नहीं होगा। मैं इस गाँव में नहीं बसूँगा। कल ललिता चली गयी। उसका भतीजा ससुराल गया था। मेरी नानी का देहान्त हो गया। बहिन का देवर अभी पढ़ता है। भारत का सिर जवाहरलाल ने संसार के दरबार में ऊँचा किया है। संस्कृत विश्वविद्यालय में गणित की भी शिक्षा होती है। उपदेश देने से मूर्ख खफा होते हैं। लालच बुरी बला है। लोभ सर्वथा त्याज्य है।

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

लभ् प्रापणे

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

आ + लभ्—प्राप्तौ, स्पर्शे, हिंसायाञ्च । उप + आ + लभ्–भर्त्सने । उप + लभ्–प्राप्तौ; अनुभवे; ज्ञाने च । वि + प्र + लभ् + प्रतारणायाम् ।

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अय् गतौ जाना, चलना—अयते; अयिष्यते ।

प्र, परा + अय्—पलायने (भागना); प्लायते, पलायते ।

ईक्ष् (१) दर्शने—देखना–ईक्षते, इक्षिष्यते । ईक्षते चन्द्रः लोकः (२) पर्य्यालोचने (सोचना, विचारना) "न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते" ।

अप + ईक्ष्–अपेक्षायाम् (ठहरना, प्रतीक्षा करना) । अव + ईक्ष = परिदर्शने; आलोचनायाञ्च । उप + ईक्षु—अवज्ञायाम् । निर् + ईक्ष्—निरीक्षणे (देखना) । परि + ईक्ष्—परीक्षायाम् (जाँचना) । प्र + ईक्ष्–दर्शने (दर्शन करना) उत् + प्र + ईक्ष्—उत्प्रेक्षणे, सम्भावने (अनुमान करना) । प्रति + ईक्ष्—प्रतीक्षायाम् (इन्तजार करना) । वि + ईक्ष्–दर्शने । सम् + ईक्ष्—परिदर्शने ।

ऊह वितर्के (अध्याहारे; सम्भावने)—(सन्देहाद् विचारो वितर्क) विचार करना; अनुमान करना–ऊहते; ऊहिष्यते । "ऊहते धर्मधीरः ।" "अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः" (परस्मैपदी) ।

अप + ऊह—अपनोदने (दूर करना); "हुङ्कारेणैव धनुषः स हि, विघ्नानपोहति ।" (उपसर्ग के योग से विकल्प से आत्पनेनदी होता है ।) वि + अप् + ऊह्—विनाशे; "आदित्यस्तमो व्यपोहति ।" प्रति + ऊह्–विघाते । वि + ऊह्—रचनायाम्, विन्यासे । सम् + ऊह्—समाहारे, एकत्रीकरणे ।

कत्थ् श्लाघाया (आत्मगुणाविष्करणे)—अपनी प्रशंसा करना; गर्व करना (अकर्मक)—कत्थते; कत्थिष्यते । "कत्थते गुणिन गुणी ।" "यः स्वप्नेनापि नात्मीयं गुणं कुत्रापि कत्थते ।" "कृत्वा कत्थिष्यते न कः ?"

वि + कत्थ्—विकत्थने, श्लाघायाम्, निजगुणख्यापने(घमंड करना)

कम् (कमु) वाञ्छायाम्—कामना करना—कामयते। "चेतो न-लङ्कामयते मदीयम्।"

क्षम् (क्षमूष्) सहने (क्षमायाम्; शक्तौ च)—(१) सहना, क्षमा करना; (२) सकना (अकर्मक)—क्षमते; क्षमिष्यते, क्षंस्यते (१) "क्षमस्व परमेश्वर !" "नाज्ञाभङ्गकरान् राजा क्षमेत स्वसुतानपि।" (२) "ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः"

गर्ह् कुत्सायाम्—निन्दा करना—गर्हते; गर्हिष्यते।

वि+गर्ह्—निन्दायाम्।

गाह् (गाहू) विलोडने (प्रवेशे; प्राप्तौ च)—(१) हिलोरना, आलोडन करना;(२) घुसना, (३) प्राप्त होना—गाहते;गाहिष्यते, घाक्ष्यते। (१)"गाहन्तां महिषा निपानसलिलम्।" (२) "कदाचित् काननं जगाहे।" (३) "मनस्तु मे संशयमेव गाहते।"

अव+गाह्—निमज्जने, स्नाने; प्रवेशे च;"प्रातरवगाहते मुनिः।" "तमोऽपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।" वि+गाह्—निमज्जने; प्रवेशे, विलोडने च।

ग्रस् (ग्रसु) (१) भक्षणे—खाना—ग्रसते; ग्रसिष्यते। "यावतो ग्रसते ग्रासान्।" (२) आक्रमणे; "हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्।"

ढौक् (ढौकृ) गतौ—जाना; "यान्तं वने रात्रिचरी डुढौके।"

ढौक्+णिच् प्रापणे (ले जाना); "तन्मांसञ्चैव गोमायोस्तैः क्षणादाशु ढौकितम्।" उप+ढौक्—उपढौकने, उपहारे (भेंट देना, उपहार देना); "एकैकं पशुमुपढौकयामः।"

त्रै* (त्रैङ्) पालने (रक्षणे)—त्राण करना—त्रायते; त्रास्यते। "क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।"

परि+त्रै—परित्राणे (रक्षणे)।

---

* शिष्ट प्रयोग में अदादिगणीय 'त्रा'—धातु भी है; यथा—"त्राहि मां मधुसूदन॥"

दय् अनुकम्पायाम्—दया करना—दयते; दयिष्यते। "दयते दीनं दयालु।" "तेषां दयसे न कस्मात् ?"।

नाथ् (नाथृ) याचने—माँगना, प्रार्थना करना—नाथते; नाथिष्यते। "मोक्षाय नाथते मुनिः।" "नाथसे किमु पतिं न भूभृतः ?"

पण् व्यवहारे (क्रयविक्रयरूपे वाणिज्ये) खरीद-बिक्री करना—पणते; पणिष्यते।—द्यूतक्रीडायां ग्लहस्थापने (बाजी लगाना); जिस वस्तु का पण रक्खा जाता है; उसमें षष्ठी और कहीं द्वितीया भी होती है। "प्राणानामपणिष्टासौ।" "पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम्।"

वि+पण्—विक्रये; "आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तं त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपाः।"

बाध् (बाधृ) पीडने; प्रतिबन्धे च—(१) दुःख देना; (२) रोकना—बाधते; बाधिष्यते। (१) "मां बाधते न हि तथा विपिनेषु वासः।" "न तथा बाधते स्कन्धो यथा 'बाधति' बाधते।" (२) "वीराणां समयः स्नेहक्रमं बाधते।"

आ+बाध्—दमने। प्र+बाध्—परपीडने।

भाष् कथने—भाषण करना—भाषते; भाषिष्यते। द्विकर्मक—"तं वाक्यमिदं बभाषे।"

अप्+भाष्—निन्दायाम्; "न केवलं यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।" आ+भाष्—आलापे, कथने। प्रति+भाष् प्रत्युक्तौ। सम्+भाष्—सम्भाषणे।

भिक्ष् याचने—माँगना—भिक्षते; भिक्षिष्यते। द्विकर्मक—भिक्षते दातारं धनं भिक्षुः।

रभ्—आ+रभ्—आरम्भे—आरभते, आरप्स्यते। विज्ञानं पठितुम् आरभते पुत्रः।

परि+रभ्—आलिंगने। सम्+रभ्—कोपे।

लोक् (लोकृ) दर्शने—देखना—लोकते, लोकिष्यते। "न लोकते कामार्तः सूर्यालोके मध्यवर्तिनमपि पुरुषम्।"

अव+लोक्, आ+लोक्, वि+लोक—दर्शने।

वन्द् (वदि) अभिवादने; स्तुतौ च—नमस्कार करना; स्तव करना—वन्दते; वन्दिष्यते। "वन्दते गुरुं लोकः।" "तं वन्दे परमानन्दमाधवम्।" "वन्दे मातरम्।"

वेष्ट् वेष्टने—घेरना; लपेटना—वेष्टते। इसी अर्थ में णिजन्त भी होता है; वेष्टयति। "ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत्।" "करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा व्यमोचयत्।"

णिजन्त आ+वेष्ट् और परि+वेष्ट् भी एतदर्थक हैं। सम्+वेष्ट्+णिच्—तह करना; "संवेष्टित-प्रसारितपटन्यायेनैवानन्यत् कारणात् कार्य्यम्।"

शङ्क् (शकि) संशये; त्रासे च—(१) शङ्का करना, सन्देह करना; (२) डरना (अकर्मक)—शङ्कते; शङ्किष्यते। (१) "शङ्कते पुरुषत्वं स्थाणौ" (स्थाणुर्वा पुरुषो वा इति संशयमारोपयतीत्यर्थः)। (२) "शङ्कते व्याघ्राज्जनः।"

आ+शङ्क्—सन्देहे, शङ्कायाम् च (स्नेहः सदापापमाशङ्कते)।

शंस् (शसि) इच्छायाम्; आशिषि (इष्टार्थशंसने) च—(१) चाहना, (२) आशीर्वाद देना—नित्यम् 'आङ्'—योगः—आ+शंस्—आशंसते; आशंसिष्यते। (१) "मनोरथाय नाशंसे।" (२) "इत्याशशंसे करणैरबाह्यैः।"

शिक्ष् विद्याग्रहणे (शिक्षणे)—सीखना—शिक्षते; शिक्षिष्यते। "अशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवित्।"

श्लाघ् (श्लाघृ) कत्थने (प्रशंसायाम्)—सराहना—श्लाघते; श्लाघिष्यते। "श्लाघते गुणिनं गुणी।"

"गुणदोषौ बुधो गृह्णन्, इन्दु-क्ष्वेडाविवेश्वरः। शिरसा श्लाघते पूर्वं, परं कण्ठे नियच्छति।"

सह् (षह्) सहने; क्षमायाञ्च—(१) सहना; (२) क्षमा करना—सहते, सहिष्यते। (१) "सहते दुःखं धीरः।" "न मानिनी सहतेऽन्यसङ्गमम्।" (२) "अपराधमिमं ततः सहिष्ये।" (३) शक्तौ (सकना); "सहतां च शास्त्रगम्य उपायः तत् (दुःखत्रयम्) उच्छेत्तुम्।"

उत्+सह—उत्साहे; सामर्थ्ये (सकना); "तवानुवृत्तिं न च कर्त्तुमुत्सहे।"

सेव् आराधने; उपभोगे, आश्रये च—सेवा करना-सेवते; सेविष्यते। शिवं सेवते, सर्वः सुखं सेवते, तीर्थं सेवते ब्राह्मणः।

आ+सेव्—उपभोगे। नि+सेव्—आश्रये; उपभोगे च; निषेवते। "धार्मिको हि निषेवते सुखम्।"

स्वञ्ज् (ष्वन्ज्) आलिङ्गने—गले लगाना, स्वजते, स्वङ्क्ष्यते। स्वजते तनयं माता।

परि+स्वञ्ज्—आलिंगने; परिष्वजते।

स्वद् (ष्वद्) आस्वादने (अनुभवे); रुचौ च—(१) चखना (२) रुचना (अकर्मक)—स्वदते, स्वदिष्यते। (१) "स्वदस्व हव्यानि।" "स्वदते विविधं स्वादु।" (२) "अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धि स्वदते तुषारा।"

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—बालक क्षीर चख कर खाता है। कभी सत्कार्य में बाधा मत डालो। सर्वान्तःकरण से गुरुजनों की (द्वितीया) सेवा करूँगा। अपव्यवहार से उनको पीड़ा देना उचित नहीं है। जो दुःखी पर दया करता है, ईश्वर उसका सहायक होता है। सद्विषय बालक के पास भी सीखना उचित है। शिक्षक सर्वदा हमारा मंगल चाहते हैं। आज तुम्हारी परीक्षा करूँगा। दीन का (द्वितीया) त्राण करो, नहीं तो ईश्वर तुम्हारा (द्वितीया) त्राण नहीं करेंगे। साधुपुरुष जब जिस कार्य का (द्वितीया) आरम्भ करते हैं, प्राणान्त में भी (प्राणात्ययेऽपि) उसे नहीं छोड़ते। मैं तेरे शत अपराध क्षमा करूँगा। पिता पुत्र का (द्वितीया) आलिंगन करता है। राम मेरी (द्वितीया) प्रतीक्षा कर रहा है। किसी से याचना करना उचित नहीं है। मेरा उपदेश तुम सब बालकों से कह दो। बन्दरों को देखो। भारत-माता को नमस्कार करो। माँ ने कपड़े से शिशु को आवृत कर लिया। घड़ियाल ने बकरी को निगल लिया। दरिद्रों पर दया करो।

—:०:—

भ्वादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु

ईह् वाञ्छायाम्; चेष्टने च—(१) इच्छा करना; सकर्मक; (२) यत्न करना, कोशिश करना—ईहते; ईहिष्यते। (१) "ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्" (२) "माधुर्य्यं मधुविन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते"।

सम्+ईह—"सर्वः स्वार्थं समीहते"।

एध् वृद्धौ—बढ़ना—एधते; एधिष्यते। "हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते।"

"अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नाञ् जयति, समूलस्तु विनश्यति।"

कण्ठ् (कठि) शोके (उत्कण्ठायाम्, औत्सुक्ये च)—शोक इव आध्यानम् (उत्कण्ठापूर्वस्मरणम्)—उत्कण्ठित होना, उत्सुक होना—'उत्' उपसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है—उत्कण्ठते; उत्कण्ठिष्यते। "स्वर्गाय नोत्कण्ठते।" "उत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षस्य।" "रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।"

कम्प् (कपि) चलने (कम्पने)—काँपना—कम्पते, कम्पिष्यते। कम्पते वायुना वृक्षः।

अनु+कम्प्+कृपायाम्। सम्+अनु+कम्प्—अनुग्रहे। उत्, प्र, वि+कम्प्—प्रकम्पने।

काश् (काशृ) दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना—काशते; काशिष्यते। "काशते चन्द्रः।"

प्र+काश्—प्रकाशे। प्र+काश्+णिच्–प्रकाशने (उजाला करना); प्रकाशयति; "प्रकाशयति लोकं रविः।"

वि+काश्—विकाशे।

क्लृप् (कृप्) सामर्थ्ये, योग्यतायाञ्च—(१) समर्थ होना (२) योग्य होना—कल्पते, कल्पिष्यते, कल्प्स्यते। (१) "सूर्ये तपत्यावर-

णाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ?"(२) "प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते।"

अव + क्लृप्—औचित्ये। उप + क्लृप्—विन्यासे; सम्पन्नतायाञ्च।

वि + क्लृप्—संशये, विकल्पने च।

गल्भ् धाष्टर्ये (प्रगल्भतायाम्, औद्धत्ये, साहसे च)—उद्धत होना, साहसी होना—गल्भते। प्रायः 'प्र' उपसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है; "न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका प्रगल्भते कर्मणि टङ्किकायाः।" "अति हि नाम प्रगल्भते।"—सामर्थ्ये ('सकना' इस अर्थ में) 'तुमुनन्त'—पद के साथ व्यवहृत होता है।

घट् चेष्टायाम् (यत्ने); आपतने, निष्पत्तौ; योग्यतायाञ्च—(१) व्यापृत होना; (२) आ पड़ना, सिद्ध होना; (३) सम्भव होना; योग्य होना—घटते घटिष्यते। (१) "घटते पठितुं शिष्यः।" (२) "कृत्यं घटेत सुहृदो यदि।" (३) "तथाऽपि पुंविशेषत्वाद् घटतेऽस्य नियन्तृता।"

घट् + णिच्—संयोजने, सम्पादने; करणे; नियोगे च; घटयति।

वि + घट्—विश्लेषे, भेदे।

घूर्ण् + भ्रमणे (घूर्णने)—घूमना—घूर्णते; घूर्णिष्यते। तुदादि परस्मैपदी भी होता है—वोपदेवमते उभयपदा। "नौर्घूर्णते चपलेव स्त्री।" "घूर्णते शिरः।" "घूर्णतीव मे मनः।"

आ + घूर्ण्—चक्रवद् भ्रमणे।

चेष्ट् यत्ने; व्यापारे च—(१) यत्न करना; (२) काम में लगे रहना—चेष्टते; चेष्टिष्यते। (१) "चेष्टते पठितुं शिष्यः।" "वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत।" (२) "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।" "तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले।" इत्यत्र तु लुठनार्थः (लोटना)।

वि + चेष्ट्—लुठने, परिस्पन्दने, अङ्गपरिवर्त्तने च।

च्यु (च्युङ्) पतने (च्युतौ, भ्रंशे, शरणे च)—खिसकना, गिरना, च्युत होना—च्यवते;च्यविष्यते। "धर्म्मान्न च्यवेत।" नाशे; "उत्पद्यन्ते च्यवन्ते"।

प्र + च्यु—भ्रंशे; स्रावे च।

जृम्भ् (जृभि) जम्भणे (मुखविकासे, पुष्पादीनां विकासे च)-(१) जम्हाना (२) खिलना—जृम्भते; जृम्भिष्यते। (१) "जृम्भस्व सिंह ! दन्तांस्ते गणयिष्ये।" (२) "पङ्कजं जृम्भतेऽद्य।" (३) वृद्धौ (बढ़ना); "जृम्भतां जृम्भतामप्रतिप्रसरं क्रोधज्योतिः।"

उत्+जृम्भ्—उदये; विकासे; वृद्धौ च। वि+जृम्भ्+जृम्भणे; व्याप्तौ च।

डी (डीङ्) नभोगतौ (उड्डयने)—उड़ना—डयते; डयिष्यते। डयते पक्षी।

उत्+डी—उड्डयने।

त्रप् (त्रपूष्) लज्जायाम्—लज्जित होना, शर्मिन्दा होना—त्रपते; त्रपिष्यते; त्रप्स्यते। "त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह तस्योद्धृतिविधौ।"

अप+त्रप्-लज्जायाम्' "य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।" "येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यति।"

त्वर (ञित्वरा) वेगे-शीघ्रता करना, जल्दी करना-त्वरते; त्वरिष्यते। "भवान् सुहृदर्थं त्वरताम्।" "त्वरन्ते हि विद्यार्थिनः परीक्षालयं गन्तुम्।"

त्वर्+णिच्—त्वरयति; "दूतास्त्वरयन्ति माम्।"

द्युत् दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना—द्योतते; द्योतिष्यते। "मध्याह्नसमये द्योतते रविः।"

उत्+द्युत्—औज्ज्वल्ये। वि+द्युत्—शोभायाम्।

ध्वंस् (ध्वसु) नाशे; भ्रंशे अधःपतने च—(१) नष्ट होना; (२) स्खलित होना—ध्वंसते; ध्वंसिष्यते। (१) "तमांसि ध्वंसन्ते।" (३) "ध्वंसेत हृदयं सद्यः।"

अप+ध्वंस्—निन्दायाम्, तिरस्कारे; "नि चाप्यन्यमपध्वंसेत् कदाचित् कोपसंयुतः।" वि+ध्वंस्—निपाते, क्षये।

प्याय् (ओप्यायी)—प्यै (प्यैङ्) वृद्धौ (स्फीतौ)—बढ़ना, फूलना—प्यायते; प्यायिष्यते। प्यायते उदरं तव।

जृम्भ् (जृभि) जम्भणे (मुखविकासे, पुष्पादीनां विकासे च)–(१) जम्हाना (२) खिलना—जृम्भते; जृम्भिष्यते। (१) "जृम्भस्व सिंह ! दन्तांस्ते गणयिष्ये।" (२) "पङ्कजं जृम्भतेऽद्य।" (३) वृद्धौ (बढ़ना); "जृम्भतां जृम्भतामप्रतिप्रसरं क्रोधज्योतिः।"

उत्+जृम्भ्—उदये; विकासे; वृद्धौ च। वि+जृम्भ्+जृम्भणे; व्याप्तौ च।

डी (डीङ्) नभोगतौ (उड्डयने)—उड़ना—डयते; डयिष्यते। डयते पक्षी।

उत्+डी—उड्डयने।

त्रप् (त्रपूष्) लज्जायाम्—लज्जित होना, शर्मिन्दा होना—त्रपते; त्रपिष्यते; त्रप्स्यते। "त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह तस्योद्धृतिविधौ।"

अप+त्रप्-लज्जायाम्' "य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।" "येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यति।"

त्वर (ञित्वरा) वेगे–शीघ्रता करना, जल्दी करना–त्वरते; त्वरिष्यते। "भवान् सुहृदर्थं त्वरताम्।" "त्वरन्ते हि विद्यार्थिनः परीक्षालयं गन्तुम्।"

त्वर्+णिच्—त्वरयति; "दूतास्त्वरयन्ति माम्।"

द्युत् दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना—द्योतते; द्योतिष्यते। "मध्याह्नसमये द्योतते रविः।"

उत्+द्युत्—औज्ज्वल्ये। वि+द्युत्—शोभायाम्।

ध्वंस् (ध्वसु) नाशे; भ्रंशे अधःपतने च—(१) नष्ट होना; (२) स्खलित होना—ध्वंसते; ध्वंसिष्यते। (१) "तमांसि ध्वंसन्ते।" (३) "ध्वंसेत हृदयं सद्यः।"

अप+ध्वंस्—निन्दायाम्, तिरस्कारे; "नि चाप्यन्यमपध्वंसेत् कदाचित् कोपसंयुतः।" वि+ध्वंस्—निपाते, क्षये।

प्याय् (ओप्यायी)—प्यै (प्यैङ्) वृद्धौ (स्फीतौ)—बढ़ना, फूलना—प्यायते; प्यायिष्यते। प्यायते उदरं तव।

आ+प्याय, प्यै—स्फीतौ; प्रीतौ च। आ+प्याय्, प्यै+णिच्—वर्द्धने; प्रीणने च; आप्याययति। "आप्याययति अतिथिं गृहस्थः।"

प्रथ् विख्यातौ—प्रसिद्ध होना—प्रथते; प्रथिष्यते। "सर्वत्र प्रथते गुणी।" (२) विस्तारे (फैलना); "तथा यशोऽस्य प्रथते।"

प्लु+(प्लुञ्) गतौ (लम्फे); सन्तरणे; उत्तरणे च—(१) कूदना; (२) बहना, तैरना; (३) पार होना (सकर्मक)—प्लवते; प्लोष्यते। (१) "मृगः पुप्लुवे।" (२) "किं नामैतत्,अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि, ग्रावाणः प्लवन्त इति" (३) "पुप्लुवे सागरं नौकया।"

प्लु+णिच्—प्लावने (डुबाना); प्लावयति। आ+प्लु–अवगाहने, स्नाने "सवासा जलमाप्लुत्य।" उत्+प्लु—उल्लम्फे (फाँदना) उप+प्लु—उत्पीडने। परि+प्लु—चलने; चाञ्चल्ये। वि+प्लु—विपत्तौ, विनाशे च। सम्+प्लु—वृद्धौ।

भास् (भासृ) दीप्तौ (स्फुरणे, स्फुटीभावे, अविर्भावे च)—(१) चमकना; (२) प्रकट होना—भासते; भासिष्यते। (१) "तावत् कामनृपातपत्रसुषमं बिम्बं बभासे विधोः।" (२) "त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे चित्ते न भासते। मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता।" 'अव' और 'प्रति' उपसर्ग के साथ भी यह प्रयुक्त होता है।

भ्रंश् (भ्रन्शु) अधःपतने—भ्रष्ट होना—भ्रंशते, भ्रंशिष्यते। "भ्रंशते दुरितं राष्ट्रे प्रजाभ्यो यत्प्रभावतः।"

परि, प्र+भ्रंश्—च्युतौ, पतने च।

भ्राज् (भ्राजृ, टुभ्राजृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—चमकना—भ्राजते; भ्राजिष्यते। "विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती।"

मुद् हर्षे—आनन्दित होना, मोदते; मोदिष्यते। "मोदते परमं धार्मिकः।"

अनु+मुद्—अनुमोदने (पसन्द करना)। प्र+मुद्—हर्षे।

यत् (यती) यत्ने—प्रयत्न करना—यतते; यतिष्यते। "यतते पठितुं विप्रः।"

आ + यत्—वशीभावे (आयत्त होना, अधीन होना निर्भय रहना); सप्तमी के साथ; "वयं त्वय्यायतामहे ।" प्र + यत्—प्रयत्ने ।

रम् (रमु) क्रीडायाम् (रमणे, आनन्दे; आसक्तौ)—खेलना; (२) आनन्दि होना—रमते; रंस्यते । (१) "रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनाम् ।" (२) "लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।"

अभि + आ + रम्–आसक्तौ; आरमति । उप + रम्—निवृत्तौ; मरणे च—उपरमति-ते । वि + रम्—निवृत्तौ; विरमति ।

रुच् प्रीतौ; प्रकाशे च—(१) रुचना; (२) चमकना; शोभित होना–रोचते, रोचिष्यते । रोचिरिह अनुरागविशेषः । तत्र यस्यानुरागः, तस्य सम्प्रदानत्वम् । (१) रोचतेऽन्नं बुभुक्षवे, "यदेव रोचते यस्मै भवेत् तत् तस्य सुन्दरम् ।" (१) "रुरुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमाः ।"

वि + रुच्—दीप्तौ, प्रकाशे च ।

लम्ब् (लबि) अवस्रंसने (लम्बने) लटकना—लम्बते, लम्बिष्यते । "ऋषयो ह्यत्र लम्बन्ते ।"

अव + लम्ब—आश्रये । आ + लम्ब्—आश्रये, आदाने च । वि + लम्ब—विलम्बे । "बिलम्बते खलु अलसो जनः ।"

वल् चलने—जाना, चलना—वलते, वलिष्यते । "अलिकदम्बकं वलतेऽभिमुखं तव ।" "हृदयमध्ये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात् ।" "त्वदभिसरणरभसेन वलन्तो ।" "दृष्टिरन्यो न वलति ।"—इत्यादौ परस्मैपदमपि ।

वृत् (वृतु) वर्त्तने (स्थितौ, विद्यमानतायाम्)—रहना—वर्त्तते, वर्त्तिष्यते, वर्त्स्यति । "अत्र विषयेऽस्माकं महत् कुतूहलं वर्त्तते ।" "किं वर्त्ततेऽस्मिन् ?"

वृत् + णिच्—आजीविकायाम्, वृत्तिकरणे, प्राणधारणे (गुजारा या जीवन निर्वाह करना) वर्त्तयति । "रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्त्तयन् ।" क्वचित् आत्मनेपदमपि, यथा—"मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्त्तयते स्वयं हतैः ।"

अति+वृत्—अतिक्रमे, उल्लङ्घने (सकर्मक)। अनु+वृत्—अनुसरणे (सकर्मक)। अप—वृत्—प्रतिनिवृत्तौ (लौटना)। वि+अप वृत्—निवृत्तौ। अभि+वृत्—अभिमुखगमने, आगमने (सकर्मक)। आ+वृत्—आगमने। आ+वृत्+णिच्—दुग्धादिपाके (औटाना, खौलाना); आवृत्तौ (फेरना) च; आवर्त्तयति। अप+आ+वृत्; उप+आ+वृत्, परा+वृत्, वि+आ+वृत्—निवृत्तौ (लौटना)। नि+वृत्—निवृत्तौ। निर्+वृत्—निष्पत्तौ, समाप्तौ। प्र+वृत्—प्रवृत्तौ। वि+वृत्—घूर्णने, भ्रमणे। सम्+वृत्—सत्तायाम् (होना); "स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी।

वृध् (वृधु) वृद्धौ—बढ़ना—वर्द्धते, वर्द्धिष्यते, वर्त्स्यति। "वर्द्धते ते तपः।" "अङ्कुरः क्रमशः वर्द्धते।"

सम्+वृध्+णिच्—वर्द्धने, प्रतिपालने, सम्मानने च;—संवर्द्धयति। "कोकिलशावकं संवर्द्धयति काकः।"

वेप् (टुवेपृ) कम्पने—काँपना—वेपते; वेपिष्यते। "वेपते वायुना-वृक्षः" "वेपते हृदयं मम।"

व्यथ् भये, चलने; दुःखानुभवे च—डरना; विचलित होना, दुःख पाना—व्यथते; व्यथिष्यते। व्यथते लोकः (दुःखमनुभवति, कम्पते, बिभेति वा)।

शुभ् दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना—शोभते; शोभिष्यते। "सुष्ठु शोभसे एतेन विनयमाहात्म्येन।" "सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।"

श्वित् (श्विता) शौक्ल्ये-सफेद होना-श्वेतते। "श्वेतते प्रासादः।" "व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः।"

स्पन्द् (स्पदि) किञ्चिच्चलने (ईषत्कम्पने; स्फुरणे)—काँपना, फड़फड़ाना।—स्पन्दते; स्पन्दिष्यते। "स्पन्दते दक्षिणो भुजः।" "पस्पन्दे वामनयनं जानकीजामदग्न्ययोः।"

'परि' उपसर्गके साथ भी प्रयुक्त होता है।

स्पर्ध् संघर्षे (पराभिभवेच्छायाम्)—स्पर्द्धा करना, बराबरी करना झगड़ना—स्पर्द्धते; स्पर्द्धिष्यते। स्पर्द्धते बलिना समं बली।

स्मि (ष्मिङ्) ईषद्धसने—मुस्कराना—स्मयते; स्मेष्यते। स्मयते वधूः। "स्मयमानं वदनाम्बुजं स्मरामि।"

वि+स्मि—विस्मये (विस्मित होना)।

स्यन्द् (स्यन्दू) स्रवणे (क्षरणे)—चूना, बहना—स्यन्दते; स्यन्दिष्यते। "अरविन्दात् मकरन्दः स्यन्दते।"

अभि+स्यन्द्—द्रवीभावे, क्षरणे;। "अभिष्यन्दते हृदयम्।"
स्रंस् (स्रंसु) भ्रंशे (अधःपतने)—च्युत होना—स्रंसते; स्रंसिष्यते, "गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्।"

ह्लाद् (ह्लादी) हर्षे—हृष्ट होना—ह्लादते, ह्लादिष्यते। "आविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः।" "धन्यानां विरजस्तमा भगवतीं चर्येयमाह्लादते"।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—शिशु बढ़ रहा है। वधू धीरे-धीरे चलती है। यहाँ तीन लड़के हैं। तुम्हारी उन्नति से मेरा मत हृष्ट होता है। व्याघ्र का गर्जन सुनकर (श्रुत्वा) सभी का हृदय काँप उठता है। दरिद्र शिशुओं के उपकार के लिए सर्वदा यत्न करूँगा। पूर्व दिशा में चन्द्रमा शोभा पाता है—यह देखकर (दृष्ट्वा) कौन आनन्दित नहीं होता? राम के कुव्यवहार से श्याम नितान्त लज्जित हुआ है। काय मनो वाक्य से प्रयत्न करो। मोहन मुस्कराता है। हिन्दी-लेखक स्पर्द्धा करते हैं। हाथ से क्या गिरा? धन पाकर ब्राह्मण हृष्ट नहीं होते।

भ्वादि सकर्मक उभयपदी धातु

भ्वादि उभयपदी धातु परस्मैपद में 'पत्'-धातु और आत्मनेपद में 'लभ्'—धातु के तुल्य हैं।

खन् (खनु) अवदारणे (खनने)—खोदना—खनति, खनते; खनिष्यति, खनिष्यते। "तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः।"

उत्+खन्—खनने; उत्पाटने, उन्मूलने च। नि+खन्—रोपणे, स्थापने, प्रवेशने (गाड़ना); । "ऊनद्विवर्षं निखनेत्।"

गुह् (गुहू) संवरणे (आच्छादने,)—ढाँकना, छिपाना—गूहति, गूहते; गूहिष्यते घोक्ष्यते। "गुह्यञ्च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।"

उप+गुह्—आलिङ्गने। नि+गुह्—गोपने।

चाय् (चायृ) दर्शने (चाक्षुषज्ञाने)—देखना—चायति, चायते; चायिष्यति, चायिष्यते। "तं पर्वतीयाः प्रमदाश्चचायिरे।"

नि+चाय—दर्शने।

धाव् (धावु) शुद्धौ (क्षालने); द्रुतगमने च—(१) धोना; (२) दौड़ना (अकर्मक)—धावति, धावते; धाविष्यति, धाविष्यते (१) "दधावाद्भिस्ततश्चक्षुः सुग्रीवस्य विभीषणः।" (२) "धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।"

अनु+धाव्—पश्चाद्धावने; अनुसन्धाने च। अभि+धाव्—अभिमुखगतौ। निर्+धाव्—मार्जने।

धृ (धृञ्) धारणे—पकड़ना—धरति, धरते; धरिष्यति, धरिष्यते।

अव+धृ+णिच्, अथवा चुरादि—निश्चये, निरूपणे; अवधारयति। उत्+धृ—उद्धारे, मोचने।

नी (णीञ्) (१) प्रापणे (नयने)—ले जाना—नयति, नयते, नेष्यति, नेष्यते। "नयति जलभारं मेघः।"

द्विकर्मक—"नयति नयते गां वनं गोपः" (प्रापयतीत्यर्थः)। "मामपि तत्र नय।"—(२) अतिवाहने; "संविष्टः कुशशयने निशां निनाय।"

अनु+नी—प्रार्थनायाम्; प्रसादने च। अप+नी—अपसारणे। अभि+नी—अभिनये, अनुकरणे। आ+नी—आनयने। आ—नी+णिच्—माँगना; आनाययति। प्रति+आ+नी—प्रत्यानयने। उत्+नी–उत्क्षेपणे; अनुमाने च। उप+नी–(१) उपनयने "माणवकम् उपनयते"; (२) प्रापण च, "आर्यस्यासनमुपनय।" निर्+नी—अवधारणे। परि+ नी—विवाहे। प्र+नी—रचनायाम्; प्रापणे च। वि+नी—अपनयने; शासने, शिक्षायाञ्च।

पच् (डुपचष्) (१) पाके (रन्धने)—पकाना—पचति, पचते; पक्ष्यति; पक्ष्यते। द्विकर्मक—"पचति पचते तण्डुलान् ओदनं लोकः।" (२) जीर्णीकरणे (परिपाक करना; हजम करना); "पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।"

कर्मकर्त्तरि—(१) परिणामे, परिणतावस्थायाम्—पच्यते; "सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम्।" (२) विनाशोन्मुखीभावे; "नरके पच्यते घोरे।" "ते पच्यन्ते नरके निगूढाः।"

भज् भागे; सेवायाम् (अनुरागे; आश्रये स्वीकारे; प्राप्तौ) च—(१) बाँटना; (२) सेवा करना, भक्ति करना; (३) आश्रय करना; (४) प्राप्त होना—भजति, भजते; भक्ष्यति, भक्ष्यते। (१) "भ्रातरः समं भजेरन् पैतृकं रिक्थम्।" (२) "हरिं भज।" "भज गोविन्दम्।" (३) "शिलातलं भेजे।" "मातर्लक्ष्मि! भजस्व कञ्चिदपरम्।" (४) "अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते, कैव कथा शरीरिषु।"

वि+भज्—विभागे (हिस्सा करना)।

भृ (भृञ्) भरणे (पूरणे; पोषणे, प्रतिपालने)—(१) भरना; (२) पालना—भरति, भरते; भरिष्यति, भरिष्यते। (१) "भरति कुम्भमद्भिर्जनेः।" (२) "दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।"

यज् देवपूजायाम् (यागे); दाने च— (१) पूजा वा याग करना; (२) देवता के उद्देश में उत्सर्ग करना—यजति, यजते, यक्ष्यति, यक्ष्यते। (१) "यजति-यजते विष्णुं सुधीः।" (पूजयतीत्यर्थः)। यागार्थ में तृतीयान्त यज्ञवाचक शब्द के साथ प्रयुक्त होता है। यथा— "यजेत राजा क्रतुभिः।" "अश्वमेधेन यजते।" (२) उत्सर्गार्थ में द्वितीयान्त देवतावाचक और तृतीयान्त उत्सृष्ट वस्तुवाचक शब्द के साथ प्रयुक्त होता है। "पशुना रुद्रं यजते" (पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः)। "यस्तिलैर्यजते पितॄन्"।

याच् (टुयाचृ) याचने (प्रार्थनायाम्)—याच्ञा करना, माँगना—याचति, याचते; याचिष्यति, याचिष्यते। द्विकर्मक—"बलिं याचते वसुधाम्।" "याचति याचते नृपं विप्रः।" "पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः।"

लष् स्पृहायाम्—इच्छा करना, अभिलाषा करना—लशति, लषते; लष्यति, लष्यते, लषिष्यति; लषिष्यते। प्रायः यह 'अभि' पूर्वक प्रयुक्त होता है—अभिलषति, अभिलष्यति। "तेन दत्तमभिलेषुरङ्गना-मुखासवम्।" "मानुषानभिलष्यन्ती।"

वप् (डुवप्) बीजवपने; तन्तुवपने; मुण्डने च—(१) बीज बोना; (२) बुनना; (३) मूँडना;—वपति, वपते; वप्स्यति, वप्स्यते। (१) "यादृशं वपते बीजं तादृशं लभते फलम्।" (२) "वपति तन्तुं तन्तुवायः।" (३) "वपति मस्तकं नापितः।"

नि+वप्, निर+वप्+उत्सर्गे; दाने। प्रति+वप्—अनुवेधे—(जड़ना); निखनने, विन्यासे च।

वह् प्रापणे; धारणे च—(१) ले जाना; (२) धारण करना;—वहति, वहते; वक्ष्यति वक्ष्यते। (१) द्विकर्मक–वहति वहते भारं ग्रामं जनः (प्रापयतीत्यर्थः); (२) "न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।"—(३) वायोर्गतो (अकर्मक); "मन्दं वहति मारुतः।"–(४) स्पन्दने, स्रवणे, क्षरणे (अकर्मक), "परोपकाराय वहन्ति नद्यः।"

अति + वह् + णिच्—अतिवाहने, यापने, अतिक्रमणे; अतिवाहयति। अप + वह्—उत्सारणे; निरासे च; "अपोवाह वासोऽस्या मारुतः।" अप + वह् + णिच्—अपसारणे; अपवाहयति। आ + वह्—उत्पादने; धारणे च। उत् + वह—विवाहे; धारणे च। निर् वह—निष्पत्तौ; सम्पादने; स्थितौ च—"सर्वथा सत्यवचने देहो न निर्वहेत्" भागवत-टीका; "कारणमसदिति कथयन् बन्ध्यापुत्रेण निर्वहेत् कार्यम्।" प्र + वह्—वहने, प्रवाहे। वि + वह्—विवाहे। सम् + वह् + णिच्—संवाहने, अङ्गमर्दने; संवाहयति।

वे (वेञ्) तन्तुसन्ताने (वस्त्रनिर्माणे)—बुनना—वयति, वयते, वास्यति, वास्यते। "वयति वयते तन्तु तन्तुवायः।" "यशः पटं वयति स्म तद्गुणैः।"

प्र + वे—वेधने, ग्रन्थने च; "शल्यप्रोतं मुनिपुत्रम्।"

शप् आक्रोशे (विरुद्धानुध्याने, शापे, गालिदाने, भर्त्सनायाम्); शपथकरणे च—(१) कोसना; सौगन्ध खाना—शपति, शपते; शप्स्यति शप्स्यते। (१) "अशपद् भव मानुषीति ताम्।" (२) "कृष्णाय शपते गोपी।" जिस व्यक्ति से शपथ किया जाता है, उसमें चतुर्थी, और जिस पदार्थ के नाम से शपथ किया जाता है, उसमें तृतीया होती है; "भरते-नात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप!। यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवा-सनात्।"

अभि + शप्—अभिशापे। "क्रोधेनाभिशपति।"

श्रि (श्रिञ्) आश्रये; प्राप्तौ च—(१) आश्रय करना; (२) प्राप्त होना—श्रयति; श्रयते; श्रयिष्यति, श्रयिष्यते।" (१) "यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।" (२) "परीता रक्षोभिः श्रयति विवशा कामपि दशाम्।"

आ + श्रि—अवलम्बने (सहारा लेना)। सम् + श्रि—आश्रये;

हृ (हृञ्) हरणे (प्रापणे; स्तेये; नाशने च)—(१) ले जाना;

(२) चोरी करना; (३) नष्ट करना—हरति, हरते; हरिष्यति; हरिष्यते। (१) द्विकर्मक—"हरति हरते गां वनं गोपः।" "सन्देशं मे हर।" (२) "दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शङ्कया। मदीयपद्यरत्नानां मञ्जूषैषा मया कृता।" (३) "नापेक्षा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिर्न च सङ्गतिः। तथाऽपि हरते तापं लोकानामुन्नतो घनः।"

हृ+णिच्—प्रापणे (किसी के द्वारा कुछ भेजना); नाशे, भ्रंशे, वियोगे (खोना); पराजये (हराना) च; हारयति। अनु+हृ–अनुकरणे। अप+हृ—अपहरणे (छीन लेना; चुराना)। अभि+अव+हृ—व्यवहारे। आ+हृ—आहरणे, आनयने। उत्+आ+हृ—दृष्टान्तोपन्यासे (नजीर देना); कथने च। वि+आ+हृ—व्याहारे, उक्तौ। सम्+आ+हृ—सङ्ग्रहे। उत्+हृ—उद्धारे (मोचने; उन्मूलने च)। उप+हृ—अन्तिकप्रापणे (पास ले जाना), उपढौकने च (भेंट करना)। निर्+हृ—अपनयने; प्रेतवहने च। परि+हृ—परित्यागे। प्र+हृ—प्रहारे, ताडने। वि+हृ—क्रीड़ायाम्। सम्+हृ—नाशने; प्रत्याकर्षणे (समेटना); संक्षेपे च। उप+सम्+हृ—उपसंहारे, समापने।

ह्वे (ह्वेञ्) स्पर्द्धायाम् (पराभिभवेच्छायाम्); आह्वाने च—(१) लड़ाई माँगना; (२) पुकारना—"ह्वयति ह्वयते मल्लो मल्लम्" (अभिभवितुमिच्छति)। (२) "ह्वयति जनं लोकः" (आह्वयतीत्यर्थः)। "तां पार्वतीति नाम्ना जुहाव।"

आ+ह्वे—(१) आह्वाने—परस्मैपदी—पुत्रमाह्वयति (२) स्पर्द्धायाम्—आत्मनेपदी—"कृष्णश्चाणूरमाह्वयते।"

भ्वादि अकर्मक उभयपदी धातु

राज् (राजृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना—राजति, राजते; राजिष्यति; राजिष्यते। "राजन्! राजति वीरवैरिवनितावैधव्यदस्ते भुजः।"

वि+राज्+सुदीप्तौ। निर्+राज्+णिच्—प्रकाशने, विभूषणे;

नीराजने, निर्मञ्छने (आरती करना) च—नीराजयति। "नीराजयन्ति भूपालाः पादपीठान्तभूतलम्।"

अनुवाद

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी—जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरति देखी तिन तैसी। जीर्णे वयसि न मां क्षुधा बाधते—मेरी वृद्धावस्था में भूख मुझे दुःख नहीं देती। इदञ्च मे मनसि वर्त्तते-मेरे मन में जो है यह वही ठीक है। ततः किं भवेत्—तब क्या होगा? सर्वं कान्तमात्मानं पश्यति—प्रत्येक व्यक्ति अपने को सुन्दर देखता है। भद्रमिदं न पश्यामि—मैं इसमें कुछ भलाई नहीं देखता। भाग्येनैतत् सम्भवति—यह सब भाग्य से होता है। हरन्तीमे जालं मम विहङ्गमाः-इन चिड़ियों ने मेरा जाल चुरा लिया। कथमस्मान् न सम्भाषसे—तुम हम लगों से क्यों नही बोलते? मधुरं कूजन्ति निकुञ्जे पक्षिणः—झाड़ी में चिड़ियाँ मधुर गान करती हैं। बलवती पिपासा मां बाधते—भीषण तृष्णा मुझे कष्ट देती है। कथं न पश्यसि रामस्यावस्थाम्—तुम राम की हालत को क्यों नहीं देखते? आत्मनो यौवनमुपालभस्व—अपनी जवानीको धिक्कारो। अत्रैव मुहूर्त्तं तिष्ठ—यहाँ एक क्षण रुको। कथमितोऽपि मामनुसरति—क्या! यहाँ भी मुझे अनुसरण करता है? ननु भवानग्रतो मे वर्त्तते—क्यों आप मेरे सामने खड़े हैं। त्वं ग्रामं व्रज—गाँवको जाओ। सुष्ठु शोभसे नित्यं त्वमनेन शीलेन—ऐसे सुन्दर चरित्र से तुम हमेशा उत्तम रूप से चमकते हो। बालको वृद्धमुप-हसति-बालक बुड्ढे की हँसी उड़ाता है। चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च—गाड़ीके पहिये की तरह सुख-दुःख चक्कर लगाते हैं। रिक्तं हि पात्रं ध्वनति प्रकामम्—अधजल गगरी छलकत जाय। जगतः पितरौ वन्दे—जगत्-पिता तथा जगन्माता की वन्दता करता हूँ। तत्र वृक्षे कश्चित् वृद्धः शुको वसति-एक बुड्ढा सुग्गा उस पेड़ में रहता है।

वायुराचामति स्वेदं बलात् मुखे ते—हवा तेरे मुख में पसीना सुखा लेती है। वेपते अवश इव मे हस्तः–मेरा हाथ बेबस होकर काँपता है।

बरसात में बारिश होती है–वर्षासु वृष्टिर्भवति। वे राम के घर में ठहरे—रामस्य गृहे अतिष्ठंस्ते। बालकों को यह किताब पढ़ने दो—पठन्तु बालकाः पुस्तकमेतत्। सबको वह मठ देखना चाहिये—मठं तं सर्वे पश्येयुः। हमलोग नदी के किनारे गये थे—वयं नद्यास्तीरमगच्छाम। बुद्धिमान् व्यक्ति को आलस्य छोड़ना चाहिये—आलस्यं त्यजेत् सुधीः। ठंढा जल पियो—शीतलं जलं पिब। भगवान् हमलोगों को सब चीज देते हैं—ईश्वरोऽस्मभ्यः सर्वमेव यच्छति।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—मैं जाता हूँ। हमलोग बोलते हैं। तुम दोनों पैदल चलते हो। हम दोनों हँसते हैं। वे दोनों रहते हैं। हरि हँस रहा है। हम लोग भोजन बनाते हैं। मैंने उसे कुछ पुस्तकें दीं। हवा लता को हिलाती है। तुम आ सकते हो। हम लोगों को जाना चाहिये। उसे जाने दो। वह पैदल चल सकता है। वह बहुत क्रोधित हुआ। वह बहुत दिन जी सकता है। उन्होंने जंगल में एक सिंह को देखा। गरीब लड़कियाँ कुछ आम चाहती हैं। बुरा संग हमेशा छोड़ना चाहिए। झूठ कभी मत बोलो। हरि को अपने श्वशुर के घर जाने दो। दिन में दोपहर के समय धूप में मत दौड़ो। साधु पुरुष के पास प्रार्थना निष्फल होनी भी अच्छी है, तो भी कृपण के पास कुछ भी नहीं माँगना चाहिए। अपने गुणों को छिपा रखो। सर्वान्तःकरण से ईश्वर का (द्वितीया) भजन करो। महात्मा दुर्वासा ने शकुन्तला को अभिशाप दिया था। वर्षा में किसान लोग खेत में बीज बोते हैं। इस पुस्तक को घर मैं ले जाऊँगा। विपद् में जिसका (द्वितीया) आश्रय करोगे, प्राणान्त में भी उसके ऊपर कुभाव नहीं लाना।

हिन्दी में अनुवाद करो :—विपश्चितः परिव्राजः अर्च्चन्ति। पुरस्तात् माल्यवान् गिरिः शोभते। मन्दं मन्दं वहति पवनः। मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे

हृदये तु हलाहलम् । मनस्तु मे संशयमेव गाहते । लोको हि भीत एव आत्मानं रक्षति । न चलति खलु वाक्यं सज्जानानां कदाचित् । त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्राम-स्यार्थे कुलं त्यजेत् । च्योतति घृतं वह्नौ यज्वा । आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि । ग्राहो जले गजेन्द्रमपि कर्षति । प्रत्यूषे शयनं त्यजेत् । सततमात्मानं गोपायेत । निराश्रयं मां जगदीश रक्ष । सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवा-नपि । दूतः सर्वं जल्पति । ऋषयः ऋचः पठन्ति । पिता विदेशादागतं पुत्रं वदति । शिशुः पिबति दुग्धमुष्णम् । पक्षिणः मत्स्यान् खादन्ति । कुञ्जे मधुरं कूजन्ति कोकिलाः । कानने मृगा विचरन्ति । गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् । वृक्षेषु नवानि कुड्मलानि स्फोटन्ते । अलीकं न वदेत् सुधीः । क्षणमपि तस्याावियोगं न सहते । उष्णालुः शिशिरे निषीदति । आलस्यं यत्नेन परित्यजेत् । यस्य यादृशमन्तरं स तदनुरूपमेव फलं भजते । जननी सर्वदा युवानमपि पुत्रमापदो रक्षति । यदि वपति कृषकः क्षेत्रेषु बीजम् । न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति । भरति कुम्भमद्भिर्जनः ।

दिवादि

क्रियाघटन-सूत्र

लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—ये चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में दिवादिगणीय धातु के उत्तर में 'य' होता है; यथा–दिव्+ति= दिव्+य+ति=दीव्यति ।

'य' परे रहने से, दिव्—दीव्, सिव्—सीव्, दॄ—दीर, जॄ—जीर; व्यध्—विध्, और जन्-जा होता है। जैसे—दिव्+य+ति+दीव्यति।

'य परे रहने से, कर्तृवाच्य में' शम्—शाम्; श्रम—श्राम्, भ्रम्—भ्राम्, क्षम्—क्षाम्, तम्—ताम्, दम्—दाम्, क्लम्—क्लाम; मद्—माद्, भ्रन्श्—भ्रंश्; और रन्ज्—रंज् होता है।

चतुर्लकार परे रहने से, अन्त्य ओकार का लोप होता है यथा—शो+य+ति=श्यति ।

दिवादि परस्मैपदी धातु

दिव्(दिवु) क्रीडायाम्—खेलना

(अकर्मक—द्वितीयान्त अथवा तृतीयान्त 'अक्ष'—वाचक शब्द के साथ—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
मध्यम पुरुष	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उत्तम पुरुष	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

लोट्

प्रथम पुरुष	दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
मध्यम पुरुष	दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत
उत्तम पुरुष	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ्

प्रथम पुरुष	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मध्यम पुरुष	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उत्तम पुरुष	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

विधिलिङ्

प्रथम पुरुष	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
मध्यम पुरुष	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत्
उत्तम पुरुष	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

लृट्

प्रथम पुरुष	देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति
मध्यम पुरुष	देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ
उत्तम तुरुष	देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः

दिवादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

अस् (असु) क्षेपणे—फेंकना—अस्यति; असिष्यति। "तस्मिन्नास्यदिषीकास्त्रम्।"—(२) अपनोदने। "स्त्रीणामास श्रमम्।"

अधि+अस्—आरोपे। अप+अस्—अपसारणे; त्यागे च। अभि+अस्—अभ्यासे, आवृत्तौ, पुनरनुष्ठाने, मुहुःकरणे। उत्+अस्-वि+उत्+अस्—निरासे, अपनयने। नि+अस्+निक्षेपे, स्थापने; त्यागे च। वि+नि+अस्—स्थापने। उप+नि+अस्—प्रस्तावे। सम्+नि+अस्—सन्न्यासे; "सन्दृश्य क्षणभङ्गुरं तदखिलं धन्यस्तु

सन्न्यस्यति।" निर्+अस्—दूरीकरणे। परि—अस्—विस्तृतौ; क्षेपणे; पातने च। वि+परि+अस्—विपर्य्यये। प्र+अस्—प्रक्षेपे। वि+अस्—अपनयने; विभागे च। सम्+अस्—सङ्क्षेपे, समासे; संयोगे।

इष् गतौ—इष्यति; एषिष्यति।

अनु+इष्-अन्वेषणे (ढूँढ़ना) प्र+इष्+णिच्-प्रेषणे (भेजना); क्षेपणे च; प्रेषयति।

क्षम् (क्षमू) सहने (मर्षणे, क्षमायाम्)-क्षमा करना-क्षाम्यति; क्षमिष्यति। क्षाम्यति दोषं साधुः।

गृध् (गृधू) लिप्सायाम् (आकाङ्क्षायाम्)—लालच करना—गृध्यति; गर्धिष्यति। गृध्यति धनं लुब्धः।

पुष् पोषणे (उपचये); पुष्टौ च-(१) पुष्ट करना, बढ़ाना; (२) पुष्ट होना (अकर्मक)—पुष्यति; पोक्ष्यति। "कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः।" "वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः।" "देहमपुष्यः सुरामिषैः।"

लुभ् आकाङ्क्षायाम् (लोभे)-लालच करना-लुभ्यति, लोभिष्यति। "लुभ्यति धने लुब्धः।" परन्तु चतुर्थी और सप्तमी के साथ प्रयुक्त होता है। "तथाऽपि रामो लुलुभे मृगाय।" "धर्मे लुभ्यति यः सदा।"

व्यध् ताडने (पीडने, वेधने)—बींधना, चुभाना, छेदना-विध्यति; व्यत्स्यति। "विध्यति शत्रुं शूरः।" "विविधुस्तोमरैः।"

अनु+व्यध्—सम्पर्के; व्यापने; ग्रथने च। अप+व्यध्—निक्षेपे; निरासे; त्यागे; प्रेरणे च। आ+व्यध्—क्षेपे, निःसारणे; धारणे, परिधाने च।

शो तीक्ष्णीकरणे—पैनाना—श्यति, शास्यति।

नि+शो—निशाने, तेजने, तीक्ष्णीकरणे।

श्लिष् (श्लिषु) आलिङ्गने; योगे च—(१) गले लगाना; (२) संयुक्त होना (अकर्मक);—श्लिष्यति; श्लेक्ष्यति। (१) "श्लिष्यति वृक्ष लता।"

आ+श्लिष्—आलिङ्गने; योगे च। वि+श्लिष्-वियोगे। प्र+श्लिष्—वियोगे। सम्+श्लिष्+संयोगे।

सिव्—(षिवु) तन्तुविस्तारे (सीवने, तन्तुभिर्ग्रथने)—सीना—सीव्यति; सेविष्यति। "सीव्यति वस्त्रं सौचिकः।"

सो (षो) नाशने—नष्ट करना—स्यति; सास्यति। "स्यति यमो जन्तून्।"

अव+सो—अवसाने, समाप्तौ। अधि+अव+सो—अध्यवसाये (उत्साहे, निश्चये च)। परि+अव+सो—पर्य्यवसाने, समाप्तौ, परिणामे। प्रति+अव+सो—प्रत्यवसाने, भोजने। वि+अव+सो—व्यवसाये, उद्यमे, चेष्टायाम्। अनु+वि+अव+सो—अनुव्यवसाये (बुद्धार्थस्य पुनर्बोधे)।

दिवादि अकर्मक परस्मैपदी धातु

कुप् क्रोधे—क्रुद्ध होना-कुप्यति; कोपिष्यति। जिस पर क्रोध किया जाता है, उसमें प्रायः चतुर्थी होती है। "कुप्यति माता शिशवे।" "कुप्यन्तिहितवादिने।" किन्तु "प्रति" शब्द के योग से द्वितीया, और उपरि-शब्द के साथ षष्ठी भी होती है; "मां प्रति स कुपितः।" "कुपितश्चन्द्रगुप्तश्चाणक्यस्योपरि।"

प्र+कुप्—अतिकोपे; प्राबल्ये च—"दोषाः प्रकुप्यन्ति।"

क्रुध् कोपे—रोष करना—क्रुध्यति; क्रोत्स्यति।

क्लम् (क्लमु) ग्लानौ (श्रमे)-क्लान्त होना, थकना-क्लाम्यति, क्लमिष्यति। "कायः क्लाम्यति तस्य प्रहरतो रिपून्।"

क्लिद् (क्लिदू) आर्द्रीभावे—भीगना—क्लिद्यति; क्लेदिष्यति, क्लेत्स्यति। "क्लिद्यति वस्त्रं पयसा।"

क्षुभ् सञ्चलने[1] (क्षोभे, विकारे, उद्वेगे)-क्षुब्ध होना, विचलित होना,

---

१. इसी अर्थ में क्षुभ् धातु भ्वादिगणीय भी होता है। जैसे—लट्—क्षोभते।

घबराना—क्षुभ्यति; क्षोभिष्यति। "महाह्लद इव क्षुभ्यन्।"

प्र+क्षुभ्, सम्+क्षुभ्—सञ्चलने। वि+क्षुभ्+णिच्—विलोडने; विक्षोभयति।

जॄ (जॄष्) वयोहानौ (जरायाम्, जीर्णीभावे; क्षये; विलये; परिपाके)—(१) जीर्ण होना; क्षीण होना; (२) नष्ट होना; (३) पचना–जीर्य्यन्ति, जरिष्यति, जरीष्यति; (१) "जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति, जीर्य्यतः। जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे, तृष्णैका तरुणायते॥" (२) "सौहृदानि जीर्य्यन्ति कालेन।" (३) "उदरे चाजरन्नन्ये।"

तम् (तमु) ग्लानौ (खेदे, श्रान्तौ; व्यथायाम्; कृशीभावे)—(१) श्रान्त होना; (२) परेशान होना; (३) मुरझाना–ताम्यति; तमिष्यति। (१) "ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्।" (२) प्रविशति मुहुः कुञ्जं, गुञ्जन् मुहुर्मुहु ताम्यति।" (३) "गाढोत्कण्ठा-लुलितलुलितैरङ्गकैस्ताम्यतीति।"

उत्+तम्—उत्कण्ठायाम्। सम्+तम्—ग्लानौ।

तुष् प्रीतौ—तुष्ट होना—तुष्यति; तोक्ष्यति। "तुष्यन्ति ब्राह्मणा नित्यम्।" तृतीयान्त पद के साथ—"रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवाः।"

परि+तुष्, प्र+तुष्—परितोषे। सम्+तुष—सन्तोषे।

तृप् तृप्तौ—तृप्त होना, राजी होना—तृप्यति; तर्पिष्यति, तर्प्स्यति, त्रप्स्यति। प्रायशः तृतीया के साथ, परन्तु कहीं षठी और सप्तमी के साथ भी प्रयुक्त होता है; 'को न तृप्यति वित्तेन।" "नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्।" "तस्मिन् हि ततृपुर्देवास्तते यज्ञे।"

परि+तृप्—सम्यक्तृप्तौ।

तृष् (ञितृष्) पिपासायाम् (तृष्णायाम्; आकाङ्क्षायाम्)—प्यासा होना—तृष्यति; तर्षिष्यति। "क्षताश्च कपयोऽतृषन्॥"

त्रस् (त्रसी) उद्वेगे (त्रासे)–डरना–त्रस्यति, त्रसति; त्रसिष्यति "प्रमदवनात् त्रस्यति।" "त्रस्यति कः सति नाश्रयबाधने ?"

दम् (दमु) उपशमे (शान्तीभावे); शान्तीकरणे (शासने दमने) च-(१) शान्त होना; (२) दबाना (सकर्मक)-दाम्यति; दमिष्यति। (१) "दाम्यति मुनिः।" (२) "यमो दाम्यति राक्षसान्।"

दुष् वैकृत्ये (अशुद्धीभावे, दोषे)—दोषयुक्त वा अशुद्ध होना—दुष्यति; दोक्ष्यति। दुष्यति लोकः पापात्; "देवान् पितॄँश्चार्चयित्वा खादन् मांसं न दुष्यति।"

प्र+दुष्—व्यभिचारे।

दृप् गर्वे (दर्पे)—घमण्ड करना—दृप्यति; दर्पिष्यति, द्रप्स्यति, दर्प्स्यति। "स किल नात्मना दृप्यति।" "को न दृप्यति वित्तेन ?"

दॄ विदारे—फटना—दीर्यति, दरिष्यति, दरीष्यति। "हृदयं दीर्य्यतीव मे।"

अव+दॄ+णिच्—अवदारणे, खनने, अवदारयति—वि+दॄ+णिच्—विदाहरणे (फाड़ना), विदारयति।

द्रुह् जिघांसायाम् (अनिष्टचिन्तने, अपकारे)—बुराई चाहना, वैर करना—द्रुह्यति, द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति। जिसपर द्रोह किया जाता है, उसमें चतुर्थी होती है, "द्रुह्यति खलः साधवे।" "योऽन्वेति मां द्रुह्यति मह्यमेव साऽत्रेत्युपालम्भि तयाऽऽलिवर्गः।"

अभि+द्रुह—अपकारे।

नश् (णश्) नाशे (क्षये, मरणे), अदर्शने (लुक्कायने पलायने) च—(१) नष्ट होना, (२) अदृश्य होना, छिप जाना, (३) भागना—नश्यति, नशिष्यति, नङ्क्ष्यति। (१) "जीवनाशं ननाश च।" (२) "ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति।" (३) "नेशुश्चित्रा निशाचराः।"

प्र+नश्—'णश्'—पूर्ववत्, प्रणाशः, प्रनष्टः। वि+नश्–विनाशे।

नृत् (नृती) नर्त्तने—नाचना—नृत्यति, नर्त्तिष्यति, नर्त्स्यति। "नृत्यति युवतिजनेन समं सखि !"

पुष्प् विकासे—खिलना—पुष्पति, पुष्पिष्यति। "पुष्पति कुन्दकोरकम्,।" "सरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः।"

भ्रंश् (भ्रन्शु) अधःपतने--भ्रष्ट होना, च्युत होना; भ्रश्यति; भ्रंशिष्यति। "भ्रश्यन्ति कर्णोत्पलग्रन्थयः।" "सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद् गुरुर्नः।" प्रायशः पञ्चमी के साथ।

परि+भ्रंश्, प्र+भ्रंश्—च्युतौ, हानौ। "यदक्षरं परिभ्रष्टम्।"

भ्रम् (भ्रमु) चलने (भ्रमणे); भ्रान्तौ (अयथार्थज्ञाने) च-(१) घूमना; (२) चूकना—भ्राम्यति; भ्रमिष्यति। (१) "सूर्य्यो भ्राम्यति, नित्यमेव गगने।" (२) "आभरणकारस्तु तालव्य इति बभ्राम।"

मद् (मदी) हर्षे; मत्ततायाञ्च—(१) आनन्दित होना; (२) मतवाला होना—माद्यति, मदिष्यति। (१) "सर्वलोकातिशायिन्या विभूत्या न च माद्यति।" (२) "वीक्ष्य मद्यमितरा तु ममाद।"

उत्+मद्—उन्मादे, चित्तविकारे। प्र+मद्—प्रमादे, अनवधानतायाम् (असावधान होना); "न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।"

मुह् अविवेके (मोहे, ज्ञानरहितीभावे)—मुग्ध होना, विवेकरहित होना, संज्ञाहीन होना—मुह्यति; मोहिष्यति, मोक्ष्यति। "आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।" "स शुश्रुवांस्तद्वचनं मुमोह।"

यस (यसु) प्रयत्ने; यस्यति।

आ+यस्—प्रयत्ने; "दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थमायस्यतः सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः।" खेदे च—"आयस्यसि तपस्यन्ति।" आ+यस्+णिच्—पीडने; "आयासयति मां जलाभिलाषः।" प्र+यस्—प्रयत्ने; "पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः।"

राध् सिद्धौ (निष्पत्तौ)—निष्पन्न होना—राध्यति; रात्स्यति। राध्यत्योदनः।

अप+राध्—अपराधे, अनिष्टाचरणे (अपराध करना); व्यक्ति और वस्तुवाचक शब्द की षष्ठी तथा सप्तमी के साथ—"अपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य।" "यस्मिन् कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला।" कहीं चतुर्थी के साथ भी प्रयुक्त होता है—"न दूये, सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।" वि+राध्-अपकारे, द्रोहे। "क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः?" "विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च नः।"

शम् (शमु) उपशमे (शान्तभावे; निवृत्तौ)—शान्त होना—शाम्यति; शमिष्यति। "शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।" "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।"

उप + शम्—वत्। नि + शम्—श्रवणे। "निशम्य शब्दान्।" नि + शम् + णिच्-श्रवणे; दर्शने च। "निशमयति वचः" (शृणोतीत्यर्थः)। दर्शने तु—"रूपं निशामयति।" "निशामय प्रियसखि !"—इत्यत्र तु श्रवणार्थः।

शुध् शौचे (शुद्धौ)-शुद्ध होना-शुध्यति; शोत्स्यति। "अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।"

शुध् + णिच्—उन्मूलने; ऋणोद्वारे; अशुद्धिसंशोधने च; शोधयति। परि + शुध् + णिच्—ऋणोद्धारे; कण्टकाद्यपसारणे; भ्रमादिसंशोधने च। वि + शुध्—शुद्धौ।

शुष् शोषे (स्नेहरहितीभावे)—सूखना—शुष्यति; शोक्ष्यति। "शुष्यति धान्यमातपेन।" परि, वि, सम् + शुष्—अतिशोषे।

श्रम् (श्रमु) तपसि; खेदे (श्रमे, क्लान्तौ; दुःखे) च—(१) तपस्या करना, (२) थकना; दुखी होना—श्राम्यति; श्रमिष्यति। (१) "कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि !" (२) "आतिथेयमनिवारितातिथिः कर्त्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्।" "यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्।"

परि + श्रम्—परिश्रमे—वि + श्रम्-विश्रामे। "विश्राम्यति यथासुखम्।"

साध् निष्पत्तौ—निष्पन्न, साधित, या पूरा होना—साध्यति; सात्स्यति। "साध्यति घटः" (निष्पन्नः स्यात् इत्यर्थः)।

साध् + णिच्—सम्पादने; प्राप्तौ, पराजये; वधे गमने च-"साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते।" साधयति। प्र + साध् + णिच्—अलङ्करणे; कण्टकशोधने, वैरनिर्यातने च।

सिध् (षिध्) संराद्धौ (निष्पत्तौ)—सिद्ध होना—सिध्यति, सेत्स्यति। "उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः।"

स्निह् (ष्णिह्) प्रीतौ (स्नेहे)–प्यार करना–स्निह्यति; स्नेहिष्यति, स्नेक्ष्यति। "स्निह्यति बन्धुजनः।" जिस पर स्नेह किया जाता है उसमें सप्तमी होती है, "किन्नु खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः ?"

स्विद् (ञिस्विदा) गात्रप्रक्षरणे (घर्मच्युतौ) पसीजना—स्विद्यति; स्वेत्स्यति। "न च स्विद्यति तस्याङ्गम्।"

हृष् तुष्टौ (आह्लादे)–खुश होना-हृष्यति; हर्षिष्यति। हृष्यात् लोकः सुखात्। (२) लोमहर्षे (बाल खड़ा होना); "हृष्यन्ति रोपकूपानि।"

दिवादि आत्मनेपदी धातु

मन् ज्ञाने (सम्भावने)—सोचना

(सकर्मक–"आत्मानं मन्यते बलिनं बली।"–बहु+मन्–श्लाघा-याम्। "कथं भवान् मन्यते ?"—आपका क्या मत है ?)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
म० पु०	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
उ० पु०	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे

लोट्

प्र० पु०	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
म० पु०	मन्यस्व	मन्येथाम्	मन्यध्वम्
उ० पु०	मन्यै	मन्यावहै	मन्यामहै

लङ्

प्र० पु०	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
म० पु०	अमन्यथाः	अमन्येथाम्	अमन्यध्वम्
उ० पु०	अमन्ये	अमन्यावहि	अमन्यामहि

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मन्येत	मन्येयाताम्	मन्येरन्
म० पु०	मन्येथाः	मन्येयाथाम्	मन्येध्वम्
उ० पु०	मन्येय	मन्येवहि	मन्येमहि

लृट्

प्र० पु०	मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते
म० पु०	मंस्यसे	मंस्येथे	मंस्यध्वे
उ० पु०	मंस्ये	मंस्यावहे	मंस्यावहे

अनु + मन्—अनुमतौ, आदेशे, स्वीकारे च। "देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते।" अभि + मन्—चिन्तने, विचारणे, विवेचने; इच्छायाञ्च। अव + मन्—अवज्ञायाम्। सम् + मन्—सम्मानने, पूजायाम्।

जन् (जनी) प्रादुर्भावे (उत्पत्तौ)—उत्पन्न होना। अकर्मक—"घटी जायते।" "गोमयाद् वृश्चिको जायते।" "अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।"

लट्

प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जायै	जायावहै	जायामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र॰ पु॰	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म॰ पु॰	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ॰ पु॰	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

विधिलिङ्

प्र॰ पु॰	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म॰ पु॰	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ॰ पु॰	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

लृट्

प्र॰ पु॰	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
म॰ पु॰	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
उ॰ पु॰	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे

उत्पत्ति अर्थमें—अभि, उप, प्र, वि और सम् उपसर्गके साथ 'जन्'—धातु प्रयुक्त होता है। किन्तु 'प्र' और 'वि' उपसर्गके साथ सकर्मक भी कहीं होता है—'प्रसव करना' अर्थ में; "प्रजायन्ते सुतान् नार्यः।"

सू (षूङ्) प्रसवे (जनने, उत्पादने)—पैदा करना, जनना

(सकर्मक—सूयते पुत्रं नारी; धर्मोऽर्थं सूयते)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र॰ पु॰	सूयते	सूयेते	सूयन्ते
म॰ पु॰	सूयसे	सूयेथे	सूयध्वे
उ॰ पु॰	सूये	सूयावहे	सूयामहे

लोट्

प्र० पु०	सूयताम्	सूयेताम्	सूयन्ताम्
म० पु०	सूयस्व	सूयेथाम्	सूयध्वम्
उ० पु०	सूयै	सूयावहै	सूयामहै

लङ्

प्र० पु०	असूयत	असूयेताम्	असूयन्त
म० पु०	असूयथाः	असूयेथाम्	असूयध्वम्
उ० पु०	असूये	असूयावहि	असूयामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	सूयेत	सूयेयाताम्	सूयेरन्
म० पु०	सूयेथा	सूयेयाथाम्	सूयेध्वम्
उ० पु०	सूयेय	सूयेवहि	सूयेमहि

लृट्

प्र० पु०	सविष्यते / सोष्यते	सविष्येते / सोष्येते	सविष्यन्ते / सोष्यन्ते
म० पु०	सविष्यसे / सोष्यसे	सविष्येथे / सोष्येथे	सविष्यध्वे / सोष्यध्वे
उ० पु०	सविष्ये / सोष्ये	सविष्यावहे / सोष्यावहे	सविष्यामहे / सोष्यामहे

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—जन्म से शूद्र उत्पन्न होता है। वस्त्रोंको सिया था। वह यहाँ नाचा था। ज्वरसे उसका शरीर जीर्ण हो गया। ध्रुव ने विजन वन में कृष्ण की (द्वितीया) आराधना की थी, इसलिए उसका मनोरथ सिद्ध हुआ। उस हरिण को बाणसे विद्ध मत करो। कुटिल मनुष्य अपना भाव हृदय में पोषण करते हैं। प्रचण्ड आतप-तापसे देह का रक्त शुष्क होता है। माता पुत्र का आलिङ्गन करती है।

———

दिवादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु

पद् गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना; (२) पाना-पद्यते; पत्स्यते । (२) "ज्योतिषामाधिपत्यञ्च प्रभावश्चाप्यपद्यत ।"

अनु, अभि + पद्—प्राप्तौ । आ + पद्—प्राप्तौ; विपत्प्राप्तौ च—"अर्थधर्मौ परित्यज्य यः काममनुवर्त्तते । एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा ।" वि + आ + पद्—मरणे । वि + आ + पद् + णिच्—व्यापादने, हनने; व्यापादयति । उत् + पद्—उत्पत्तौ । वि + उत् + पद्-व्युत्पत्तौ । उप + पद् + (१) योग्यतायाम्; "मद्भावायोपपद्यते" (उपयुक्तो भवति,) "नैतत् त्वय्युपपद्यते" (योग्यं न भवति); (२) सम्भावने; "पुत्रदौहित्रयोर्विशेषो नोपपद्यते" (न सम्भाव्यते); (३) प्राप्तौ; "उपपद्यस्व स्वकर्मोचितां गतिम्"; (४) सिद्धौ, सम्पन्नतायाम्; "सर्वं सखे त्वय्युपपन्नमेतत् ।" अभि + उप + पद्-अनुग्रहे । निर् + पद्-निष्पत्तौ,सिद्धौ । प्र + पद्-गतौ; प्राप्तौ च; "ये यथा मां प्रपद्यन्ते" (समाश्रयन्ते) । प्रति + पद्—प्राप्तौ; ज्ञाने; अङ्गीकारे; उत्तरदाने च—"कथं प्रतिवचनमपि न प्रतिपद्यते ?" प्रति + पद् + णिच्—बोधने । वि + प्रति + पद्—विरोधे, विरुद्धज्ञाने; संशये । वि + पद्—विपत्तौ; मरणे च । सम् + पद्-सम्पन्नतायाम् (होना;) "सम्पत्स्यते वः कामोऽयम् ?" "सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहाया । (भविष्यन्ति;) "साधोः शिक्षा गुणाय सम्पद्यते; नासाधोः" (गुणम् उत्पादयति इत्यर्थः) ।—सदा चतुर्थी के साथ । सम् + हृद् + णिच्—सम्पादने; सम्पादयति ।

बुध् ज्ञाने; जागरणे च-(१) समझना; (२) जागना (अकर्मक)—बुध्यते; भोत्स्यते । (१) "बुध्यते शास्त्रं सुधीः ।" (२) "ते च प्रापुरुन्दन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः ।"

अनु + बुध्—स्मरणे; ज्ञाने । अव + बुध्—ज्ञाने । उत् + बुध—विकासे; जागरणे च । नि + बुध्-ज्ञाने । "तान्निबोध द्विजोत्तम !" श्रवणे च; भ्वादि; परस्मैपदी—निबोधति । प्र + बुध्-जागरणे; विकासे; ज्ञाने च । प्रति, वि + बुध्—जागरणे । सम् + बुध—ज्ञाने ।

दिवादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु

खिद् दैन्ये (दीनभावे, उपतप्तीभावे, दुःखानुभवे)—दुःख पाना, खिन्न होना—खिद्यते; खेत्स्यते । "स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोक-हेतोः ।" "स पुरुषो यः खिद्यते नेन्द्रियैः ।"

डी (डीङ्) उड्डयने (नभोगमने) उड़ना—डीयते; डयिष्यते । डीयन्ते पक्षिणः गगने ।

दीप् (दीपी) दीप्तौ (उज्ज्वलीभावे, प्रकाशे, शोभायाम्; ज्वलने)–चमकना—दीप्यते; दीपिष्यते । "दीप्यते निशि चन्द्रमाः ।"

उत्, प्र, सम् + दीप्—ज्वलने ।

दू (दूङ्) उपतापे (खेदे)—दुःखित होना—दूयते; दविष्यते । "दुर्जनोक्त्या न दूयते ।"

प्री (प्रीङ्) प्रीतौ—प्रसन्न होना–प्रीयते; प्रेष्यते । "प्रकाममप्रीयत यज्ज्वनां प्रियः ।"

युज् समाधौ (चित्तवृत्तिनिरोधे;) योग्यभावे च—(१) चित्त को एकाग्र करना; (२) योग्य होना—युज्यते; योक्ष्यते । (१) "युज्यते योगी ।" (२) शेषोक्त अर्थमें षष्ठी और सप्तमी के साथ प्रयुक्त होता हैं; "त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते ।"

युध् युद्धे (अभिभवेच्छायाम्) लड़ाई करना—युध्यते; योत्स्यते । 'तुण्डघातमयुध्यत ।"

ली (लीङ्) श्लेषे (लीनभावे)—लीन होना (चिपटना; छिपकर रहना; गायब होना; गलना)–लीयते; लेष्यते । "लीयते चन्द्रः सूर्य्ये ।" "(भृङ्गाङ्गनाः) लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव ।"

नि + ली—संश्लेषे; निभृतावस्थाने (छिपना) च । वि + ली—नाशे; द्रवीभावे (पिघलना) । अवस्थाने च—"पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।" वि + ली + णिच्—द्रवीकरणे । "लवणं विलीयते जले ।"

विद् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्)—रहना—विद्यते, वेत्स्यते । "अपापानां कुले जाते मयि पापं न विद्यते ।"

निर् + विद्—आत्मावज्ञायाम्; अनुतापे; वैराग्ये च। "निर्विद्यते चित्तं मम विषये।"

दिवादि सकर्मक उभयपदी धातु

नह् (णह्) बन्धने-बाँधना-नह्यति, नह्यते; नत्स्यति, नत्स्यते। "पुरावभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी।" "शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः।"

अपि + नह्—बन्धने; आच्छादने च; प्रायः अकार का लोप होता है; "मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा।" "कवचं पिनह्य।" उत् + नह् = "उन्नमय्य बन्धने।" परि + नह्—वेष्टने। सम् + नह्—आच्छादने; मिलने; उद्योगे (आत्मनेपदी) च—"छेत्तुं वज्रमणीञ् शिरीषकुसुम-प्रान्तेन सन्नह्यते।"

मृष्—तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)-सहना; क्षमा करना—मृष्यति, मृष्यते; मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। "वासन्ती—तत् किमिदमकार्य्यमनुष्ठितं देवेन ? रामः—लोको न मृष्यतीति।" "मृष्यन्तु लवस्य बालिशतां तातपादाः।"

दिवादि अकर्मक उभयपदी धातु

क्लिश् उपतापे (क्लेशे)—क्लेश पाना—क्लिश्यति, क्लिश्यते; क्लेशिष्यते, क्लेशिष्यते। वोपदेवमते—उभयपदी; पाणिनिमते—आत्मनेपदी। "त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम्।"

रञ्ज् (रन्ज्) रागे; आसक्तौ; रक्तीभावे च—(१) अनुरक्त होना, आसक्त होना; (२) लाल होना—रज्यति, रज्यते; रङ्क्ष्यति, रङ्क्ष्यते। (१) "देवानियं निषधराजरुचस्त्यजन्ती रूपादरज्यत नले न विदर्भसुभ्रूः।" "को न रज्यति क्रीडायाम् ?"

रञ्ज् + णिच्-लाक्षादिना रक्तीकरणे (रंगना), प्रसादने च (प्रसन्न करना) रञ्जयति; अनु + रञ्ज्—अनुरागे। अप + रञ्ज्—विरागे। उप + रञ्ज्—उपरागे, राहुग्रासे। वि + रञ्ज्—विरागे।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—पक्षिणः नभसि उड्डीयन्ते। यत्नेन विना किमपि न सिध्यति। सरसि कमलानि जायन्ते। दुःखात् दुःखमुत्पद्यते। वृष्ट्या च प्रजानां पुष्टिर्जायते। आत्मा वै जायते पुत्रः। आदित्यात् जायते वृष्टिः, वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः। कृश्यति चन्द्रः कृष्णपक्षे। कायः क्लाम्यति यस्य प्रहरतो रिपून्। सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने। यस्यां गुरुजन एवं तुष्यति। विपदि न मुह्येत् धीरः। पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति। तस्य त्रयः पुत्राः अजायन्त। ते खलु निशि हृष्यन्ति। नहि धीरः कदाचिद् भिया क्षुभ्यति। यो न कुप्यति विप्राय। व्यसनिनां पर्याप्तं धनं भुवि न विद्यते। तप्यते तपस्तापसः। को न तृप्यति वित्तेन ? सह मेघेन तडित् प्रलीयते।

संस्कृत में अनुवाद करो—हम दोनों ने उसकी सेवा की। हम समझ सकते हैं। उसे लड़ने दो। सूर्य्य चमकता है। वह बहुत परिश्रम करता है। वे पासा खेल रहे हैं। उसकी आँख में तीर मत चलाओ। उसे नाचने दो। मैं नाच सकता हूँ। भगवान् स्वर्ग में खेलते हैं। चिड़ियाँ आसमान में उड़ती हैं। उसने अपने मित्र को नुकसान पहुँचाया। जो जिसके योग्य है विद्वान् उसी से उसे मिला देते हैं। विनोदिनी ने दो सन्तानों का (द्वितीया) प्रसव किया है। लक्ष्मण ने इन्द्रजित् के साथ युद्ध किया। वे पद-पद में (प्रतिपदम्) विपन्न होते हैं। काम तीन दिनों में सम्पन्न हुआ था। जो इसे समझेगा, वह फल पायेगा। उसके परुष भाषण से सब लोग दुःखित हुए। यदि वन में व्याघ्र न रहे, तो जाओ। हम कभी उनके वचन से खिन्न नहीं होंगे। सब लोगों ने वक्ता के वाक्य का आशय अच्छी प्रकार से नहीं समझा।

स्वादि

क्रियाघटन-सूत्र

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में स्वादिगणीय धातु के उत्तर 'नु' आगम होता है; यथा—सु + ति = सु + नु + ति = सुनोति ।

सगुण (ति; सि; मि, तु, द्, स्, आनि, आव, आम, अम्, ऐ, आवहै, आमहै) विभक्ति परे रहने से, 'नु' और 'उ' इन दोनों आगमों का गुण होता है; यथा—सुनोति । उ—तन् + उ + ति = तनोति ।

'नु' परे रहने से 'श्रु' के स्थान में 'शृ' और 'धिव्' के स्थान में 'धि' होता है; यथा—श्रु + ति=श्रु + नु + ति=शृ + णु + ति=शृ + णो + ति= शृणोति । धिव् + नु + ति=धि + नु + ति = धि + नो + ति = धिनोति ।

अगुण विभक्ति का स्वरवर्ण परे रहने से स्वरवर्ण के परस्थित 'नु' और 'उ' आगमों के उकार के स्थान में 'व्' और व्यञ्जन वर्ण के परस्थित 'नु' के उकार के स्थान में 'उव्' होता है; यथा— (स्वर) श्रु + अन्ति = श्रु + नु + अन्ति=शृ + णु + अन्ति=शृण्वन्ति । (व्यञ्जन) शक् + अन्ति = शक् + नु + अन्ति = शक् + न् + उव् + अन्ति = शक्नुवन्ति ।

'व' और 'म' परे रहने से 'नु' और 'उ' आगमों के उकारका विकल्पसे लोप होता है; किन्तु 'नु' व्यञ्जन वर्ण में मिलित होने से नहीं यथा—(नु) शृणु + वः = शृण्वः, शृणवः । (उ) तन् + उ + वः = तन्वः, तनुवः । व्यञ्जन—शक्नुवः ।

अकार-भिन्न अन्य वर्ण के परस्थित 'अन्ते', 'अन्ताम्' और 'अन्त' विभक्ति के नकार का लोप होता है; यथा—अश्नुव् + अन्ते = अश्नुव् + अते = अश्नुवते ।

स्वादि परस्मैपदी धातु

श्रु श्रवणे—सुनना

(सकर्मक—"शृणु वत्स ! मयोक्तं हि")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शृणोति	शृणुत	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृण्वः शृणुवः,	शृण्मः, शृणुमः

लोट्

प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

लङ्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वम्
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृण्व, अशृणुव	अशृण्म, अशृणुम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लृट्

प्र० पु०	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
म० पु०	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उ० पु०	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

आ+श्रु, प्रति+श्रु—प्रतिज्ञायाम् । सम्+श्रु—अकर्मकात् आत्मनेपदम्; संश्रृणुते; "हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः ।"

शक् (शक्लृ) सामर्थ्ये—सकना

(अकर्मक; 'तुमुन्'-अन्त क्रिया पद के साथ प्रायशः प्रयुक्त होता है—"न च शक्नोम्यवस्थातुम् ।" सकर्मक धातु के योग से सकर्मक होता है—"इदं वक्तुं शक्यते" । "शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुम् ।")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

लङ्

प्र० पु०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
म० पु०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उ० पु०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—सब लोग मीठी बात नहीं बोल सकते । हर समय गुरुजनों का वाक्य सुनना चाहिए । कभी अश्लील वाक्य सुनना नहीं चाहिए । मैंने प्रातःकाल में मेघ का गर्जन सुना था । तू कोकिल की मधुर ध्वनि नहीं सुनता है क्या ? राम-श्याम दोनों भाई गाना सुन रहे हैं । मैं बंगला भाषा पढ़ सकता हूँ । जो दूसरे के बुरे बर्ताव से असन्तुष्ट होता है वह स्वयं अपना शत्रु है (आत्मैव रिपुरात्मनः) ।

भ्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

आप् (आप्लृ) प्राप्तौ—पाना—आप्नोति; आप्स्यति। "ज्ञानात् कैवल्यमाप्नोति।" "पात्रत्वाद् धनमाप्नोति।"

अव+आप्—प्राप्तौ, लाभे—"धार्मिकः सुखमवाप्नोति।" प्र+आप–प्राप्तौ; उपगमने च—"जटायुः प्राप रावणम्।"

सम्+प्र+आप्—सम्प्राप्तौ। वि+आप—व्याप्तौ। सम्+आप्–समाप्तौ। सम्+आप्+णिच्—समापने, समाप्तिकरणे, समापयति।

क्षि हिंसायाम् (नाशे) नष्ट करना–क्षिणोति; क्षेष्यति। "न तद् यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति।"

कर्मकर्तरि—क्षीयते (क्षीण होना); "प्रतिक्षणमयं कायः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।" "प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते।" "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।"

दु (टुदु) उपतापने (पीडने)—दुःखाना, सताना—दुनोति; दोष्यति। "वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।"

धिन्व् (धिवि) प्रीणने—सन्तुष्ट करना—धिनोति; धिन्विष्यति। "धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।"

पृ—प्रीणने—पृणोति; परिष्यति। "अतिथीन् पृणोति गृहस्थः।"

हि प्रेरणे—प्रेरणा करना; निक्षेप करना–हिनोति; हेष्यति। "गदा शक्रजिता जिह्ये।" "हिनोति अस्त्रं नाशाय।"

प्र+हि–प्रेरणे (भेजना); निक्षेपे च। "न हि प्रहिणोमि वाक्शल्यं कदाचित्।"

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु

अश् (अशू) व्याप्तौ (पूरणे, आच्छादने, प्राप्तौ)—(१) व्याप्त करना; (२) प्राप्त होना।

(१) "क्षमातलं बलजलराशिरानशे।" (२) "अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते।"

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
म० पु०	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
उ० पु०	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट्

प्र० पु०	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
म० पु०	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
उ० पु०	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

लङ्

प्र० पु०	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
म० पु०	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
उ० पु०	आश्नुवि	आनुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
म० पु०	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
उ० पु०	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

लृट्

प्र० पु०	{ अशिष्यते अक्ष्यते	अशिष्येते अक्ष्येते	अशिष्यन्ते अक्ष्यन्ते
म० पु०	{ अशिष्यसे अक्ष्यसे	अशिष्येथे अक्ष्येथे	अशिष्यध्वे अक्ष्यध्वे
उ० पु०	{ अशिष्ये अक्ष्ये	अशिष्यावहे अक्ष्यावहे	अशिष्यामहे अक्ष्यामहे

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु

वृ (वृञ्) वरणे (प्रार्थनायाम्)—मनोनीत करना, पसन्द करना, चाहना। "हिताय विद्वान् वृणुते हि सद्गुणम्।"

परस्मैपद

लट्

प्र० पु०	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
ऊ० पु०	वृणोमि	वृण्वः, वृणुवः	वृण्मः, वृणुमः

लोट्

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

लङ्

प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
म० पु०	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृण्वत
उ० पु०	अवृणवम्	अवृण्व, अवृणुव	अवृण्म, अवृणुम

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
म० पु०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

लृट्—वरिष्यति

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृण्वहे-वृणवहे	वृण्महे-वृणमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वन्ताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

लङ्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृण्वहि, अवृणुवहि	अवृण्महि, अवृणुमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

लृट्

वरिष्यते, वरीष्यते ।

अप + वृ, अप + आ + वृ—उन्मोचने, प्रकाशने । आ + वृ—गोपने; आच्छादने; रोधे च । प्र + आ + वृ—परिधाने । नि + वृ + णिच्—निवारणे; निवारयति । निर् + वृ—निवृत्तौ, सुखे; स्वस्थतायाम् । वि + वृ व्याख्याने; प्रकाशने च । परि + वृ—वेष्टने । सम् + वृ—गोपने; निरोधे च ।

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु

चि (चिञ्) चयने (राशीकरणे, संग्रहणे)—चुनना, बटोरना, इकट्ठा करना—चिनोति, चिनुते; चेष्यति चेष्यते । द्विकर्मक—वृक्षं पुष्पं चिनोति ।

कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ (बढ़ना); चीयते; "राजहंस ! तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ।" "चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः" अप् + चि–कर्मकर्त्तरि—हानौ, क्षये;—अपचीयते । अव + चि–

चयने। आ + चि—सञ्चये, संग्रहे; व्याप्तौ, आच्छादने च। उत् + चि—संग्रहे। उप + चि—वर्द्धने (बढ़ाना); "यशस्तमामुच्चैरुपचिनु।" कर्म-कर्त्तरि—वृद्धौ; उपचीयते; "बलनैव सहोपचीयते मदः।" नि + चि—व्याप्तौ; प्रधानतः–'क्त'प्रत्ययान्त ही व्यवहृत होता है; "शकुन्तनीड-निचितं बिभ्रज्जटामण्डलम्।" निर् + चि—निश्चये। परि + चि–ज्ञाने; अभ्यासे च। प्र + चि–कर्मकर्त्तरि–वृद्धौ; प्रचीयते। वि + चि—सञ्चये; ध्याने, अन्वेषणे च—"विष्णुं विचिन्वन्ति योगिनो विमुक्तये।" "काचं विचिन्वन्नपि दिव्यरत्नम्।" सम् + चि—सञ्चये।

धु (धुञ्), धू (धूञ्) कम्पने—हिलाना—धुनोति, धुनुते; धूनोति, धूनुते; धु—अनिट्; धू वेट्; धोष्यति, धोष्यते; धविष्यति, धविष्यते। "धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकम् (वायुः)।" (२) अपनोदने; "स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तो धुनोत्यहिशङ्कया।"

अव + धू—निरासे। आ + धू—ईषत्कम्पे। उत् + धू—उत्क्षेपे। निर्+धू, वि + धू—निरासे, नाशे।

सु (षुञ्) सुरासन्धाने; सोमादेः पीडने; मन्थने; स्नाने च—(१) मद्य चुआना; (२) सोमलतादि को निचोड़ना; (३) मथना; (४) नहाना (अकर्मक)—सुनोति, सुनुते; सोष्यति, सोष्यते।

अभि + सु—स्नाने; अभिषुणाति; "वारांस्त्रीनभिषुण्वते।"

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढाँपना, बिछाना—स्तृणोति, स्तृणुते; स्तरिष्यति, स्तरिष्यते। "शिरोभिर्महीं तस्तार।"

आ + स्तृ—विस्तारे (बिछाना)। परि + स्तृ—विस्तारे; आवरणे च। वि + स्तृ—विस्तारे।

अनुवाद

स महदयशः प्राप्नोति नरकं च गच्छति—यह बहुत ही अकीर्ति प्राप्त करता है और नरक में जाता है। अहं हट्टे बहूनि फलानि प्राप्नुवम्—मैंने बाजार में बहुत फल पाये। देवस्त्वां सविता धिनोतु—सूर्य भगवान् तुम्हें प्रसन्न रखें।

वह पेड़ों से फल इकट्ठा करता है—वृक्षात् फलानि चिनोति स। राजा को विद्वानों में से मन्त्री चुनना चाहिये—राजा विद्वद्भ्यः सचिवान् वृणुयात्। मैंने रास्ते में भारी हल्ला-गुल्ला सुना—पथि महान्तं कोलाहलमशृणवमहम्। आलसियों को दुःख होता है—अलसी दुःखं प्राप्नुवन्ति।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—स तस्य पितुर्वचनं न शृणोति। साधवः सदैव सुखमाप्नुवन्ति। बालकाः पुष्पाणि चिन्वन्ति। सदैव गुरोर्वाक्यं शृणुयाः। न तद् यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति। धुनोत्यशोकं वृक्षं वायुः। धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्। अश्नुते च परं तपः। वाराणसीं प्रति चरान् प्राहिणोत्। मुखं तव दुनोति माम्। यो यथा बीजं वपति स तथैव फलमाप्नोति।

संस्कृत में अनुवाद करो—जो आत्मा को जानने के लिए वरण करता है उसके सामने आत्मा अपना स्वरूप प्रकट कर देती है। जो सर्वान्तःकरण से प्रयत्न करता है वह उपयुक्त फल पाता है। इस वर्ष वणिकों ने वाणिज्य से तीन लाख रुपये प्राप्त किये हैं। परिश्रम का फल तुमने पाया, परन्तु उसने क्यों नहीं पाया? मनुष्य पूर्ण अध्यवसाय से क्या नहीं पा सकता? मेघ चारों दिशाएँ व्याप्त करता है। प्रबल झञ्झावात से वृक्ष-समूह कम्पित होते हैं। भक्तगण प्रातःकाल उठकर (उत्थाय) पुष्प-चयन करते हैं। परिमित और नियमित भोजन से शरीर का स्वास्थ्य और बल बढ़ता है। बाल्यकाल से ही प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी विद्या का संचय करना और उसके लिए (तदर्थं) सद्गुरु का (द्वितीय) वरण करना चाहिये। शङ्का मत करो। मेरे साथ रामचन्द्र को प्रेषण करो। राक्षस हमें अत्यन्त सताते हैं। रामचन्द्र अवश्य राक्षसों का (द्वितीया) संहार करने में (संहर्त्तुम्) समर्थ होगा। बाल्यकाल से ही अच्छी आदतें डालनी चाहिये। प्रत्येक कार्य परिश्रम से करना चाहिये। नौकर को मिठाई लाने के लिए भेजो। राजा ब्राह्मण का आदर करता है। वाल्मीकि मुनि ने रामायण-रचना कर हमलोगों का बड़ा उपकार किया। गीता में कृष्ण ने अनेक उपदेश दिये।

शुद्ध करो—छात्र शिक्षकस्य वचनं शृणुयात्। जलमुचः नभः आश्नुवन्त। सुहृदः हितं वचं शृणुहि। दृष्टाः बालकः चरमे वयसि दुःखमाप्नुते।

तनादि

क्रियाघटन-सूत्र

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में तनादिगणीय धातु के उत्तर उ आगम होता है; यथा—तन्+ति=तन्+उ+ति=तनोति।

सगुण विभक्ति परे रहने से, कृ—कर्, अन्यत्र कुर् होता है।

व, म और य परे रहने से, कृ धातु के उत्तर विहित उ आगम का लोप होता है

तनादि सकर्मक उभयपदी धातु

कृ (डुकृञ्) करणे

"ऋणं कुर्वन्ति पापिनः।" "तात! किं करवाण्यहम्?"; "सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।" "कुरुते गंगा सागर-गमनम्।" "तत्कुरुष्व मदर्पणम्।"

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट्

प्र० पु०	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

लृट्

प्र० पु०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
म० पु०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उ० पु०	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

(आत्मनेपद)

लट्

प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	करवै	करवावहै	करवामहै

लङ्

प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० पु०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

अलम्+कृ—भूषणे (सजाना); अलङ्करोति। अलङ्करोम्यधुना नबवधूं पुष्पहारेण, उरी, ऊरी+कृ—स्वीकारे। पुरस्+कृ—पूजायाम्; अग्रतःकरणे च। तिरस्+कृ—भर्त्सने; आच्छादने च। बहिस्+कृ—दूरीकरणे; बहिष्करोति। सत्+कृ—आदरे। नमस्+कृ—नमस्कारे। सजू+कृ—सहायीकरणे। अधि+कृ—स्वामित्वे; नियोगे; विषयीकरणे च। अनु+कृ—अनुकरणे। अप+कृ—अपकारे; जिसका अपकार किया जाय; उसमें प्रायशः षष्ठी होती है; "किं तस्या मयाऽपकृतम्'; कही द्वितीया और सप्तमी भी होता है; "सैनिकाः केचिदपकुर्युर्युधिष्ठिरम्।" "न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव।" आ+कृ+णिच्—आह्वाने; आकारयति। अप+आ+कृ—अपसारणे। "ऋणानि त्रीन्नपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।" उप+आ+कृ—संस्कारपूर्वकवेदग्रहणे; संस्कारपूर्वकपशुहनने च; "सौमित्रे। गोसहस्रमुपाकुरु।" निर्+आ+कृ—निराकरणे, निरासे; "सांख्यमतं निराकरोमि।" वि+आ+कृ–व्याख्यायाम्। उप+कृ–उपकारे; प्रायशः षष्ठी के साथ; "न हि दीपौ परस्परस्योपकुरुतः।" (२) करणे च; "किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ?"

परा+कृ-परिग्रहणे। परि+कृ-भूषणे; शोधने, निर्मलीकरणे च; परिष्करोति, पर्य्यस्करोत्। वि+प्र+कृ—पीडने; "किं सत्त्वानि

विप्रकरोषि ?"; (२) विकारप्रापणे च; "कमपरमवशं न विप्रकुर्य्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ?" प्रति+कृ—प्रतिकारे। वि+कृ—विकारे; "उपयन्नपयन् धर्मो विकरोति हि धर्मिणम्।" "चित्तं विकरोति कामः।" अकर्मक होने से आत्मनेपदी होता है; "हीनान्यनुपकर्त्तृणि प्रवृद्धानि विकुर्वते (मित्राणि)।" विरुद्धं चेष्टन्ते, अपकुर्वते इत्यर्थः। सम+कृ—अलङ्करणे; शोधने च—संस्करोति।

तन् (तनु) विस्तारे (प्रसारणे)—तानना, पसारना, फैलाना—तनोति, तनुते, तनिष्यते, तनिष्यते। "तनोति रविरातपम्।"—(२) करणे, उत्पादने; "त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम्।" "पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः।" अनुष्ठाने, निष्पादने; "नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां ततान।" (४) रचने च; "तनुते टीकाम्।"

अव+तन्—व्याप्तौ। आ + तन्—व्याप्तौ;। "आतनोति गृहं धूम्रजालः।" "आतेने वनगहनानि वाहिनी स।" (२) उत्पादने; "जडतामातनोति।" (३) करणे "सपर्यामाततान।" प्र+तन्–विस्तारे। वि+तन्—विस्तारे; व्याप्तौ; करणे; उत्पादने; रचने च। वि+तन्+णिच्–दीर्घीकरणे, विस्तारे; वितानयति। सम्+तन्–विस्तारे।

तनादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु

मन् (मनु) बोधे—जानना, समझना—मनुते; मंस्यते। "मनुते मनुतुल्योऽसौ प्रजामात्मजवत् प्रभुः।" "समाभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते।"

अनुवाद

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति—वह दाग काला होने पर भी चन्द्रमा के सौन्दर्य को बढ़ाता है। कुर्य्याः अध्ययने यत्नम्–अपनी पढाई में ध्यान देना चाहिये। भृत्यः कटमकरोत्—नौकर ने चटाई बनायी। संस्पर्शः पुनरपि तनोति मोहम्—वही स्पर्श फिर मोह लाता है।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—न स स्वं कुरुते कर्म। भृत्यानां नित्यमज्ञानं क्षिणुते यः सदुक्तिभिः। कुम्भकारः दण्डेन घटं करोति। अध्ययने यत्नं कुरु। सदा सुहृदः प्रियं कुर्य्याः। महात्मनां यशांसि दिक्षु प्रतन्वन्ति कवयः। सत्कार्यं नरस्य कीर्तिं सर्वत्र तनोति। श्वः कार्यमद्य कुर्वीत। तनोति रविरातपम्। इमे तडागं जलैः परिपूर्णं कुरु। नहि कार्यार्थिनः नरा अकाले अभिव्यक्तिं कुर्व्वन्ति। विद्या कीर्तिं च दिक्षु वितनोति। कदापि यूयं परस्परं मा विरोधं कुरुत।

संस्कृत में अनुवाद करो—मैंने इसे नहीं किया। तुमने भूल की। वह अपना काम बड़ी सावधानी से करता है। अपना कर्त्तव्य करो। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। सभी अपना अपना काम करो। भोजन के पश्चात् और रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिये। जो लोग असत् कार्य्य करते हैं, वे अवश्य दुःख पाते हैं। वह करे तो करे, मैं नहीं करूँगा। राम की माता ने मनोयोग से गृह-संस्कार किया। प्राणपण से दूसरे का उपकार करना उचित है।

क्र्यादि

क्रियाघटन-सूत्र

चतुर्लकार परे रहने सु, कर्तृवाच्य में क्र्यादिगणीय धातु के उत्तर 'ना' आगम होता है;—यथा—अश् + ति—अश्नाति।

'अस्'-भिन्न विभक्ति का स्वर वर्ण परे, 'ना'-'न्' होता है; यथा—अश् + अन्ति = अश् + ना + अन्ति = अश् + न् + अन्ति = अश्नन्ति। "अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।"

'ना' परे रहने से, धातु के उपधा नकार का लोप होता है; यथा—मन्थ् + ति = मन्थ् + ना + ति = मथ्नाति।

अगुण व्यञ्जन वर्ण परे रहने से, 'ना' का 'नी' होता है; यथा—अश् + नातः = अश्नीतः।

'ना' परे रहने से पू, लू, धू, गॄ, दॄ, वॄ और शॄ धातु का अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है। यथा—पू + ना + नि = पुनाति। "सत्पुत्रः पुनाति कुलम्।"

व्यञ्जन वर्ण के परस्थित 'ना'—'हि' के साथ मिलकर 'आन' होता है; यथा—अश् + हि = अश् + ना + हि = अश + आन = अशान।

'ना' परे रहने से, ग्रह् का गृह् और ज्ञा का जा होता है; यथा—ग्रह् + ति = गृह्णाति; ज्ञा + ति = जानाति।

क्र्यादि सकर्मक उभयपदी धातु

क्री (डुक्रीञ्) क्रये (मूल्यदानेन द्रव्यग्रहणे)

("क्रीणाम्यहं शलाकामेकं वैद्युतम्।" "क्रीणाति क्रीणीते धान्यं धनेन लोकः।")

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
म० पु०	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उ० पु०	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

लोट्

प्र० पु०	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
म० पु०	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उ० पु०	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

लङ्

प्र० पु०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म० पु०	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ० पु०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
म० पु०	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ० पु०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

लृट्—क्रेष्यति

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणाध्वम्
उ० पु०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

लङ्

प्र० पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० पु०	अक्रीणीथः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म० पु०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

लृट्

प्र० पु०	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
म० पु०	क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे
उ० पु०	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे

परि+क्री—क्रयविशेषे (किराये पर लेना)। वि+क्री—विक्रये; विक्रीणीते। विनिमय (अदला-बदली करना) अर्थ में परस्मैपदी होता है; "विक्रीणाति तिलैस्तिलान्" ।

ज्ञा बोधे (ज्ञाने)

("जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः ।" "आपत्सु मित्रं जानीयात् ।" उपसर्गविहीन उभयपदी; "जाने तपसो वीर्य्यम् ।")

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म० पु०	जानासि	जानीथः	जामीथ
उ० पु०	जानामि	जानीवः	जानीमः

लोट्

प्र० पु०	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

लङ्

प्र० पु०	आजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	आजानाः	आजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	आजानाम्	अजानीव	अजानीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम	जानीयाव	जानीयाम

लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
म० पु०	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उ० पु०	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ० पु०	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म० पु०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उ० पु०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

अनु + ज्ञा—अनुमतौ; "तदनुजानीहि मां गमनाय ।" अनु + ज्ञा + णिच्—गमनाय आदेशग्रहणे, आमन्त्रणे, आप्रच्छने, अनुज्ञापयति; "स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे ।" अभि + ज्ञा—अनुस्मृतौ; ज्ञाने च । प्रति + अभि + ज्ञा—अनुस्मरणे । अव + ज्ञा—अनादरे, अवमाननायाम् । आ + ज्ञा—ज्ञाने । आ + ज्ञा + णिच्—आदेशे; शासने; विज्ञापने च । उप + ज्ञा–आद्यज्ञाने; "पाणिनिना उपज्ञातं व्याकरणम्" (विनोपदेशेन ज्ञातम्) । परि + ज्ञा—परिज्ञाते, निश्चये । प्र + ज्ञा—सम्यग्बोधे, परिज्ञाने । प्रति + ज्ञा—प्रतिज्ञायाम्; आत्मनेपदी, "प्रतिजाने प्रियाऽसि मे ।" "कौन्तेय ! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।" "हरचापारोपणेन कन्या दानं प्रतिजानीते ।" वि + ज्ञा—विशिष्टज्ञाने । वि + ज्ञा + णिच्—विज्ञापने; विज्ञापयति ।

ग्रह उपादाने (ग्रहणे, स्वीकारे)—लेना ("प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।")

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णाव	अगृह्णाम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
म० पु०	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

लृट—ग्रहीष्यति

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
म० पु०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

लोट्

प्र० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
म० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णै	गृह्णीवहै	गृह्णीमहै

लङ्

प्र० पु०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
म० पु०	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
उ० पु०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म० पु०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
म० पु०	ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
उ० पु०	ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे

ग्रह + णिच्-शिक्षणे; ग्राहयति। अनु + ग्रह्-अनुग्रहे, "महात्मानऽनुगृह्णन्ति भजमानानरीनपि।" अव + ग्रह्—निग्रहे। उद् + ग्रह् + णिच्—उपन्यासे; उद्ग्राहयति। उप + ग्रह्-परिग्रहे; "अव्यवसायिन प्रमदेव वृद्धयति नेच्छत्युपग्रहीतुं लक्ष्मीः।" नि + ग्रह्-पीडने। परि + ग्रह—आदाने, स्वीकारे। प्र + ग्रह—प्रकर्षेण ग्रहणे। प्रति + ग्रह्—स्वीकारे; आक्रमणे च। वि + ग्रह्—युद्धे, कलहे; समस्तस्य पृथक्करणे च। सम् + ग्रह—संग्रहे।

क्र्यादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

अश् भोजने—खाना-अश्नाति, अशिष्यति। "अश्नात्यन्नं बुभुक्षितः।"

उप + अश्—उपभोगे; प्राप्तौ च। प्र; सम + अश्—भोजने।

कुष् निष्कर्षे (निःसारणे बहिष्करणे)—खींच कर निकालना—कुष्णाति; कोषिष्यति। "शिवाः कुष्णन्ति मांसानि।"

निर् + कुष्—बहिर्निःसारणे; विदारणे; निष्कुष्णाति; निष्कोक्ष्यति, निष्कोषिष्यति।

क्लिश् (क्लिशू) बाधने (पीडने)—दुःख देना—क्लिश्नाति; क्लेशिष्यति, क्लेक्ष्यति। "स क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।"

गॄ शब्दे (उक्तौ, उच्चारणे; स्तुतौ)—(१) कहना; (२) स्तव करना—गृणाति; गरिष्यति, गरीष्यति। (१) गृणाति वाक्यं लोकः; (२) "केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।"

ग्रन्थ् सन्दर्भे (ग्रन्थने; रचनायाम्)—(१) गूँथना, (२) बनाना—ग्रथ्नाति, ग्रन्थिष्यति।

(१) "ग्रथ्नाति मालां मालिकः।" "काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नन्ति मूढाः।" (२) "ग्रथ्नामि काव्यशशिनं विततार्थरश्मिम्।"

उद्+ग्रन्थ्—बन्धने। सम्+ग्रन्थ्—रचनायाम्।

दॄ विदारणे—फाड़ना—दृणाति; दरिष्यति, दरीष्यति। "दृणाति च रिपून् रणे।"

वि+दॄ—विदारणे; "स्तनं विददार काकः।" पुष् पोषणे (भरणे;) वर्द्धने (१) पालना; (२) बढ़ाना—पुष्णाति; पोषिष्यति। (१) "तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुपाण।" (२) "पुपोष लावण्यमयान् विशेषान्।" (३) प्रकाशने, बोधने; "न हीश्वरा व्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्।"

बन्ध बन्धने—(१) बाँधना बध्नाति; भन्त्स्यति। "प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।" (२) परिधाने; "नहि चूडामणिः पादे प्रभवामीति बध्यते।" (३) रचने; "श्लोक एष त्वया बद्ध।"

अनु+बन्ध्—सम्बन्धे अपरित्यागे, अनुवर्त्तने; "सत्योऽयं जनप्रवादो यद् विपत् विपद् सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति।" आ+बन्ध्—बन्धने; करणे च—"आबद्धाञ्जलिः।" उत्+बन्ध्—गलरज्ज्वादिना उर्ध्वबन्धने। नि+बन्ध्—बन्धने; स्थिरीकरणे; रचनायाञ्च। निर्+बन्ध्—आग्रहे। प्र+बन्ध्—रचनायाम्। प्रति+बन्ध्—व्याघाते, निरोधे; "प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।"

सम्+बन्ध्—सम्बन्धे, संयोगे।

मन्थ विलोडने[1] (मन्थने; संक्षोभे; पीडने; विनाशे)—(१) मथना (२) हिलाना, विचलित करना, सताना (३) विनष्ट करना—मथ्नाति मन्थिष्यति। (१) मथ्नाति दधि बलवी; द्विकर्मक—"सुधां सागरं ममन्थुः।" (२) "मां मथ्नातीव मन्मथः।" "मन्मथो मां मथनन् निजनाम सान्वयं करोति।" (३) "मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्?"

१ मन्थ् (मथि)—धातु भ्वादि परस्मैपदी भी होता है; मन्थति। 'मथ' (मथे) धातु भी होता है भ्वादि परस्मैदी; मथति।

मुष् (मुष) स्तेये (चौर्ये; लुण्ठने; अपाकरणे)—(१) चोरी करना, (२) दूर करना—मुष्णाति; मोषिष्यति। (१) "मुषाण रत्नानि।" द्विकर्मक—"देवदत्तं शतं मुष्णाति।" (२) "दैवं प्रज्ञां मुष्णाति।" "विषयबाहुल्यं कालविप्रकर्षश्च नः स्मृतिं मुष्णाति।"

सम्+प्र+मुष्—सम्यक् रूप से चोरी करना, अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।

मृद् क्षोदे (मर्दने; चूर्णीकरणे; विनाशने)—(१) माँड़ना, मलना; चूर करना; (२) विनष्ट करना—मृद्नाति; मर्दिष्यति। (१) "मम च मुदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्त्तनैः।" "मृद्नाद्विषतां दर्पं यो भुजाभ्यां भुवः पतिः।" (२) "बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः।"

अभि, अव+मृद् निष्पेषणे, पीडने, दलने, उच्छेदे। उप+मृद्-हनने, विनाशने "उपमृद्नाति चित्तं चेद् ध्याताऽसौ ननु तत्त्ववित्।" वि+मृद्—घर्षणे। सम्+मृद्—पीडने, सौञ्चूर्णने।

शॄ हिंसने (हनने; छेदने)—हिंसा करना, मारना; टुकड़ा करना—शृणाति; शरिष्यति, शरीष्यति। "वनाश्रयाः कस्य मृगाः परिग्रहाः? शृणाति यस्तान् प्रसभेन तस्य ते।" "पशुमिव परशुः पर्वशस्त्वां शृणातु।"

स्तम्भ् (स्तन् भु) रोधने; जडीकरणे च—(१) रोकना; (२) निश्चल करना, अचेत करना—स्तभ्नाति, स्तभ्नोति (स्वादि); स्तम्भिष्यति। (१) "कण्ठः स्तम्भितबाष्पवत्तिकलुषः।" (२) "प्राणा दध्वंसिरे, गात्रं तस्तम्भे च प्रिये हते।"

अव+स्तम्भ—अवलम्बने; निरोधे च। उत्+स्तम्भ्—धारणे, आश्रये। उप+स्तम्भ्—आश्रये। वि+स्तम्भ्—प्रतिबन्धे निवारणे स्थापने; धारणे च। सम्+स्तम्भ् निरोधे; स्थिरीकरणे च।

क्र्यादि सकर्मक उभयपदी धातु

धू—(धूञ्) कम्पने—हिलना—धुनाति, धुनीते; धोष्यति धोष्यते, धविष्यति धविष्यते। "चूतं धुनाति वायुः।"

पू—(पूञ्) शोधने (पवित्रीकरणे)—शुद्ध करना, पवित्र करना—पुनाति, पुनीते; पविष्यति, पविष्यते। "जाह्नवी नः पुनातु।" "भागीरथि! पुनीहि माम्", "पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मनं पुनीमहे।"

प्री (प्रीञ्) प्रीणने—प्रीत करना—प्रसन्न करना—प्रीणाति, प्रीणीते; प्रेष्यति, प्रेष्यते।

"प्रणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रः।" "प्रभुः प्रीणातु विश्वभाक्।" "कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे ?" (अकर्मक प्रयोग)।

वृ (वृञ्) वरणे—प्रार्थना करना—वृणाति, वृणीते; वरिष्यति वरिष्यते, वरीष्यति वरीष्यते। "पुत्र! वरं वृणीष्व।"

लू (लुञ्) छेदने—काटना; लुनना—लुनाति, लुनीते; लविष्यति, लविष्यते। "लुनाति शस्यं कृषकः।" "शरासनज्यामलुनाद् बिडौजसः।" "लुनीहि नन्दनम्।"

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढाँकना, बिछाना—स्तृणाति, स्तृणीते; स्तरिष्यते, स्तरीष्यते, स्तरीष्यति; स्तरीष्यते।

अनुवाद

बर्त्तन को अपने दोनों हाथों में लो—गृहाणैतत् भाण्डं हस्ताभ्याम्। वह मांस नहीं खाता—स मांसं नाश्नाति। हम लोग यह कल ही जानते थे—गतेऽहनि इदं वयमजानीम। लड़का एक कपड़ा खरीदता है—वस्त्रमेकं क्रीणाति बालकः। मैं लाल कपड़ा नहीं पहनूँगा—नाहं रक्तवस्त्रं परिधास्यामि।

मा एनमन्तरा प्रतिबधान—उसे बीचमें मत रोको। शक्तूनिमान् भूयः प्रतिगृहाण—यह सत्तू फिर लो। जाने तपसो वीर्यम्—मैं तपस्या की शक्ति को जानता हूँ। काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः। उचित समय में राजनीति के प्रयोग से फल अच्छा होता है।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—न कन्यायाः शुल्कं गृह्णीयात् । तानि वस्त्राणि त्वमक्रीणीथाः । कानि खाद्यानि आश्नीत । प्रनिबध्नाहि श्रेयः पूज्यपूजा-व्यतिक्रमः । क्लिश्नाति भुवनत्रयम् । काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नन्ति मूढाः । अगृह्णात् तं मत्स्यं पाणिना । गृहाण खड्गमिमं मदीयम् । सम्पत् सम्पदमनु-बध्नाति विपद् विपदम् । प्रत्ययः स्त्रीषु विदुषामपि विवेकं मुष्णाति । दात्रेण धान्यं लुनाति कृषकः । भागीरथि ! पुनीहि माम् । दृणाति स रिपून् रणे । गोपी दधि मथ्नाति । रत्नानि मुषाण । नान्यः कश्चिज्जानाति वृत्तान्तमिमम् । यो बध्नाति रिपून् रणे । विषयबाहुल्यं न स्मृतिं मुष्णाति ।

संस्कृत में अनुवाद करो—मैं राम को जानता हूँ । मैंने कब पुस्तकें खरीदीं । वह इसे ले सकता है । उसे पेड़ हिलाने दो । उसने रस्से को तलवार से काटा । रुपया मत लो । देवताओं ने समुद्र मन्थन किया । उसे दूध से घड़ा भरने दो । दूसरों की चीज मत चुराओ । भगवान् पापियों को पवित्र करते हैं । ग्वाले लोग साँझ के समय दूध मथते हैं । दूसरे का द्रव्य नहीं चुराना । लड़के फूलसे माला गूँथते हैं । रावण ने त्रिभुवन को सताया था । चरवाहे इस मैदान में गायों को बाँधते हैं । बाजार में (विपणिः आपणः) सब लोग द्रव्यादि क्रय करते हैं । धर्मशील पुत्र पिताको पवित्र करता है । मैं कभी भी सत्यमार्ग नहीं छोड़ूँगा—उसने यह प्रतिज्ञा की थी । मलय पवन वृक्ष को हिलाता है । असत् उपाय से उपार्जित वस्तु न ग्रहण करो । धर्म के लिए संग्रह करो ।

शुद्ध करो—वयं मांसं न अश्नामि । सुधीरः बालकः गुरूपदेशं गृह्णीयाः । त्वं रामं जानाति किम् ? पुनीहि मां भवान् । साधुः अपरस्य गुणं गृह्णते । गृह्णीहि एतद्वसनम् । वयं विषान्नमश्नामि ।

चुरादि

क्रियाघटन-सूत्र

चुरादिगणीय धातु के उत्तर स्वार्थ में 'णिच्' होता है; 'णिच्'—का 'इ' रहता है।

*'णिच्' परे रहने से धातु के उपधा आकार तथा अन्त्य स्वर की वृद्धि, और उपधा लघु स्वर को गुण होता है; यथा—(वृद्धि) वृ + इ= वारि; (गुण) चुर् + इ—चोरि।

*'णिच्' परे रहने से पूर्ववर्त्ती आकार का लोप होता है; यथा—कथ् + इ = कथि।

'णिच्' परे रहने से, कृत्—कीर्त्, कृप्—कल्प् होता है।

*णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त और काम्यादि[1]—प्रत्ययान्त की फिर 'धातु' संज्ञा होती है, और चतुर्लकार में भ्वादिगणीय धातु के तुल्य कार्य होता है; यथा—कथि + ति = कथि + अ + ति = कथे + अ + ति = कथयति।

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

भक्ष् अदने (भक्षणे)—खाना

("भक्षयति तण्डुलान् मूषिकः।" "भक्षयाम्यहमोदनं पायसं च।")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति
म० पु०	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
उ० पु०	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः

---

१. काम्य, क्य, क्यङ्, क्विप्।

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
म० पु०	भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत
उ० पु०	भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम

लङ्

प्र० पु०	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
म० पु०	अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत
उ० पु०	अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः
म० पु०	भक्षयेः	भक्षयेतम्	भक्षयेत
उ० पु०	भक्षयेयम्	भक्षयेव	भक्षयेम

लृट्

प्र० पु०	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	भक्षयिष्यन्ति
म० पु०	भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यथः	भक्षयिष्यथ
उ० पु०	भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्यावः	भक्षयिष्यामः

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

अञ्च् (अन्चु) विशेषणे; प्रकाशने; जनने; वर्द्धने च—प्रकाश करना, बढ़ाना—अञ्चयति; अञ्चयिष्यति। "मुदमञ्चय।"

अर्च् पूजायाम्—पूजा करना, सम्मान करना—अर्चयति। "दूरस्थो नार्चयेद् गुरुम्।" "कथमर्चयसि रक्तपुष्पेण विष्णुम् ?"

अभि और सम् उपसर्ग के साथ भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अर्ज् अर्जने—कमाना—अर्जयति। उप+अर्ज—उपार्जने; "चिरकालोपार्जितः सुहृत्।" "उपार्जयति लोकः धनं स्वपरसुखाय।"

अर्ह् पूजायाम्—अर्हयति।

ईर् प्रेरणे; क्षेपणे चालने; कथने च-(१) फेंकना; (२) हिलाना; (३) कहना-ईरयति। (१) "ऐरिरच्च महाद्रुमम्।" "ईरयति वानरः वृक्षशाखाम्।" (२) "वातेरितपल्लवाङ्गुलिभिः।" (३) "न च सपत्न-जनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता।"

उत्+ईर्—उच्चारणे; उत्क्षेपणे, प्रकाशने, उत्पादने च। अभि+उत्+ईर्—उक्तौ। प्र+ईर्—प्रेरणे। सम्+ईर्—विक्षेपणे; कथने च।

कृत् संशब्दने (कीर्त्तने)—कीर्त्तने या कथन करना—कीर्त्तयति। "कीर्त्तयन्ति च गोष्ठीषु यद्गुणानप्सरोगणाः।" "विप्रसेवैव शूद्रस्य प्रशस्तं कर्म कीर्त्त्यते।"

क्लृप् (कृप) कल्पने; विन्यासे; रचनायाम्; निर्माणे; निरूपणे च—(१) सोचना, (२) तैयार करना; (३) निर्देश करना—कल्पयति। (१) "मत्सरस्तु मे विपरीतं कल्पयति।" (३) "शयन-मस्या कल्पय।" "यथापूर्वमकल्पयत्।" "इदं शास्त्रमकल्पयत्।" (३) "आसनं कल्पयामास।"

अव+क्लृप्—सम्भावनायाम्। उप+क्लृप्—विन्यासे, आयोजने च। परि+क्लृप्—करणे; निश्चये च। प्र+क्लृप्-उद्भावने; निरूपणे च। वि+क्लृप्—संशये। सम्+क्लृप्—संकल्पे, मानसक्रियायाम्, इच्छायाम् च।

क्षल्, शोधने (क्षालने)—धोना—क्षालयति—"क्षालयामि तव पादपङ्कजे।" प्र+क्षल्, वि+क्षल्—प्रक्षालने।

खण्ड् (खडि) भेदने (भञ्जने, खण्डने, छेदने, विनाशे च) (१) टुकड़ा करना, काटना; (२) नष्ट करना—खण्डयति। (१) "खण्डं खण्डमखण्डयद् बाहुसहस्रम्।" (२) "रजनीचरनाथेन खण्डिते तिमिरे निशिः।" "खण्डयामि तव तर्कजालम्।"

गर्ह् कुत्सायाम्—निन्दा करना-गर्हयति। "विषमां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हयते नरः।"-यहाँ आत्मनेपदी प्रयोग है। "तं विगर्हन्ति साधवः" (भ्वादि उभयपदी)।

गुप् गोपने—छिपाना—गोपयति। "वित्तं न गोपयति यस्तु वनीयकेभ्यः।"

घट् संघाते (योजनायाम्)—जोड़ना—घाटयति। "घाटयति कवाटं द्वारि जनः" (संयोजयतीत्यर्थः)।

उत्+घट्-उद्घाटने (खोलना); "मञ्जूषां यन्त्रैरुद्घाटयामास।" "कपाटमुद्घाटयामि।"

घट्ट चालने—हिलाना—घट्टयति।

आ+घट्ट्—आघाते। वि+घट्ट-अभिघाते। सम्+घट्ट्-सङ्घर्षे।

घुष् (घुषिर्) विशब्दने; कथने; आविष्करणे; घोषणायाञ्च)-ढिंढरो करना; शुहरत देना, मुनादी करना—घोषयति। "इति घोषयतीव डिण्डिमः।" "चमूरस्य जयमघोषयत्।"

आ, वि+घुष्—घोषणायाम्। प्र+उत्+घुष्—निनादने।

चट् भेदने—चाटयति।

उत्+चट्—उच्चाटने, अपसारणे; "उच्चाटनीयः करतालिकानां दानादिदनीं भवतीभिरेषः?"

चर्च् अध्ययने (अनुशीलने)—चर्चा करना। "चर्चयति वेदं विप्रः।" अनुलेपने; "चन्दनचर्चितनीलकलेवर।"

चर्व्—अदने (चर्वणे)—चबाना—चर्वयति, चर्वति। "चर्वयति चर्वति तण्डुलं बालकः।" "रथं वक्त्रे निक्षिप्य दशनैश्चर्वयति।" "चणकं चर्वयामि।"

चिन्त् (चिति) स्मृत्याम् (चिन्तायाम्)—चिन्ता करना, गौर करना—चिन्तयति। "चिन्तय तावत् केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः।"—उद्भावने; "योऽप्युपायश्चिन्त्यताम्।"

परि, वि, सम्+चिन्त्—अत्यन्तचिन्तायाम्, ध्याने, स्मरणे।

चुद् प्रेरणे (क्षेपणे; चालने; नियोगे, प्रश्ने च)—(१) फेंकना; (२) चलाना; (३) नियुक्त करना; (४) पूछना; शङ्का करना-चोदयति। (१) "चोदनालक्षणोऽर्थः धर्मः।" "शरैर्मन्मथचोदितैः।" (२) "चोदयाश्वान्" (३) "तान् वधे मातुरचोदयत्।" "चोदयामास तं, सभा वै क्रियतामिति।" (४) "शिष्यान् समानीयाचार्य्योऽर्थमचोदयत्।"

प्र + चुद्, सम् + चुद्—प्रेरणे; कथने च। "परिवेषयेत प्रयता गुणान् सर्वान् प्रचोदयन्"; "सञ्चोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम्।"

चुर् स्तेये, चौर्य्ये च—चोरी करना—चोरयति। "चोरयति धनं चोरः।" "अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्।"

चूर्ण पेषणे (चूर्णीकरणे)—चूरना—चूर्णयति। "चूर्णयत्यरिमण्डलं च।" "तण्डुलं चूर्णय।"

छद् अपवारणे, आच्छादने, गोपने च—ढाँकना, छिपाना– उभयपदी; छादयति, छादयते; छदति, छदते। "छादयति छादयते दिशं मेघः।"

अव, आ, प्र + छद्—आच्छादने, संवरणे, गोपने। सम् + छद्—आच्छादने, व्यापने।

छन्द्—उप + छन्द्—प्रलोभने; प्रार्थनायाञ्च—उपच्छन्दयति।

जस् हिंसायाम्; ताडने च—जासयति।

उत् + जस्—उन्मूलने—उज्जासयति। षष्ठी के साथ; "निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम्।"

टङ्कं (टकि) बन्धने—टाँकना—टङ्कयति।

उत् + टङ्क—उल्लेखे; "सर्वेऽपि धातवोऽत्र साथी उट्टङ्किताः।"

तड् आघाते (ताडने)—मारना, पीटना—ताडयति। "लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।" वादने; "अताडयन् मृदङ्गांश्च।"

तप् दाहे (उष्णीकरणे; व्यथने च)—(१) गर्म करना, (२) पीड़ा देना—तापयति। (१) "न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया।" "भृशं तापितः कन्दर्पेण।"

तर्क वितर्के; विचारे; ऊहे; संशये च–गुमान करना, विचार करना; अनुमान करना–'तर्कयति'। "त्वं तावत् कतमां तर्कयसि?" "वृक्षसेचनादत्रभवतीं परिश्रान्तां तर्कयामि।" "(पातुं) त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्य्यगम्भः।"

प्र, वि + तर्क्—वितर्के।

तिज् निशाने (तीक्ष्णीकरणे)—तेज करना, पैनाना—तेजयति। "कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरः।"

उत्+तिज्--उद्दीपने, प्रोत्साहने, व्यग्रीकरणे; तीक्ष्णीकरणे।

तुल् उन्माने (परिमाणे)-तोलना-तोलयति। "तोलयति काञ्चनं वणिक्।"—उत्थापने; "कैलासे तुलिते।"

उत्+तुल्—उत्तोलने, ऊर्ध्वनयने। "उत्तोलयति जलं कूपात्।" डुल्—उत्क्षेपे—डुलाना झुलाना—दोलयति। "तं दोलयति मुदा सुहृदाली।" "शिशुं दोलय।"

धृ धारणे; गृहीतापरिशोधने च (१) धारण करना; (२) ऋण परिशोधन करना, धारना-धारयति। (१) "धारयन् मस्करिव्रतम्।" (२) "तस्मै तस्य वा धनं धारयसि।"

पट् विदारणे (छेदने)—चीरना, फाड़ना; तोड़ना—पाटयति। "कश्चिन्मध्यात् पाटयामास दन्ती।" "अन्यासु भित्तिषु मया निशि पाटितासु।" उत्+पट्-उत्पाटने, उन्मूलने-उखाड़ना। "उत्पाटयति मूलं लतायाः।"

पाल्—रक्षणे (पालने)-पालना-पालयति। "अपत्यवत् पालयति प्रजा नृपः।" "पालयिष्याम्यहं तव उपदेशम्।"

पीड् बाधने (पीडने, क्लेशदाने)-दुःखाना-पीडयति। "न पीडयति शत्रु सज्जनः।" मर्दने च (दाबना); "लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्।"

उत्+पीड्—संघर्षे; उत्सारणे, नोदने; पीडने च। उप+पीड्—संश्लेषे; पीडने च। नि+पीड्-पीडने; धारणे; आलिङ्गने च। निर्+पीड् निष्पीडने, आर्द्रवस्त्रादेर्निर्जलीकरणे (निचोड़ना)। "निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति।"

पुष धारणे (पोषणे)—पोषण करना-पोषयति। "परपिण्डेनात्मानं पोषयामि।" "पोषयति कुक्कुरशावकान् हलधरस्य पुत्रः।"

पूज् पूजायाम् (सम्माने, प्रशंसायाम्)—पूजा करना—पूजयति। "दुर्गां पूजयति ब्राह्मणः।"

पूर् आप्यायने (पूरणे)—पूर्ण करना—पूरयति। "पूरय मधुरिपुकामम्।" "पूरयति भाण्डं जलेन बालिका।"

भू चिन्तायाम्, शोधने; मिश्रणे; उत्पादने; वर्धने च।—(१) चिन्ता करना; (२) शुद्ध करना; (३) मिलाना; (४) पैदा करना; (५) बढ़ाना—भावयति। (१) "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।" (२) "तपसा भावितात्मानो ज्ञानं विन्दन्ति निश्चितम्।" (४) "भूतानि भावयति जनयति वर्द्धयतीति वा भूतभावनः।" (५) "देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु व; परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।"

भूष् अलङ्करणे (भूषणे)—सिंगारना—भूषयति। "शुचि भूषयति श्रुतं वपुः, प्रशमस्तस्य भवत्यलङ्क्रिया।" "भूषयन्ति नववधूं पुर-स्त्रियः।"

मण्ड् (मडि) भूषायाम्—भूषित करना—मण्डति हारो जनम्।

मान् पूजायाम् (सम्मानने) सम्मान या आदर करना-मानयति। "मान्यान् मानय।"

मार्ग अन्वेषणे (प्रतिसन्धाने) ढूँढना, माँगना। मार्गयति, मार्गति। "मार्गयति (मार्गति) गुणं गुणी।"

मार्ग, मृज् (मृजू) शोधने (मार्जने, दूरीकरणे)—मलना; हटाना, माँजना-मार्जयति। "यो मार्जयति साम्राज्यश्रियश्चापल्यवाच्यताम्।"

मृष् तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)—सहना, क्षमा करना—उभयपदी मर्षयति, मर्षयते "आर्य्य ! मर्षय मर्षय।"

मोक्ष् मोचने—मुक्त करना; छोड़ना, फेंकना—मोक्षयति। "त्वां शापान्मोक्षयिष्यति।" "सङ्ख्येषु मोक्षयति यश्च शरं मनुष्ये।" "अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।"

यत् परिभवे (ताडने); अलङ्करणे च—यातयति। प्रयत्न करना—यतते—"यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।"

निर्+यत्—प्रत्यर्पणे (फेर देना); प्रतिदाने, वैरशुद्धौ च (बदला लेना—निर्यातयति—"रामलक्ष्मणयोर्वैरं स्वयं निर्यातयामि।"

यन्त्र् (यत्रि) बन्धने (नियमने)—रोकना, अटकाना, दबाना—यन्त्रयति।'स्नेहकारुण्ययन्त्रितः।" "किं निर्यन्त्रयति वायुयानं विहगः?"

नि+यन्त्र्—'यन्त्र्'-वत्।

लक्ष् दर्शने (ज्ञाने); अङ्कने (चिह्नीकरणे) च (१) देखना; (२) चिह्नित करना—उभयपद, लक्षयति, लक्षयते। "लक्षयति लक्षयते घटं लोकः।" (पश्यति, चिह्नयुक्तं करोति वा इत्यर्थः) "चरितान्यस्य लक्षय।"

आ+लक्ष्—आलोकने; ज्ञाने च। उप+लक्ष्—ज्ञाने, अनुभवे; विशेषणे—"केशैरुपलक्षितः।" लक्षणया बोधने च—"काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यादौ दध्युपघातकर्तृत्वेन श्वादिरुपलक्ष्यते।" सम्+लक्ष्—सम्यग्दृष्टौ, परीक्षायाम्।

लङ्घ् (लघि) लङ्घने (अतिक्रमणे)—लांघना, पार होना—लङ्घयति। "गिरिमलङ्घयत्।" "यशो भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः।" भ्वादिगणीय उभयपदी भी होता है—लङ्घति, लङ्घते। "लङ्घते स्म मुनिरेष विमानान्।"

उत्+वि+लङ्घ्—उल्लङ्घने।

लङ्घ्+णिच्—लङ्घयते—"मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।"

लड् उपसेवायाम् (अन्यन्तपालने, लालने)—लाड़ करना—लाडयति लालयति। "लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः। तस्मात् पुत्रञ्च शिष्यञ्च ताडयेन्न तु लालयेत्।"

उप+लड्—"बालकमुपलालयन्।"

लोक् (लोकृ) दर्शने—देखना—लोकयति। अव, आ, वि+लोक्—दर्शने।

लोच् (लोचृ)—आ+लोच्, परि+आ+लोच्—चिन्तने, विचारणे, निरूपणे।

वच् परिभाषणे (वाचने, पाठे)—बाँचना—वाचयति। "नानादेशसमुद्भूतां वाचयत्यखिलां लिपिम्।"

वण्ट् (वटि) विभाजने (वण्टने)—बाँटना—वण्टयति। पक्षे—भ्वादि परस्मैपदी—वण्टति। "वण्टयन्ति नृपा रत्नं, विप्रा विण्टन्ति हाटकम्।"

वृ वारणे—रोकना—वारयति । "यवेभ्यो गां वारयति ।" "प्रविशन्तं न कश्चिदवारयत् ।" "वारयामि पुनर्वारं मा मृषा कथयस्व मे ।"

उप+वृ—आच्छादने, गोपने ।

वृज—(वृजी) वर्जने (त्यागे)—छोड़ना—वर्जयति । "वर्जयेदसतां सङ्गम् ।"

अप+वृज्—त्यागे; दाने छेदने च । आ+वृज्—आगमने; दाने; प्रसादने च । वि+वृज्—परित्यागे ।

शिष् असर्वोपयोगे (परिशेषीकरणे)—बचाना, छोड़ देना, बाकी रखना—शेषयति, शेषति । "शेषयति शेषति यशोराशि लोकः" (अवशिष्टं करोतीत्यर्थः) ।

अव+शिष्, परि+शिष्—अवशेषे । वि+शिष्—अतिशायने, अतिक्रमे, पराभवे, तिरस्कारे । निर्+शिष्—शून्यीकरणे; उन्मूलने, उत्सादने, विलोपने ।

श्रण् दाने—प्रायेणायं 'वि' पूर्वः—विश्राणयति । "विश्राणयति यः श्रीमान् विप्रेभ्यो विपुलं वसु ।"

सद्—आ+सद्—प्राप्तौ; गमने (सन्निकर्षे) च—पाना; जाना—आसादयति । "आसादयति विद्यानां पारम् ।" "नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।"

सन्त्व् समाश्वासने (सान्त्वनायाम्) सान्त्वना या ढ़ाढ़स देना—सान्त्वयति । "सान्त्वयति शोकार्त्तं दयालुः ।"

सूद्—नि+सूद्—हिंसने—निसूदयति, निषूदयति । "व्याघ्रो निषूदयति मृगम् ।"

स्फुट् भेदने—फोड़ना—स्फोटयति । "बालकः स्फोटयन् भाण्डं रुदोद च पपात च ।"

आ+स्फुट्—बाहुताडने; "बाहू चास्फोटयच्छनैः ।"

स्वद् आस्वादने (रसोपादाने)—चखना—स्वादयति । "स्वादयति क्षीरं लोकः ।"

आ+स्वद्—आस्वादने, अनुभवे। "परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि। तदेवास्वादयत्यन्तः परसङ्गरसायनम्।"

चुरादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु

कुत्स् अवक्षेपे (निन्दायाम्)—निन्दा करना—कुत्सयते। "पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।"—इत्यत्र परस्मैपदी, "आर्षग्रन्थेषु पदनियमाभावात्।"

चित् ज्ञाने—जानना—चेतयते[1]। "कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।"

तन्त्र् कुटुम्बधारणे। (धारणे, पोषणे) तन्त्रयते। शासने नियमने; "प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा।"

तर्ज भर्त्सने—डाँटना, झिड़कना—तर्जयते। बहुशः परस्मैपद में भी महाकवि-प्रयोग दिखाई पड़ता है; "सखीमङ्गुल्या तर्जयति।" "अहितानिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः।"

भर्त्स् भर्त्सने (धमकाना)—भर्त्सयते। परस्मैपदी वोपदेवः।

भल्—नि+भल्—दर्शने—निभालयते। परस्मैपदी अपि।

मन्त्र् (मत्रि) गुप्तभाषणे (मन्त्रणायाम्) परामर्श करना—मन्त्रयते। "हृत तस्य यां मन्त्रयते।" क्वचित् परस्मैपदी भी होता है; "किमेकाकिनि मन्त्रयसि?" "हला! सङ्गीतशालापरिसरेऽवलोकिताद्वितीया त्वं किं मन्त्रयन्त्यासीः?"

अनु, अभि+मन्त्र्; अभिमन्त्रणे, मन्त्रकरणसंस्करणे। आ+मन्त्र—कथने; प्रस्थानेनानुमतिप्रार्थने; सम्बोधने निमन्त्रणे। नि+मन्त्र्—निमन्त्रणे; "बन्धूनामन्त्रयामहे।"

---

१. ज्ञानार्थ में चित् धातु भ्वादिगणीय परस्मैपदी भी होता है। यथा, चेतति—"एतस्मात् किमिवेन्द्रजालमपरं यद् गर्भवासस्थितं रेतश्चेतति हस्तमस्तकपदं प्रोद्भूतनानाङ्कुरम्। पर्यायेन शिशुत्वयौवनजरारोगैरनेकैर्वृतं पश्यत्यत्ति शृणोति जिघ्रति तथा गच्छत्यथागच्छति॥"

वञ्च् (वत्च्) विप्रलम्भे (प्रतारणे, वञ्चनायाम्)—धोखा देना, ठगना—वञ्चयते। "कथमथ वञ्चयते जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम्।" परस्मैदी भी होता है; "(वन्धनं) वञ्चयन् प्रणयिनीरवाप सः।"

सकर्मक अदन्त परस्मैपदी धातु

अङ्क लक्षणे (चिह्नीकरणे)-चिह्नित करना, निशान लगाना—अङ्कयति, अङ्कापयति। "अङ्कयामास वत्सान्।"

अर्थ याचने-मांगना—आत्मनेपदी; अर्थयते। द्विकर्मक-"त्वामिममर्थमर्थयते।" "वैश्यं गत्वार्थयस्व धनम्।"

अभि+अर्थ, प्र+अर्थ—प्रार्थनायाम्। सम्+अर्थ—चिन्तने; दृढीकरणे, प्रमाणीकरणे च।

अव+धीर अवज्ञायाम्—अनादर करना—अवधीरयति "अवधीरयति साधुमसाधुः।"

क्त्वा—अवधीर्य्य; "हितवचनमवधीर्य्य।" "दूतीव धाराम-वधीर्य्य।"

आन्दोल दोलने—झुलाना, हिलाना—आन्दोलयति। "मन्दमारुतान्दोलिता लतेव।" "आन्दोलयति वृक्षान् भूरि का।"

कथ वाक्यप्रबन्धे (कथने, वर्णने)—कहना—कथयति। प्रायशः चतुर्थ्यन्त व्यक्तिवाचक शब्द के साथ; "राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव सः।" "येषामाभीरकन्यापतिगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा......धिक्तान् धिक्तान् धिगेतान् कथयति सततं कीर्त्तनस्थो मृदङ्गः।"

कर्ण भेदने। आ+कर्ण—श्रवणे; आकर्णयति। "आकर्णयसि किं ममोपदेशम्?"

कल गतौ; सङ्ख्यायाम् (१) गणनायाम् च—कलयति। "कः समर्थः स्यात् कलयितुं नक्षत्राणि?" (२) धारणे ग्रहणे; "म्लेच्छनिवहनिधने कलयति करवालम्।" "कलयति हि हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मीम्।" "कलय वलयश्रेणीं पाणौ।" (३) करणे; "सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कलयति।" "मधुमिलितमधुपकुलकलितरावे

(केलिसदने) ।" (४) ज्ञाने; "कलयन्नपि सव्यथोऽवतस्थे ।" "रुषा निषिद्धालिजनां यदैनां छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार ।" (५) चिन्तने, विचारणे; "व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ।" "कलयामि मणिभूषणं बहुदूषणम् ।" (६) निर्माणे "मरकतशकल-कलितकलधौतलिपेः ।"

आ + कल—बोधे, बन्धने, आक्रमणे, ग्रहणे, अधिकारे च । परि + कल्—ज्ञाने । सम् + कल्—सङ्कलने (योजने; संग्रहे च) । वि + अव + कल्—व्यवकलने, वियोजने ।

क्षप क्षेपणे (दूरीकरणे; अतिवाहने)—(१) फेंकना; (२) काटना, व्यतीत करना, उपवास करना; गँवाना—क्षपयति । (२) "पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम् ।"

गण सङ्ख्याने, गणनायाम्, विचारे, ज्ञाने च-गिनना—गणयति । "लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।" "पावकस्य महिमा स गण्यते, कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ।"

वि + गण—ज्ञाने; निश्चये । अव—गण—अवज्ञायाम् ।

गवेष मार्गणे (अन्वेषणे, अनुसन्धाने)—ढूँढ़ना—गवेषयति । "गवेषयति गुणं गुणी ।" "तस्मादेष यतः प्राप्तस्तत्रैवान्यो गवेष्यताम् ।" "गवेषमाणं महिषीकुलं जलम् ।"—इत्यत्र भ्वादिगणीय आत्मनेपदी ।

गुण अभ्यासे (गुणने, पूरणे; आम्रेडने)च—गुणा करना, जर्ब करना—गुणयति । "हन्तिः पूर्त्तिश्च गुणने ।" इति अङ्कविदः ।

चित्र चित्रीकरणे (आलेख्यकरणे)—तस्वीर या शबीह् खींचना—चित्रयति । "चित्रयति प्रतिमां लोकः ।" "वाग्देवताचरितचित्रितचित्त-सद्मा ।" "क्रौञ्चपदालीचित्रिततीरा ।"

दण्ड दण्डनिपातने—दण्ड देना, डाँटना—दण्डयति । दण्डापयति । "दण्डयति अपराधिनं राजा ।" द्विकर्मक—"तान् सहस्रञ्च दण्डयेत् ।" "अनृतन्तु वदन् दण्डचः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।" "कौटसाक्ष्यं कुर्वाणान् दण्डयित्वा प्रवासयेत् ।"

पार् कर्मसमाप्तौ (शक्तौ)—सकना—पारयति । "न खलु माता-पितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः ।" "अधिकं नहि पारयामि वक्तुम् ।"

मह् पूजायाम्—पूजा करना, आदर करना—महयति । गोप्तारं न निधीनां महयन्ति महेश्वरं विबुधाः ।" "स्त्री पुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम् ।"

मिश्र सम्पर्के (मिश्रणे, संयोजने)—मिलाना-मिश्रयति । "मिश्रयति घृतेनान्नं लोकः ।" "वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः ।"

मूत्र् प्रस्रावे—पेशाब करना—मूत्रयति । "तिष्ठन् मूत्रयति ।"

मृग् अन्वेषणे—ढूँढ़ना—आतमनेपदी, मृगयते । "रामो मृगं मृगयते वनवीथिकासु ।"

रच् रचनायाम् (प्रणयने, निर्माणे, करणे)—रचना, तैयार करना-रचयति । "रचयति शयनं सचकितनयनम् ।" "मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ।" "अश्वघाटीं जगन्नाथो विश्वहृद्यामरीरचत् ।" "रचयति चिकुरेकुरवककुसुमम्" (विन्यस्यति) । "विरचितानुरूपवेशः ।"

रस् आस्वादने—चखना—रसयति । "रसयति मधु द्विरेफः ।" "मृद्वीका रसिता ।"

रह् त्यागे—छोड़ना—रहयति । "रहयति शोकं धीरः ।" "रहयत्यापदुपेतमा यतिः ।"

रूप् रूपकरणे—बनाना—रूपयति । "रूपयति प्रतिमां शिल्पी ।" (२) अभिनये (नाटचेन प्रकाशने—नाटक में दिखलाना); "शकुन्तला व्रीडां रूपयति ।" नि+रूप्—निरूपणे (निर्णये, निश्चये; दर्शने; विवरणे, स्वरूपकथने च) ।

वर् ईप्सायाम्—वरण करना, पसन्द करना—वरयति । "कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम् । बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः ।"

वर्ण् शुक्लाद्विवर्णकरणे (रञ्जने); वर्णने; स्तुतौ च-(१) रङ्गना; (२) वर्णन करना; (३) स्तुति करना—वर्णयति। (१) "प्रतिमां वर्णयति।" (२) "कथां वर्णयति।" (३) "हरिं वर्णयति।"

निर्+वर्ण्—दर्शने।

वास उपसेवायाम् (गुणान्तराधाने, सुरभीकरणे)—सुगन्धित करना; वासित करना—वासयति। "वासयति वस्त्रं चन्दनम्।" "छेदे चन्दनतरुर्वासयति मुखं कुठारस्य।"

अधि+वास्—'वास'-वत्।

विडम्ब् अनुकरणे (सदृशीकरणे); वञ्चने च—(१) अनुकरण करना; नकल करना; (२) ठगना—विडम्बयति। (१) "(तं) ऋतुर्विडम्बयामास, न पुनः प्राप तच्छ्रियम्"; (२) "एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्बयते।"

वीज् व्यजने (वायुसञ्चालने)—पङ्खा झलना—बीजयति। "सख्यौ शकुन्तलां वीजयतः।" "वीज्यते स हि संसुप्तश्चामरैः।"

व्यय् वित्तसमुत्सर्गे (धनव्यये)—व्यय करना, खर्च करना—व्ययति। "वहु व्यययति द्रव्यम्।"

शील् अभ्यासे (अनुशीलने)—अभ्यास करना—शीलयति। "शीलयन्ति यतयः सुशीलताम्।" (२) परिधाने—"शीलय नीलनिचोलम्।"—आश्रयणे, गमने; "यदनुगमनाय निशि गंहनमपि शीलितम्।" "स्मेरानना सपदि शीलय सौधमौलिम्।"

श्लथ् दौर्बल्ये (शिथिलीकरणे)—शिथिल (ढीला) करना—श्लथयति। "परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा।"

सभाज् पूजने (सत्कारे); प्रीणने च—सम्मान करना; आनन्दित करना—सभाजयति। "स्नेहात् सभाजयितुमेत्य।" "सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि।"—अलङ्करणे; "वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियैव सभाजयन्।"

सूच् व्यक्तीकरणे—सूचित करना, प्रकाश करना, सूचयति। "त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं (गन्धः)।" "मन्त्रो गुप्तद्वारो न सूच्यते।"

स्तेन् चौर्य्ये—चोरी करना—स्तेनयति। "वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः। तां तु यः स्तेनयेद् वाचं स सर्वस्तेय-किन्नरः।"

स्पृह् इच्छायाम्—चाहना—स्पृहयति। चतुर्थी के साथ; "पुष्पेभ्यः स्पृहयति।" "न मैथिलेयः स्पृहयाम्बभूव भर्त्रे दिवो, नाप्यलकेश्वराय।"

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—रात में दही नहीं खाना चाहिए। इन फलों को बाँट दो। कभी कोई चीज मत चुराओ। अन्धे से घृणा मत करो। कभी अपरिमित भोजन न करो। तू अब खा, मैं उसके साथ बात कर लूँ। आपने मुझ से क्या कहा? किसी की (द्वितीया) अवज्ञा मत करो। वह जितना कमाता है, सभी खर्च करता है। दुष्ट लोग जहाँ तहाँ सभी का दोष-कीर्त्तन करते हैं। वाल्मीकिजी ने सुललित पद्यों में रामचन्द्र का समग्र चरित्र वर्णन किया है। कोई द्रव्य एकाकी भोजन नहीं करना। रामदास एक-एक करके रुपया गिनता है। इन फलों को बाँट दो। साधु लोग सर्वदा सद्विषय की आलोचना करते हैं।

रुधादि

क्रियाघटन-सूत्र

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में रुधादिगणीय धातु के अन्त्य-स्वर के पश्चात् 'न्' होता है; यथा—रुध् + ति = रुन्ध् + ति ।

सगुण विभक्ति परे रहने से, 'न्' के स्थान में स्वरान्त 'न' होता है; यथा—रुन्ध् + ति = रुणध् + ति = रुणद्धि ।

धकार से परे 'त' अथवा 'थ' रहने में, दोनों मिलकर 'द्ध' होता है; यथा—रुणध् + ति = रुणद्धि ।

एक वर्ग के तीन वर्ण एकत्र होने से, मध्यम वर्ण का लोप होता है; यथा;—रुन्ध् + तः (= न्द्ध) = रुन्ध ।

'स' परे रहने से, 'द्' और 'ध्' के स्थान में 'त्' होता है; यथा—रुणध् + सि = रुणत्सि ।

व्यञ्जन वर्णके परस्थित 'हि' को धि' होता है; यथा—रुध् + हि = रुनध् + धि = रुन्ध्[1] + धि = रुन्धि ।

व्यञ्जन वर्ण के परस्थित लङ् का 'द्' और सकार का लोप होता है; यथा—अ + रुणध् + द् = अरुणध् = अरुणत् ।

लङ् के सकार का लोप होने से, धातु के 'द्' और 'ध्' के स्थान में विकल्प से रेफ होता है; यथा—अरुण त्, अरुणः ।

'च' अथवा 'ज'—परस्थित तकार में मिलकर 'क्त' और थकार में मिलकर 'क्थ्' होता है; यथा—भुज् + ते = भुन्ज् + ते = भुन् + क्ते = भुङ्क्ते ।

---

१. एक वर्ग के दो चतुर्थ वर्ण एकत्र होने से, आदि का वर्ण तृतीय वर्ण होता है ।

च, छ, ज, श, ष, ह और घ—परस्थित दन्त्य सकार में मिलकर 'क्ष्' होता है; यथा—भुन्ज् + से = भुङ्क्षे।

'ध' परे रहने से, 'च' और 'ज' के स्थान में—'ग' होता है, और विराम में अर्थात् कोई वर्ण परे रहनेसे अन्त स्थित 'च' और 'ज' के स्थान में 'क्' होता है; यथा-भुन्ज् + ध्वे = भुन्ग्ध्वे = भुङ्ग्ध्वे; भुज + द् = अभुनक्।

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में 'हिन्स् के स्थान में 'हिनस्' होता है; यथा—हिनस् + ति = हिनस्ति।

'ध' परे रहने से, पूर्ववर्त्ती 'स' के स्थान में 'द' होता है, अथवा सकार का लोप होता है; यथा—हिन्स् + हि = हिन्स् + धि = हिन् + धि = हिन्धि।

ति, सि, मि, तु, द्, स्–इन विभक्तियों के परे रहने से, 'तृह्' धातु के 'न' का 'ने' होता है; यथा—तुह् + ति = तृन्ह् + ति=तृणेह् + ति। य, र, ल, व, ह, ञ, ण, न, म से भिन्न व्यञ्जन वर्ण परे रहने पर, 'ह' के स्थान में 'ढ' होता है;—यथा—तृणेह् + ति = तृणेढ् + ति। टवर्ग और मूर्द्धन्य षकार के परस्थित तवर्ग के स्थान में टवर्ग होता है; परन्तु 'ढ' के परस्थित 'त' और 'थ' के स्थान में 'ढ' होता है; यथा—तृणेढ् + ति = तृणेढ् + ढि। 'ढ' परे रहने से, पूर्व ढकार का लोप होता है, और ऋ भिन्न उपधा स्वर दीर्घ होता है; यथा—तृणेढ् + ढि = तृणेढि।

तृह् + तः = तृन्ह् + तः = तृन्ढ् + तः = तृन्ढ्ढः = तृण्ढः। (दीर्घ) मुह् + क्तः = मूढः।

कोई वर्ण परे न रहने से, धातु के छ, श, ष और ह के स्थान में 'ट' अथवा 'ड' होता है; और 'ध' परे रहने से, 'ड' होता है; यथा—अतृणेह् = अतृणेट् अथवा अतृणेड्।

वर्ग के प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स, ह, परे रहने से श, ष, स, ह भिन्न 'धुट्'—वर्ण के स्थान में प्रथम वर्ण होता है; यथा—छिद्+ति=छिनत्ति ।

रुधादि सकर्मक परस्मैपदी धातु

भञ्ज् (भन्जो) आमर्दने (भङ्गे)

("भिनत्त्युपवनं कपिः ।" "भनज्मि सर्वमर्यादाः ।")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
म० पु०	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
उ० पु०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः

लोट्

प्र० पु०	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
म० पु०	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
उ० पु०	भनजानि	भनजाव	भनजाम

लङ्

प्र० पु०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
म० पु०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उ० पु०	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
म० पु	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातास्	भञ्ज्यात
उ० पु०	भञ्ज्याम	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

लृट्—भङ्क्ष्यति, भङ्क्ष्यतः, भङ्क्ष्यन्ति ।

हिंस (हिसि) हिंसायाम् ।
("हिनस्ति दुष्कृतं सूनृता वाक्")

लट्

प्र० पु०	हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति
म० पु०	हिनस्सि	हिंस्थः	हिंस्थ
उ० पु०	हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्मः

लोट्

प्र० पु०	हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु
म० पु०	हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त
उ० पु०	हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम

लङ्

प्र० पु०	अहिनः	अहिंस्ताम्	अहिंसन्
म० पु०	अहिनः	अहिंस्तम्	अहिंस्त
उ० पु०	अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः
म० पु०	हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात
उ० पु०	हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम

लृट्—हिंसिष्यति, हिंसिष्यतः, हिंसिष्यन्ति ।

पिष् (पिष्ऌ) सञ्चूर्णने (पेषणे)—पीसना—पिनष्टि; पेक्ष्यति । "पिनष्टि लोको गोधूमम् ।"

शिष् (शिष्ऌ) अवशेषणे विशेषणे (विशेषकरणे) च—(१) बाकी रखना, (२) विशेष करना । पृथक् करना, शिनष्टि; शेक्ष्यति ।

शिष्—कर्मकर्त्तरि-बाकी रहना, शिष्यते; "तेषामेकं शिष्यते, अन्ये लुप्यन्ते" । अव+शिष्+कर्मकर्त्तरि, "यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते" । वि+शिष्—वर्द्धने;—कर्मकर्त्तरि; अतिशये (अधिक होना, श्रेष्ठ होना); "मौनात् सत्यं विशिष्यते ।" "सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।" परि+शिष्—अवशेषे । परिशिष्यते ।

तृह हिंसायाम् (वध)

("तृणे तृणेढि ज्वलनः खलु ज्वलन् क्रमात् करीषद्रुमकाण्ड-मण्डलम् ।")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तृणेढि	तृण्ढः	तृंहन्ति
म० पु०	तृणेक्षि	तृण्ढः	तृण्ढ
उ० पु०	तृणेह्मि	तृंह्वः	तृंह्मः

लोट्

प्र० पु०	तृणेढु	तृण्ढाम्	तृंहन्तु
म० पु०	तृण्ढि	तृण्ढम्	तृण्ढ
उ० पु०	तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम

लङ्

प्र० पु०	अतृणेट्	अतृण्ढाम्	अतृंहन्
म० पु०	अतृणेट्	अतृण्ढम्	अतृण्ढ
उ० पु०	अतृणहम्	अतृंह्व	अतृंह्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	तृंह्यात्	तृंह्याताम्	तृंह्युः
म० पु०	तृंह्याः	तृंह्यातम्	तृंह्यात
उ० पु०	तृंह्याम्	तृंह्याव	तृंह्याम

लृट्—तर्हिष्यति तर्क्ष्यति

अञ्ज् (अन्जू) म्रक्षणे (लेपने), व्यक्तीकरणे च—(१) लेपने करना, लीपना, तेल लगाना; (२) प्रकाश करना—अनक्ति। (१) "अनक्ति गात्रं तैलेन जनः ।" (२) "मा नाञ्जीराक्षसीर्मायाः ।"

अञ्ज् + णिच्—अञ्जन लगाना; अञ्जयति; "नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे, न चाभ्यक्तामनावृताम् (पश्येद् भार्यां द्विजोत्तमः) ।" अभि +

अञ्ज्—अभ्यङ्गे, तैलादिमर्दने। वि+अञ्ज्—व्यक्तौ, प्रकाशने। अभि+वि+अञ्ज्—अभिव्यक्तौ, प्रकटने।

रुधादि सकर्मक उभयपदी धातु

रुध् (रुधिर्) आवरणे (रोधे)

("इदं रुणद्धि मां पद्ममन्तःकूजितषट्पदम्।" "रुन्धन्तु वारण-घटा नगरं मदीयाः।")

परस्मैपदी

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

लोट्

प्र० पु०	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
म० पु०	रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

लङ्

प्र० पु०	अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुणत्, अरुणः	अरुन्धम्	अरुन्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्व

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
म० पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

लृट्—रोत्स्यति, रोत्स्यतः, रोत्स्यन्ति।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्त्से	रुन्धाते	रुन्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लोट्

प्र० पु०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाताम्	रुन्ध्वम्
उ० पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

लङ्

प्र० पु०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

लृट्—रोत्स्यते, रोत्स्येते, रोत्स्यन्ते ।

अनु + रुध्—दिवादिगणीय आत्मनेपदी—अनुवर्तने; अनुरुध्यते; "सद्वृत्तिलनुरुध्यन्तां भवन्तः ।" "हन्त तिर्य्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते ।" "वात्सल्यमनुरुध्यन्ते महात्मानः ।" "मद्वचनमनुरुध्यते वा भवान् ?" अव + रुध्—अवरोधे । उप + रुध्—निर्बन्धे; प्रतिबन्धे, अवरोधे, आच्छादने च । नि + रुध्—निरोधे, नियमने । प्रति + रुध्—निर्बन्धे; प्रतिबन्धे; अवरोधे; आच्छादने च । नि + रुध्—निरोधे, नियमने । प्रति + रुध्—प्रतिरोधे । वि + रुध्—कर्मकर्त्तरि—विरोधे, (अनैक्ये; कलहे च); विरुध्यते । सम् + रुध् + प्रतिबन्धे; संयमने च ।

भुज् पालने

(भुनक्ति पृथिवीं राजा)

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
म० पु०	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ
उ० पु०	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

लोट्

प्र० पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
म० पु०	भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उ० पु०	भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम

लङ्

प्र० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
म० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उ० पु०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

विधिलिङ्—भुञ्ज्यात्, भुञ्ज्याताम्, भुञ्ज्युः ।

लृट्—भोक्ष्यति, भोक्ष्यतः, भोक्ष्यन्ति ।

भुज् अभ्यवहारे (भोजने); उपभोगे (अनुभवे) च

(१) खाना; (२) भोग करना । (१) "शयनस्थो न भुञ्जीत ।" (२) "अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकरणात् ।" "वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते ।"

आत्मनेपदी

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

लङ्

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्जवहि	अभुञ्ज्महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लृट्—भोक्ष्यते, भोक्ष्येते, भोक्ष्यन्ते ।

उप + भुज्—उपभोगे । परि, सम् + भुज्—सम्भोगे ।

छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे छेदने; नाशने)

(१) काटना; (१) नष्ट करना । (१) "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि ।" (२) "तृष्णां छिन्धि ।"

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
म० पु०	छिनत्सि	छिन्थः	छिन्थ
उ० पु०	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

लोट्

प्र० पु०	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
म० पु०	छिन्धि	छिन्ताम्	छिन्त
उ० पु०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम्

लङ्

प्र० पु०	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
म० पु०	अछिनत्, अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उ० पु०	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

विधिलिङ्—छिन्द्यात्, छिन्द्याताम्, छिन्द्युः ।

लृट्—छेत्स्यति, छेत्स्यतः छेत्स्यन्ति ।

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्ध्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

लोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्ध्वम्
उ० पु०	छिनदै	छिनदावहै	छिन्दामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाता	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्ध्वम्
उ० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

लृट्—**छेत्स्यते, छेत्स्येते, छेत्स्यन्ते** ।

आ+छिद्—आकृष्य ग्रहणे (छीन लेना); छेदने च । उत्+छिद्—उन्मूलने । परि+छिद्—इयत्तया अवधारणे, निर्णये । वि+छिद्—छेदे, विभागे ।

भिद् (भिदिर्) विदारणे (भङ्गे, विच्छेदे)—तोड़ना, भेदे करना—भिनत्ति, भिन्ते; भेत्स्यति, भेत्स्यते । "भिनत्ति भिन्ते कूलं नदी ।" "तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा ?"

कर्मकर्त्तरि–भिन्न होना भिद्यते; "पैशुन्याद् भिद्यते स्नेहः" (नश्यति इत्यर्थः) । "भिद्यते हृदयग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।"

"षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः ।" (प्रकाशते इत्यर्थः) उत्+भिद्—कर्म-कर्त्तरि—उद्गमे, प्रकाशे; "आद्यापि पक्षावपि नोद्भिद्येते ।" निर्+भिद्—भेदने; प्रकाशने च । प्रति+भिद्—भर्त्सने । सम्+भिद्–मिश्रणे, संश्लेषे ।

युज् (युजिर्) योगे (सङ्गतौ)—संयुक्त करना मिलाना, जोड़ना–युनक्ति, युङ्क्ते; योक्ष्यति, योक्ष्यते । "युनक्ति युङ्क्ते घृतेनान्नं लोकः ।" "यमं युनज्मि कालेन ।"

'उत्' और स्वरान्त उपसर्ग के योग से आत्मनेपदी होता है। अनु + युज्-प्रश्ने—अनुयुक्ते । अभि + युज्-उद्योगे; अनुक्रमणे; अपराधयोजने च—अभियुङ्क्ते । आ + युज् + संयमने—आयुङ्क्ते । उत् + युज्-उद्योगे—उद्युङ्क्ते । उप + युज्-प्रयोगे; सेवने; उपभोगे च—उपयुङ्क्ते । नि + युज्—नियोगे, प्रेरणे, आदेशे च—नियुङ्क्ते । नि + युज् + णिच्—नियोगे—नियोजयति । प्र + युज्—प्रयोगे; निदेशे च—प्रयुङ्क्ते । वि + युज्—त्यागे; वियोजने च—वियुङ्क्ते । सम् + युज्—संयोजने ।

रिच् (रिचिर्) विरेचने (शून्यीकरणे)—सूना करना, खाली करना-रिणक्ति, रिङ्क्ते; रेक्ष्यति, रेक्ष्यते । "रिणच्मि जलधेस्तोयम् ।" "तिमिररिच्यमानं पूर्वदिङ्मुखमालोकसुभगं दृश्यते ।"

अति + रिच्, वि + अति + रिच्, उत् + रिच्—कर्मकर्तरि—अतिशये; पञ्चमी के साथ; "अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते ।" "स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ।" "ममैवोद्रिच्यते जन्म···तव जन्मनः ।"

विच् (विचिर्) पृथक्करणे—अलग करना—विनक्ति, विङ्क्ते; वेक्ष्यति, वेक्ष्यते । वोपदेवमते—ह्वादिगणीय भी होते हैं—वेवेक्ति, वेविक्ते ।

वि + विच्-पृथक्करणे; विचारणे निर्णये च । "पञ्चकोषेभ्य आत्मानं विविनक्ति विवेकी ।" "श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीक्ष्य विविनक्ति धीरः ।"

अनुवाद

काष्ठच्छेदकः कुठारेण वृक्षं छिनत्ति । न रात्रौ दधि भुञ्जीथाः । नृपतिः राज्यं भुञ्ज्यात् । प्रथममेतेषां तावत् पशांश्छिन्धि । भुङ्क्ते स्वकर्म फलानि लोकः । भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् । भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—क्षुद्रान् पतङ्गानपि न हिंस्यात् । हिनस्मीन्द्रस्य विक्रमम् । इन्धे युद्धेषु यत्तेजः । क्षुणद्मि सर्वान् पाताले । नैनं छिन्दन्ति

शस्त्राणि । राजा पृथिवीं भुनक्ति । चञ्चलं मनः मां रुणद्धि । भोग्यांश्च भुवि भुङ्क्ष्व । वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते । रिणच्मि जलधेस्तोयम् । मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि । ते रात्रौ अन्नं न भुञ्जते । परिश्रमं प्रीतिं स्वास्थ्यञ्च भुङ्क्ते । तृणेह्मि देहमात्मीयम् । स कन्याशुल्कं धनुरभनक् । रुणध्मि सवितुर्मार्गम् । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् । एवं सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—आदमी आलस्य के कारण दुःख भोगता है । आपने पुत्र को असत्संग से विमुक्त करो । दुःख में भगवान् सहायता करते हैं । उस कार्य में निरर्थक आदमी नियुक्त मत करो । यदि फल चाहो, तो पुष्प मत तोड़ो । बार-बार भोजन नहीं करना चाहिये । राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों ने तीन बाणों से खर-दूषण का मस्तक छेदन किया था । राजा विद्रोहियों को रुद्ध करता है । मैं तुम्हें रोकूँगा । हम दोनों मिलित हुए थे । उसने मुझे नुकसान पहुँचाया । काराध्यक्ष ने अपराधी को कारागार में बन्द कर दिया । कृपया मेरे साथ भोजन कीजिए । जैनी लोग किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करते । वृक्ष की शाखाओं को काट डालो । जो अपने लिए पकाता है वह पापभक्षण करता है ।

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

७२

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत

संस्कृत—

व्याकरण-कौमुदी

(तृतीय भाग)

अनुवादक—

पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

आमुख

स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत संस्कृत व्याकरण कौमुदी के तृतीय भाग का यह नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ है। प्रथम भाग में वर्ण, सन्धि, णत्वषत्व-विधान, लिङ्ग, विशेष्य-विशेषण, उद्देश्य-विधेय, शब्दरूप, अव्यय, उपसर्ग, आदि तथा द्वितीय भाग में तिङन्त प्रकरण, क्रियाघटन सूत्र, तुदादि, भ्वादि, दिवादि, स्वादि, तनादि, क्र्यादि, चुरादि और रुधादि इन आठ गणों के धातुरूप दिये गये हैं।

इस तृतीय भाग में अदादि, ह्वादि, रुधादि गणों के धातुरूप, लृट्, लिट्, लुङ् और आशीर्लिङ् के रूप, प्रत्ययान्त धातु, णिजन्त धातु, इत्कार्य, सनन्त धातु, यङन्त धातु, नामधातु, कर्मवाच्य, भाववाच्य, कृत्प्रकरण आदि के बहुत ही विस्तृत विवरण दिये गये हैं। प्रयोगों के उदाहरण, अभ्यास के लिए प्रत्येक गण के धातु-रूप के अन्त में अनुवाद के उदाहरण और प्रश्न आदि अनेक नये विषय सन्निवेशित किये गये हैं। इनसे क्रिया के प्रयोग तथा अनुवाद करने में छात्रों को विशेष सहायता प्राप्त होगी।

संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए प्रबल आन्दोलन चल रहा है। इस कारण प्रायः सभी शिक्षित लोग संस्कृत पढ़ना चाहते हैं। इस संस्कृत व्याकरण कौमुदी के हिन्दी में लिखी होने के कारण सभी हिन्दी-भाषी इससे स्वयं भी संस्कृत भाषा सीख सकेंगे।

स्कूल-कालेजों के लिए तो यह व्याकरण बहुत ही उपयोगी है।

निवेदक—

गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

विषय-सूची

—:०:—

संस्कृत

व्याकरणकौमुदी

(तृतीय भाग)

—❀—

अदादि

क्रियाघटन-सूत्र

'अद्'—धातु लङ् के 'द्' और 'स्' में मिलकर यथाक्रम 'आदत्' और 'आदः' होता है; यथा—अद् + द् = आदत्; अद् + स् = आदः।

शकार, छ और च्छ—परस्थित त और थकार में मिलकर यथाक्रम 'ष्ट' और 'ष्ठ' होता है; यथा—वश् + ति=वष्टि।

अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहने से, 'वश्' के स्थान में 'उश्' होता है; यथा—वश् + थः—उष्ठः।

य, व और मभिन्न अगुण व्यंजन वर्ण परे रहने से 'हन्' धातु के नकार का लोप होता है; और अन्ति, अन्तु तथा अन् परे रहने से, 'हन्' के स्थान में घ्न होता है; यथा—हन् + तः = हतः; हन् + अन्ति=घ्नन्ति। हन् + यात्=हन्यात्; हन् + वः = हन्वः; हन् + मः = हन्मः।

'हि' के साथ मिलकर हन्—जहि, अस्—एधि, और शास्—शाधि होता है; यथा - हन् + हि = जहि; अस् + हि = एधि; शास् + हि = शाधि।

विधिलिङ्, लट् और लोट् की अगुण विभक्ति परे रहने से 'अस्' धातु के अकार का लोप होता है; और लट् का 'सि' परे रहने से, 'अस्'

धातु के सकार का लोप होता है; यथा—अस् + यात् = स्यात्; अस् + तः = स्तः; अस् + ताम् = स्ताम्; अस् + सि = असि ।

लङ् के 'द्' और 'स्' परे रहने से अस् धातु के उत्तर 'ई' होता है, यथा—अस् + द् = आसीत्; अस्+स्=आसीः ।

सगुण लट् आदि चार विभक्ति परे रहने से, अदादि और ह्वादि-गणीय धातु के अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वर को गुण होता है; यथा—

द्विष् + ति = द्वेष्टि । द्विष्, विद् और आकारान्त धातु के परस्थित 'अन्' विकल्प से 'उस्' होता है; यथा;—द्विष् + अन् = अद्विषुः, अद्विषन् ।

अगुण व्यंजन वर्ण परे रहने से 'शास्' के स्थान में 'शिष्' होता है; यथा—शास् + तः = शिष् + तः=शिष्टः ।

अभ्यस्त धातु के[1] परस्थित 'अन्'—'उस्' होता है; 'उस्' परे अन्त्यस्वर का गुण होता है और 'अन्ति' तथा 'अन्तु' के नकार का लोप होता है । शास् + अन्ति = शासति ।

लङ् का 'द्' परे रहने से, धातु के अन्त्य 'स्' के स्थान में 'त्' और 'स्' परे रहने से, विकल्प से 'त्' होता है; यथा—चकास् + द्=अचकात् ।

सगुण विभक्ति परे रहने से, 'मृज्' के स्थान में 'मार्ज' होता है; और विभक्ति का अगुण स्वर परे, विकल्प से 'मार्ज्' होता है; यथा—मृज् + ति = मार्ज् + ति—

त, थ, ध, परे रहने से, मृज्, सृज्, यज्, और भ्रस्ज् धातुओं के 'ज्' के स्थान में मूर्द्धन्य 'ष्' होता है; यथा—मार्ज् + ति = मार्ष्टि; मृज् + तः= मृष्टः, मृज् + हि = मृज् + धि = मृष् + धि=मृड् + धि = मृड्ढि ।

अन्तस्थित 'मृज्' धातु के 'ज्' के स्थान में 'ट्' अथवा 'ड्' होता है; यथा—मृज् + द् = अमार्ज् =अमार्ट्, अमार्ड् ।

---

१. द्विरुक्त धातु, और जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, चकास्, शास् धातु की 'अभ्यस्त'—संज्ञा होती है ।

लट्, लोट्, लङ् विभक्ति का व्यंजन वर्ण परे रहने से रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् और जक्ष् धातु के उत्तर 'इ' होता है; और 'द्' 'स्' परे 'ई' अथवा 'अ' होता है, यथा—रुद् + ति = रोदिति; रुद् + द् = अरोदीत्, अरोदत् ।

ति, सि, मि, तु, द्, स् परे रहने से, 'ब्रू' धातु के उत्तर 'ई' होता है, और वह 'ई' परे रहने से गुण होता है यथा—ब्रू + ति = ब्रवीति ।

अगुण स्वर पर रहने से धातु के इवर्ण के स्थान में 'इय्' और उवर्ण के स्थान में 'उव्' होता है, यथा—अधि + इ + आते = अधि + इय् + आते = अधीयाते, ब्रू + अन्ति = ब्रुवन्ति ।

ऐ, आवहै, आमहै, परे रहने से, 'सू' धातु के 'ऊ' के स्थान में 'उव्' होता है, यथा—सू + ऐ = सुवै ।

दुहादि धातु का 'ह' परस्थित 'त्' 'थ्' और धकार में मिलकर 'ग्ध' होता है, और 'स' 'ध्व' परे रहने से, अथवा कोई वर्ण परे रहने से, आदिस्थित 'द' के स्थान में 'ध' और अन्तस्थित 'ह' के स्थान में 'क' होता है; यथा—दुह् + ति = दोग्धि, दुह् + सि = धोक्षि, दुह् + द् = अदोह् = अधोक् ।

चतुर्लकार में 'शी' धातु को गुण होता है; और 'अन्ते', 'अन्ताम्', 'अन्त' विभक्ति परे रहने से 'शी' + ते = शेते; शी + अन्ते = शेरते ।

त, थ, ध, स परे रहने से 'चक्ष्' के स्थान में 'चष्' होता है; यथा—चक्ष् + ते = चष्टे ।

लट्, लोट्, लङ् के 'स' 'ध' परे रहने में, 'ईश्' और 'ईड्' धातु के उत्तर 'इ' होता है; यथा—ईश् + से ईशिषे; ईड् + से = ईडिषे ।

अगुण व्यंजन वर्ण परे, 'दरिद्रा' धातु के 'आ' के स्थान में 'इ' होता है; और 'अम्' भिन्न विभक्ति का स्वर परे रहने से, 'दरिद्रा' धातु के आकार का लोप होता है; यथा—दरिद्रा + तः = दरिद्रितः; दरिद्रा + अन्ति = दरिद्रति ।

अगुण स्वर परे रहने से, 'इण्' धातु के 'इ' के स्थान में 'य्' होता है; यथा इ + अन्ति = यन्ति ।

ति, सि, मि, तु, द्,स् परे रहने से 'रु' और 'स्तु' धातु के उत्तर विकल्प से 'ई' होता है, और 'ई' परे गुण होता है; पक्ष वृद्धि होती है; यथा रु + ति = रवीति, रौति।

सकर्मक परस्मैपदी धातु

अद् भक्षणे—खाना (फलमत्ति विहङ्गमः)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ० पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लोट्

प्र० पु०	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अद्धि	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन्
म० पु०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम्	आद्व	आद्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृट्—अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति।

हन् हिंसायाम् (प्रहारे, ताडने, त्यागे च)—(१) वध करना, विनष्ट करना, (२) मारना।

मृगं घ्नन्ति मृगादनाः, "विशिखेन कुम्भे जघान"; "मा धर्मं जहि"।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
म० पु०	हंसि	हथः	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लोट्

प्र० पु०	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृट्—हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति।

अप + हन्—ध्वंसने दूरीकरणे। अभि + हन्—आघाते, प्रहारे; वादने च। अव + हन्—कण्डने। आ + हन्—आघाते, प्रहारे वादने च; (अपना कोई अङ्ग-प्रत्यङ्ग कर्म होने से 'आ + हन्' आत्मनेपदी होता है; "आहते स्वं वक्षः")। वि + आ हन्—व्याघाते, प्रतिबन्धे। उप + हन्—प्रहारे; नाशने च। नि + हन्—विनाशे; आघाते; वादने च। वि + हन्—विनाशे; प्रतिबन्धे च। सम् + हन्—सङ्घाते, योगे।

मृगं घ्नन्ति मृगादनाः, "विशिखेन कुम्भे जघान"; "मा धर्मं जहि"।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
म० पु०	हंसि	हथः	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लोट्

प्र० पु०	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृट्—हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति।

अप + हन्—ध्वंसने दूरीकरणे। अभि + हन्—आघाते, प्रहारे; वादने च। अव + हन्—कण्डने। आ + हन्—आघाते, प्रहारे वादने च; (अपना कोई अङ्ग-प्रत्यङ्ग कर्म होने से 'आ + हन्' आत्मनेपदी होता है; "आहते स्वं वक्षः")। वि + आ हन्—व्याघाते, प्रतिबन्धे। उप + हन्—प्रहारे; नाशने च। नि + हन्—विनाशे; आघाते; वादने च। वि + हन्—विनाशे; प्रतिबन्धे च। सम् + हन्—सङ्घाते, योगे।

द्विष् अप्रीतौ (द्वेषे, निन्दायाम्, विरोधे च)—द्वेष करना, वैर करना, घृणा करना। (धातुपाठे—उभयपदी। "द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्"। "प्रकाशञ्च प्रवृत्तिञ्च ··न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	द्वेष्टि	द्विष्टः	द्विषन्ति
म० पु०	द्वेक्षि	द्विष्ठः	द्विष्ठ
उ० पु०	द्वेष्मि	द्विष्वः	द्विष्मः

लोट्

प्र० पु०	द्वेष्टु	द्विष्टाम्	द्विषन्तु
म० पु०	द्विड्ढि	द्विष्टम्	द्विष्ट
उ० पु०	द्वेषाणि	द्वेषाव	द्वेषाम

लङ्

प्र० पु०	अद्वेट्	अद्विष्टाम्	अद्विषुः, अद्विषन्
म० पु०	अद्वेट्	अद्विष्टम्	अद्विष्ट
उ० पु०	अद्वेषम्	अद्विष्व	अद्विष्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	द्विष्यात्	द्विष्याताम्	द्विष्युः
म० पु०	द्विष्याः	द्विष्यातम्	द्विष्यात
उ० पु०	द्विष्याम्	द्विष्याव	द्विष्याम

लृट्—द्वेक्ष्यति, द्वेक्ष्यतः, द्वेक्ष्यन्ति।

शास् (शासु) अनुशासने (उपदेशे; शासने; आज्ञायां च)—(१) शिक्षा देना; (२) पालन करना, आज्ञा देना; (३) आदेश करना (१) द्विकर्मक—"माणवकं धर्मं शास्ति"; "स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्" (२) "राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास"।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शास्ति	शिष्टः	शासति
म० पु०	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ
उ० पु०	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः

लोट्

प्र० पु०	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
म० पु०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उ० पु०	शासानि	शासाव	शासाम

लङ्

प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
म० पु०	अशात्, अशाः	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उ० पु०	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

लृट्—शासिष्यति, शासिष्यतः, शासिष्यन्ति।

अनु + शास्—उपदेशे; आदेशे; दण्डने। प्र + शास्—'शास' —वत्।

मृज् (मृजू) शुद्धीकरणे (मार्जन)—साफ करना, पोंछना; ("स्वेदलवान् ममार्ज", "दोषप्रवादममृजन्"।)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मार्ष्टि	मृष्टः	मृजन्ति, मार्जन्ति
म० पु०	मार्क्षि	मृष्ठः	मृष्ठ
उ० पु०	मार्ज्मि	मृज्वः	मृज्मः

लोट्

प्र० पु०	मार्ष्टु	मृष्टाम्	मृजन्तु, मार्जन्तु
म० पु०	मृड्ढि	मृष्टम्	मृष्ट
उ० पु०	मार्जानि	मार्जाव	मार्जाम

लङ्

प्र० पु०	अमार्ट्	अमृष्टाम्	अमृजन्, अमार्जन्
म० पु०	अमार्ट्	अमृष्टम्	अमृष्ट
उ० पु०	अमार्जम्	अमृज्व	अमृज्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	मृज्यात्	मृज्याताम्	मृज्युः
म० पु०	मृज्याः	मृज्यातम्	मृज्यात
उ० पु०	मृज्याम्	मृज्याव	मृज्याम

लृट्— मार्जिष्यति, मार्क्ष्यति, मार्जिष्यतः मार्क्ष्यतः, मार्जिष्यन्ति मार्क्ष्यन्ति।

वश् इच्छायाम्—कामना करना ("निःस्वो वष्टि शतं, शती दशशतम्" "अमी हि वीर्य्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवाः") ।

लट्

प्र० पु०	वष्टि	उष्टः	उशन्ति
म० पु०	वक्षि	उष्ठः	उष्ठ
उ० पु०	वश्मि	उश्वः	उश्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वष्टु	उष्टाम्	उशन्तु
म० पु०	उड्ढि	उष्टम्	उष्ट
उ० पु०	वशानि	वशाव	वशाम

लङ्

प्र० पु०	अवट्	ओष्टाम्	ओशन्
म० पु०	अवट्	ओष्टम्	ओष्ट
उ० पु०	अवशम्	ओश्व	ओश्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	उश्यात्	उश्याताम्	उश्युः
म० पु०	उश्याः	उश्यातम्	उश्यात
उ० पु०	उश्याम्	उश्याव	उश्याम

लृट्—वशिष्यति

वच् परिभाषणे (कथने)—कहना ("हितं मितञ्च यो वक्ति" ।)

लट्

प्र० पु०	वक्ति	वक्तः	+
म० पु०	वक्षि	वक्थः	वक्थ
उ० पु०	वच्मि	वच्वः	वच्मः

लोट्

प्र० पु०	वक्तु	वक्ताम्	वचन्तु
म० पु०	वग्धि	वक्तम्	वक्त
उ० पु०	वचानि	वचाव	वचाम

+ "अन्ति" विभक्तियुक्त पद का प्रयोग नहीं होता है ।

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवक्	अवक्ताम्	अवचन्
म० पु०	अवक्	अवक्तम्	अवक्त
उ० पु०	अवचम्	अवच्व	अवच्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	वच्यात्	वच्याताम्	वच्युः
म० पु०	वच्याः	वच्यातम्	वच्यात
उ० पु०	वच्याम्	वच्याव	वच्याम

लृट्—वक्ष्यति, वक्ष्यतः, वक्ष्यन्ति।

निर्+वच्—निरुक्तौ, व्याख्यायाम्। प्र+वच्—कथने, वर्णने। प्रति+वच्—प्रतिवचने,

विद् ज्ञाने—जानना ("स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता")

लट्

प्र० पु०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
म० पु०	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
उ० पु०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः

लोट्

प्र० पु०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
म० पु०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उ० पु०	वेदानि	वेदाव	वेदाम

लङ्

प्र० पु०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः, अविदन्
म० पु०	अवेत्, अवेः	अवित्तम्	अवित्त
उ० पु०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
म० पु०	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
उ० पु०	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

लृट्—वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति ।

विद् धातुके लट् और लोट् में अन्य प्रकार के रूप भी होते हैं; यथा-("न मे विदुः सुरगणाः")

लट्

प्र० पु०	वेद	विदतुः	विदुः
म० पु०	वेत्थ	विदथुः	विद
उ० पु०	वेद	विद्वः	विद्मः

लोट्

प्र० पु०	विदाङ्करोतु	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुर्वन्तु
म० पु०	विदाङ्कुरु	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुत
उ० पु०	विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

आ + विद् + णिच्—आवेदने, ज्ञापने; आवेदयति । नि + विद् + णिच्-आवेदने, ज्ञापने, उत्सर्गे च, निवेदयति ('निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर')

इ (इण्) गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना, (२) पाना (१)("शशिनं पुनरेति शर्वरी" (२) "निर्बुद्धिः क्षयमेति ।" "यदा ते निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा ।')

लट्

प्र० पु०	एति	इतः	यन्ति
म० पु०	एषि	इथः	इथ
उ० पु०	एमि	इवः	इमः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एतु	इताम्	यन्तु
म० पु०	इहि	इतम्	इत
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम

लङ्

प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
म० पु०	ऐः	ऐतम्	ऐत
उ० पु०	आयम्	ऐव	ऐम

विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	इयुः
म० पु०	इयाः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

लृट्—एष्यति, एष्यतः, एष्यन्ति ।

अति + इ, वि + अति + इ-अतिक्रमे। अनु + इ-अनुगमने, अन्वये च। अप + इ-अपगमे, क्षये। वि + अप + इ-व्यपगमे, निवृत्तौ। अभि + इ-अभिमुखगतौ; प्राप्तौ च। अव + इ-ज्ञाने। सम् + अव + इ-समवाये, मिलने, संयोगे। आ + इ-आगमने, प्राप्तौ, एति। उत् + इ-उदये उद्गमने, उद्भवे। अभि + उत् + इ—उदये, उन्नतौ च। उप + इ—समीपगमने, प्राप्तौ च। अभि + उप + इ—उपस्थितौ, स्वीकारे च। परा + इ—पलायने, प्राप्तौ च। परि + इ—प्रदक्षिणीकरणे, वष्टने च। वि + परि + इ-विपर्य्यये, वैपरीत्ये, अन्यथा भावे। प्र + इ—परलोकगतौ, मरणे। अभि + प्र + इ-अभिप्राये आशये (इच्छा करना, इरादा करना, मकसद रखना) प्रति + इ—प्रतीतौ, ज्ञाने, विश्वासे, प्रतिगमने च।

अनुवाद

गावस्तृणान्यदन्ति—गायें घास खाती हैं। उज्ज्वलं भाति भास्कर:—सूर्य प्रकाशमान प्रतीत होता है। यस्यास्ति वित्तं स एव कुलीन:—जिसके पास धन है वही कुलीन है। त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्—तुम्हीं मेरा जीवन हो तुम्हीं मेरा दूसरा हृदय हो।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—बिडाल भोजन के पश्चात् मुख-मार्जन करता है। निरपराध जन्तुओं का हनन करना नहीं चाहिये। दुष्ट का शासन करो। आओ चलें। असुर स्वभाव से ही देवताओं के प्रति द्वेष करते हैं। देखो, एक हरिण निविष्ट चित्त से घास खा रहा है। व्यर्थ मुझे मत मारो। जो आत्मा का तत्त्व अच्छे प्रकार से जानता है, वह अनायास मुक्त होता है। दुःख से मुक्त होना जीवन का लक्ष्य है। आत्मा का अस्तित्व सभी दार्शनिक नहीं मानते। धर्म-मार्ग में चलने से विजय अवश्य होगी।

अकर्मक परस्मैपदी धातु

अस् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्)—रहना (अस्ति गोदावरीतीरे विशाल: शाल्मलीतरु:)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अस्ति	स्त:	सन्ति
म० पु०	असि	स्थ:	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्व:	स्म:

लोट्

प्र० पु०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

लृट्—भविष्यति

रुदादि

रुद् (रुदिर्) अश्रुविमोचने (रोदने)—

लट्

प्र० पु०	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

लोट्

प्र० पु०	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

लङ्

प्र० पु०	{ अरोदीत् / अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
म० पु०	अरोदीः / अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उ० पु०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उ० पु०	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

लृट्—रोदिष्यति, रोदिष्यतः, रोदिष्यन्ति।

स्वप् (ञिष्वप्) शयने (निद्रायाम्)—सोना ("गुणानामेव दौरात्म्याद् धुरि धुर्यो नियुज्यते। असंजातकिणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गडिः। सुपुप्तौ स्वपिति" विश्वः)।

लट्

प्र० पु०	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

लोट्

प्र० पु०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

लङ्

००	अस्वपीत् / अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
म० पु०	अस्वपीः अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
म० पु०	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लृट्—स्वप्स्यति, स्वप्स्यतः, स्वप्स्यन्ति।

श्वस् प्राणने (श्वासे; जीवने)—दम-लेना; जीना ("क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।") श्वसन्ति यादवा अहर्निशम्।

लट्

प्र० पु०	श्वसिति	श्वसितः	श्वसन्ति
म० पु०	श्वसिषि	श्वसिथः	श्वसिथ
उ० पु०	श्वसिमि	श्वसिवः	श्वसिमः

लोट्

प्र० पु०	श्वसितु	श्वसिताम्	श्वसन्तु
म० पु०	श्वसिहि	श्वसितम्	श्वसित
उ० पु०	श्वसानि	श्वसाव	श्वसाम

लङ्

प्र० पु०	अश्वसीत् अश्वसत्	अश्वसिताम्	अश्वसन्
म० पु०	अश्वसीः अश्वसः	अश्वसितम्	अश्वसित
उ० पु०	अश्वसम्	अश्वसिव	अश्वसिम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	श्वस्यात्	श्वस्याताम्	श्वस्युः
म० पु०	श्वस्याः	श्वस्यातम्	श्वस्यात
उ० पु०	श्वस्याम्	श्वस्याव	श्वस्याम

लृट्—श्वसिष्यति, श्वसिष्यतः, श्वसिष्यन्ति।

आ+श्वस्, सम्+आ+श्वस्—आश्वासे, सान्त्वनायाम्। उत्+श्वस्—उच्छ्वासे (बहिर्मुखश्वासे;) अन्तर्मुखश्वासे इत्यन्ये। नि+श्वस्, निर्+श्वस् –निश्वासे (अन्तर्मुखश्वासे; बहिर्मुखश्वासे इत्यन्ये)। वि + श्वस्—विश्वासे; (प्रायः सप्तमी के साथ) ;—"पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी ?"

प्र+अन् –प्राणने (श्वास-त्यागे ; जीवने)—साँस छोड़ना ; जीता रहना। ("कथमसौ क्षीणा क्षणं प्राणिति ?")

लट्

प्र० पु०	प्राणिति	प्राणितः	प्राणन्ति
म० पु०	प्राणिषि	प्राणिथः	प्राणिथ
उ० पु०	प्राणिमि	प्राणिवः	प्राणिमः

लोट्

प्र० पु०	प्राणितु	प्राणिताम्	प्राणन्तु
म० पु०	प्राणिहि	प्राणितम्	प्राणित
उ० पु०	प्राणानि	प्राणाव	प्राणाम

लङ्

प्र० पु०	प्राणीत्, प्राणत्	प्राणिताम्	प्राणन्
म० पु०	प्राणीः, प्राणः	प्राणितम्	प्राणित
उ० पु०	प्राणम्	प्राणिव	प्राणिम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	प्राण्यात्	प्राण्याताम्	प्राण्युः
म० पु०	प्राण्याः	प्राण्यातम्	प्राण्यात
उ० पु०	प्राण्याम्	प्राण्याव	प्राण्याम

लृट्—प्राणिष्यति, प्राणिष्यतः, प्राणिष्यन्ति ।

जक्षादि

जक्ष् भक्षणे—खाना (सकर्मक—"जक्षिमोऽनपराधेऽपि नरान्")

लट्

प्र० पु०	जक्षिति	जक्षितः	जक्षति
म० पु०	जक्षिषि	जक्षिथः	जक्षिथ
उ० पु०	जक्षिमि	जक्षिवः	जक्षिमः

लोट्

प्र० पु०	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु
म० पु०	जक्षिहि	जक्षितम्	जक्षित
उ० पु०	जक्षाणि	जक्षाव	जक्षाम

लङ्

प्र० पु०	{ अजक्षीत् / अजक्षत्	अजक्षिताम्	अजक्षुः
म० पु०	{ अजक्षीः / अजक्षः	अजक्षितम्	अजक्षित
उ० पु०	अजक्षम्	अजक्षिव	अजक्षिम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जक्ष्यात्	जक्ष्याताम्	जक्ष्युः
म० पु०	जक्ष्याः	जक्ष्यातम्	जक्ष्यात
उ० पु०	जक्ष्याम्	जक्ष्याव	जक्ष्याम

लृट्—जक्षिष्यति

जागृ निद्राक्षये (जागरणे)– जागना (प्राणः सुप्तेषु जागर्त्ति)

लट्

प्र० पु०	जागर्त्ति	जागृतः	जाग्रति
म० पु०	जागर्षि	जागृथः	जागृथ
उ० पु०	जागर्मि	जागृवः	जागृमः

लोट्

प्र० पु०	जागर्त्तु	जागृताम्	जाग्रतु
म० पु०	जागृहि	जागृतम्	जागृत
उ० पु०	जागराणि	जागराव	जागराम

लङ्

प्र० पु०	अजागः	अजागृताम्	अजागरुः
म० पु०	अजागः	अजागृतम्	अजागृत
उ० पु०	अजागरम्	अजागृव	अजागृम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयुः
म० पु०	जागृयाः	जागृयातम्	जागृयात
उ० पु०	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

लृट्—जागरिष्यति

चकास् (चकासृ) दीप्तौ (शोभायाम्)–चमकना ("गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनीश्रीमोचनं लोचनम्", "चकास्ति योग्येन हि योग्य-सङ्गमः")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चकास्ति	चकास्तः	चकासति
म० पु०	चकास्सि	चकास्थः	चकास्थ
उ० पु०	चकास्मि	चकास्वः	चकास्मः

लोट्

प्र० पु०	चकास्तु	चकास्ताम्	चकासतु
म० पु०	चकाधि, चकाद्धि	चकास्तम्	चकास्त
उ० पु०	चकासानि	चकासाव	चकासाम

लङ्

प्र० पु०	अचकात्	अचकास्ताम्	अचकासुः
म० पु०	अचकात्, अचकाः	अचकास्तम्	अचकास्त
उ० पु०	अचकासम्	अचकास्व	अचकास्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	चकास्यात्	चकास्याताम्	चकास्युः
म० पु०	चकास्याः	चकास्यातम्	चकास्यात
उ० पु०	चकास्याम्	चकास्याव	चकास्याम

लृट्—चकासिष्यति ।

अदादि आकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

पा रक्षणे (पालने)—रक्षा करना ("अधर्मान्मां पाहि" । "पाहि मां पुण्डरीकाक्ष") ।

लट्

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पाति	पातः	पान्ति
म० पु०	पासि	पाथः	पाथ
उ० पु०	पामि	पावः	पामः

लोट्

प्र० पु०	पातु	पाताम्	पान्तु
म० पु०	पाहि	पातम्	पात
उ० पु०	पानि	पाव	पाम

लङ्

प्र० पु०	अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्
म० पु०	अपाः	अपातम्	अपात
उ० पु०	अपाम्	अपाव	अपाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पायात्	पायाताम्	पायुः
म० पु०	पायाः	पायातम्	पायात
उ० पु०	पायाम्	पायाव	पायाम

लृट्—पास्यति

प्रति + पाल् + णिच्—(१) प्रतिपालने, रक्षणे (२) प्रतीक्षायाञ्च; प्रतिपालयति; ("अन्यासक्तो देवः, तदवसरं प्रतिपालयामि"; "प्रतिपालय माम्, यावदुपसर्पामि"।)

ख्या प्रकथने—कहना—ख्याति; ख्यास्यति। "ख्याति साधुः कथां हरेः"।

ख्या + णिच्, अभि + ख्या + णिच्—ख्यापने, विज्ञापने, प्रकाशने—ख्यापयति। आ + ख्या कथने, वर्णने। उप + आ + ख्या–वर्णने। प्रति +

आ + ख्या– निराकरणे; अस्वीकारे। वि + आ + ख्या– व्याख्यायाम्, विवरणे। सम्+ख्या—गणनायाम्।

मा माने (परिमाणे)—नापना—माति; मास्यति। "माति भूमिं नलेन राजा।" "न माति मानिनो यस्य यशस्त्रिभुवनोदरे"; "तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः"– इत्यादिषु अन्तर्भावार्थे अकर्मकः। न माति– न परिमाणं गच्छति, अतिरिच्यते इत्यर्थः (नहीं समाता)।

अनु + मा - अनुमाने। उप+मा—उपमाने। निर्+मा—निर्माणे; "निर्माति यः पर्वणि पूर्णमिन्दुम्"। परि + मा—परिमाणे; "उदरं परिमाति मुष्टिना"। प्र+मा—प्रमायाम्, निश्चये ज्ञाने।

या गतौ (प्राप्तौ च) (१) जाना (२) पाना—याति, यास्यति। (१) "ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्" (२) "सुखात् तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।"

या+णिच् अतिवाहने, क्षपणे; यापयति। अति + या– अतिक्रमे। अनु + या– अनुवर्त्तने, अनुकरणे, सादृश्ये, सहगमने च। अप + या—पलायने। अभि+या—समीपगमने; आक्रमणे च। आ+या—आगमने, प्राप्तौ च। उत्+या—प्रत्युद्गमने, सम्मानार्थं पुरोगमने। प्र+या—प्रयाणे, गमने, प्रस्थाने।

रा दाने– देना– राति; रास्यति। "न राति रोगिणेऽपथ्यं वाञ्छतेऽपि भिषक्तमः।"

ला आदाने (ग्रहणे)—लेना—लाति, लास्यति। "ललुः खड्गान्"।

आकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु

द्रा पलायने—भागना—द्राति, द्रास्यति। नि+द्रा– निद्रायाम्।

भा दीप्तौ (शोभायाम्, प्रकाशे)—चमकना, जाहिर होना—भाति, भास्यति। "तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः", बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।"

आ+भा, प्रति+भा—शोभायाम्, स्फुरणे, अवभासे च।

वा गतौ (वायोर्गतौ)—हवा चलना—वाति, वास्यति। वाति वायुः।

निर्+वा—निर्वाणे (शीतलतायाम्, शान्तौ, निर्वृतौ) "निरवात् कृशानुः", "तस्य वपुर्जलार्द्रपवनैर्न निर्ववौ"। निर्+वा+णिच्—निर्वापणे (ठण्ढा करना, बुझाना) निर्वापयति।

स्ना शौचे (स्नाने)—नहाना—स्नातिः स्नास्यति। "स्नाति गङ्गाजलैर्नित्यम्"; "मृगतृष्णाम्भसि स्नातः"।

दरिद्रा दुर्गतौ (क्लेशेनावस्थाने, अकिञ्चनीभावे)—दरिद्र होना—(लट्) दरिद्राति, दरिद्रितः, दरिद्रतिः (लोट्) दरिद्रातु, दरिद्रिताम्, दरिद्रतु; (लङ्) अदरिद्रात्, अदरिद्रिताम्, अदरिद्रुः; (लृट्) दरिद्रिष्यति। "उपर्य्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति"।

उकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु

नु (णु) स्तुतौ—स्तव करना, प्रशंसा करना ("सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव")

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नौति	नुतः	नुवन्ति
म० पु०	नौषि	नुथः	नुथ
उ० पु०	नौमि	नुवः	नुमः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नौतु	नुताम्	नुवन्तु
म० पु०	नुहि	नुतम्	नुत
उ० पु०	नवानि	नवाव	नवाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
म० पु०	अनौः	अनुतम्	अनुत
उ० पु०	अनवम्	अनुव	अनुम

विधिलिङ्

प्र० पु०	नुयात्	नुयाताम्	नुयुः
म० पु०	नुयाः	नुयातम्	नुयात
उ० पु०	नुयाम्	नुयाव	नुयाम

लृट्—नविष्यति, नोष्यति ।

उकारान्त अकर्मक परस्मैपदो धातु

क्षु (टुक्षु) शब्दे (क्षुते)– छींकना—क्षौति, क्षविष्यति । ('क्षौति कफी') ।

रु शब्दे (रवे)—आवाज करना—रौति रवीति, रुतः रुवीतः रुवन्ति; रविष्यति रोष्यति । ("कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्") ।

सकर्मक आत्मनेपदी धातु

'अधि' पूर्वक इ (अधीङ्) 'अध्ययने'-पढ़ना ('अध्यापकाद् व्याकरणमधीते')

लट्

प्र० पु०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उ० पु०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म० पु०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ० पु०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
म० पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उ० पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

सू (षूङ्) प्रसवे (जनने, उत्पादने) जनना, पैदा करना ('विरहलता पल्लवं सूते, कीर्ति सूते सूनृता वाक् ।')

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सूते	सुवाते	सुवते
म० पु०	सूषे	सुवाथे	सूध्वे
उ० पु०	सुवे	सूवहे	सूमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सूताम्	सुवाताम्	सुवताम्
म० पु०	सूष्व	सुवाथाम्	सूध्वम्
उ० पु०	सुवै	सुवावहै	सुवामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	असूत	असुवाताम्	असुवत
म० पु०	असूथाः	असुवाथाम्	असूध्वम्
उ० पु०	असुवि	असूवहि	असूमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्
म० पु०	सुवीथाः	सुवीयाथाम्	सुवीध्वम्
उ० पु०	सुवीय	सुवीवहि	सुवीमहि

अनुवाद

'सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्'—सारी वस्तुओं में विद्या ही सर्वोत्तम वस्तु कही गयी है। 'सानुबन्धाः कथं न स्युः सम्पदो मे निरापदः'—मैं निर्विघ्न हूँ अतः क्यों न मेरी सम्पत्तियां निरन्तर न होंगी? 'नीरसतरुरयं पुरतो भाति'—सामने यह सूखा वृक्ष दिखाई पड़ता है।

उसकी बुद्धि तीक्ष्ण है—'तीक्ष्णा आसीत् तस्य मेधा।' उसके बाद मैंने तीन घण्टे तक पढ़ा—'ततस्तिस्रो घटिका अहमध्यैयि।' उसकी पत्नी गाय का दूध दुह रही है—'तस्य भार्या गां दुग्धं दोग्धि।' मैं नदी में नहाता हूँ—'अहं नद्यां स्नामि।'

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—भक्तगण भक्तिभाव से महामाया की स्तुति करते हैं। दूत के मुख से सीता का जनापवाद सुनकर (श्रुत्वा) राम ने दीर्घ निश्वास छोड़ा। उस दिन मैंने गंगा स्नान किया था। गंगा देवी ने महात्मा भीष्म का प्रसव किया था। सुखदुःख निरन्तर आता-जाता है। उनके अनुग्रह से हम जीते हैं। मैं विपद् से तेरी रक्षा करूँगा। नदी के तट में वृक्षावली शोभा पाती है।

चक्ष् (चक्षिङ्) कथने—कहना। प्रायः इसका 'आङ्—पूर्वक प्रयोग होता है। यथा—आचष्टे धर्मं धीरः।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चष्टे	चक्षाते	चक्षते
म० पु०	चक्षे	चक्षाथे	चड्ढ्वे
उ० पु०	चक्षे	चक्ष्वहे	चक्ष्महे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चष्टाम्	चक्षाताम्	चक्षताम्
म० पु०	चक्ष्व	चक्षाथाम्	चड्ढ्वम्
उ० पु०	चक्षै	चक्षावहै	चक्षामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचष्ट	अचक्षाताम्	अचक्षत
म० पु०	अचष्टाः	अचक्षाथाम्	अचड्ढ्वम
उ० पु०	अचक्षि	अचक्ष्वहि	अचक्ष्महि

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चक्षीत	चक्षीयाताम्	चक्षीरन्
म० पु०	चक्षीथाः	चक्षीयाथाम्	चक्षीध्वम्
उ० पु०	चक्षीय	चक्षीवहि	चक्षीमहि

लृट्—ख्यास्यति, ख्यास्यते; क्शास्यति, क्शास्यते।

प्रति+आ+चक्ष्—प्रत्याख्याने, अस्वीकारे। वि+आ+चक्ष्—व्याख्याने, विवरणे। प्र, परि+चक्ष् कीर्त्तने, कथने।

ईड् स्तुतौ–स्तव करना–(लट्) ईट्टे, ईडाते, ईडते; ईडिषे, ईडाथे, ईडिध्वे; ईडे, ईडिवहे ईडिमहे। (लृट्) ईडिष्यते। "तं संसारध्वान्त-विनाशं हरिमीडे"।

ईश् ऐश्वर्ये (प्रभुतायाम्)—प्रभु होना, प्रभुत्व करना, हुकूमत करना- (लट्) ईष्टे, ईशाते, ईशते; ईशिषे, ईशाथे, ईशिध्वे; ईशे, ईश्वहे, ईश्महे। (लङ्) ऐष्ट, ऐशाताम्, ऐशत; ऐष्ठाः, ऐशाथाम्, ऐशिध्वम्; ऐशि, ऐश्वहि, ऐश्महि। (विधि०) ईशीत। (लृट्) ईशिष्यते। प्रायः षष्ठी के साथ प्रयुक्त होता है; "नायं गात्राणामीष्टे"। "अर्थानामीशिषे त्वं, वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम्"। (२) सामर्थ्ये (सकना), "माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम्", "न तत् सोढुमीशे"; "कमिवेशते रमयितुं न गुणाः ?"

वस् आच्छादने (परिधाने)—पहनना—वस्ते, वसाते वसते; वस्से, वसाथे, वध्वे; वसे, वस्वहे, वस्महे। वसिष्यते। "वसने परिधूसरे वसाना"।

आङ्+शास् (शासु) इच्छायाम्, आशिषि (इष्टार्थाशंसने) च—(१) चाहना; (२) आशीर्वाद करना।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आशास्ते	आशासाते	आशासते
म० पु०	आशास्से	आशासाथे	आशाध्वे
उ० पु०	आशासे	आशास्वहे	आशास्महे

लृट्—आशासिष्यते (१) "कुतस्तस्य विजयादन्यत्। यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मंगलान्याशास्ते ? (२) किमन्यादाशास्महे ? केवलं वीरप्रसवा भूयाः"।

ह्नु (ह्नुङ्) अपनयने (अपह्नवे, गोपने,—चौर्ये इति बोपदेवः)—(१) दूर करना, अपहरण करना, (२) छिपाना—ह्नुते, ह्नुवाते, ह्नुवते, लृट्, ह्नोष्यते। प्रायः यह 'अप' और 'नि'—पूर्वक प्रयुक्त होता है।

अप+ह्नु—अपलापे, अस्वीकारे, गोपने। नि+ह्नु—गोपने।

अकर्मक आत्मनेपदी धातु

आस् उपवेशने (वासे; स्थितौ; सत्तायाम्)—(१) बैठना; (२) रहना।

(१) आस्ते सिंहासने नृपः; (२) यत्रास्मै रोचते, तत्रायमास्ताम्; "जगन्ति यस्यां सविकाशमासत"।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आस्ते	आसाते	आसते
म० पु०	आस्से	आसाथे	आद्ध्वे, आध्वे
उ० पु०	आसे	आस्वहे	आस्महे

लोट्

प्र० पु०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
म० पु०	आस्स्व	आसाथाम्	आद्ध्वम्, आध्वम्
उ० पु०	आसै	आसावहै	आसामहै

लङ्

प्र० पु०	आस्त	आसाताम्	आसत
म० पु०	आस्थाः	आसाथाम्	आद्ध्वम्, आध्वम्
उ० पु०	आसि	आस्वहि	आस्महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
म० पु०	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उ० पु०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्—आसिष्यते, आसिष्येते, आसिष्यन्ते।

अधि + आस्—उपवेशने; अधिवासे; अधिष्ठाने च; सकर्मक। अनु + आस्—पश्चादुपवेशने, उपासनायाञ्च; सकर्मक। उत् + आस्—

उदासीनतायाम् , उपेक्षायाम् । उप + आस्—समीपोपवेशने, उपासनायाम्; अनुष्ठाने च—"अग्निहोत्रमुपासते"। परि+उप + आस्—सेवायाम् ।

शी (शीङ्) स्वप्ने (शयने) सोना—"किं निःशङ्कं शेषे ? शेषे वयसः समागतो मृत्युः। अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्त्ति जाह्नवी जननी"।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शये	शेवहे	शेमहे

लोट्

प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

लङ्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

लृट्—शयिष्यते, शयिष्येते, शयिष्यन्ते ।

अति + शी—अतिक्रमे, अतिवर्त्तने; सकर्मक । अधि + शी—अधिष्ठाने (सकर्मक), अनु + शी—अनुशये, अनुतापे (सकर्मक) सम्+शी—संशये ।

सकर्मक उभयपदी धातु

स्तु (ष्टुञ्) स्तुतौ (प्रशंसायाम्)—स्तव करना "निन्दन्तु नीति-निपुणा यदि वा स्तुवन्तु"। किं निन्दान्यथवा स्तवानि कथय क्षीरार्णव: ।

परस्मैपद

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र॰ पु॰	स्तौति, स्तवीति	स्तुत:	स्तुवन्ति
म॰ पु॰	स्तौषि, स्तवीषि	स्तुथ:	स्तुथ
उ॰ पु॰	स्तौमि, स्तवीमि	स्तुव:	स्तुम:

लोट्

प्र॰ पु॰	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु
म॰ पु॰	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
उ॰ पु॰	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम

लङ्

प्र॰ पु॰	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्
म॰ पु॰	अस्तौ:, अस्तवी:	अस्तुतम्	अस्तुत
उ॰ पु॰	अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम

विधिलिङ्

प्र॰ पु॰	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयु:
म॰ पु॰	स्तुया:	स्तुयातम्	स्तुयात
उ॰ पु॰	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम

लृट्—स्तोष्यति

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्तुते	स्तुवाते	स्तुवते
म० पु०	स्तुषे	स्तुवाथे	स्तुध्वे
उ० पु०	स्तुवे	स्तुवहे	स्तुमहे

लोट्

प्र० पु०	स्तुताम्	स्तुवाताम्	स्तुवताम्
म० पु०	स्तुष्व	स्तुवाथाम्	स्तुध्वम्
उ० पु०	स्तवै	स्तवावहै	स्तवामहै

लङ्

प्र० पु०	अस्तुत	अस्तुवाताम्	अस्तुवत
म० पु०	अस्तुथाः	अस्तुवाथाम्	अस्तुध्वम्
उ० पु०	अस्तुवि	अस्तुवहि	अस्तुमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्तुवीत	स्तुवीयाताम्	स्तुवीरन्
म० पु०	स्तुवीथाः	स्तुवीयाथाम्	स्तुवीध्वम्
उ० पु०	स्तुवीय	स्तुवीवहि	स्तुवीमहि

लृट्—स्तोष्यते, स्तोष्येते, स्तोष्यन्ते ।

प्र + स्तु—प्रस्तावे, प्रारम्भे ।

ब्रू (ब्रूञ्) कथने—बोलना ("ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् ।") "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" । "अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ?"

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रवीति, आह[1]	ब्रूतः, आहतुः	ब्रुवन्ति, आहुः
म० पु०	ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथः, आहथुः	ब्रूथ
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

लङ्

प्र० पु०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
म० पु०	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
म० पु०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

लृट्—वक्ष्यति

---

१. शिष्ट प्रयोग में 'आह'—पद अतीत काल में प्रयुक्त होता है, यथा—"अथाह वर्णी" (आह—उवाच इत्यर्थः) टीकाकार मल्लिनाथ कहते हैं "वामन" का मत है कि वर्तमान में 'आह' शब्द का प्रयोग अनुचित है।

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ० पु०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ्

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
म० पु०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथा	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

लृट्—वक्ष्यते

दुह् प्रपूरणे (दोहने, निष्कासने)—(१) दोहना, निकालना (२) पूर्ण करना।

(१) द्विकर्मक—"पयो घटोघ्नीरपि गा दुहन्ति"; "रत्नानि धरित्री दुदुहुः" "कामान् दुग्धे सूनृता वाक्"।

परस्मैपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति
म० पु०	धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध
उ० पु०	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः

लोट्

प्र० पु०	दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु
म० पु०	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध
उ० पु०	दोहानि	दोहाव	दोहाम

लङ्

प्र० पु०	अधोक्	अदुग्धाम्	अदुहन्
म० पु०	अधोक	अदुग्धम्	अदुग्ध
उ० पु०	अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म

विधिलिङ्—दुह्यात्। लृट्—धोक्ष्यति।

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	दुग्धे	दुहाते	दुहते
म० पु०	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे
उ० पु०	दुहे	दुह्वहे	दुह्महे

लोट्

प्र० पु०	दुग्धाम्	दुहाताम्	दुहताम्
म० पु०	धुक्ष्व	दुहाथाम्	धुग्ध्वम्
उ० पु०	दोहै	दोहावहै	दोहामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदुग्ध	अदुहाताम्	अदुहत
म० पु०	अदुग्धाः	अदुहाथाम्	अधुग्ध्वम्
उ० पु०	अदुहि	अदुह्वहि	अदुह्महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	दुहीत	दुहीयाताम्	दुहीरन्
म० पु०	दुहीथाः	दुहीयाथाम्	दुहीध्वम्
उ० पु०	दुहीय	दुहीवहि	दुहीमहि

लृट्—धोक्ष्यते

दिह लेपने; उपचये (वृद्धौ; वृद्धिकरणे) च—(१) लीपना; (२) बढ़ना (अकर्मक); बढ़ाना—देग्धि, दिग्धे; धेक्ष्यति, धेक्ष्यते। (१) देग्धि सौधं सुधया लेपकः; (२) देग्धि, दिग्धे देहः (देह प्रतिदिन पुष्ट होती है) सम् + दिह—सन्देहे, संशये।

लिह् आस्वादने (लेहने)—चाटना। ("पिण्डमुत्सृज्य करं लेढि")

परस्मैपद

लट्

प्र० पु०	लेढि	लीढः	लिहन्ति
म० पु०	लेक्षि	लीढः	लीढ
उ० पु०	लेह्मि	लिह्वः	लिह्मः

लोट्

प्र० पु०	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु,
म० पु०	लीढि	लीढम्	लीढ
उ० पु०	लेहानि	लेहाव	लेहाम

लङ्

प्र० पु०	अलेट्	अलीढाम्	अलिहन्
म० पु०	अलेट्	अलिढम्	अलीढ
उ० पु०	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म

विधिलिङ्,—लिह्यात् । लृट्—लेक्ष्यति ।

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लीढे	लिहाते	लिहते
म० पु०	लिक्षे	लिहाथे	लीढ्वे
उ० पु०	लिहे	लिह्वहे	लिह्महे

लोट्

प्र० पु०	लीढाम्	लिहाताम्	लिहताम्
म० पु०	लिक्ष्व	लिहाथाम्	लीढ्वम्
उ० पु०	लेहै	लेहावहै	लेहामहै

लङ्

प्र० पु०	अलीढ	अलिहाताम्	अलिहत
म० पु०	अलीढाः	अलिहाथाम्	अलीढ्वम्
उ० पु०	अलिहि	अलिह्वहि	अलिह्महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	लिहीत	लिहीयाताम्	लिहीरन्
म० पु०	लिहीथाः	लिहीयाथाम्	लिहीध्वम्
उ० पु०	लिहीय	लिहीवहि	लिहीमहि

लृट्—लेक्ष्यते

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—रमणीयां काञ्चिदाख्यायिकां ब्रूहि। सन्ति मेऽत्र साक्षिणः। भ्राता मे स्वपिति क्षितौ। वेदानधीयते विप्राः। नह्यर्थलिप्सुरेवं ब्रवीमि। धृतराष्ट्रस्य शतं पुत्रा आसन्। दुष्टे जने कोऽपि न विश्वसिति। निशायां जागर्ति संयमी। उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति। कथं स पृथिवीं शास्ति राज्यं वा ?

संस्कृत में अनुवाद करो—सूर्य अपने किरण से सभी दिशाओं को आलोकित करता है। गुरु अपने ज्ञान से शिष्य के ज्ञानचक्षु को उन्मोचन करता है। वृक्ष की शाखा में चिड़ियाँ रव करती हैं। आओ, हम लोग ईश्वर की स्तुति करें। दक्षिण से मलय पवन आता है। विपद्-सम्पद् में ईश्वर सर्वदा रक्षा करता है, और वह सबके पाप-पुण्य की संख्या करता है। मेरे शरीर में आनन्द नहीं समाता।

ह्लादि

क्रियाघटन—सूत्र

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में ह्लादिगणीय धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है; और अभ्यस्त होकर हु;—जुहु, भी—बिभी, भृ—बिभृ, हा—जहा, ह्री—जिह्री, दा—ददा, धा—दधा, निज—नेनिज् और विज्—वेविज् होता है; यथा—हु + ति = जुहु + ति = जुहोति ।

अगुण स्वर परे रहने से 'हु' धातु के उकार के स्थान में 'व्' होता है। और 'हु' धातु के परस्थित 'हि' के स्थान में 'धि' होता है; यथा-जुहु + अन्ति = जुह्वति, जुहु + हि = जुहुधि ।

लट्—आदि का अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहने से परस्मैपदी अभ्यस्त 'हा' और 'भी' धातु के अन्त में विकल्प से 'इ' होता है; यथा—बिभी + तः=बिभितः, (पक्षे) बिभीतः; जहा + तः = जहितः (पक्षे) जहीतः ।

अगुण स्वर परे रहने से, अभ्यस्त आकारान्त धातु के आकार का लोप होता है; और व्यंजनवर्ण परे रहने से आकार के स्थान में 'ई' होता है; परन्तु 'दा' और 'धा' धातु का आ—ई नहीं होता; यथा-जहीतः (अगुण स्वर) जहा + अन्ति = जहति ।

अगुण स्वर परे रहने से, अनेक स्वर-विशिष्ट धातु के 'इ' 'ई' के स्थान में 'य' होता है; यथा—बिभी + अन्ति = बिभ्यति; जिह्री + अन्ति= जिह्रियति ।

विधिलिङ् का 'य' परे रहने से, परस्मैपदी 'हा' धातु के अन्त्य आकार का लोप होता है; और 'हि' परे हा—जहा, जहि तथा जही होता है ।

स, ध, त और थ परे रहने से, दधा—धद् और ददा—दद् होता है; और हि परे रहने से, ददा—दे, और दधा—धे होता है; यथा—दधा + ते = धत्ते; ददा + ते = दत्ते　दधा + हि = धेहि; ददा + हि = देहि ।

लट् आदि का सगुण स्वर परे रहने से, अभ्यस्त (द्विरुक्त) धातु की उपधा का गुण नहीं होता; यथा—नेनिज् + आनि = नेनिजानि ।

चतुर्लकार परे रहने से, कर्तृवाच्य में मा—मिमा और आत्मनेपदी हा—जिहा होता है ।

सकर्मक परस्मैदी धातु

हु दाने (प्रक्षेपे, वैधे आधारे देवतोद्देश्यकहविस्त्यागे, होमे)—हवन करना ।

(जुहोति घृतमग्नौ कृष्णाय होता; "जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्" अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति) ।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति
म० पु०	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ
उ० पु०	जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
म० पु०	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उ० पु०	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः
म० पु०	अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत
उ० पु०	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
म० पु०	जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात
उ० पु०	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम

लृट्—होष्यति।

हा (ओहाक्) त्यागे—छोड़ना ("बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत-दुष्कृते") "मूढ! जहीहि धनागमतृष्णाम्", "जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्"।

लट्

प्र० पु०	जहाति	जहितः, जहीतः	जहति
म० पु०	जहासि	जहिथः, जहीथः	जहिथ, जहीथ
उ० पु०	जहामि	जहिवः, जहीवः	जहिमः जहीमः

लोट्

प्र० पु०	जहातु	जहिताम्, जहीताम्	जहतु
म० पु०	जहिहि, जहीहि जहाहि	जहितम्, जहीतम्	जहित, जहीत
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

लङ्

प्र० पु०	अजहात्	अजहिताम्, अजहीताम्	अजहुः
म० पु०	अजहाः	अजहितम्, अजहीतम्	अजहित, अजहीत
उ० पु०	अजहाम्	अजहिव, अजहीव	अजहिम, अजहीम

विधिलिङ्—जह्यात्। लृट्—हास्यति।

कर्मकर्त्तरि—न्यूनीभावे; हीयते; "हीयते हि मतिस्तात! हीनैः सह समागमात्"।

अकर्मक परस्मैपदी धातु

भी (ञिभी) भये—डरना ("मृत्योर्बिभेषि किं बाल न स भीतं विमुञ्चति"। "स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेषि")।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बिभेति	बिभीतः	बिभ्यति
म० पु०	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
उ० पु०	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः

लोट्

प्र० पु०	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
म० पु०	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
उ० पु०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

लङ्

प्र० पु०	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयुः
म० पु०	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत
उ० पु०	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
म० पु०	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
उ० पु०	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम

लृट्—भेष्यति।

---

१. अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहने से, 'भी'—धातु के ईकार के स्थान में विकल्प से ह्रस्व इकार होता है; यथा—बिभीतः, बिभितः।

ह्री लज्जायाम् – लज्जित होना ("अन्योन्यस्यापि जिह्रीमः, किं पुनः सहवासिनाम्"।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति
म० पु०	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ
उ० पु०	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः

लोट्

प्र० पु०	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
म० पु०	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
उ० पु०	जिह्रयाणि	जिह्रियाव	जिह्रियाम

लङ्

प्र० पु०	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रयुः
म० पु०	अजिह्रेः	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत
उ० पु०	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम

विधिलिङ्—जिह्रीयात् । लृट्—ह्रेष्यति ।

सकर्मक आत्मनेपदी धातु

मा माने—मापना, नापना, ("पुरः सखीनाममिमीत लोचने")

लट्

प्र० पु०	मिमीते	मिमाते	मिमते
म० पु०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
उ० पु०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
म० पु०	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
उ० पु०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै

लङ्

प्र० पु०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
म० पु०	अमिमीथा	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
उ० पु०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
म० पु०	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
उ० पु०	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

अनु+मा—अनुमाने; ("अलिङ्गां प्रकृतिं त्वाहुलिङ्गैरनुमिमीमहे")। उप + मा—उपमाने। निर्+मा—निर्माणे; "सृष्टिस्थितिविलयमजः स्वेच्छया निर्मिमीते"। परि+मा—परिमाणे । प्र+मा—निश्चयज्ञाने; "न परोपहितं न च स्वतः प्रमिमीतेऽनुभवादृतेऽल्पधीः"। (ओहाङ्) गतौ—जाना। (जिहीते सज्जनाश्रयम्)।

लट्

प्र० पु०	जिहीते	जिहाते	जिहते
म० पु०	जिहीषे	जिहाथे	जिहीध्वे
उ० पु०	जिहे	जिहीवहे	जिहीमहे

लोट्

प्र० पु०	जिहीताम्	जिहाताम्	जिहताम्
म० पु०	जिहीष्व	जिहाथाम्	जिहीध्वम्
उ० पु०	जिहै	जिहावहै	जिहामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजिहीत	अजिहाताम्	अजिहत
म० पु०	अजिहीथाः	अजिहाथाम्	अजिहीध्वम्
उ० पु०	अजिहि	अजिहीवहि	अजिहीमहि

विधिलिङ्—जिहीत, जिहीयाताम्, जिहीरन्। लृट्—हास्यते।

उप+हा—आगमने; "उपाजिहीथा न महीतलं यदि"। उत्+हा—उदये; "उज्जिहीते हिमांशुः"; उपगमे च; "उज्जिहानजीविताम्"।

सकर्मक उभयपदी धातु

भृ (डुभृञ्) धारणे; पोषणे च—(१) धारण करना; (२) पोषण करना।

(१) "साध्वीं भार्यां बिभृयात्। (२) यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।"

परस्मैपद

लट्

प्र० पु०	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति
म० पु०	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ
उ० पु०	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः

लोट्

प्र० पु०	बिभर्त्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु
म० पु०	बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत
उ० पु०	बिभराणि	बिभराव	बिभराम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अबिभत्	अबिभृताम्	अबिभरुः
म० पु०	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत
उ० पु०	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम

विधिलिङ–बिभृयात्, बिभृयाताम्, बिभृयुः। लृट्–भविष्यति

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म० पु०	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ० पु०	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लोट्

प्र० पु०	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
म० पु०	बिभृध्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उ० पु०	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लङ्

प्र० पु०	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
म० पु०	अबिभृथाः	अबिभ्रथाम्	अबिभृध्वम्
उ० पु०	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

विधिलिङ्–बिभ्रीत, बिभ्रीयाताम्, बिभ्रीरन्। लृट्–भरिष्यते।

सम्+भृ–सञ्चये, संग्रहे; निष्पादने; उत्पादने च। दा (डुदाञ्) दान देना ("कथमस्य स्तनं दास्ये?"। "विद्या ददाति विनयम्" "यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः)।

परस्मैपद—

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ददाति	दत्त;	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थ:	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्व:	दद्म:

लोट्

प्र० पु०	ददातु	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि	दत्तम	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

लङ्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददु:
म० पु०	अददा:	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

विधिलिङ्—दद्यात्, दद्याताम्, दद्यु:। लृट्—दास्यति।

आत्मनेपद

(इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता:,')

लट्

प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उ० पु०	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहै	ददामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधिलिङ्—ददीत, ददीयाताम्, ददीरन् । लृट्—दास्यते ।

आ + दा, उप + आ + दा—ग्रहणे, स्वीकरणे; आत्मनेपदी । वि + आ + दा—व्यादाने, प्रसारणे । प्र+दा—प्रदाने । सम् + प्र + दा—सम्प्रदाने, समन्त्रकत्यागे ।

धा (डुधाञ्) (१) धारणे (पोषणे) च ।

(१) दाने; "धुर्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव ! प्रसीद", (२) धारणे; "शिरसि मसीपटलं दधाति दीपः"; (३) स्थापने; "विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्" । "तेषां मूर्ध्नि दधामि वामचरणं कर्णाटराजप्रिया" । "मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।"
(४) धारणे—"सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ।"

परस्मैपद

लट्

प्र० पु०	दधाति	धत्तः	दधति
म० पु०	दधासि	धत्थः	धत्थ
उ० पु०	दधामि	दध्वः	दध्मः

लोट्

प्र० पु०	दधातु	धत्ताम्	दधतु
म० पु०	धेहि	धत्तम्	धत्त
उ० पु०	दधानि	दधाव	दधाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
म० पु०	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उ० पु०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

विधिलिङ्—दध्यात्, दध्याताम्, दध्युः। लृट्—धास्यति।

आत्मनेपद

लट्

प्र० पु०	धत्ते	दधाते	दधते
म० पु०	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ० पु०	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट्

प्र० पु०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म० पु०	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
उ० पु०	दधै	दधावहै	दधामहै।

लङ्

प्र० पु०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
म० पु०	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

विधिलिङ्—दधीत, दधीयाताम्, दधीरन्। लृट्—धास्यते।

अन्तर्+धा—अभ्यन्तरीकरणे, स्वीकरणे; "विश्वम्भरे देवि! मामन्तर्धातुमर्हसि"; आवरणे; आच्छादने; "पितुरन्तर्दधे कीर्त्तिं शीलवृत्ति-समाधिभिः"; अन्तर्धाने च (छिप जाना, गायब होना; अधीन होना—अकर्मक)—आत्मनेपदी (पञ्चमी के साथ);—कर्मकर्त्तरि, अन्तर्धीयते; "इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत"; रात्रिरादित्योदयेऽन्तर्धीयते"।

तिरस् + धा—अन्तर्धाने। पुरस् + धा—पुरस्करणे, अग्रतः स्थापने। श्रत्+धा—श्रद्धायाम्, विश्वासे (द्वितीयान्त पद के साथ); "कः श्रद्धास्यति भूतार्थम्?" अपि+धा—आच्छादने। अभि + धा—आख्याने, कथने (य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति)। अव + धा—स्थापने; प्रणिधाने, मनःसंयोगे च; आत्मनेपदी। वि + अव+ धा—व्यवधाने, अन्तरे। आ+धा—स्थापने; धारणे; अर्पणे; उत्पादने च। सम्+आ+धा—एकाग्रीकरणे; सिद्धान्ते, विरोधभञ्जने; प्रतिकारे च। उप + धा—स्थापने; उपधानीकरणे; प्रयोगे; अर्पणे च। नि+ धा—स्थापने, न्यासे। प्र+नि+धा—स्थापने, अर्पणे; प्रसारणे च। सम् + नि + धा—स्थापने,—कर्मकर्त्तरि—उपस्थितौ, सन्निधीयते। परि + धा—परिधाने। वि+धा—करणे, अनुष्ठाने। अनु+वि+धा—अनुवर्त्तने। प्रति+वि+धा—प्रतिकारे। सम्+धा+संयोजने; मिलने, सौहार्दस्थापने; आरोपणे (बाणादीनां धनुषि); उत्पादने च। अति+ सम्+धा—वञ्चने, प्रसारणे। अनु + सम् + धा—अन्वेषणे; चिन्तने, विचारणे; अनुसरणे च। अभि + सम् + धा—उद्देशे, अभिप्राये; वञ्चनायाम्; वशीकरणे च।

निज् (णिजिर्) शौचे (निर्मलीकरणे)—धोना—(लट्) नेनेक्ति, नेनिक्तः, नेनिजति; नेनिक्ते, नेनिजाते, नेनिजते। (लोट्) नेनेक्तु; हि—नेनिग्धि; आनि—नेनिजानि। (लङ्) अनेनेक्, अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः; अम्—अनेनिजम्; अनेनिक्त। (विधिलिङ्) नेनिज्यात्; नेनिजीत। (लृट्) नेक्ष्यति, नेक्ष्यते।

अव + निज्—अवनेजने, प्रक्षालने। निर् + निज्—निर्णेजने, शोधने।

विज् (विजिर्) पृथक्करणे—अलग करना—इसके रूप 'निज्'—धातुवत्।

विष् (विष्लृ) व्याप्तौ—व्याप्त होना, फैलाना—(लट्) वेवेष्टि वेविष्टः, वेविषति; वेविष्टे। (हि) वेविड्ढि। (लङ्) अवेवेट्, अवेविष्टाम्, अवेविषुः, अम्—अवेविषम्; अवेविष्ट। (विधिलिङ्) वेवि-

ष्यात् ; वेविषीत । (लृट्) वेक्ष्यति वेक्ष्यते । परि+विष् णिच्--परिवेषणे, अन्नाद्युपसमर्पणे (परोसना) वेष्टने च ; परिवेषयति ।

अनुवाद

'तपोवनवासिनामुपरोधो मा भूत्'--तपोवन में रहने वालों को कोई परेशानी न हो । 'भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः'—पति के द्वारा अनुचित व्यवहार किये जाने पर भी उसके प्रति क्रुद्ध होकर उसके विरुद्ध न जाओ । 'सुप्तोऽहं विललाप किम्' क्या मैं शयनकाल में विलाप कर रहा था । 'यद्यत्र मम भ्राता वर्त्तेत तत् त्वमिदं न ब्रूयाः'—यदि यहाँ मेरा भाई होता तो तुम ऐसा न कहते । 'सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्'--यदि सुवृष्टि होती तो सुभिक्ष (प्रचुर अन्न) होता ।

दशरथ नाम का एक राजा था—अभूद् दशरथो नाम राजा । कल वर्षा हुई थी—ह्यो वृष्टिरभवत् । आज वर्षा हुई है—अद्य वृष्टिरभूत् । राम ने रावण को मारा था—रामः रावणं जघान ।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—अब कपड़े पहनो । शत्रु के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये । ब्राह्मणों को प्रतिदिन होम करना चाहिये । अनन्तर वे अन्तर्हित हो गये । देवता लोग घृत भक्षण करते हैं । गुरु और शास्त्र के वाक्य में श्रद्धा करनी चाहिये । घृत से अग्नि में हवन करो । छोटे-बड़े सब कोई दुष्ट से डरते हैं । मुझे दो वस्त्र दीजिये । गाय की पूजा करनी चाहिये । उन्होंने मुझसे ऐसा कहा । सवेरे भगवान् का स्मरण करना चाहिये । असत् कर्म का त्याग करो । मैं मृत्यु से भी नहीं डरता । तभी तक भय से भीत होना चाहिये जब तक भय नहीं आता । दो से ही भय होता है । अद्वैत में भय नहीं है । हे जनक ! क्या तुमने अभय प्राप्त कर लिया है ! हे कौन्तेय ! दरिद्रों का पोषण करो । विद्या विनय देती है । अनुपकारी को जो कुछ दिया जाता है वही सात्त्विक दान है । जो कुछ प्रत्युपकार पाने की आशा से या फल पाने के लिए क्लेश के साथ दिया जाता है वह राजसिक दान है जो कुछ अपात्र में अवज्ञा के साथ दिया जाता है वह तामसिक दान है । यह संसार

परमाणुओं से बना है या प्रकृति के परिणाम से अथवा माया विवर्त से इसका अनुसन्धान करो।

हिन्दी में अनुवाद करो—वसन्तीह पुरा छात्राः। योऽन्नं ददाति स स्वर्गं गच्छति। कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि। कथं नाम तत्र-भवान् धर्मम् अत्यक्ष्यत्। इदानीं ते राज्यभङ्गो नास्ति।। मदि मयि अनुकम्पा क्रियेत तदा राजपुत्रो जीवतु। पुरा तत्र जनाकीर्णं नगरम् आसीत्। सुप्तोऽहं विललाप किम्। शत्रुणा नहि संदध्यात् जीव्यासुश्चिरं सज्जनाः मा रोदीः बाल! किं भोः, वेदम् अधीयीय, उत तर्कम्?

एक काल की क्रिया हो तथा एक ही वाक्य में प्रथम, मध्यम उत्तम—इन तीन या दो पुरुषों का प्रयोग हो तो इसी क्रम से परवर्त्ती पुरुष के अनुसार क्रिया का पुरुष और समष्टि—संख्या के अनुसार क्रिया का वचन होता है, अर्थात् कर्त्ता—प्रथम और मध्यम पुरुष का होने से मध्यम पुरुष के अनुसार कर्त्ता—प्रथम और उत्तम पुरुष का होने से उत्तम पुरुष के अनुसार और कर्त्ता—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष का होने से उत्तम पुरुष के अनुसार क्रिया होगी, यथा—(वह और तू जाये) स त्वञ्च यातम्; (वह और मैं जाये) स च अहञ्च यावः (वह तू और मैं जायें) स त्वं अहञ्च यामः।

कर्त्ता व्यस्त रूप में अर्थात् अनियम से विन्यस्त होने पर भी इसी नियमानुसार क्रिया होगी; यथा—(तू और वह जायें) त्वं स च यातम् (मैं और तू जायें) अहञ्च त्वञ्च यावः; (मैं, तू और वह जायें (अहं त्वं स च यामः[1]।

---

१. पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पद का एक ही विशेषण होने से, वह पुंलिङ्ग होता है; और उनमें एक के अथवा दोनों के साथ क्लीबलिङ्ग पद रहने से, उनका विशेषण क्लीबलिङ्ग होता है। यथा—महान्तौ वृक्षः शाखा च महान्तो वृक्षः शाखा प्रशाखाश्च; महती वृक्षः पत्रश्च; महान्ति वृक्षः शाखा पत्रश्च। वृक्षः शाखा च पतितौ; वृक्षः फलञ्च पतिते; वृक्षः शाखा फलञ्च पतितानि।

क्लीबलिङ्ग के स्थल में विकल्प से एकवचनान्त होता है। यथा—महत् महती वा वृक्षः पत्रञ्च; महत् महान्ति वा वृक्षः शाखा पत्रञ्च।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—वे और हम खा चुके हैं। राम श्याम और मैं जायेंगे। तुम और वे काम क्यों नहीं करते ? मैं, तू और वह कभी झूठ नहीं कहेंगे। तू और मैं चन्द्र देखते हैं। ललिता और मैं एक ही मकान में रहते थे। आँधी से वृक्ष, लता और झोपड़ियाँ गिर गये। राजगोपालाचार्य के भाषण रूपी अन्धड़ से कांग्रेस महामहीरुह नहीं उत्पाटित होगा। सुन्दर और सुसज्जित लड़के और लड़कियाँ नाच रहे हैं। मीठे आम और लीचियाँ बिक रहे हैं। पेड़ से फल और शाखा गिर गये।

एक वाक्य में एक क्रिया और काल हो तो हिन्दी में व्यवहृत 'वा', 'अथवा', 'या'—इन अव्ययों के योग से क्रिया के समीपवर्ती कर्त्ता के अनुसार क्रिया के पुरुष और वचन होते हैं ; यथा—(तू या मैं जाऊँगा) त्वम् अहं वा यास्यामि ; (तुम अथवा वे जायें) यूयं वा ते यान्तु ; (वे अथवा तू गया था) ते त्वं वा अगच्छः।

शिष्ट प्रयोग में अन्तिम पद वा क्रिया के निकटवर्त्ती पद के अनुसार भी विशेषण वा क्रिया पद के लिङ्ग, वचन होते हैं ; यथा—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" ; स्त्रियो धनं सुतौ यातौ" ; "विषादप्यमृतं ग्राह्यम्, अमेध्यादपि काञ्चनम्। नीचादप्युत्तमा विद्या, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।" "यस्य वीर्य्येण कृतिनो वयश्च भुवनानि च" (भुवनानि कृतीनि) ; "कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनञ्च"।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—इस बात से तू या वह हँसा है। इस काम को तूने या उसने किया है। लड़के या लड़की जानती है। उसने नहीं तो तूने मेरी हानि की है। उस पुस्तक को मैं अथवा तू पढ़। इस वस्त्र को मैं अथवा तू पहनेगा। मेरे पढ़ने का व्यय पिता या छोटा भाई देता था। मोहन सोहन, मोहिनी या मैं जाऊँ तो काम चलेगा।

इट् विधान

लट् , लोट् , लङ् और य भिन्न व्यञ्जन वर्ण परे रहने से धातु के उत्तर 'इट्' होता है। ट् नहीं रहता। ऐसे धातुओं को 'सेट् धातु' कहते हैं।

दरिद्रादि (क) भिन्न आकारान्त, इवर्णान्त, उकारान्त, ऋकारान्त धातु और शकादि (ख) व्यञ्जनान्त धातु के उत्तर इट् नहीं होता। ऐसे धातुओं को 'अनिट् धातु' कहते हैं।

स्वृ, चाय्, स्फाय्, प्याय्, सू (अदादि), सू (दिवादि), धू, रधादि धातु, ऊकार इत् धातु और रु, द्रु, सु, नु धातु के उत्तर विकल्प से 'इट्' होता है। ऐसी धातुओं को 'वेट् धातु' कहते हैं। यथा रध्+ स्यति= रधिष्यति, रत्स्यति। अनिट् धातु निम्नलिखित हैं—

दरिद्रादि धातु

आकारान्त—'दरिद्रा' से भिन्न सब।

आकारान्ता अदरिद्रा अनिटः परिकीर्तिताः।

इकारान्त—श्रि और श्वि से भिन्न सब।

श्रि-श्वि-भिन्ना इकारान्ताश्चानिटः कथिता बुधैः।

ईकारान्त—डी, शी, दीधी; वेवी से भिन्न सब।

डी-शी-वेवी-दीधी भिन्ना ईकारान्तास्तथानिटः।

उकारान्त—यु, रु, नु, स्नु, क्षु, क्ष्णु, ऊर्णु से भिन्न सब।

वर्जयित्वा यु-रू नु-स्नू क्षु-क्ष्णू ऊर्णुश्च सप्तमः। अनिटः स्युः सकारान्ताः।

ऋकारान्त—वृ और जागृ से भिन्न सब।

ऋकारान्ता वृ-जागृभ्यां विना सर्वेऽनिटो मताः।

शकादि धातु

कान्त—केवल शक् धातु।

कान्तेषु शक एवानिट्।

चान्त—पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्।

चान्तेषु च पच्-मुच्-रिचो वच्-विचौ सिच एव च। अनिटः षट् परिज्ञेयाः।

छान्त—केवल प्रच्छ् धातु।

प्रच्छश्छान्तेष्वनिट् स्मृतः।

जान्त—त्यज्, निज्, भज्, भन्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, मृज्, यज्; युज्, रन्ज्, रुज्, विज्, सन्ज्; सृज्, स्वन्ज्।

त्यजो निजो भजो भन्जो भुज् भ्रस्जौ मस्ज् मृज्-यजः।
युजो रन्जो रुजविजौ सृज्सन्जौ स्वन्ज एव च।
षोडशैतांश्च जकारान्तांश्च जानीयादिड्विवर्जितान्।

दान्त—अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद्,[1] विन्द्[2], शद्, सद्, स्कन्द्, स्विद्, हद्।

अदः क्षुदः खिदश्चैव, छिद्-तुदौ नुद्-पदौ भिदः।
विदो विन्दः शदसदौ स्कन्द-स्विद-हदास्तथा।
दकारान्तेषु विज्ञेया इमे पञ्चदशानिटः।

धान्त—क्रुध्, क्षुध्, वुध्, बन्ध, युध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्।[3]

क्रुधः क्षुधो बुधो बन्धो युधो राधो रुधो व्यधः।
शुधः साधः सिधश्चेति धान्तेष्वेकादशानिटः।

---

१. यह दिवादि धातु है।

२. यह धातु व्याघ्रभूति आदि के मत में सेट् है और चान्द्रादि के मत में अनिट्-व्याघ्रभूत्यादिमतेऽयं सेट् चान्द्रादिमतेऽनिट्।

३. यह धातु दिवादि है।

नान्त—मन् और हन् धातु ।

अनिटौ मन् हनौ नान्ते ।

पान्त—आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तृप्, त्रप्, दृप्, लिप्, लुप्, वप्, शप्, सृप्, स्वप् ।

आपः क्षिपः क्षुपश्चैव तप्-तिप्-तृप्-त्रप्-दृपो लिपः ।

लुप् वप् शप् सृप्-स्वपः पान्तेष्वनिटः स्युश्चतुर्दश ।

भान्त—यभ् रभ् लभ् ।

यभ्-रभ् लभो भकारान्तेष्वनिटो गदितास्त्रयः ।

मान्त—गम् नम् यम् रम् ।

गम् नमौ, यम्-रमौ चेति मकारान्तेष्विमेऽनिटः ।

शान्त—क्रुश्, दन्श्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश् । क्रुश्-दन्श्-दिश्-दृशश्चैव मृश् रिश्-रुश्-लिश्-विशस्तथा ।

स्पृशश्चेति शकारान्तेष्वनिटः कीर्तिता दश ।

षान्त—कृष्, तुष्, त्विष्, दुष्, द्विष्, पिष्, पुष्, मृष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष् ।

कृष्-तुष्-त्विष्-दुष्-द्विषश्चैव पिष्-पुष्-मृष्, विष्-शिषस्तथा ।

शुष्श्लिषौ चेति कथ्यन्ते षान्तेषु द्वादशानिटः ।

दिवादि पुष् अनिट् होता है और क्र्यादि पुष् सेट् ।

सान्त—घस् और वस् धातु ।

अनिटौ घस्-वसौ सान्ते ।

हान्त—दह् दिह् दुह् नह् निह् रुह् लिह् वह् ।

दहो दिहो दुहश्चैव नहो निहरुहौ लिहः ।

वहश्चेति हकारान्तेष्वनिटोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।

रधादि धातु

रध् तृप् दृप् द्रुह् मुह् स्निह् स्नुह् ।
रध्यतिस्तृप्य-दृप्यौ च द्रुह्यतिर्नश्यतिस्तथा ।
मुह्यतिः स्निह्यतिः स्नुह्योः रधादावष्टधातवः ।

उकार-इत् (उदित) धातु

मृज् सिध् तृप् दृप् क्षम् गुह् मुह् अश् (स्वादि) गाह् भिद् क्लिश् क्लृप् (कृप्) स्निह् नश् द्रुह् इत्यादि धातु अनिट हैं ।

पूर्व खण्ड में लट्, लोट्, लङ्; विधिलिङ् और लृट् इन पाँच लकारों के रूप दर्शाये गये हैं। नीचे अन्य पाँच लकारों के रूप दिखाये जाते हैं।

लृट्, लृङ्, लुट्

लृट्, लृङ् और लुट् विभक्ति परे रहने से धातु के अन्त्य स्वर का और उपधा लघुस्वर का गुण होता है। यथा भू+स्यति = भविष्यति, ज्ञानार्थक, विद्+स्यति = वेदिष्यति, कथि+स्यति=कथयिष्यति ।

भू (होना) परस्मैपदी

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

लृङ्

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितारः
म० पु०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

शी (सोना, लेटना)—आत्मनेपदी

लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यास्महि

लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितारः
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितामहे

'स्य' परे रहने से ऋकारान्त धातु और हन् धातु के उत्तर इट् होता है, और वृत्, क्लृप् (कृप्) आदि धातुओं के उत्तर 'परस्मैपद' के 'स्य' परे रहने पर इट् नहीं होता, किन्तु आत्मनेपद में नित्य और अन्यत्र विकल्प से होता है। यथा कृ—करिष्यति, हन्—हनिष्यति, वृत्—वत्स्यति, वर्तिष्यते।

लृट् लृङ् परे रहने से नृत्, छृद्—चृत् कृत् और तृद् धातुओं के उत्तर और आशीर्लिङ् के आत्मनेपद में नृत् आदि वृ तथा ऋकारान्त धातु के उत्तर विकल्प से इट् होता है; यथा नृत्—नर्तिष्यति, नर्त्स्यति।

'स' परे रहने से परस्मैपद में गम् धातु के उत्तर इट् होता है; किन्तु आत्मनेपद होने पर इट् विकल्प से होता है। यथा —गमिष्यति।

चतुर्लकार परे रहने से अकर्तृवाच्य में और लृट् आदि विभक्ति वा प्रत्यय परे रहने से समस्त वाच्यों में एकारान्त, ऐकारान्त तथा ओकारान्त धातु आकारान्त होता है; यथा धे—धास्यति; गै—गास्यति; शो—शास्यति।

उक्त विषय में ब्रु—वच, अस—भू, चक्ष्—क्शा अथवा ख्या[1] होता है। यथा—ब्रू + स्यति = वक्ष्यति; अस्—भविष्यति; चक्ष्—क्शास्यति, क्शास्यते; ख्यास्यति, ख्यास्यते।

स्वर-वर्ण परे गुह्—गूह् होता है; यथा गूह्+स्यति = गूहिष्यति। सर्वत्र क्लृप् (कृप्) का कल्प् होता है (केवल 'कृपण' आदि स्थान में नहीं होता) यथा—कल्प्स्यते।

'स' परे रहने से भ के स्थान में प और बध्, बन्ध्; बुध् धातुओं के 'ब' के स्थान में भ होता है। गुह् और गाह् धातुओं के 'ग' के स्थान में 'घ' होता है; यथा लभ्—लप्स्यते; बुध—भोत्स्यते; गुह्—घोक्ष्यति।

कुटादि[2] धातुओं के उत्तर गुण नहीं होता; परन्तु लिट् का सगुण 'अ' और 'ण' इत् (णित्) प्रत्यय परे रहने से होता है, यथा कुट—कुटिष्यति।

चतुर्लकार—भिन्न सगुण विभक्ति में भ्रस्ज् के स्थान में भर्ज् होते हैं; यथा—भ्रस्ज् + स्यति = भर्क्ष्यति भ्रक्ष्यति।

लृट् आदि विभक्ति वा प्रत्यय परे रहने से दरिद्रा धातु का 'आ' लुप्त होता है, परन्तु सन्, अक, अन परे रहने से नहीं होता, लुङ् परे विकल्प से लोप होता है; यथा दरिद्रा+स्यति = दरिद्रिष्यति।

---

१. अन्, उस्, अस् परे नहीं होता। क्शा और ख्या उभयपदी धातुएँ हैं।

२. कुटादि धातुएँ निम्नलिखित हैं — कुट् पुट् लुठ्, स्फुट् स्फुर् स्फुल् त्रुट विज् इत्यादि। मिल् और लिख् धातु विकल्प से कुटादि हैं।

ग्रह धातु के उत्तर विहित 'इट्' दीर्घ होता है और वृ तथा ऋकारांत धातु के उत्तर विहित 'इट्' विकल्प से दीर्घ होता किन्तु लिट् और आशीर्लिङ् में नहीं होता।

यथा:—ग्रह्—ग्रहीष्यति ग्रहिष्यति; तृ—तरीष्यति, तरिष्यति।

सगुण धुट् वर्ण परे रहने से कृष्, मृश्, स्पृश्, तप्, दृप् और सृप् धातुओं के 'ऋ' के स्थान में विकल्प से 'र' होता है दृश् और स्टज् धातु के 'ऋ' के स्थान में नित्य 'र' होता है। यथा कृष्—क्रक्ष्यति' कर्क्ष्यति दृश्—द्रक्ष्यति।

स परे रहने 'स्' के स्थान में 'त्' होता है। यथा—वस्—वत्स्यति

स और र परे रहने से नश् और मस्ज् धातु के अकार के पश्चात् अनुस्वार होता है। यथा नश्—नङ्क्ष्यति, मस्ज्—मङ्क्ष्यति।

चल् (जाना)—परस्मैपदी—

लृट्—चलिष्यति, चलिष्यतः चलिष्यन्ति।
लृङ्—अचलिष्यत्, अचलिष्यताम, अचलिष्यन्।
लुट्—चलिता, चलितारौ, चलितारः।

ग्रह् (लेना)—उभयपदी—

लृट् लृङ् और लुट् विभक्तियों में ग्रह धातु के उत्तर ह्रस्व इ दीर्घ हो जाता है। यथा—

लृट्—ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यतः, ग्रहीष्यन्।
लुट्—ग्रहीता, ग्रहीतारौ, ग्रहीतारः।

दीर्घ–ऋकारान्त धातु

लृट्, लृङ् और लुट् विभक्तियों में दीर्घ–ऋकारान्त धातु के उत्तर विहित 'इ' विकल्प से दीर्घ होता है।

तॄ (पार होना)—परस्मैपदी

लृट्—तरीष्यति, तरिष्यति, तरीष्यत तरिष्यतः, तरीष्यन्ति तरिष्यन्ति।
लृङ्—अतरीष्यत्, अतरिष्यत्, अतरीष्यताम् अतरिष्यताम्, अतरीष्यन् अतरिष्यन्।
लुट्—तरीता तरिता, तरीतारौ तरितारौ, तरीतारः तरितारः।

दरिद्रा (दरिद्र होना)—परस्मैपदी

लृट्, लृङ् और लुट् विभक्तियों में विहित 'इ' परे रहने से दरिद्रा के आकार का लोप होता है यथा दरिद्रिष्यति, अदरिद्रिष्यत् तथा दरिद्रिता।

अनिट् धातु

या (जाना) लृट्—यास्यति, यास्यतः; यास्यन्ति।
लृङ्—अयास्यत् अयास्यताम्, अयास्यन्।
लुट्—याता, यातारौ, यातारः।

जि (जीतना) लृट्—जेष्यति, जेष्यतः, जेष्यन्ति।
लृङ्—अजेष्यत्, अजेष्यताम्, अजेष्यन्।
लुट्—जेता, जेतारौ, जेतारः।

श्रु (सुनना) लृट्—श्रोष्यति, श्रोष्यतः, श्रोष्यन्ति।
लृङ्—अश्रोष्यत्, अश्रोष्यताम्, अश्रोष्यन्।
लुट्—श्रोता, श्रोतारौ, श्रोतारः।

ब्रू (कहना) लृट्—वक्ष्यति, वक्ष्यतः, वक्ष्यन्ति।
लृङ्—अवक्ष्यत्, अवक्ष्यताम्, अवक्ष्यन्।
लुट्—वक्ता, वक्तारौ, वक्तारः।

प्रच्छ् (पूछना) लृट्—प्रक्ष्यति, प्रक्ष्यतः, प्रक्ष्यन्ति।
लृङ्—अप्रक्ष्यत्, अप्रक्ष्यताम्, अप्रक्ष्यन्।
लुट्—प्रष्टा, प्रष्टारौ, प्रष्टारः।

मन् (मनन करना) लृट्—मंस्यते, मंस्येते, मंस्यन्ते।
लृङ्—अमंस्यत अमंस्येताम्, अमंस्यन्त।
लुट्—मन्ता मन्तारौ, मन्तारः।

लभ् (प्राप्त करना) लृट्—लप्स्यते, लप्स्येते, लप्स्यन्ते।
लृङ्— अलप्स्यत, अलप्स्येताम्, अलप्स्यन्त।
लुट्— लब्धा, लब्धारौ, लब्धारः।

वस् (रहना) लृट्—वत्स्यति, वत्स्यतः, वत्स्यन्ति।
लृङ्—अवत्स्यत्, अवत्स्यताम्, अवत्स्यन्।
लुट्—वस्ता, वस्तारौ, वस्तारः।

वह (ढोना) (परस्मै०) लृट्--वक्ष्यति, वक्ष्यतः, वक्ष्यन्ति ।
लृङ्--अवक्ष्यत्, अवक्ष्यताम्, अवक्ष्यन् ।
लुट्--वोढा, वोढारौ, वोढारः ।
(आत्मने०) लृट्--वक्ष्यते, वक्ष्येते, वक्ष्यन्ते ।
लृङ्--अवक्ष्यत, अवक्ष्येताम्, अवक्ष्यन्त ।
लुट्--वोढा, वोढारौ, वोढारः ।

दह् (जलना) लृट्--धक्ष्यति, धक्ष्यतः, धक्ष्यन्ति ।
लृङ्--अधक्ष्यत्, अधक्ष्यताम्, अधक्ष्यन् ।
लुट्--दग्धा, दग्धारौ दग्धारः ।

दृश् (देखना) और सृज् (सृजना, बनाना) धातु

लृट्, लृङ् और लुट् विभक्तियों में दृश् और सृज् धातुओं की 'ऋ' के स्थान में 'र' होता है ।

दृश् (देखना) लृट्--द्रक्ष्यति, द्रक्ष्यतः, द्रक्ष्यन्ति ।
लृङ्--अद्रक्ष्यत् अद्रक्ष्यताम्, अद्रक्ष्यन् ।
लुट्--द्रष्टा, द्रष्टारौ, द्रष्टारः ।

सृज् (उत्पन्न करना) लृट्--स्रक्ष्यति, स्रक्ष्यतः, स्रक्ष्यन्ति ।
लृङ्--अस्रक्ष्यत्, अस्रक्ष्यताम्, अस्रक्ष्यन् ।
लुट्--स्रष्टा, स्रष्टारौ, स्रष्टारः ।

गम् (जाना) लृट्--गमिष्यति, गमिष्यतः, गमिष्यन्ति ।
लृङ्--अगमिष्यत्, अगमिष्यताम्, अगमिष्यन् ।
लुट्--गन्ता, गन्तारौ, गन्तारः ।

हन् (मारना) लृट्--हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति ।
लृङ्--अहनिष्यत्, अहनिष्यताम्, अहनिष्यन् ।
लुट्--हन्ता, हन्तारौ, हन्तारः ।

ह्रस्व ऋकारान्त कृ (करना) धातु—

लृट् (प०)—करिष्यति, करिष्यतः, करिष्यन्ति ।
(आ०)—करिष्यते, करिष्येते, करिष्यन्ते ।

लृङ् (प०)—अकरिष्यत्, अकरिष्यताम्, अकरिष्यन् ।
(आ० —अकरिष्यत अकरिष्येताम्, अकरिष्यन्त !
लुट् (प०)—कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः ।
कर्तासि, कर्तास्थः, कर्तास्थ ।
कर्तास्मि, कर्तास्वः, कर्तास्मः ।
(आः)—कर्ता कर्तारौ, कर्तारः ।
कर्तासे, कर्तासाथे - कर्ताध्वे ।
कर्ताहे, कर्तास्वहे, कर्तास्महे ।

लृङ् विभक्ति में 'अधि' पूर्वक ई धातु (बढ़ना) के स्थान में विकल्प से 'गा' होता है और तब गी के ईकार को गुण नहीं होता। यथा—अध्यगीष्यत अध्यैष्यत, अध्यगीष्येताम् अध्यैष्येताम्, अध्यगीष्यन्त अध्यैष्यन्त ।

लृट्—अध्येष्यते, अध्येष्येते, अध्येष्यन्ते ।
लुट्—अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः ।

विकल्पितेट् धातु

रध् (नाश करना) लृट्—रधिष्यति, रत्स्यति, रधिष्यतः रत्स्यतः,
रधिष्यन्ति रत्स्यन्ति ।
लृङ्—अरधिष्यत्, अरत्स्यत्, अरधिष्यताम्
अरत्स्यताम्, अरधिष्यन्, अरत्स्यन् ।
लुट्—रधिता रद्धा, रधितारौ रद्धारौ, रधितारः
रद्धारः ।

सु (अधिकार करना) लृट्—सविष्यते सोष्यते, सविष्येते सोष्येते,
सविष्यन्ते सोष्यन्ते ।
लृङ्—असविष्यत असोष्यत, असविष्येताम्
असोष्येताम्, असविष्यन्त असोष्यन्त ।
लुट्—सविता सोता, सवितारौ सोतारौ, सवितारः
सोतारः ।

अनुवाद

रघूणामन्वयं वक्ष्ये—मैं रघुवंश का कुल बताऊँगा। स नूनं द्राक् प्रबुद्धान् करिष्यति—निस्सन्देह वह उन्हें प्रबुद्ध (बुद्धिमान) बना देगा। यदि भवानगमिष्यत् तदा सोऽप्यागमिष्यत्—यदि तुम गये होते तो वह भी आया होता। सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यति—वह हमारे जाल को काट देगा। दुर्जनः स इति जनास्तं निन्दन्ति – वह दुर्जन है ऐसा लोग उसकी निन्दा करते हैं। गुरुमन्तरेण विद्यालाभो न भवति—बिना गुरु के विद्यालाभ नहीं होता। अध्यधिपात्रं पात्राणि तिष्ठन्ति–बर्तन के नीचे बर्तन है।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो :—पवित्रात्मा स्वर्ग में अनन्त काल तक निवास करेंगे। मैं कृष्ण को देखूँगा। मैं दरिद्र बालक को कपड़े दूँगा।

वे तुझे किसी कार्य में नियुक्त करेंगे। तू अवश्य युद्ध में शत्रुओं को जीतेगा। ज्ञान होता तो सुख होता। मैं भक्त होता तो भगवान् की कृपा पाता। सामर्थ्य रहता तो मैं अभी इस काम को करता। विद्या रहती तो राम का सभी आदर करते। उसको धन होता तो मुझको देता। राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करेगा। कल राम राजा होगा। परसों मैं तुम्हारे घर जाऊँगा। वह शीघ्र इसका फल पायेगा।

धर्मात्मा कभी झूठ नहीं बोलते। यदि मैं राजा होता तो गरीबों को दान देता। कौन अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करेगा? यदि मैं धनवान् होता तो तुमसे न माँगता। यदि किताब मेरी होती तो मैं तुम्हें देता। मैं अपने माता-पिता की आज्ञा मानूँगा। मैं आज घर जाऊँगा। कल श्याम का विवाह होगा। मैं तुमसे परसों मिलूँगा। वह अगले महीने में हमारे साथ रहेगा।

शुद्ध करो :—बालकोऽसो सत्वरमेव शय्यायां शेष्यते। माता कदापि पुत्रस्य अपराध न ग्रहिष्ये। भगवान् नः मन्दिरं दर्शिष्यसि। अनलः तव हस्तं दहिष्यति। रामस्तस्य मातुलस्य प्रभूतं वित्तं लभिष्यते।

हिन्दी में अनुवाद करो :—भारतः चैनिकान् जेष्यति। स प्रभूतानि धनानि वितरिष्यति। ततः स मत्प्रतापम् अनुभविष्यति। स महत् कर्म करि-

ष्यति । वयं तत्र गन्तास्म । यदा ते निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा । यदि सोऽत्रागमिष्यत् तदाऽहं तत्रागमिष्यम् । स च तव वचनेन परिणतिं यास्यति । कथं सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् । अपराधम् अमुं ततः सहिष्ये । सहायं ते भविष्यामि दुर्गेषु विषमेषु च । श्वोऽहं विद्यालयं गन्तास्मि । यावत् कारणं न वक्ष्यसि तावत्ते फलं न ग्रहीष्ये । समधिकाः सम्पदोऽपि क्षयं गमिष्यन्ति । रामः श्वो राजा भविता । स चेन् मामप्रक्ष्यत् तदाहम् अवक्ष्यम् ।

आशीर्लिङ् - परस्मैपद

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में दा, धा, धे, पा, मा, हा और गै धातु के अन्त में 'ए' होता है। यथाः— दा + यात् = देयात्, धा—धेयात्; पा—पेयात् ; मा—मेयात् ; हा – हेयात् ; गै - गेयात् ।

अगुण य परे रहने से अन्त्य 'इ' और 'उ' दीर्घ होते हैं। यथाः— जि – जीयात् ; श्रु—श्रूयात् ।

संयुक्त वर्णादि आकारान्त धातु का 'आ' विकल्प से 'ए' होता है, परन्तु स्था धातु के अन्त में नित्य ए होता है। यथाः—घ्रा—घ्रेयात्, घ्रायात् ; स्था—स्थेयात ।

अगुण य परे रहने से ह्रस्व ऋ के स्थान में रि होता है यथाः— कृ—क्रियात् ।

अगुण य और लिट् की अगुण विभक्ति परे रहने से, संयुक्त वर्णादि ऋकारान्त धातु और ऋ, जागृ धातु को गुण होता है यथाः—स्मृ— स्मर्य्यात् ; ऋ—अर्यात् ; जागृ – जागर्यात् ।

अगुण य वा प्रत्यय परे रहने से धातु के ॠ के स्थान में ईर होता है, यदि वह ॠ ओष्ठ्य वर्ण से युक्त हो तो ऊर् होता है यथाः— कॄ—कीर्य्यात् ; पॄ - पूर्य्यात् ।

अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहने से ग्रह्—गृह्, प्रच्छ्—पृच्छ्, व्यध्-विध्, यज्-इज् और ह्वे हु होता है यथाः ग्रह्—गृह्यात् ; प्रच्छ् पृच्छ्यात् ; व्यध्-विध्यात ; यज्-इज्यात् ; ह्वे-हूयात् किन्तु लिट् परे प्रच्छ् के स्थान में पृच्छ् नहीं होता ।

अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहने से वद्-उद्, वच्-उच्, वप्-उप्, वस्-उस् ; वह्-उह् और स्वप्-सुप् होता है। यथा:—वद्-उद्यात् ; वच्-उच्यात्, वप्-उप्यात् ; वस्-उष्यात् ; वह्-उह्यात् ; स्वप्-सुप्यात्।

अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहने से निन्दादि[1] से भिन्न धातु के उपधा नकार का लोप होता है। यथा - दन्श् + यात्=दश्यात् ; शन्स् + यात् = शस्यात्।

भू (होना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म० पु०	भूयाः	भूयास्तम्	भूस्यात
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

आशीर्लिङ्—आत्मनेपद

आशीर्लिङ् के आत्मनेपद में धातु के अन्त्य स्वर का और उपधा लघु स्वर का गुण होता है। यथा:—शी—शयिषीष्ट; द्युत्-द्योतिषीष्ट।

आशीर्लिङ् का आत्मनेपद परे रहने से अनिट् धातु के अन्तस्थित ऋकार का और उपधा लघुस्वर का गुण नहीं होता। यथा:—कृ—कृषीष्ट; भुज्—भुक्षीष्ट, वृ—वरिषीष्ट, वृषीष्ट।

अकार-आकार-भिन्न स्वर के परवर्ती लुङ्, लिट् और आशीर्लिङ् के ध के स्थान में ढ होता है। यथा कृ+सीध्वम्=कृषीढ्वम्। परन्तु इट्-युक्त ह, य, व, र, और लकार के परस्थित धा को विकल्प से ढ होता है। यथा सेव्—सेविषीढ्वम् ; सेविषीध्वम्।

---

१ निन्द्, चिन्त्, कम्प्' लङ्घ, वन्द्, काङ्क्ष्, वण्ट्, मन्त्र् आदि निन्दादि हैं।

मृ (मरना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	मृषीरन्
म० पु०	मृषीष्ठाः	मृषीयास्थाम्	मृषीढ्वम्
उ० पु०	मृषीय	मृषीवहि	मृषीमहि

शी (शयन करना, सोना) धातु

प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम् शयिषीध्वम्
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

सेव् (सेवा करना) धातु

प्र० पु०	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
म० पु०	सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीढ्वम् सेविषीध्वम्
उ० पु०	सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करोः—धार्मिकः चिरं जीव्यात् । तत् किमन्यदाशास्महे, केवलं वीरप्रसवा भूयाः । तव कुशलं भूयात् । विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम् ।

अनुवाद

संस्कृत में अनुवाद करो :—आप मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं कृतकार्य हो सकूँ । ईश्वर तुम्हारा मंगल करे । दरिद्रों का दुःख दूर हो । पिपासार्त जलपान करे । छात्र लोग सर्वदा गुरु के आज्ञानुवर्त्ती हों । उस दुःखिनी का इकलौता पुत्र घनश्याम दीर्घकाल तक जीता रहे । ईश्वर आपको दीर्घायु करे । हमारे प्रिय राष्ट्रपति दीर्घायु हों । ईश्वर मुख्य मन्त्री की रक्षा करे । तुम लोग सदा सुखी रहो । रामलाल को एक पुत्र पैदा हो । मैं आशा करता हूँ

कि तुम्हारी उन्नति हो। आप सुरक्षित रहें। हमारी मातृ-भूमि विद्वान् ब्राह्मणों को उत्पन्न करे।

लिट्

लिट् का व्यञ्जन वर्ण परे रहने से, सेट् या अनिट् समस्त धातुओं के उत्तर 'इट्' होता है।

कृ, श्रु, स्रु, स्तु, क्रु, भृ सृ, धातु के उत्तर 'इट्' नहीं होता।

'थ' परे रहने से दृश्, सृज् , स्वरान्त और अनिट् अकारवान् धातु के उत्तर विकल्पसे इट् होता है, केवल स्वरान्त व्ये और अकारवान् अद् धातु के उत्तर नित्य इट् होता है।

'थ' परे रहने से, ऋकारान्त धातु के उत्तर 'इट्' नहीं होता। ऋ, वृ, स्कृ, धातु के उत्तर नित्य और सृ धातु के उत्तर विकल्प से इट् होता है।

लिट् विभक्ति परे रहने से धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है। यथा—नम् + अ = नम् नम् + अ—

अभ्यस्त धातु के पूर्व भाग के आदि स्वर के पश्चात् जो वर्ण रहता है उसका लोप होता है। यथा—नम् नम् + अ = ननम् + अ—

लिट् के प्रथम पुरुष के एक वचन का अ परे रहने से धातु के उपधा अकार की विकल्प से वृद्धि होती है, और अन्त्यस्वर भी गुण एवं वृद्धि दोनों को ही प्राप्त होता है यथा—ननम् + अ = ननाम, ननम।

सगुण लिट् विभक्ति परे रहने से अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वर का गुण होता है परन्तु वृद्धि की संभावना रहने से नहीं होता। यथा—विद्+अ = विद् विद् + अ = विविद् + अ = विवेद।

धातु अभ्यस्त होने से, पूर्व भाग के क, ख, छ के स्थान में च; ग, घ, ज, झ के स्थान में ज; ट, ठ के स्थान में ट; ड ढ के स्थान में ड; त, थ के स्थान में त; द ध के स्थान में द; प फ के

स्थान में प ; ब, भ के स्थान में ब, दीर्घ के स्थान में ह्रस्व और ऋ, ॠ के स्थान में अ होता है। यथा कुप्+अ = कुप् कुप्+अ=कुकुप् +अ= चुकोप।

अभ्यस्त धातु के पूर्व भाग में सयुक्त वर्ण रहने से अन्त्य व्यञ्जन वर्ण का लोप होता है। यथा—क्रम्+अ=क्रम् क्रम्+अ=क्रक्रम्+अ= कक्रम्+अ=चक्राम।

अभ्यस्त धातु के पूर्वभाग में स्क, स्ख, श्च, श्छ, ष्ट, ष्ठ, स्त, स्थ, स्प, स्फ रहने से आदिवर्ण का लोप होता है। यथा—स्खल्+अ= स्खल् स्खल्+अ= खःखल्+अ= चस्खाल।

लिट् के प्रथम और उत्तम पुरुष का अ परे रहने से आकारान्त धातु का 'आ' परस्थित अकार में मिलकर 'औ' होता है। यथा— स्था+अ=तस्था+अ=तस्थौ।

अनिट् 'थ'—भिन्न लिट् परे रहने से आकारान्त धातु के आकार का लोप होता है यथा– तस्थिथ अनिट् 'थ') तस्थाथ।

असमान स्वर वर्ण परे रहने से अभ्यस्त धातु के पूर्वभागस्थित उ ऊ के स्थान में—उव् और इ ई के स्थान में इय् होता है। यथा— उष्—अ=उष् उष्+अ=उ उष्+अ=उ ओष्+अ=उव् ओष् +अ=उवोष्+अ= उवोष; इ+अ=इ इ+अ=इ ऐ+अ=इय् ऐ+अ= इयाय।

लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर भू-बभूव्, चि—चिकि और चिचि, जि-जिगि और हि-जिघि होता है। यथा –भू–बभूव, चि—चिकाय, चिचाय ; जि—जिगाय ; हि जिघाय।

प्रथम और उत्तम के एकवचन के 'अ' भिन्न सगुण-अगुण समस्त लिट् परे रहने से दीर्घ ॠ और संयुक्तवर्ण में मिलित ह्रस्व ऋ का गुण होता है यथा—कॄ+थ=चकॄ+थ= चकरिथ। स्मृ+थ= सस्मृ+थ=सस्मर्थ।

लिट् का अगुण स्वर परे रहने से ऋकारान्त धातु के 'ऋ' के स्थान में 'र्' होता है यथाः—कृ+अतुः = चकृ+अतुः = चक्रतुः।

अगुण लिट् परे रहने से इदित् (निन्द् प्रभृति) और पूजार्थ 'अञ्च्' भिन्न धातु का उपधा न विकल्प से लुप्त होता है। यथा—दन्श् + अतुः = ददशतुः, ददंशतुः। निन्द्—निनिन्दतुः।

स्वादिगणीय अश् धातु, ऋकारादि धातु और जिसके अन्त में संयुक्त वर्ण रहे ऐसे अकारादि धातु के पूर्व भाग के स्थान में 'आन्' होता है। यथाः—अश्—आनशे, ऋत्—आनर्त, आनृततुः; अर्च्—आनर्च, आनर्चतुः, आनर्चुः।

लिट् विभक्ति परे रहने से, अभ्यस्त व्यथादि धातु के पूर्व भाग के स्वरयुक्त 'य' के स्थान में इ होता है। यथाः—व्यथ् + ए = व्यथ् व्यथ् + ए = विव्यथे; व्यध् + अ = विव्याध; व्यच् + अ = विव्याच, द्युत् + ए = दिद्युते।

लिट् विभक्ति परे रहने से व्ये धातु का ए—आ नहीं होता और पूर्व भाग के स्वरयुक्त य के स्थान में इ होता है। यथा—व्ये + अ = विव्याय।

सगुण लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर यज्—इयज् और अगुण इट् परे ईज् होता है। यथा—यज् + अ = इयाज; यज् + अतुः = ईजतुः।

पूर्वनियमानुसार ग्रह् + अ := गृह् + अतुः = गृह् गृह् + अतुः = जगृहतुः। किन्तु प्रच्छ्—पप्रच्छतुः।

सगुण लिट् परे अभ्यस्त वपादि धातु के पूर्व भाग के स्वरयुक्त 'व' के स्थान में उ होता है। और अगुण लिट् परे पूर्व भाग तथा पर भाग उभयत्र व के स्थान में उ होता है। यथाः—सगुण - वप् + अ = वप् वप् + अ = ववप् + अ = उवाप; वस्—उवास; वह्—उवाह; वद्—उवाद; ब्रू और वच्—उवाच। अगुण - वप् + अतुः = ववप् + अतुः = ऊपतुः; वस्—ऊषतुः, वह्—ऊहतुः; वद्—ऊदतुः, ब्रू और वच्—ऊचतुः।

लिट् परे रहने से 'वे' धातु के स्थान में विकल्प से 'वय्' होता है और अगुण लिट् परे 'वे' धातु के स्थान में 'ऊव्' और 'ऊय्' होते हैं;

यथा:—वे + अ = वय् + अ = ववय् + अ = उवाय ; अगुण वे + अतु:=ऊवतु: ; ऊयतु: । विकल्प पक्ष में—वे + अ = ववौ; वे + अतु: = ववतु: ।

लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर दे—दिगि, प्याय्—पिपी, ह्वे—जुहु, श्वि-शुशु और शिश्वि होता है। यथा – दे + ए = दिग्ये; प्याय्+ए = पिप्ये ; ह्वे + अ =जुहाव; ह्वे + अतु = जुहुवतु: ; श्वि + अ = शुशाव, शिश्वाय ; श्वि + अतु: = शुशुवतु:, शिश्वियतु: ; श्वि + थ= शुशविथ, शिश्वयिथ ।

सगुण लिट् परे रहने से, अभ्यस्त होकर स्वप्—सुष्वप्; और अगुण लिट् परे 'सुषुप्' होता है। यथा:—स्वप्— + अ = सुष्वाप; स्वप्+ अतु:=सुषुपतु; । थ—सुष्वपिथ, सुषुप्थ ।

लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर हन्—जघन् ; अद्—जघस् और आद् होता है। यथा:—हन्+अ = जघान; अद् + अ जघास, आद ।

अगुण लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर—गम्—जग्म्, खन्—चख्न्, जन्—जज्ञ, घस्—जक्ष् और हन् —जघ्न् होता है। यथा;—गम् + अतु: = जग्मतु: ; खन्—चख्नतु:, अद्—जक्षतु:, आदतु:, हन्—जघ्नतु:, जन्+ए = जज्ञे ।

अनिट् 'थ' परे रहने से दृश् और सृज् धातु के ऋकार के स्थान में र होता है और कृषादि धातु के ऋ के स्थान में विकल्प से 'र' होता है। यथा:—दृश् + थ = ददर्शिथ ; दद्रष्ठ; कृष्— चकर्षिथ, चक्रष्ठ, चकर्ष्ठ; तृप्——ततर्पिथ, तत्रप्थ, ततर्प्थ, दृप्—ददर्पिथ, दद्रप्थ, ददर्प्थ; मृश्— ममर्शिथ, मम्रष्ठ, ममर्ष्ठ ; सृप्—ससर्पिथ ससर्प्थ ।

आदि और अन्त में संयुक्त व्यञ्जन वर्ण न रहने से बीच में अकार-युक्त अभ्यस्त धातु के उत्तर प्रथम और उत्तमपुरुष के एकवचन के 'अ' भिन्न लिट् परे पूर्व भाग का लोप होता है और पर भाग के अकार के स्थान में एकार होता है। यथा चल्+अ = चचाल; (अतु:) चेलतु: ; (थ) चेलिथ ।

जिन अभ्यस्त धातुओं का पूर्व भाग रूपान्तरित होता है, उन सब धातुओं का और अन्तःस्थ वकारादि धातु का पूर्व नियमानुसार कार्य नहीं होता। यथा—गद्—जगाद, जगदतुः जगदुः; व्रज्—वव्राज, वव्रजतुः, नद् – ननन्द, ननन्दतुः।

प्रथम और उत्तम पुरुष के 'अ' भिन्न लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर तॄ—तेर्, फल्—फेल्, भज्—भेज् और त्रप्—त्रेप् होता है। यथाः—तॄ+अ = ततार (अतुः) तेरतुः। फल् + अ = पफाल; (अतुः) फेलतुः। भज् + अ = बभाज; (अतुः) भेजतुः। त्रप् + ए = त्रेपे।

प्रथम और उत्तम पुरुष के 'अ' भिन्न लिट् परे रहने से अभ्यस्त होकर राज्—रेज् और रराज; भ्रम् भ्रेम और बभ्रम, वम्—वेम् और ववम् होते हैं। यथाः – राज् + अ = रराज; (अतुः) रेजतुः; रराजतुः भ्रम्+ + अ = बभ्राम; (अतुः) भ्रेमतुः बभ्रमतुः। वम्+अ = ववाम; (अतुः) वेमतुः ववमतुः।

लिट् परे अधिपूर्वक 'इ' धातु के स्थान में—'गा' और अज् धातु के स्थान में –वी होता है, पश्चात् अभ्यस्त होता है। यथाः—अधि + इ+ए = अधिजगे; अज्+अ = विवाय।

लिट् परे रहने से दय्, अय् आस् अनेक स्वर विशिष्ट धातु और आकार भिन्न गुरु स्वरादि धातु के उत्तर आम् होता है। आम् परे धातु के अन्त्य स्वर और उपधा लघुस्वर का गुण होता है, आम् अन्त धातु के उत्तर कृ, भू, अस् धातु को लिट् विभक्ति का रूप होता है। यथाः—दय्—दयाम्बभूव, दयामास, दयाञ्चकार। अनेक स्वर—कारि—कारयाम्बभूव, कारयामास, कारयाञ्चकार; गुरुस्वरादि – ईह्—ईहाम्बभूव, ईहामास, ईहाञ्चके।

लिट् परे रहने से हु, भी, ह्री, भृ, जागृ, दरिद्रा, काश्, कास् और उष् धातु के उत्तर विकल्प से आम् होता है; आम् परे धातु का गुण होता है। यथा।—हु-जुहवाम्बभूव; जुहवामास, जुहवाञ्चकार;पक्षे-जुहाव। भीभी—बिभयाम्बव, पक्षे—बिभाय। ह्री—जिह्रयाम्बभूव, पक्षे—जिह्राय।

भृ— बिभराम्बभूव;—बभार। जागृ—जागराम्बभूव; पक्षे—जजागार। दरिद्रा—दरिद्राम्बभूवः पक्षे—ददरिद्रौ—ददरिद्र इति केचित्। काश् काशाम्बभूव; पक्षे—चकाशे। कास्—कासाम्बभूव; पक्षे—चकासे। उष् ओषाम्बभूव; पक्षे—उवोष।

लिट् परे रहने से आदि विद् धातु के उत्तर विकल्प से ङाम् होता है—आम् अवशिष्ट रहता है। यथा:—विद् + अ = विदाम्बभूव, विदाञ्चकार, विदामास। विकल्प पक्ष के रूप पश्चात् दिखलाये जायेंगे।

लिट्—रूप

(परस्मैपदी)

पा (पीना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पपौ	पपतुः	पपुः
म० पु०	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
उ० पु०	पपौ	पपिव	पपिम

स्था (रहना) धातु

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
म० पु०	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

इ (जाना, आना) धातु

प्र० पु०	इयाय	ईयतुः	ईयुः
म० पु०	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
उ० पु०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

जि (जीतना) धातु

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
म० पु०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

हि (छोड़ना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जिघाय	जिघ्यतुः	जिघ्युः
म० पु०	जिघयिथ, जिघेय	जिघ्यथुः	जिघ्य
उ० पु०	जिघाय	जिघ्यिव	जिघ्यिम

श्रु (सुनना) धातु

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

हु (हवन करना) धातु

प्र० पु०	जुहवाम्बभूव	जुहवाम्बभूवतुः	जुहवाम्बभूवुः
प्र० पु०	जुहवाञ्चकार	जुहवाञ्चक्रतुः	जुहवाञ्चक्रुः
प्र० पु०	जुहवामास	जुहवामासतुः	जुहवामासुः
प्र० पु०	जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः

भू (होना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म० पु०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

सृ (जाना, सरकना) धातु

प्र० पु०	ससार	सस्रतुः	सस्रुः
म० पु०	ससर्थ	सस्रथुः	सस्र
उ० पु०	ससार, ससर	ससृव	ससृम

स्मृ (स्मरण करना) धातु

प्र० पु०	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः
म० पु०	सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर
उ० पु०	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

कॄ (हिंसा करना, फेंकना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चकार	चकरतुः	चकरुः
म० पु०	चकरिथ	चकरथुः	चकर
उ० पु०	चकार	चकरिव	चकरिम

प्रच्छ् (पूछना) धातु

प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
म० पु०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

दृश् (देखना) धातु

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
म० पु०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

सृज् (सृष्टि करना) धातु

प्र० पु०	ससर्ज	ससृजतुः	ससृजुः
म० पु०	ससर्जिथ, सस्रष्ठ	ससृजथुः	ससृज
उ० पु०	ससर्ज	ससृजिव	ससृजिम

त्यज् (त्यागना) धातु

प्र० पु०	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
म० पु०	तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज
उ० पु०	तत्याज	तत्यजिव	तत्यजिम

गम् (जाना) धातु

प्र० पु०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
म० पु०	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म
उ० पु०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

हन् (हत्या करना, मारना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म० पु०	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उ० पु०	जघान जघन	जघ्निव	जघ्निम

वस् (हरना, निवास करना) धातु

प्र० पु०	उवास	ऊषतुः	ऊषुः
म० पु०	उवसिथ, उवस्थ	ऊषथुः	ऊष
उ० पु०	उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम

हस् (हँसना) धातु

प्र० पु०	जहास	जहसतुः	जहसुः
म० पु०	जहसिथ	जहसथुः	जहस
उ० पु०	जहास,जहस	जहसिव	जहसिम

प (गिरना) धातु

प्र० पु०	पपात	पेततुः	पेतुः
म० पु०	पेतिथ	पेतथुः	पेत
उ० पु०	पपात, पपत	पेतिव	पेतिम

इष् (चाहना) धातु

प्र० पु०	इयेष	ईषतुः	ईषुः
म० पु०	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
उ० पु०	इयेष	ईषिव	ईषिम

प्र+ आप् (पाना) धातु

प्र० पु०	प्राप	प्रापतुः	प्रापुः
म० पु०	प्रापिथ	प्रापथुः	प्राप
उ० पु०	प्राप	प्रापिव	प्रापिम

रुद् (रोना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
म० पु०	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
उ० पु०	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

विद् (जानना) धातु

प्र० पु०	विवेद	विविदतुः	विविदुः
म० पु०	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
उ० पु०	विवेद	विविदिव	विविदिम

मृज् (माँजना, साफ़ करना) धातु

प्र० पु०	ममार्ज	ममार्जतुः	ममार्जुः
		ममृजतुः	ममृजुः
म० पु०	ममार्जिथ	ममार्जथुः	ममार्ज
	ममार्ष्ठ	ममृजथुः	ममृज
उ० पु०	ममार्ज	ममार्जिव	ममार्जिम
		ममृजिव	ममृजिम

(आत्मनेपद)

अधि+इ (अधिगत होना) धातु

प्र० पु०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिढ्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

जन् (उत्पन्न होना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

त्रप् (लज्जा करना) धातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	त्रेपे	त्रेपाते	त्रेपिरे
म० पु०	त्रेपिषे	त्रेपाथे	त्रेपिढ्वे
उ० पु०	त्रेपे	त्रेपिवहे	त्रेपिमहे

लभ् (लाभ करना) धातु

प्र० पु०	लेभे	लेभाते	लेभिरे
म० पु०	लेभिषे	लेभाथे	लेभिढ्वे
उ० पु०	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

उभयपदी

दा (देना) धातु

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिढ्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

लोट्

ज्ञा (जानना) धातु

(परस्मैपद)

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

ज्ञा धातु

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिढ्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

नी (ले जाना) धातु

(परस्मैपद)

प्र० पु०	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
म० पु०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य
उ० पु०	निनाय	निन्यिव	निन्यिम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिढ्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

(परस्मैपद)

कृ (करना) धातु

प्र० पु०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
म० पु०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार, चकर	चकृव	चकृम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरै
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

हृ (हरण करना, चुराना)

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहार	जह्रतुः	जह्रुः
म० पु०	जहर्थ	जह्रथुः	जह्र
उ० पु०	जहार, जहर	जह्रिव	जह्रिम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
म० पु०	जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिढ्वे (ध्वे)
उ० पु०	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

खन् (खोदना) धातु

(परस्मैपद)

प्र० पु०	चखान	चख्नतुः	चख्नुः
म० पु०	चखनिथ	चख्नथुः	चख्न
उ० पु०	चखान	चख्निव	चख्निम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	चख्ने	चख्नाते	चख्निरे
म० पु०	चख्निषे	चख्नाथे	चख्निध्वे
उ० पु०	चख्ने	चख्निवहे	चख्निमहे

ग्रह (ग्रहण करना) धातु

(परस्मैपद)

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
म० पु०	जगृहिथ	जगृहथुः	जगृह
उ० पु०	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म० पु०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिढ्वे (ध्वे)
उ० पु०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

ब्रू (बोलना) धातु

(परस्मैपद)

प्र० पु०	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः
म० पु०	उवचिथ, उवक्थ	ऊचथुः	ऊच
उ० पु०	उवाच	ऊचिव	ऊचिम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
म० पु०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिढ्वे
उ० पु०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

भक्षयामस्

प्र० पु०	भक्षयामास	भक्षयामासतुः	भक्षयामासुः
म० पु०	भक्षयामासिथ	भक्षयामासथुः	भक्षयामास
उ० पु०	भक्षयामास	भक्षयामासिव	भक्षयामासिम

भक्षयाम्भू

प्र० पु०	भक्षयाम्बभूव	भक्षयाम्बभूवतुः	भक्षयाम्बभूवुः
म० पु०	भक्षयाम्बभूविथ	भक्षयाम्बभूवथुः	भक्षयाम्बभूव
उ० पु०	भक्षयाम्बभूव	भक्षयाम्बभूविव	भक्षयाम्बभूविम

भक्षयाङ्कृ

प्र० पु०	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चक्रतुः	भक्षयाञ्चक्रुः
म० पु०	भक्षयाञ्चकर्थ	भक्षयाञ्चक्रथुः	भक्षयाञ्चक्र
उ० पु०	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चकृव	भक्षयाञ्चकृम

आकारान्त—हलन्त आदि क्रम से कुछ प्रचलित धातुओं के अ, अतुस्, थ और आत्मनेपद में ए, से विभक्तियों के रूप नीचे लिखे जाते हैं। इन विभक्तियों के रूप जानने से अवशिष्ट रूप अनायास समझे जा सकते हैं।

ख्या (कहना)—चख्यौ, चख्यतुः; चख्यिथ, चख्याथ।
घ्रा (सूँघना)—जघ्रौ, जघ्रतुः ; जघ्रिथ, जघ्राथ।
ध्मा (फूँकना)—दध्मौ, दध्मतुः; दध्मिथ, दध्माथ।
भा (चमकना)—बभौ, बभतुः ; बभिथ, बभाथ।
स्ना (नहाना)—सस्नौ, सस्नतुः; सस्नाथ।
हा (त्यागना)—जहौ, जहतुः; जहिथ, जहाथ।
मा (नापना)—या जाना), वा (फूँकना)—हा धातुवत्।
धा (धारण करना)— दा-धातुवत्।
चि (चुनना)— चिकाय, चिचाय, चिक्यतुः, चिच्यतुः;
चिकयिथ, चिकेथ; चिचयिथ चिचेथ। चिक्ये चिच्ये।
स्मि (मुस्कराना)—सिष्मिये; सिष्मियिथे।
क्री (खरीदना)—चिक्राय, चिक्रियतुः; चिक्रयिथ चिक्रेथ। चिक्रिये, चिक्रियिषे।
भी (डरना)— बिभयाम्बभूव, बिभयामास, बिभयाञ्चकार ; बिभयाम्बभूवतुः इत्यादि; बिभयाम्बभूविथ इत्यादि। पक्षे–बिभाय, बिभयिथ; बिभ्यतुः, बिभेथ।
शी (लेटना)—शिश्ये; शिश्यिषे।
दु (जलाना) दुदाव, दुदुवतुः; दुदविथ।
नु (प्रशंसा करना)—नुनाव, नुनुवतुः; नुनविथ।
रु (चिल्लाना)—रुराव, रुरुवतुः; रुरविथ।
हु (हवन करना)—जुहवाम्बभूव इत्यादि; जुहवाम्बभूविथ इत्यादि। पक्षे— जुहाव; जुहविथ, जुहोथ।
सू (जनना, उत्पन्न करना)–सुषुवे, सुषुविषे। तुदादि–सुषाव, सुषुवतुः; सुषविथ।

जागृ (जागना)—जजागार, जजागरतु; जजागरिथ। पक्षे—जागरामास इत्यादि।

दृ (फाड़ना) दद्रे, दद्रिषे।

धृ (जीना, धारण करना)—दधार, दध्रतुः; दधर्थ। दध्रे, दध्रिषे।

भृ (भरना, ढोना, पालना)—(भ्वादि) बभार, बभ्रतुः; बभर्थ। बभ्रे; बभृषे। (ह्वादि)....बिभराम्बभूव; पक्षे—बभार। (ए विभक्ति में)—बिभराम्बभूव, बिभराञ्चक्रे; (पक्षे) —बभ्रे।

मृ (मरना, मारना)—ममार, मम्रतुः; ममर्थ; मम्रिव (परस्मै०)

वृ (चुनना)—ववार, वव्रतुः, ववरिथ; ववृथ। वव्रे; ववृषे।

स्तृ (छाना, बिछाना)—तस्तार, तस्तरतुः; तस्तर्थ; तस्तरिथ। तस्तरे, तस्तृषे।

तॄ (पार होना)—ततार, तेरुः। तेरिथ।

दॄ (फाड़ना, चीरना)—ददार, ददरतुः दद्रतुः; ददरिथ।

ह्वे (पुकारना, याचना)—जुहाव, जुहुवतुः; जुहविथ, जुहोथ।

गै (गाना)—जगौ, जगतुः; जगिथ, जगाथ।

त्रै (बचाना)—तत्रे; तत्रिषे।

ध्यै (ध्यान करना)—दध्यौ, दध्यतुः; दध्यिथ, दध्याथ।

तर्क (बहस करना)—तर्कयामास इत्यादि। तर्कयामासतुः इत्यादि। तर्कयामासिथ।

लोक् (देखना) लुलोके; लुलुकिषे।

शक् (सकना)—शशाक, शेकतुः; शेकिथ, शशक्थ।

शङ्क् (सन्देह करना)—शशङ्क, शशङ्किषे।

लिख् (लिखना —लिलेख, लिलिखतुः; लिलेखिथ।

लङ्घ् (लाँघना)—ललङ्घतुः; ललङ्घिथ। (उपवासार्थ) ललङ्घे,ललङ्घिषे।

श्लाघ् (सराहना)—शश्लाघे, शश्लाघिषे।

पच् (पचाना, पकाना) पपाच, पेचतुः; पेचिथ, पपक्थ। पेचे; पेचिषे।

मुच् (मुक्त करना)—मुमोच, मुमुचतुः, मुमोचिथ। मुमुचे; मुमुचिषे।
याच् (माँगना)—ययाच, ययाचतुः; ययाचिथ। ययाचे; ययाचिषे।
शुच् (शोक करना)— शुशोच, शुशुचतुः; शुशोचिथ।
सिच् (छिड़कना)—सिषेच, सिषिचतुः; सिषेचिथ, सिषेच, सिचिषे; सिषिचिषे।
भञ्ज् (तोड़ना)—बभञ्ज, बभजतुः बभञ्जतुः; बभञ्जिथ, बभङ्क्थ।
भुज् (खाना)—बुभोज, बुभुजतुः, बुभोजिथ। बुभुजे, बुभुजिषे।
मज्ज् (डूबना)—ममज्ज, ममज्जतुः; ममज्जिथ, ममङ्क्थ।
यज् (यज्ञ करना)—इयाज, ईजतुः; इयजिथ, इयष्ठ। ईजे, ईजिषे।
युज् (जुटना)—युयोज, युयुजतुः; युयोजिथ। युयुजे; युयुजिषे।
रञ्ज् (रंगना)—ररञ्ज, ररजतुः ररञ्जतुः; ररञ्जिथ, ररङ्क्थ। ररजे, ररञ्जे।
सञ्ज् (चिपकाना, सजाना)—ससञ्ज, ससजतुः, ससञ्जतुः; ससञ्जिथ, ससङ्क्थ।
घट् (होना)—जघटे, जघटिषे।
वेष्ट् (घेरना)—वेवेष्टे, वेवेष्टिषे।
पठ् (पढ़ना)—पपाठ, पेठतुः; पेठिथ।
क्रीड् (खेलना)—चिक्रीड, चिक्रीडतुः, चिक्रीडिथ।
कृत् (काटना)—चकर्त, चकृततुः; चकर्तिथ।
श्चुत् (चुआना गिरना)—चुश्चोत, चुश्चोतिथ।
नृत् (नाचना)—ननर्त, ननृततुः; ननर्तिथ।
यत् (प्रयत्न करना)—येते, येतिषे।
वृत् (चुनना, होना)—ववृते, ववृतिषे।
व्यथ् (दुःखी होना)—विव्यथे; विव्यथिषे।
इन्द् (चूना, शक्तिशाली होना)—इन्दाम्बभूव, इन्दाञ्चकार, इन्दामास।
क्रन्द् (रोना)—चक्रन्द, चक्रन्दतुः, चक्रन्दिथ।

खाद् (खाना)—चखाद, चखादतुः; चखादिथ ।
गद् (बोलना)—जगाद, जगदतुः; जगदिथ ।
छिद् (काटना)—चिच्छेद, चिच्छिदतुः; चिच्छेदिथ ।
पद् (जाना, चलना)—पेदे, पेदिषे ।
वद् (बोलना)—उवाद, ऊदतुः; उवदिथ ।
विद् (जानना, दिवादि)—विविदे; विविदिषे ।
सद् (बैठना, जाना, नष्ट होना)—ससाद, सेदतुः, सेदिथ, ससत्थ ।
स्पन्द् (धड़कना)—पस्पन्दे; पस्पन्दिषे ।
क्रुध् (कुपित होना)—चुक्रोध, चुक्रुधतुः; चुक्रोधिथ ।
बन्ध् (बाँधना) —बबन्ध, बबधतुः बबन्धतुः, बबन्धिथ बबन्ध ।
बाध् (सताना)—बबाधे; बबाधिषे ।
बुध् (जानना)—बुबोध, बुबुधतुः; बुबोधिथ ।
(दिवादि)—बुबुधे, बुबुधिषे ।
रुध् (रोकना)—बुध् धातुवत् ।
युध् (लड़ना)—युयुधे, युयुधिषे ।
वृध् (बढ़ना)—ववृधे, ववृधिषे ।
व्यध् (बेधना)—विव्याध, विविधतुः; विव्यधिथ, विव्यद्ध ।
सिध् (सिद्ध करना)—सिषेध, सिषिधतुः, सिषेधिथ, सिषेद्ध ।
(गति और निष्पत्त्यर्थ में इट् नित्य है ।)
जन् (उत्पन्न होना)—जज्ञे, जज्ञिषे ।
मन् (सोचना)—मेने, मेनिषे ।
क्षिप् (फेंकना)—चिक्षेप, चिक्षिपतुः, चिक्षेपिथ । चिक्षिपे; चिक्षिपिषे ।
गुप् (छिपाना)—गोपायाञ्चकार इत्यादि, गोपायाम्बभूवतुः इत्यादि; गोपायाम्बभूविथ । (पक्षे)-जुगोप, जुगुपतुः; जुगोपिथ, जुगोप्थ ।
तप् (तपना, गर्म करना)—तताप, तेपतुः; तेपिथ, ततप्थ ।
तृप् (सन्तुष्ट होना)—ततर्प, ततृपतुः, ततर्पिथ, तत्रप्थ, ततर्प्थ ।

दृप् (जलाना)—तृप् धातुवत् ।
दीप् (चमकना)—दिदीपे, दिदीपिषे ।
लुप् (गायब करना)—लुलोप, लुलुपतुः; लुलोपिथ । लुलुपे ।
वप् (बोना) - उवाप, ऊपतुः, उवपिथ, उवप्थ ।
वेप् (काँपना)—विवेपे; विवेपिषे ।
शप् (शाप देना)–शशाप, शेपतुः; शेपिथ, शशप्थ। शेपे; शेपिषे ।
स्वप् (सोना)—सुष्वाप, सुषुपतुः; सुष्वप्थ ।
लम्ब् (लटकना)—ललम्बे, ललम्बिषे ।
क्षुभ् (विकल होना)—चुक्षोभ, चुक्षुभतुः; चुक्षोभिथ । चुक्षुभे; चुक्षुभिषे ।
रभ् (आरम्भ करना)—रेभे; रेभिषे ।
लभ् (प्राप्त करना)—रभ् धातुवत् ।
शुभ् (चमकना)– शुशुभे, शुशुभिषे ।
स्तम्भ् (रोकना)—स्तम्भ, तस्तम्भतुः; तस्तम्भिथ ।
कम् (इच्छा करना)– कामयाम्बभूव, कामयामास, कामयाञ्चक्रे, कामयाम्बभूविथ, कामयामासिथ, कामयाञ्चकृषे । (पक्षे)—चकमे, चकमिषे ।
क्रम् (चलना, जाना)—चक्राम, चक्रमतुः; चक्रमिथ ।
नम् (प्रणाम करना)—ननाम, नेमतुः, नेमिथ, ननन्थ ।
भ्रम् (घूमना —बभ्राम, भ्रेमतुः, बभ्रमतुः; भ्रेमिथ, बभ्रमिथ ।
वम् (कै करना)—भ्रम् धातुवत् ।
यम् (दमन करना —ययाम, येमतुः, येमिथ, ययन्थ ।
रम् (रत होना)—रेमे, रेमिषे ।
शम् (शान्त होना)–शशाम, शेमतुः, शेमिथ ।
श्रम् (प्रयत्न करना)–शश्राम, शश्रमतुः, शश्रमिथ ।
अय् (जाना)—अयाम्बभूव, अयाञ्चक्रे, अयामास ।
दय् (पालन करना)—दयाम्बभूव, दयाञ्चक्रे, दयामास ।

चर् (चरना, चलना)—चचार, चेरतुः चेरिथ।
त्वर् (शीघ्रता करना)—तत्वरे, तत्वरिषे।
पूर् (भरना)—पुपूरे, पुपूरिषे।
स्फुर् (काँपना)—पुस्फोर, पुस्फुरतुः, पुस्फोरिथ।
चल् (चलना)—चचाल, चेलतुः, चेलिथ।
ज्वल् (जलना)—जज्वाल, जज्वलतुः, जज्वलिथ।
स्खल् (फिसलना)—चस्खाल, चस्खलतुः, चस्खलिथ।
जीव् (जीवित रहना)—जिजीव, जिजीवतुः, जिजीविथ।
दिव् (चमकना)—दिदेव, दिदिवतुः, दिदेविथ।
धाव् (भागना)—दधाव, दधावतुः, दधाविथ।
सेव् (सेवा करना)—सिषेवे, सिषेविषे।
अश् (घुसना, पहुँचना)—आनशे, आनशिषे, आनक्षे, आनशिढ्वे-आनढ्वे।
काश् (चमकना)—काशाम्बभूव, काशामास, काशाञ्चक्रे, काशाम्बभूविथ, काशामासिथ, काशाञ्चकृषे। (पक्षे) चकाशे, चकाशिषे।
क्लिश् (सताना)—चिक्लेश, चिक्लिशतुः, चिक्लेशिथ चिक्लेष्ठ।
दन्श् (डसना)—ददंश, ददशतुः ददंशतुः, ददशिथ ददंशिथ ददंष्ठ।
दिश् (आज्ञा देना)—दिदेश, दिदिशतुः, दिदेशिथ। दिदिशे, दिदिशिषे।
दृश् (देखना)—ददर्श, ददृशतुः; ददर्शिथ, दद्रष्ठ।
नश् (नष्ट करना)—ननाश-नेशतुः, नेशिथ, ननंष्ठ, नेशिव, नेश्व।
भ्रन्श् (गिरना, च्युत होना)—बभ्रंश, बभ्रशतुः बभ्रंशतुः, बभ्रंशिथ।
विश् (जाना घुसना)—विवेश, विविशतुः, विवेशिथ।
स्पृश् (छूना)—पस्पर्श, पस्पृशतुः, पस्पर्शिथ।
ईक्ष् (देखना)—ईक्षाम्बभूव, ईक्षामास, ईक्षाञ्चक्रे, ईक्षाम्बभूविथ, ईक्षामासिथ, ईक्षाञ्चकृषे।
काङ्क्ष् (चाहना)—चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षतुः, चकाङ्क्षिथ।
चक्ष् (देखना)—चख्यौ, चख्ये, चचक्षे।

कृष् (जोतना)—चकर्ष, चकृषतुः, चकर्षिथ ।
घृष् (रगड़ना)—जघर्ष, जघृषतुः, जघर्षिथ ।
तुष् (सन्तुष्ट होना)—तुतोष, तुतुषतुः, तुतोषिथ ।
दुष् (दूषित होना)—तुष् धातुवत् ।
द्विष् (द्वेष करना, घृणा करना)—दिद्वेष, दिद्विषतुः, दिद्वेषिथ । दिद्विषे ।
पिष् (पीसना)—पिपेष, पिपिषतुः, पिपेषिथ ।
पुष् (पालना, पोसना)— पिष् धातुवत् ।
भाष् (बोलना)—बभाषे, बभाषिषे ।
मृष् (सहना, क्षमा करना)—ममर्ष, ममृषतुः, ममर्षिथ ।
(दिवादी उभयपदी)—ममृषे, ममृषिषे ।
रक्ष् (बचाना)—ररक्ष, ररक्षतुः, ररक्षिथ ।
शुष् (सूख जाना, सोख लेना)—शुशोष, शुशुषतुः, शुशोषिथ ।
श्लिष् (आलिंगन करना)—शिश्लेष, शिश्लिषतुः, शिश्लेषिथ ।
हृष् (हर्षित होना)—जहर्ष, जहृषतुः, जहर्षिथ ।
अस् (होना, जीवित रहना) बभूव इत्यादि ।
(दिवादि)—आस, आसतुः, आसिथ ।
आस् (बैठना, बसना, रहना)—आसाम्बभूव, आसामास, आसाञ्चक्रे आसाम्बभूविथ, आसामासिथ, आसाञ्चकृषे ।
वस् (बसना, रहना)– (अदादि) ववसे, ववसिषे ।
शन्स् (प्रशंसा करना)—शशंस, शशंसतुः, शशंसिथ ।
शास् (शासन करना, शिक्षा देना)– शशास, शशासतुः, शशासिथ ।
हस् (हँसना)—जहास, जहसतुः, जहसिथ ।
ईह् (इच्छा करना)— ईहाम्बभूव, ईहाञ्चक्रे, ईहामास ।
गाह् (डुबकी लगाना)—जगाहे, जगाहिषे, जघाक्षे ।
दह् (जलाना)— ददाह, देहतुः, देहिथ, ददग्ध ।
दुह् (दुहना)—दुदोह, दुदुहतुः, दुदोहिथ । दुदुहे, दुदुहिषे ।
मुह् (मूर्छित होना)—मुमोह, मुमुहतुः । मुमोहिथ ।

रुह् (उगना)—रुरोह, रुरुहतुः, रुरोहिथ। रुरुहे, रुरुहिषे।

लिह् (चाटना)—लिलेह, लिलिहतुः। लिलिहे, लिलिहषे।

वह् (ढोना, विवाह करना, सहना)-उवाह, ऊहतुः, उवहिथ, उवोढ, ऊहे, ऊहिषे।

सह् (सहना) सेहे, सेहिषे।

अनुवाद

अर्जुनस्य विक्रमेण सकलो लोकस्तुतोष—अर्जुन के पराक्रम से सभी लोग प्रसन्न हुए। सर्वे बन्धुजनाश्च हर्षिता बभूवुः— और सारे मित्र भी हर्षित हुए। दुदोह गां स यज्ञाय—उसने यज्ञ के लिये पृथ्वी का दोहन किया। तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च—राजा और रानी ने उन दोनों का चरण-स्पर्श किया। जुगोपात्मानम् अत्रस्तः—उसने निडर होकर अपने को छिपाया। पप्रच्छ कुशलं मुनिः—मुनि ने कुशल पूछा। प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष—सिंह ने उसे बलपूर्वक खींचा। अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न—जितना मार्ग तै किया उसका परिमाण नहीं समझ सका। कदाचित् अङ्के सीतायाः शिश्ये—किसी समय सीता की गोद में सोया था। आत्मानं मुमुचे तस्मात्—उससे अपने को मुक्त किया। सम्मानाद् विविजे सदैव सः—वह सदा सम्मान से उद्विग्न हो उठता था।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो:—स तदग्रत एव पुरीषमुत्ससर्ज। तत्र वृक्षे पाशं बबन्ध। स मनसि इदं चिन्तयामास। राजभयान्न किञ्चिदपि ऊचुः। अथैनं स राजा पप्रच्छ। स शरदं समन्तात् ददर्श। तत्र स कूपमध्ये पपात ममार च। जघ्नुरमुं कटाक्षैः। जगाद मधुरं वचः। तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्। सेना महीं छादयामास प्रावृषि द्यामिवाम्बुदः। न मे मायां जिगायेन्द्रोऽपि। लक्ष्ये समाधिं न दधे। पुरा किल दुष्यन्तो नाम राजा बभूव। तां पार्वतीति नाम्ना जुहाव। पुरः कृष्णस्य जुहवाञ्चकार।

संस्कृत में अनुवाद करो:—भीम ने दुःशासन का रक्त पान किया था। राम और लक्ष्मण पिता की आज्ञा से बन में गये थे। लक्ष्मण ने मेघनाद

को मारा था। बाहर किष्किन्धा में रहते थे। शिवि ने दूसरे के लिये प्राण-दान किया था। देवताओं ने असुरों के भय से विष्णु की स्तुति की थी। भीम ने दुर्योधन की जाँघ तोड़ी थी। इसने कभी उसे नहीं खाया। उसने ज्वराक्रान्त होकर भर्त्सना की थी। प्राचीन काल में विद्यार्थी गण श्रद्धापूर्वक गुरु का आदेश पालन करते थे। व्यासदेव जी महाभारत का वृत्तान्त जानते थे। राम ने युद्ध मे रावण को मारा था। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसने अपना कर्तव्य-पालन किया था। उसने राम का अनुसरण किया था। उसने मुझसे कुछ प्रश्न पूछे थे। वह हैजा (बिसूचिका) से ही मर गया था। उसने तीन बहुमूल्य रत्न प्राप्त किये थे। राम शहर भर में घूमा था। लड़की ने चक्कू से अपनी उँगली काट ली थी सिपाही बड़ी वीरता से लड़े थे। राजकुमार ने अपने पिता का सम्मान किया था। उसने अपने नौकर से यह समाचार सुना था। एकाएक (सहसा) जङ्गल में आग लग गयी थी। उसका प्रसन्न मुख सभी को आकृष्ट करता था।

लिट् के रूप लिखो

मन् और नी—प्रथम पुरुष के एक वचन में।
गम् और श्रु—मध्यम पु० के एकवचन में।
वि जि और ब्रू—उत्तम पु०।
वि नि और प्र-स्वप्—प्रथम पु० केएकवचन में।
शक् और गै—मध्यम पु० में।
युध् और श्चुत्—उत्तम पु० में।
आस् और विद्—मध्यम पु० में
हा—प्रथम पु० के द्विवचन में।

लुङ्

लुङ् विभक्ति परे रहने से धातु के उत्तर 'सि' होता है। इकार इत् स् रहता है। यथा—भू+द् = अभू+स्+द्—

परस्मैपद की विभक्ति परे रहने से, भू, स्था, दा, धा (पानार्थ), पा और इ धातु के उत्तर विहित 'सि' का लोप होता है। यथा:—अभूद्= अभूत् ; (ताम्)—अभूताम् ।

लुङ् विभक्ति का स्वर-वर्ण परे रहनेसे, भू को भूव् होता है। यथा:— भू + अन् = अभूवन् ।

सि के परस्थित अन् को उस् होता है। उस् परे आकारान्त धातु का आकार लुप्त होता है। यथा :—स्था + अन् = अस्था + स् + अन् = अस्था + उस् = अस्थु: ।

आत्मनेपद में स्था, दा और धा धातु का आ— इ होता है। यथा दा + त = अदा + स् + त = अदित ; (ताम्)—अदि—षाताम् ।

लुङ् परे रहने से 'इ'—'गा' होता है। यथा —इ + द्=अगा + स्— द्=अगात् ; ताम्—अगाताम् ; अन् —अगु: ।

परस्मैपद की विभक्ति परे रहने से घ्रा, धे, शो, छो और सो धातु के उत्तर— विहित 'सि' का विकल्प से लोप होता है। यथा:—घ्रा + द् = अघ्रा+स्+द् = अघ्रात् ; (पक्षे)—अघ्रा+स्+द्—

लुङ् के द् और स् परे रहने से धातु के उत्तर-विहित 'सि' पश्चात् 'ई' (ईट्) होता है। यथा :—अघ्रा+स्+ई+द्=अघ्रासीत् ।

द्-स् भिन्न विभक्ति में परस्मैपदी आकारान्त धातु के उत्तरविहित सि के पूर्व में स् और इट् होते हैं। यथा :— ज्ञा + ताम् = अज्ञा + स् + ताम् = अज्ञा + स् + इ + स् + ताम् =अज्ञासिष्टाम् ।

त, थ, ध परे रहने से, ह्रस्व स्वर तथा वर्ग के पञ्चम वर्ण और य, र, ल, व भिन्न व्यञ्जन-वर्ण के परस्थित 'सि' का लोप होता है।

यथा:— कृ + त = अकृ+स्+त = अकृत, आताम्—अकृषाताम्; अन्त—अकृषत।

सि परे रहने से परस्मैपद में स्वरान्त धातु के अन्त्यस्वर और अनिट्—व्यञ्जनान्त धातु के उपधा लघुस्वर की वृद्धि होती है। किन्तु णिजन्त धातु, श्वि और जागृ धातु का गुण होता है। यथा—नु+द्= अनु+स्+द्=अनु + इ + स् + ई + द्=अनौ+इ+ई+द्= अनावीत्; पक्षे—अनौषीत्। श्वि+द्=अश्वि +स् +द् = अश्वि+इ+ स् + ई + द् = अश्वे + इ + ई + द्=अश्वयीत्।

लुङ् विभक्ति परे रहने से, परस्मैपद में उपधा लघुस्वर का और आत्मनेपद में अन्त्यस्वर तथा उपधा लघुस्वर का गुण होता है। यथा:— सिध् + द् = असिध्+स् + ई+द् = असिध्+इ+स्+ई+द् = असेधीत्; पक्षे—असिध्+स्+ई+द् = असैत्सीत्। आत्मनेपद में—शी + त=अशी + इ + स् + त=अशयिष्ट, द्युत् + त=अद्योतिष्ट।

सि परे रहने से आत्मनेपद में अनिट् ऋकारान्त धातु का गुण नहीं होता। यथा:—कृ+आताम्=अकृ+स्+आताम् = अकृषाताम्।

सि परे रहने से परस्मैपद में व्रज्, वद, अर्-अन्त और अल् अन्त धातु के उपधा अकार की वृद्धि होती है। यथा:—व्रज्+द्=अव्रज्+स्+द् =अव्रज्+इ + स् + ई+द्=अव्राजीत्; ताम्—अव्राजिष्टाम्। वद् + द्=अवादीत्; ताम्—अवादिष्टाम्। चर्+द् = अचारीत्; ताम्—अचारिष्टाम्। चल्+द् = अचालीत्; ताम्—अचालिष्टाम्।

'सि' परे रहने से परस्मैपद में व्यंजनादि अर्थात् जिसके आदि में व्यंजन वर्ण रहे ऐसे सेट् धातु का उपधा अकार विकल्प से वृद्धि[1] प्राप्त करता है। किन्तु हान्त, मान्त, यान्त, क्षण्, श्वस्, वध् और एकार-इत् (एदित्) धातु का नहीं होता। यथा:—गद्+द् = अगादीत्, अगदीत्। हान्त—चह्+ द् = अचहीत्; मान्त—क्रम + द् = अक्रमीत्; यान्त—हय्+द् = अहयीत्, क्षण् + द्=अक्षणीत्; श्वस्+ त्=अश्वसीत्;

१ एकार-इत् धातु—कट्, चट, चत्, रग्, लग्, हस् इत्यादि।

वध् + द् = अवधीत्; हन् + द् = अवधीत् (लुङ् परे हन् = वध् होता है); एकार इत्—हस् + द् = अहसीत् ।

लुङ् विभक्ति परे रहने से परस्मैपद में यम्, रम् धातु के उत्तर विहित सि के पूर्व में 'स्' और इट् होते हैं। यथा—यम् + द् = अयम् + स् + इ + स् + ई + द् = अयंसीत्; ताम्—अयंसिष्टाम् । नम् + द् = अनंसीत्; ताम्—अनंसिष्टाम् । विरम् + द् = व्यरंसीत्; ताम्—व्यरंसिष्टाम् ।

लुङ् विभक्ति परे रहने से (अध्ययनार्थ) अधि + इ धातु के स्थान में विकल्प से 'गी' होता है। यथा—अधि + इ + त = अध्यगीष्ट; अध्यैष्ट ।

लुङ् विभक्ति का परस्मैपद परे रहने से शास्, लृकार—इत्[1], द्युतादि और पुषादि धातु के उत्तर ङ (अङ्) होता है; अ अवशिष्ट रहता है।

यथा—शास् + द् = अशिषत् (लुङ् में शास् = शिष होता है); लृकार इत्—गम् + द् = अगमत्; द्युत्—अद्युतत्, लुङ् विभक्ति में द्युत् उभयपदी, आत्मनेपद में अद्योतिष्ट; पुष्—अपुषत् ।

लुङ् विभक्ति का परस्मैपद परे रहने से जॄ प्रभृति और इर् इत् धातु के उत्तर विकल्प से ङ होता है। यथा—जॄ + द् = अजरत्,

---

१. लृकार—इत् (लृदित्) धातु—गम्, नश्, आप्, घस्, पत्, पिष्, शद्, सृप् इत्यादि ।

२. द्युतादि-द्युत्, श्वित्, स्विद् (भ्वादि), रुच्, शुध्, शुभ्, क्षुभ् (भ्वादि) ध्वंस्, भ्रंश् (भ्वादि), वृत्, वृध्, स्यन्द्, कृप् (क्लृप्), लुठ् इत्यादि ।

लुङ् परे द्युतादि उभयपदी होते हैं ।

३. पुषादि-पुष, शुष्, तुष्, शक्, श्लिष्, दुष्, क्षुध्, क्रुध्, स्विद्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, स्निह्, क्षम्, क्लम्, मद्, श्रम्, तम्, शम्, दम्, जस्, कुप्, लुप्, लुभ्, सिच् इत्यादि ।

४. ज्रादि—जॄ, श्वि, स्तम्भ् इत्यादि ।

५. इर्—इत् धातु—श्च्युत् स्कन्द्, रिच् विच्, रुद्, रुज्, विज्, युज् (रुधादि), भिद्, निज्, दृश्, दुह्, च्युत्, शुष् इत्यादि ।

पक्षे—अजारीत् (ङ परे जृ—जर् होता है)। इर्+इत् च्युत्+द्= अच्युतत्, पक्षे—अच्योतीत्; भिद् + द् = अभिदत्, पक्षे—अभैत्सीत्, ताम्—अभिदताम्, अभैत्ताम्, अन्—अभिदन्, अभैत्सुः।

कर्तृवाच्य में लुङ् विभक्ति में, (अदादि) वच् (दिवादि) अस्, ख्या और लिप्, सिच्, ह्वे धातु के उत्तर ङ होता है; और आत्मनेपद में लिपादि धातु के उत्तर विकल्प से ङ होता है।

लुङ् विभक्ति में श्रि, स्रु, द्रु और कम् धातु के उत्तर अङ् होता है, श्वि और धेट् धातु के उत्तर विकल्प से अङ् (चङ्) होता है; अ अवशिष्ट रहता है।

ङ परे रहने से, नश्—विकल्प से नेश्; वच् और ब्रू—वोच्; अस्—अस्थ्, ख्या—ख्य, ह्वे—ह्व, पत्—पप्त्, अद्—घस् होता है। यथा—नश्+ द्=अनेशत्, अनशद्, वच् और ब्रू—अवोचत्, अस्—आस्थत्, ख्या—अख्यत्, ह्वे—अह्वत्, पत्=अपप्तत्, अद्—अघसत्।

(आत्मनेपद में लिपादि) लिप+त = अलिपत, अलिप्त, सिच्—असिचत, असिक्त, ह्वे—अह्वत, अह्वास्त।

अङ् परे रहने से द्रु-दुद्रव्, स्रु सुस्रुव्, श्रि—शिश्रिय्, कम्—चीकम् और चक्रम् होता है यथा—द्रु—अदुद्रुवत्, स्रु—असुस्रुवत्, श्री—अशिश्रियत्, कम्—अचीकमत्, अचकमत्।

लुङ् विभक्ति परे रहने से सृ और ऋ धातु के उत्तर विकल्प से 'ङ' होता है और ङ परे गुण होता है।

यथा—सृ+द्=असरत्, असार्षीत् ऋ—आरत्, आर्षीत्।

लुङ् विभक्ति परे रहने से दृश् धातु के उत्तर विकल्प से ङ होता है, ङ परे गुण होता है यथा:—दृश्+द् = अदर्शत्।

सि परे रहने से दृश्—द्राश् और सृज्—स्राज् होता है। यथा—दृश् + द् = अद्राक्षीत्, सृज्—अस्राक्षीत्।

लुङ् परे दुहादि[1] धातु के उत्तर स (क्स) होता है। स परे गुण

[1]. दुहादि—उपधा में इकार और उकार रहे ऐसे अनिट् दुह्, मिह्, प्रभृति हान्त धातु।

ह् कुछ भी नहीं होता । और आत्मनेपद मे दुह्, दिह्; लिह्
ातु के उत्तर विकल्प से स होता है। यथा—दुह् + द्=अदुह् + स +
=अधुक्षत; आत्मनेपद में दुह्+त=अदुह्+स+त=अधुक्षत,
दुग्ध; अन्त—अधुक्षन्त ।

लुङ् परे रहने से कृष्, मृष्, स्पृश्, दिश्, द्विष्, त्विष् और
ालिङ्गनार्थ श्लिष् धातु के उत्तर विकल्प से स होता है। यथा—
ष्+द्=अकृष्+स+द्=अकृक्षत् ।

सि परे रहने से कृष्—क्राष्, मृश्—म्राश्, तृप्—त्राप्; दृप्—
प्; सृप्—स्राप् और स्पृश्—स्प्राश् होता है विकल्प से। यथा—
ष्—अक्राक्षीत्, पक्षे—अकार्क्षीत्।

लुङ् के आत्मनेपद के त और थास् परे तनादि धातु के उत्तर सि
ा विकल्प से लोप होता है, और लोप होने से नकार लुप्त होता है।
ा—तन्+त=अतत, अतनिष्ट; थास्—अतथाः, अतनिष्ठाः ।

लुङ् के आत्मनेपद का त परे रहने से पद् धातु के उत्तर इण् होता
। इण् का इ रहता है और उस इण् के पर स्थित त लुप्त होता है।
ा— पद्+त=अपद्+इ+त=अपादि; ताम्—अपत्साताम्।

त परे रहने से प्याय्, ताय्, दीप, पूर्, जन् और बुध् धातु के
ार विकल्प से इण् होता है। यथा प्याय्+त=अप्यायि, अप्यायिष्ट;
्+त=अबोधि,[1] अबुद्ध। ताम्—अभुत्साताम्; अन्त—अभुत्सत।

१—इण् परे बुध्—बोध होता है।

लुङ् रूप

परस्मैपदी

भू धातु होना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

ज्ञा धातु (जानना)

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म

श्रु धातु (सुनना)

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
म० पु०	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

तॄ धातु (पार होना)

प्र० पु०	अतारीत्	अतारिष्टाम्	अतारिषुः
म० पु०	अतारीः	अतारिष्टम्	अतारिष्ट
उ० पु०	अतारिषम्	अतारिष्व	अतारिष्म

वद् धातु (बोलना)

प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
म० पु०	आवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

लुङ् के रूप

वस् धातु (बसना, चमकना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
म० पु०	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उ० पु०	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म

रुद् धातु (रोना)

प्र० पु०	अरुदत् / अरोदीत्	अरुदताम् / अरोदिष्टाम्	अरुदन् / अरोदिषुः
म० पु०	अरुदः / अरोदीः	अरुदतम् / अरोदिष्टम्	अरुदत / अरोदिष्ट
उ० पु०	अरुदम् / अरोदिषम्	अरुदाव / अरोदिष्व	अरुदाम / अरोदिष्म

गम् धातु (जाना)

प्र० पु०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म० पु०	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ० पु०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

क्रम् धातु (गुजरना, जाना)

प्र० पु०	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः
म० पु०	अक्रमीः	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उ० पु०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

नम् धातु (प्रणाम करना)

प्र० पु०	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
म० पु०	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
उ० पु०	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

दृश् धातु (देखना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदर्शत् अद्राक्षीत्	अदर्शताम् अद्राष्टाम्	अदर्शन् अद्राक्षुः
म० पु०	अदर्शः अद्राक्षीः	अदर्शतम् अद्राष्टम्	अदर्शत अद्राष्ट
उ० पु०	अदर्शम् अद्राक्षम्	अदर्शाव अद्राक्ष्व	अदर्शाम अद्राक्ष्म

स्पृश् धातु (छूना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अस्पृक्षत् अस्प्राक्षीत् अस्पार्क्षीत्	अस्पृक्षताम् अस्प्राष्टाम् अस्पार्ष्टाम्	अस्पृक्षन् अस्प्राक्षुः अस्पार्क्षुः
म० पु०	अस्पृक्षः अस्प्राक्षीः अस्पार्क्षीः	अस्पृक्षतम् अस्प्राष्टम् अस्पार्ष्टम्	अस्पृक्षत अस्प्राष्ट अस्पार्ष्ट
उ० पु०	अस्पृक्षम् अस्प्राक्षम् अस्पार्क्षम्	अस्पृक्षाव अस्प्राक्ष्व अस्पार्क्ष्व	अस्पृक्षाम अस्प्राक्ष्म अस्पार्क्ष्म

आत्मनेपदी

शी धातु (लेटना)

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम् (ध्वम्)
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

सेव् धातु (सेवा करना)

प्र० पु०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
म० पु०	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम् (ध्वम्)
उ० पु०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

जन् धातु (उत्पन्न होना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजनि / अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
म० पु०	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
उ० पु०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

पद् धातु (जान

प्र० पु०	अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
म० पु०	अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
उ० पु०	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

अधि... इ धातु (अधिगत होना)

प्र० पु०	अध्यगीष्ट / अध्यैष्ट	अध्यगीषाताम् / अध्यैषाताम्	अध्यगोषत / अध्यैषत
म० पु०	अध्यगीष्ठाः / अध्यैष्ठाः	अध्यगीषाथाम् / अध्यैषाथाम्	अध्यगीढ्वम् / अध्यैध्वम्
उ० पु०	अध्यगीषि / अध्यैषि	अध्यगीष्वहि / अध्यैष्वहि	अध्यगीष्महि / अध्यैष्महि

उभयपदी

दा धातु (देना)

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदुः
म० पु०	अदाः	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
म० पु०	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
उ० पु०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

ज्ञा धातु (जानना)

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
म० पु०	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

कृ धातु (करना)

(परस्मैपद)

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
म० पु०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उ० पु०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

भिद् धातु (तोड़ना-फोड़ना, भेदन करना)

(परस्मैपद)

प्र० पु०	अभिदत् / अभैत्सीत्	अभिदताम् / अभैत्ताम्	अभिदन् / अभैत्सुः
म० पु०	अभिदः / अभैत्सीः	अभिदतम् / अभैत्तम्	अभिदत / अभैत्त
उ० पु०	अभिदम् / अभैत्सम्	अभिदाव / अभैत्स्व	अभिदाम / अभैत्स्म

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अभित्त	अभित्साताम्	अभित्सत
म० पु०	अभित्थाः	अभित्साथाम्	अभिद्ध्वम्
उ० पु०	अभित्सि	अभित्स्वहि	अभित्स्महि

दुह् धातु (दुहना)

(परस्मैपद)

प्र० पु०	अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्
म० पु०	अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत
उ० पु०	अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	{ अधुक्षत अदुग्ध	अधुक्षाताम्	अधुक्षन्त
म० पु०	{ अधुक्षथाः अदुग्धाः	अधुक्षाथाम्	अधुक्षध्वम्
उ० पु०	अधुक्षि	{ अधुक्षावहि अदुह्वहि	{ अधुक्षामहि अदुह्महि

अकारान्त—आदि क्रम से कुछ बहुप्रचलित धातुओं के लुङ् प्रथम पुरुष एकवचन, द्विवचन और बहुवचन के रूप दिखलाये जाते हैं। इनके जान लेने पर अवशिष्ट पद स्वयं समझे जा सकेंगे।

घ्रा (सूँघना)—अघ्रात्, अघ्रासीत्; अघ्राताम् अघ्रासिष्टाम्, अघ्रुः अघ्रासिषुः।

पा (रक्षा करना)—अपात्; (पीना में)—अपासीत्।

भा (चमकना)—अभासीत्, अभासिष्टाम्, अभासिषुः।

या (जाना)—भा धातुवत्।

हा (जाना, पाना)—भा धातुवत्।

इ (जाना)—अगात्, अगाताम्, अगुः।

जि (जीतना)—अजैषीत्, अजैष्टाम्, अजैषुः।

क्री (खरीदना)—अक्रैषीत् , अक्रैष्टाम् अक्रैषुः ।
अक्रेष्ट, अक्रेषाताम् , अक्रेषत ।
नी (ले जाना)—क्री धातुवत् ।
भी (डरना)—जि धातुवत् ।
स्तु (स्तुति करना)—अस्तावीत्, अस्तौषीत्, अस्ताविष्टाम् , अस्तौष्ट।
अस्ताविषुः अस्तौषुः । अस्तोष्ट ।

हु (हवन करना)—श्रु धातुवत् ।
पू (पवित्र करना)—अपावीत्, अपाविष्टाम्, अपाविषुः; अपविष्ट ।
सू (प्रसव करना)—असविष्ट, असोष्ट, असविषाताम्, असोषाताम् ।
जागृ (जागना)—अजागरीत्, अजागरिष्टाम्, अजागरिषुः ।
मृ (मरना)—अमृत, अमृषाताम्, अमृषत ।
वृ (चुनना)—अवारीत् , अवारिष्टाम्, अवारिषुः । अवृत, अवरिष्ट
अवरीष्ट, अवृषाताम्, अवरिषाताम्, अवरीषाताम् ।
स्मृ (स्मरण करना)—अस्मार्षीत् , अस्मार्ष्टाम् , अस्मार्षुः ।
हृ (हरण करना)—अहार्षीत्; अहृत ।
कृ (बिखेरना)—अकारीत् , अकारिष्टाम् , अकारिषुः ।
जॄ (धमकाना)—अजरत्, आजारीत् अजरताम् , अजारिष्टाम्,
अजरन्, अजारिषुः ।
दॄ (चीरना)—वॄ धातुवत् ।
गै (गाना)—अगासीत् , अगासिष्टाम् , अगासिषुः ।
त्रै (बचाना) अत्रास्त, अत्रासाताम् ।
शक् (सकना)—अशकत् , अशकताम् , अशकन् ।
शङ्क् (सन्देह करना)— अशङ्किष्ट, अशङ्किषाताम् ।
लिख् (लिखना)—अलेखीत् , अलेखिष्टाम् , अलेखिषु : ।
श्लाघ् (सराहना)—अश्लाघिष्ट अश्लाघिषाताम् ।
पच् (पकाना)—अपाक्षीत् , अपाक्ताम् , अपाक्षुः । अपक्त
अपक्षाताम् ।

मुच् (मुक्त करना)—अमुचत्, अमुचताम्, अमुचन्। अमुक्त, अमुक्षताम्।

याच् (माँगना)—अयाचीत्, अयाचिष्टाम्, अयाचिषुः; अयाचिष्ट।

वच् और ब्रू (बोलना)—अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्।

शुच् (शोक करना—भ्वादि)—अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः।

सिच् (सींचना)—असिचत्, असिचताम्, असिचन्। असिचत, असिक्त, असिचेताम्, असिक्षाताम्, असिचन्त, असिक्षत।

प्रच्छ् (पूछना)—अप्राक्षीत् अप्राष्टाम्, अप्राक्षुः।

अर्ज् (कमाना)—आर्जीत् आर्जिष्टाम्, आर्जिषुः।

त्यज् (त्यागना)—अत्याक्षीत्, अत्याक्ताम्, अत्याक्षुः।

भञ्ज् (तोड़ना)—अभाङ्क्षीत्, अभाङ्क्ताम्, अभाङ्क्षुः।

भुज् (खाना)—अभौक्षीत्, अभौक्ताम्, अभौक्षुः, अभुक्त, अभुक्षाताम्।

मस्ज् (नहाना)—अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्ताम्, अमाङ्क्षुः।

युज् (जोड़ना)—अयुजत्, अयौक्षीत्, अयुजताम्, अयौक्ताम्, अयुजन्, अयौक्षुः। अयुक्त, अयुक्षाताम्, अयुक्षत।

राज् (चमकना)—अराजीत्, अराजिष्टाम्, अराजिषुः। अराजिष्ट।

लस्ज् (लजाना)—अलज्जिष्ट, अलज्जिषाताम्।

सृज् (बनाना)—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षुः।

घट् (होना)—अघटिष्ट, अघटिषाताम्, अघटिषत।

चेष्ट्(प्रयत्न करना)—अचेष्टिष्ट, अचेष्टिषाताम्, अचेष्टिषत।

वेष्ट् (घेरना)—चेष्ट् धातुवत्।

पठ् (पढ़ना)—अपाठीत् अपठीत्, अपाठिष्टाम् अपठिष्टाम्।

क्रीड् (खेलना)—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम्, अक्रीडिषुः।

कृत् (काटना)—अकर्तीत्, अकर्तिष्टाम्, अकर्तिषुः।

नृत् (नाचना)—अनर्तीत्, अनर्तिष्टाम्, अनर्तिषुः।

पत् (गिरना)—अपप्तत्, अपप्तताम्, अपप्तन्।

यत् (चेष्टा करना)—अयतिष्ट, अयतिष्टाम्, अयतिषत्त ।

वृत् (वरण करना)—अवृतत्, अवृतताम्, अवृतन् । अवर्तिष्ट, अवर्तिषाताम् ।

अद् (खाना)—अघसत्, अघसताम्, अघसन् ।

गद् (कहना)—अगादीत्, अगदीत्, अगादिष्टाम्, अगदिष्टाम्, अगादिषुः, अगदिषुः ।

वद् (बोलना)—अवादीत्, अवादिष्टाम्, अवादिषुः ।

क्रन्द् (रोना)—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्टाम्, अक्रन्दिषुः ।

खाद् (खाना)—अखादीत्, अखादिष्टाम्, अखादिषुः ।

छिद् (छेदन करना)—भिद् धातुवत् ।

विद् (जानना)—अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषुः ।

(दिवादि)—अवित्त, अवित्साताम् । (तुदादि) अविदत् अवेदिष्ट, अवित्त ।

क्रुध् (कुपित होना)—अक्रुधत्, अक्रुधताम्, अक्रुधन् ।

बन्ध् (बाँधना)—अभान्त्सीत्, अबान्धाम्, अभान्त्सुः ।

बुध् (भ्वादि, जानना)—अबुधत्, अबोधीत्, अबोधिष्ट ।
(दिवादि) अबोधि, अबुद्ध, अभुत्साताम्, अभुत्सत ।

रुध् (रोकना)—अरुधत् अरौत्सीत्, अरुधताम्, अरौद्धाम्, अरुधन्, अरौत्सुः ।

युध् (लड़ना)—अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत ।

वृध् (बढ़ना)—अवृधत्, अवृधताम्, अवृधन्, अवर्धिष्ट, अवर्द्धिषाताम् ।

व्यध् (विद्ध करना)—अव्यात्सीत्, अव्यात्ताम्, अव्यात्सुः ।

जन् (उत्पन्न होना, जानना)—अजनि, अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत ।

मन् (मनन करना)—अमंस्त, अमंसाताम्, अमंसत ।

हन् (हत्या करना)—अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः ।

आप् (प्राप्त होना; पहुँचना)—आपत्, आपताम्, आपन् ।

क्षिप् (फेंकना)—अक्षैप्सीत्, अक्षैप्ताम्, अक्षैप्सुः; अक्षिप्त, अक्षिप्साताम्, अक्षिप्सत।

तप् (तपाना-तप करना)—अताप्सीत्, अताप्ताम् अताप्सुः।

दीप् (चमकना)—अदीपि, अदीपिष्ट, अदीपिषाताम्, अदीपिषत।

लुप् (लुप्त करना)—अलुपत्, अलुपताम्. अलुपन्। अलुप्त, अलुप्साताम्, अलुप्सत।

लभ् (लाभ करना)—अलब्ध, अलप्साताम्, अलप्सत।

शुभ् (सुन्दर लगना)—अशुभत्, अशुभताम्, अशुभन्। अशोभिष्ट, अशोभिषाताम्, अशोभिषत।

क्षम् (क्षमा करना) (दिवादि) अक्षमत्, अक्षमीत् (भ्वादि)—अक्षमिष्ट, अक्षंस्त।

भ्रम (घूमना) (भ्वादि)—अभ्रमीत् (दिवादि)—अभ्रमत्।

यम् (संयत रखना)—अयंसीत्, अयंसिष्टाम्, अयंसिषुः।

रम् (रमण करना, क्रीड़ा करना)—अरंसाताम्, अरंसत।

शम् (शान्त होना, चमकना)—अशमत्। (अशमत्, अशमीत् इति बोपदेवः)

श्रम् (श्रम करना) अश्रमत्।

चर् (चरना, चलना)—अचारीत् अचारिष्टाम् अचारिषुः।

त्वर् (शीघ्रता करना)—अत्वरिष्ट, अत्वरिषाताम्।

पूर् (भरना, प्रसन्न करना)—अपूरि, अपूरिष्ट, अपूरिषाताम्।

स्फुर् (काँपना)—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्, अस्फुरिषुः।

चल् (जलना)—अचालीत्, अचालिष्टाम्, अचालिषुः।

ज्वल् (जलना)—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम् अज्वालिषुः।

जीव् (जीना)—अजीवीत्, अजीविष्टाम्, अजीविषुः।

दिव् (चमकना)—अदेवीत्, अदेविष्टाम्, अदेविषुः।

धाव् (दौड़ना, भागना)—अधावीत्, अधाविष्टाम्, अधाविषुः। अधाविष्ट, अधाविषाताम्, अधाविषत।

अश् (खाना, घुसना)—आशिष्ट, आष्ट, आशिषाताम्-आक्षाताम्, आशिषत आक्षत (क्र्यादि)—आशीत्, आशिष्टाम् ।

दन्श् (डसना)—अदाङ्क्षीत्, अदाष्टाम्, अदाङ्क्षुः ।

दिश् (आदेश देना, उपदेश देना)—अदिक्षत्, अदिक्षताम्, अदिक्षन् । अदिक्षत, अदिक्षाताम् ।

विश् (घुसना)—अविक्षत्, अविक्षताम्, अविक्षन् ।

ईक्ष् (देखना)—ऐक्षिष्ट, ऐक्षिषाताम्, ऐक्षिषत ।

काङ्क्ष् (चाहना)—अकाङ्क्षत् अकाङ्क्षिष्टाम्, अकाङ्क्षिषुः ।

कृष् (जोतना)—स्पृश् धातुवत् ।

तुष् सन्तोष करना)—अतुषत्, अतुषताम्, अतुषन् ।

पुष् (पालना- पोसना)—तुष् धातुवत् ।

शिष् (शेष छोड़ना)—तुष् धातुवत् ।

द्विष् (द्वेष या घृणा करना)—अद्विक्षत्, अदिक्षताम्, अदिक्षन् । अद्विक्षत, अद्विक्षाताम्, अद्विक्षन्त ।

भाष् (बोलना) अभाषिष्ट, अभाषिषाताम्; अभाषिषत ।

मृष् (सहना)—(भ्वादि) अमर्षीत् (दिवादि)—अमृषत् अमृषताम्, अमृषन्; अमर्षिष्ट; अमर्षिषाताम्, अमर्षिषत ।

रक्ष् (बचाना)—अरक्षीत्, अरक्षिष्टाम् अरक्षिषुः ।

वृष् बरसना) अवर्षीत्, अवर्षिष्टाम्, अवर्षिषुः ।

अस् (होना, रहना)—(अदादि) भूधातुवत् । (दिवादि)—आस्थत्, आस्थताम, आस्थन् ।

आस् (बैठना) आसिष्ट, आसिषाताम्, आसिषत ।

वस् (बसना)—(अदादि) अवसिष्ट, अवसिषाताम्, अवसिषत ।

शन्स् (प्रशंसा करना)— अशंसीत्, अशंसिष्टाम्, अशंशिषुः ।

शास् (शासन करना) —अशिषत्, अशिषताम्, अशिषन् ।

श्वस् (सांस लेना)—अश्वसीत्, अश्वसिष्टाम्, अश्वशिषुः ।

हस् (हँसना)—अहसीत्, अहसिष्टाम्, असहिषुः ।
हिन्स् (हिंसा करना) अहिंसीत्, अहिंसिष्टाम, अहिंसिषुः ।
गाह् (डूबना)—अगाहिष्ट-अगाढ, अगाहिषाताम्, अघाक्षाताम्, अगाहिषत-अघाक्षत ।
ग्रह् (पकड़ना)—अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, अग्रहीषुः । अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्, अग्रहीषत ।
दह् (जलाना)—अधाक्षीत् अदाग्धाम्, अधाक्षुः ।
दुह् (दुहना)—अधुक्षत्, अधुक्षताम्, अधुक्षन् ।
सह् (सहना)—असक्षत् ।
वह् (ढोना)—अवाक्षीत्-अवोढाम्, अवाक्षुः । अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत ।

अनुवाद

सोऽध्यगीष्ट वेदान्—उसने वेदों का अध्ययन किया । नृपतिर्द्विजेभ्यो गवां सहस्राणि प्रादात्—राजा ने ब्राह्मणों को सहस्रों गायें दीं । तान् प्रत्यवादीत् अथ राघवोऽपि—जब रघु-पुत्र ने भी उन्हें उत्तर दिया । ससैन्यश्चान्वगाद् रामम्—(वह) सेना के साथ राम के पीछे गया । यो मन्त्रपूतां तनुमपि अहौषीत्—जिसने अपने मन्त्रपूत शरीर की भी आहुति दे दी ।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो :—स प्रजाभ्यो बलिमग्रहीत् । तुष्टोऽसौ ब्राह्मणमवादीत् । शैशवे वर्तमानस्य मम पिता पञ्चत्वमगात् । कपिराटीद् गृहाद् गृहम् । ते तं दन्तैरच्छिदन् । त्वमजैषीः पुरा सुरान् । वनमताप्सीच्छनैर्भानुः । अनंसीत् चरणौ तस्य । अभैत्सीत् तं शरैः । अरौत्सीत् स पुरीमिमाम् । शोकश्चित्तमवारुधत् । सोऽलब्ध ब्रह्मणः शस्त्रम् । स बन्धून् सममंस्त । अजक्षीदङ्कमागतान् । मा ज्ञासीस्त्वं सुखी रामः । अलिप्त इवानिलः शीतः । अभाङ्क्षीद् रघुनन्दनो धनुः । यशसा वरिष्ठं तम् आर्चीत् । शोणितं सम्प्रहारेऽच्युतत् । वायव्यास्त्रेण तं पाणिं रामोऽच्छेत्सीत् । अनिशं शब्दमश्रौषं ततो लोमानि मेऽहृष्यन् । वानराय प्राहैषीत् परिघम् । तेषां सामर्थ्यं सोऽस्तभीत् ।

असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः । इह जलैर्मामभ्यसिचत् । शैलं न्यशिश्रियद्वामा । यद् अकार्षीत् स रक्षसाम् । अद्योतिष्ट रणे । अनैषीद् रक्षसां क्षयम् । तस्यालिपत शोकाग्निः स्वान्तं काष्ठमिव ज्वलद् । युवां भुवनस्य भारं दोर्भिरवोढम् । मा न धावी र्रवि खे । अपारीत् स हतशेषान् प्लवङ्गमान् । अबोधि दुःखं त्रैलोक्यम् । रामोऽवादीत्ततः कपीन् ।

संस्कृत में अनुवाद करो :—तुमने सुना कि क्या हुआ ? उसने अपने मामा से बहुत धन प्राप्त किया । हरि अपने भाई के पास प्रयाग गया है । उसने अपना काम समाप्त कर लिया । मुझसे एक गलती हो गयी । ईश्वर ने संसार की रचना की । मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया । मैंने किताब लौटा दी । उसने मुझे कलकत्ता जाने के लिये कहा । क्या तुमने फूल सूँघे ? उसने अपनी लड़की का विवाह कर दिया । रसोईदार (पाचकः) ने भात बनाया । मेरी लड़की आज प्रातः आ गयी । मुझे अपनी किताब नहीं मिली । बलवान् राजा ने अपने शत्रु को परास्त कर दिया ।

प्रत्ययान्त धातु

णिच्, सन्, यङ् प्रभृति प्रत्ययों से कई प्रकार के धातु निष्पन्न होते हैं, उनको प्रत्ययान्त धातु कहते हैं। प्रत्ययान्त धातु भ्वादिगणीय में गण्य होते हैं। (केवल यङ्लुगन्त धातु अदादिगणीय के समान होता है)। प्रत्ययान्त धातुओं में कुछ को नामधातु कहते हैं।

णिजन्त धातु

प्रेरणार्थ में धातुओं के उत्तर णिच् होता है। (एक कर्ता द्वारा अन्य को किसी कार्य में प्रेरित करने का नाम प्रेरणा है)। णिच् का केवल इ रहता है। जिन धातुओं में णिच् प्रत्यय का विधान होता है उन्हें 'णिजन्त' धातु कहते हैं। णिजन्त धातु उभयपदी होते हैं। यथा—कर्तृ प्रेरयति = कारयति = कराता है। चि + इ = चायि—चाययति; नी + इ = नायि— नाययति; श्रु + इ = श्रावि—श्रावयति; भू + इ = भावि—भावयति; (उपधा अ) वद् + इ = वादि—वादयति; (उपधा उ) नुद् + इ = नोदि—नोदयति; (उपधा इ) लिख् + इ = लेखि = लेखयति; सिध् + ई = सेधि—सेधयति; (उवधा ऋ) दृश् + इ = दर्शि — दर्शयति; (उपधा आ) खाद् + इ = खादि — खादयति; (उपधा ई) जीव् + इ = जीवि—जीवयति।

इत्-कार्य

प्रकृति, आगम और प्रत्यय के जो जो वर्ण नहीं रहते, उन्हें इत् कहते हैं। यथा—णिच् के ण् और च् इत् हैं।

कुछ इत् विशेष कार्यों की सिद्धि के लिए हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है—

उ...उ-इत् (उदित्) होने से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है। यथा—बुद्धि + मतु = बुद्धिमत् ...बुद्धिमती।

ऋ—ऋ—इत् (ऋदित्) होने से, स्त्रीलिङ्ग में ईप् होता है। यथा रुद् + शत् = रुदत्—रुदती।

क—क् इत् (कित्) होने से गुण नहीं होता। तथाः—बुध् + क्ति= बुद्धि; कृ + क्त = कृत्।

यज्, व्यध् और व्ये धातु के स्वर—सहित य के स्थान में इ + ग्रह धातु के स्वर सहित र के स्थान में ऋ होता है। यथा—ग्रह् + क्त = गृहीत।

शास् धातु के स्थान में शिष् होता है। यथाः—शास् + क्त = शिष्ट।

ख—ख्—इत् (खित्) होने से स्वरान्त उपपद के उत्तर अर्थात् धातु और तत्पूर्ववर्ती शब्द के बीच में 'म्' आगम होता है यथाः— भय + कृ + ख = भयङ्कर; भुज + गम् + ख + भुजङ्गम।

घ—घ्—इत् (घित्) होने से, प्रकृति के च् के स्थान में क् और ज् के स्थान में ग् होता है। यथाः—पच् + घञ् = पाकः; त्यज् + घञ् = त्यागः।

ङ—ङ् इत् (ङित्) होने से गुण नहीं होता। यथाः—भिद् + अङ् = भिदा।

ञ—ञ्-इत् (ञित्) होने से धातु के अन्त्य स्वर और उपधा अकार की वृद्धि होती है। यथाः—हृ + घञ् = हारः; नश् + घञ् = नाशः।

उपधा लघु स्वर का गुण होता है। यथा—शुच् + घञ् = शोकः।

आकारान्त धातु के उत्तर 'य' होता है यथा—दा + घञ् = दायः।

ट—ट्-इत् (टित्) होने से स्त्री—लिङ्ग 'ईप्' होता है। यथा—अनु + चर् + ट् = अनुचरः—अनुचरी।

ड—ड्-इत् (डित्) होने से टि अर्थात् प्रकृति के अन्त्य स्वर और तत्परवर्ती व्यञ्जन वर्ण का लोप होता है। यथा—द्वि + जन् + ड = द्विजः।

ण—ण्-इत् (णित्) होने से; ञ्-इत् के तुल्य का कार्य होता है। यथा—कृ + णक = कारकः।

तद्धित का ण्–इत् होने से प्रातिपदिक के आदि स्वर की वृद्धि होती है। यथा—विष्णु + ष्ण = वैष्णवः।

प—इत् (पित्) होने से ह्रस्व स्वरान्त धातु के उत्तर द् होता है। यथा—प्र + कृ + यप् = प्रकृत्य, विश्व + जि + क्विप् = विश्वजित्।

श—श् इत (शित्) लट् के तुल्य कार्य होता है। यथा—गम् + शतृ = गच्छन्; दृश् + शतृ = पश्यन्।

ष—ष् इत् (षित्) होने से, स्त्रीलिङ्ग में ईप् होता है। यथा—विष्णु + ष्ण = वैष्णवः—वैष्णवी।

णिच् परे जॄ, जागृ, [1]घटादि और अम्[2] भागान्त धातु की वृद्धि नहीं होती। यथा—जॄ-जरयति; जागृ—जागरयति; घट्—घटयति; गम्—गमयति।

णिच् परे आकारान्त धातु के उत्तर 'य' होता है[3]। यथा—स्था—स्थापयति।

कुछ णिजन्त धातुओं के विशेष स्वरूप ;—अस्—भावि ; भावयति। गम्—गमि; गमयति। अधि + इ (अध्ययनार्थे)—अध्यापि, (स्मरणार्थे) अध्यायि ; अध्यापयति, अध्याययति। प्रति + इ (ज्ञानार्थे)—प्रत्यायि ; प्रत्याययति। ऋ—अर्पि; अर्पयति। क्री—क्रापि; क्रापयति। गै—गापि ; गापयति। चल् (कम्पनार्थे) चलि, (स्थानान्तरप्रापणार्थे)—चालि ; यथा—चलयति तरून् समीरणः, चालयति हस्तिनं यन्ता। चि—चापि, चायि; चापय त, चाययति। जि—जापि; जापयति।

ज्वल्—ज्वलि, ज्वालि; ज्वलयति, ज्वालयति, (उपसर्ग युक्त ज्वलि) प्रज्वलयति। दुष्—दूषि; दूषयति। चित्तविकार के अर्थ में विकल्प होता है। यथा—दूषयति, दोषयति, चित्त कामः। धू—धूनि: धूनयति, धावि-

---

१. घटादि—घट्, व्यथ्, त्वर्, प्रथ्, जन्, नट् (णट्), लग् इत्यादि।

२. किन्तु कम्, चम्, अम्, धातु की वृद्धि होती है।

३. प—परे ज्ञा धातु को ह्रस्व भी होता है।

इति च केचित् तदा—धावयति। नम—नमि, नामि; नमयति, नामयति (उपसर्ग युक्त)—नमि; प्रणमयति। पा (पानार्थे)—पायि, (रक्षार्थ) पालि; पाययति, पालयति। प्री—प्रीणि, प्रायि; प्रीणयति, प्राययति। ब्रू, वच्—वाचि; वाचयति। भी—भीषि; भापि, (करण कारक रहने से) भायि; (भीषि, भापि आत्मनेपदी होते हैं) यथा—सर्पः शिशुं भीषयते भापयते वा—यहाँ सर्प अन्य की अपेक्षा न करके स्वयं भय का जनक है। पुरुषः सर्पेण शिशुं भाययति—यहाँ पुरुष सर्प द्वारा शिशु का भय–उत्पादन करता है, अन्यनिरपेक्ष होकर, स्वयं नहीं। रुह्—रोहि, रोपि; रोहयति, रोपयति। लभ्—लम्भि, लम्भयति। ली—लापि, लायि, (द्रवपदार्थ कर्म होने से)—लालि, लीनि; यथा—लौहं विलापयति, वम्—वमि, वामि वमयति, वामयति, (उपसर्गयुक्त)—वमि; उद्वमयति। सद् (गत्यर्थे)—सादि, शत् (पतनार्थे)—शान्ति; यथा—गाः सादयति गोपालः (गमयतीत्यर्थः), पत्रं शातयति तुषारः (नाशयतीत्यर्थः) शम—शामि (दर्शनार्थे)—शमि, यथा—शमयति रोगं भिषक्; निशामयति रूपम् (पश्यतीत्यर्थः) सिध् (दिवादि)—साधि; साधयति। स्ना—स्नपि, स्नापि, (उपसर्गयुक्त रहने से)—स्नायि; स्नपयति, स्नापयति, प्रस्नापयति। स्मि—स्मापि, (करण-कारक रहने से) स्मायि; स्मापि आत्मनेपदी होता है। यथा—मुण्डः शिशुं विस्मापयते। हन्—घाति; घातयति। ह्री, ह्रेपयति। स्फुर्—स्फारि, स्फोरि; स्फारयति, स्फोरयति।

णिजन्त धातु के रूप

श्रावि धातु (सुनना)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	श्रावयति	श्रावयतः	श्रावयन्ति
म० पु०	श्रावयसि	श्रावयथः	श्रावयथ
उ० पु०	श्रावयामि	श्रावयावः	श्रावयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	श्रावयतु	श्रावयताम्	श्रावयन्तु
म० पु०	श्रावय	श्रावयतम्	श्रावयत
उ० पु०	श्रावयाणि	श्रावयाव	श्रावयाम

लङ्

प्र० पु०	अश्रावयत्	अश्रावयताम्	अश्रावयन्
म० पु०	अश्रावयः	अश्रावयम्	अश्रावयत
उ० पु०	अश्रावयम्	अश्रावयाव	अश्रावयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	श्रावयेत्	श्रावयेताम्	श्रावयेयुः
म० पु०	श्रावयेः	श्रावयेतम्	श्रावयेत
उ० पु०	श्रावयेयम्	श्रावयेव	श्रावयेम

लृट्

प्र० पु०	श्रावयिष्यति	श्रावयिष्यतः	श्रावयिष्यन्ति
म० पु०	श्रावयिष्यसि	श्रावयिष्यथः	श्रावयिष्यथ
उ० पु०	श्रावयिष्यामि	श्रावयिष्यावः	श्रावयिष्यामः

लुट्

प्र० पु०	श्रावयिता	श्रावयितारौ	श्रावयितारः
म० पु०	श्रावयितासि	श्रावयितास्थः	श्रावयितास्थ
उ० पु०	श्रावयितास्मि	श्रावयितास्वः	श्रावयितास्मः

लिट्

प्र० पु०	श्रावयाम्बभूव श्रावयाञ्चकार श्रावयामास	श्रावयाम्बभूवतुः श्रावयाञ्चक्रतुः श्रावयामासतुः	श्रावयाम्बभूवुः श्रावयाञ्चक्रुः श्रावयामासुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
म० पु०	श्रावयाम्बभूविथ	श्रावयाम्बभूवथुः	श्रावयाम्बभूव
	श्रावयाञ्चकर्थ	श्रावयाञ्चक्रथुः	श्रावयाञ्चक्र
	श्रावयामासिथ	श्रावयामासथुः	श्रावयामास
उ० पु०	श्रावयाम्बभूव	श्रावयाम्बभूविव	श्रावयाम्बभूविम
	श्रावयाञ्चकार(कर)	श्रावयाञ्चकृव	श्रावयाञ्चकृम
	श्रावयामास	श्रावयामासिव	श्रावयामासिम

लिट् लकार में णिजन्त धातु के उत्तर आम् होता है। आम् के उत्तर भू, कृ, अस्—इन तीन धातुओं का प्रयोग होता है।

लृङ्

प्र० पु०	अश्रावयिष्यत्	अश्रावयिष्यताम्	अश्रावयिष्यन्
म० पु०	अश्रावयिष्यः	अश्रावयिष्यतम्	अश्रावयिष्यत
उ० पु०	अश्रावयिष्यम्	अश्रावयिष्याव	अश्रावयिष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्राव्यात्	श्राव्यास्ताम्	श्राव्यासुः
म० पु०	श्राव्याः	श्राव्यास्तम्	श्राव्यास्त
उ० पु०	श्राव्यासम्	श्राव्यास्व	श्राव्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रवत्	अशिश्रवताम्	अशिश्रवन्
	अशुश्रवत्	अशुश्रवताम्	अशुश्रवन्
म० पु०	अशिश्रवः	अशिश्रवतम्	अशिश्रवत
	अशुश्रवः	अशुश्रवतम्	अशुश्रवत
उ० पु०	अशिश्रवम्	अशिश्रवाव	अशिश्रवाम
	अशुश्रवम्	अशुश्रवाव	अशुश्रवाम

लुङ् विभक्ति परे रहने से णिजन्त धातु के उत्तर अङ् होता है। ङ् इत् हो जाने से केवल अ रहता है। यथा:—सेचि+द् = असेचि+अ+द्—

अङ् परे रहने से णिजन्त धातु अभ्यस्त होता है और णिच् के इकार का लोप होता है। यथा—अ+सेच् सेच्+अ + द्=असिसेच्+अ+द्—

अङ् परे अकारान्त (अदन्त (चुरादि और शास् भिन्न अभ्यस्त धातु के परभाग का दीर्घ स्वर ह्रस्व होता है और अकार-भिन्न पूर्वभाग का ह्रस्व स्वर दीर्घ होता है। यथा—असीसिच् + अ + द् = असीषिचत् मोचि + अ + द् = अमूमुचत् ।

अभ्यस्त धातु का पर-भाग गुरु स्वर युक्त होने से पूर्वभाग का ह्रस्व स्वर दीर्घ नहीं होता। यथा—निन्दि+द्=अनिनिन्दत् ।

परभाग लघुस्वरयुक्त होने से, पूर्व भाग का अकार—ईकार होता है। यथा:—पाति+द् = पात् पात् + अ + द् = अपपत्+अ + द्= अपीपतत् ।

अनेक स्वर विशिष्ट धातु के पूर्व भाग का 'अ' विकल्प से ईकार होता है। यथा:—चकासि+द् = अचीचकासत्, अचचकासत् (परभाग गुरु स्वर युक्त) शासि + द् = अशशासत्, भक्षि—अबभक्षत् ।

णिजन्त स्मृ, दॄ, त्वर्, स्तॄ, प्रथ् भिन्न संयुक्त वर्ण परे रहने से पूर्व भाग के अकार के स्थान में इकार होता है। यथा—व्यथि + द् = अविव्यथत्, ज्ञापि—अजिज्ञपत्, स्मारि, + द्=असस्मरत्, दारि—अददरत्; त्वरि—अतत्वरत्; स्तारि—अतस्तरत्; प्रथि —अपप्रथत् ।

णिजन्त चेष्ट् और वेष्ट् धातु का उक्त कार्य विकल्प से होता है। यथा—चेष्टि—अचिचेष्टत्, अचचेष्टत् ; वेष्टि—अविवेष्टत्, अववेष्टत् ।

णिजन्त भ्राजादि[1] धातु के परभाग की उपधा गुरुस्वर विकल्प से लघु होता है। यथा—भ्राजि+द्=अबिभ्रजत्, अबभ्राजत् ; दीपि—अदीदिपत्, अदिदीपत् ।

---

१. भ्राजादि धातु—भ्राज्, दीप्, भास्, भाष्, जीव्, मील्, पीड्, कण्, रण्, भण्, श्रण्, लप्, लुप् इत्यादि ।

जिन धातुओं की उपधा में ऋकार रहता है, णिजन्त करने से वे अङ् परे रहने पर विकल्प से धातु की आकृति धारण करते हैं। यथा— वर्ति + द् = अवर्ति + अ + द् = अ + वृत् वृत् + अ + द् = अवीवृतत्। पक्षे—अववर्तत्।

अङ् परे स्वापि—सुषुप, स्थापि—तिष्ठिप , और (पानार्थ) पायि—पीपी होता है। यथाः—स्वापि + द् = असूषुपत्; स्थापि—अतिष्ठिपत्; पायि—अपीप्यत्।

अङ् परे णिजन्त श्रु, स्रु, द्रु, प्रु, प्लु, च्यु धातु के पूर्व भाग के अकार के स्थान में विकल्प से इकार होता है। यथा—श्रावि + त् = अशिश्रवत्, अशुश्रवत्; द्रु—अदिद्रवत्, अदुद्रवत्।

अङ् परे रहने से, अकारान्त चुरादि के पूर्वभाग के अकार के स्थान में ई नहीं होता। यथा—रचि + द् = अररचत्।

अङ् परे गण और कथ धातु के पूर्वभाग का अकार विकल्प से 'इ' होता है। यथाः—गणि + द् = अजीगणत्, अजगणत्; कथि—अचीकथत्, अचकथत्।

गणधातु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजीगणत्	अजीगणताम्	अजीगणन्
म० पु०	अजीगणः	अजीगणतम्	अजीगणत
उ० पु०	अजीगणम्	अजीगणाव	अजीगणाम

णिजन्त धातु के प्रयोग में जो अन्य कर्ता को किसी कार्य में प्रवर्तित करता है उसे 'प्रयोजक कर्ता' कहते हैं। कर्तृवाच्य में प्रयोजक कर्ता में प्रथमा होती है और प्रयोजन कर्ता के अनुसार क्रिया के पुरुष और वचन होते हैं। प्रयोजक कर्ता जिसे क्रिया में नियुक्त करता है अर्थात् जो प्रेरित होकर काम करता है, उसे 'प्रयोज्यकर्ता' कहते हैं। प्रयोज्यकर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। यथाः—गुरुः छात्रेण लेखयति (लिखन्तं छात्रं प्रेरयति

गुरु छात्र द्वारा लिखवाता है)—यहाँ 'गुरुः' प्रयोजक कर्ता और 'छात्रेण' प्रयोज्य कर्ता है।

किसी किसी धातु का प्रयोज्य कर्ता कर्म होता है। जिस जिस धातु के प्रयोग में प्रयोज्य कर्ता कर्म होता है, सो नीचे दिखलाया जाता है।

गत्यर्थ[1], प्राप्त्यर्थ[2], ज्ञानार्थ[3], कथनार्थ, पठनार्थ, भोजनार्थ। (अद् और खाद् भिन्न) और अकर्मक धातुओं की अणिजन्तावस्था में जो कर्ता (प्रयोज्य कर्ता) वह उनकी णिजन्तावस्था में कर्म होता है।[4] तब उसे प्रयोज्य कर्म कहते हैं और प्रयोज्य कर्म में द्वितीया होती है। यथा:—

(गत्यर्थ)—पुत्रः विद्यामन्दिरं गच्छति--पिता पुत्रं विद्यामन्दिरं गमयति।

(प्राप्त्यर्थ);--दरिद्रः धनं प्राप्नोति—आढ्यः दरिद्रं धनं प्रापयति।

(ज्ञानार्थ)—शिष्यं शास्त्रं बुध्यते जानाति वा—गुरुः शिष्यं शास्त्रं बोधयति ज्ञापयति वा।

(कथनार्थ) छात्रः पाठं वक्ति—गुरुश्छात्रं पाठं वाचयति।

(पठनार्थ) ब्रह्मचारी वेदं पठति—आचार्यः ब्रह्मचारिणं वेदं पाठयति।

(ग्रहणार्थ) विप्रः दक्षिणां गृह्णाति—यजमानः विप्रं दक्षिणां ग्राहयति।

(दर्शनार्थ) बालश्चन्द्रं पश्यति-जननी बालं चन्द्रं दर्शयति।

(श्रवणार्थ) सभ्याः पुराणं शृण्वन्ति—वाचकः सभ्यान् पुराणं श्रावयति।

---

१. प्रवेश, आरोहण, धातु भी गत्यर्थक हैं।

२. ग्रह् धातु भी प्राप्त्यर्थक है।

३. दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्पर्श इत्यादि भी ज्ञानार्थक है।

४. गमनाहारबोधार्थ-शब्दार्थकर्म-धातुषु [अणिजन्तेषु यः कर्ता, स्याण्णिजन्तेषु कर्म तत्।]

(भोजनार्थ) ब्राह्मणाः अन्नं भुञ्जते—व्रती ब्राह्मणान् अन्नं, भोजयति।

(अकर्मक)—शिशुः शेते—माता शिशुं शाययति।

हृ और कृ धातु की अणिजन्तावस्था में कर्ता (प्रयोज्यकर्ता) णिजन्तावस्था में विकल्प से कर्म होता है। और विकल्प पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

(हृ) चौरः धनं हरति—चौरः चौरं चौरेण वा धनं हारयति।
भृत्यः भारं हरति—प्रभुः भृत्यं भृत्येन वा भारं हारयति।
(कृ) दासः कर्म करोति—प्रभुः दासं दासेन वा कारयति।

अनुवाद

पिता पुत्रं गीतां पाठयति—पिता पुत्र को गीता पढ़ाता है। रामः कृष्णेन पत्रं वाचयति—राम कृष्ण के द्वारा पत्र बँचवाता है। व्यासः श्रोतॄन् कथां श्रावयति—व्यास जी श्रोताओं को कथा सुनाते हैं। सत्सङ्गजानि निधानान्यपि तारयन्ति—उत्तम कार्य के लिए मृत्यु भी मोक्षदायक है। सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्—खूब गर्म किया हुआ पानी भी आग को बुझा ही देता है।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—गुरुः शिष्यं मन्त्रं ग्राहयति। आस्वादयति सर्वेषां विषयाणां सुखानि यः। आकारय मुनीन् भोजनाय। अश्वपालः अश्वं गृहं गमयति। माता पुत्रं जागरयति। अध्यापकश्छात्रं व्याकरणम् अध्यापयति। सेवयति तापसः तपः। सन्तापशालिनीं त्वां कथमनलः सन्तापयिष्यति। क्षिप्रं वाहय रथम्। तेषामज्ञानजः तमो नाशयामि। लङ्कामग्निना अदीदिपत्। शिरसि लिखितं को वा लङ्घयति। आज्ञापय लोकेषु यत्करणीयम्। वातोऽपि नाचालयद् अंशुकानि।

संस्कृत में अनुवाद करो :—प्रभु ने भृत्य से भार ढुवाया। कृष्ण ने युधिष्ठिर से अश्वमेध यज्ञ करवाया। माता प्रतिदिन बच्चों को खिलाती है। उसने मुझे चित्र दिखाया। शिक्षक छात्रों से इतिहास पढ़वाते हैं।

सनन्त धातु

इच्छा अर्थ में धातु के उत्तर सन् प्रत्यय होता है। सन् का स रहता है। सन् प्रत्ययान्त धातु को सनन्त धातु कहते हैं। यथाः—कर्तुमिच्छति (करने की इच्छा करता है)—चिकीर्षति।

स्वार्थ में कितादि[1] धातु के उत्तर सन् प्रत्यय होता है। यथाः—कित्+स—

सन् प्रत्यय होने से वे पुनः स्वतन्त्र सनन्त धातुओं में परिगणित होकर, चतुर्लकार में भ्वादिगणीय धातु के तुल्य रूप धारण करते हैं। परस्मैपद वा आत्मनेपद में जिस पद की धातु के उत्तर सन् होता है, पश्चात् भी सनन्त धातु उसी पद में रहता है।

सन् परे रहने से धातु अभ्यस्त होता है। यथा—कित् कित्+स चिकित्+स—

सन् परे रहने से कितादि धातु के उत्तर इट् नहीं होता। यथा—चिकित्स+ति।

अनिट् सन् परे रहने से गुण नहीं होता। यथा—चिकित्सति। तिज्+स=तितिक्षते;—जुगुप्सते।

---

१. कितादि—कित्, तिज्, गुप्, वध, मान्

गुपो बधेश्च निन्दायां, क्षमायाञ्च तथा तिजः।
संशये च प्रतीकारे कितः सन्नभिधीयते।

विशेषः—कित् धातु के उत्तर रोगापनयन और संशय अर्थ से, तिज् धातु के उत्तर क्षमा अर्थ में गुप् और वध् धातु के उत्तर निन्दा अर्थ में और मान् धातु के उत्तर विचार अर्थ में सन् होता है, यथा—चिकित्सति व्याधिम्; विचिकित्सति मे मनः; तितिक्षिते जुगुप्सते, बीभत्सते वा विषयं योगी; मीमांसते शास्त्रम्। श्रु धातु के उत्तर सेवा अर्थ में भी सन् होता है। यथा—शुश्रूषते पितरम्।

अभ्यस्त वध् और मान् धातु के पूर्व भाग के अकार के स्थान में ई होता है। यथा—बध्+स+ते = बबध् + स + ते = बीभत्सते; मान्—मीमांसते।

सन् परे रहने से सेट् धातु के उत्तर इट् होता है यथाः—पठ+स+ति = पपठि+स+ति—

अभ्यस्त सनन्त धातु के पूर्व भाग का अ = इ होता है। यथा = पपठि+स+ति = पिपठिषति; जीव्=जिजीविषति; सेव्=सिसेविषते।

गुण की सम्भावना न रहने से अथवा अन्य किसी विशेष नियम द्वारा बाधित न होने से सभी सेट् धातुओं का रूप ऐसा ही होगा।

अनिट् धातु का रूप=यथा=नम् + स+ति = निनंसति ; दह् + स + ति = दिधक्षति; भिद् = बिभित्सति; बुध् = बुभुत्सते; पा = पिपासति; स्था = तिष्ठासति। किसी विशेष नियम द्वारा बाधित न होने तक सभी अनिट् धातुओं का रूप इसी प्रकार होगा।

सन् परे रहने से [1]वृतादि धातु के उत्तर परस्मैपद में इट् नहीं होता। यथा = वृत्+स+ति=विवृत्सति; स्यन्द=सिस्यन्त्सति, (आत्मनेपद में) सिस्यन्दिषते।

सन् के परत्व में इट् होने पर उस इत् के परे रहते उपधा लघुस्वर को गुण होता है। किन्तु विदादि धातु को गुण नहीं होता। यथा= वृत् + स + ते = विवर्तिषते। विदादि—विद् = विविदिषति; रुद् = रुरुदिषति, मुष् = मुमुषिषति।

आदि में व्यञ्जनवर्ण और उपधा में 'उ' तथा 'इ' रहने से सेट् धातु को विकल्प से गुण होता है। किन्तु अन्त में व रहने से; नित्य गुण होता है। यथा = (व्यञ्जनादि उपधा 'इ') लिख्=लिलेखिषति, लिलिखिषति; (उपधा उ) रुच् = रुरोचिषति, रुरुचिषति, (वान्त) दिव् = दिदेविर्षात, दिदिविष्यति।

---

१. वृत्, वृध, शुध्, स्यन्द्, कृप्।

किन्तु ऋवर्ण ओष्ठ्यवर्ण में युक्त होने में ऊर् होता है। यथा—कृ—चिकीर्षति; मृ—मुमूर्षते।

सन् परे अभ्यस्त मा—मित्, दा—दित्—धा—धित्, रभ्—रिभ्, लभ्—लिप, शक्—शिक् पद् और पत्—पित्, आप्—ईप् होता है। यथा—मा—मित्सति; दा—दित्सति; धा—धित्सति; रभ्—रिप्सते; लभ्—लिप्सते; शक्—शिक्षति; पद्—पित्सते; पत्—पित्सति; आप्—ईप्सति।

सन् परे अभ्यस्त अद्—जिघत्, दिव्—दुद्यू, ष्ठिव्—तुष्ठू, सिव्—सुस्यू होता है। यथा—अद्—जिघत्सति; दिव्—दुद्यूषति; ष्ठिव्—तुष्ठूषति; सिव्—सुस्यूर्षति।

सनन्त धातु के रूप

चिकीर्ष् धातु (करने की इच्छा करना)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिकीर्षति	चिकीर्षतः	चिकीर्षन्ति
म० पु०	चिकीर्षसि	चिकीर्षथः	चिकीर्षथ
उ० पु०	चिकीर्षामि	चिकीर्षावः	चिकीर्षामः

लोट्

प्र० पु०	चिकीर्षतु	चिकीर्षताम्	चिकीर्षन्तु
म० पु०	चिकीर्ष	चिकीर्षतम्	चिकीर्षत
उ० पु०	चिकीर्षाणि	चिकीर्षाव	चिकीर्षाम

लङ्

प्र० पु०	अचिकीर्षत्	अचिकीर्षताम्	अचिकीर्षन्
म० पु०	अचिकीर्षः	अचिकीर्षतम्	अचिकीर्षत
उ० पु०	अचिकीर्षम्	अचिकीर्षाव	अचिकीर्षाम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चकीर्षेत्	चकीर्षेताम्	चिकीर्षेयुः
म० पु०	चिकीर्षेः	चिकीर्षेतम्	चिकीर्षेत
उ० पु०	चिकीर्षेयम्	चिकीर्षेव	चिकीर्षेम

लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिकीर्षामास चिकीर्षाम्बभूव चिकीर्षाञ्चकार	चिकीर्षामासतुः चिकीर्षाम्बभूवतुः चिकीर्षाञ्चक्रतुः	चिकीर्षामासुः चिकीर्षाम्बभूवुः चिकीर्षाञ्चक्रुः
म० पु०	चिकीर्षामासिथ चिकीर्षाम्बभूविथ चिकीर्षाञ्चकर्थ	चिकीर्षामासथुः चिकीर्षाम्बभूवथुः चिकीर्षाञ्चक्रथुः	चिकीर्षामास चिकीर्षाम्बभूव चिकीर्षाञ्चक्र
उ० पु०	चिकीर्षामास चिकीर्षाम्बभूव चिकीर्षाञ्चकार-(चकर)	चिकीर्षामासिव चिकीर्षाम्बभूविव चिकीर्षाञ्चकृव	चिकीर्षामासिम चिकीर्षाम्बभूविम चिकीर्षाञ्चकृम

लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचिकीर्षीत्	अचीकीर्षिष्टाम्	अचिकीर्षिषुः
म० पु०	अचिकीर्षीः	अचिकीर्षिष्टम्	अचिकीर्षिष्ट
उ० पु०	अचिकीर्षिषम्	अचीकीर्षिष्व	अचिकीर्षिष्म

लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिकीर्षिता	चिकीर्षितारौ	चिकीर्षितारः
म० पु०	चिकीर्षितासि	चिकीर्षितास्थः	चिकीर्षितास्थ
उ० पु०	चिकीर्षितास्मि	चिकीर्षितास्वः	चिकीर्षितास्मः

लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचिकीर्षिष्यत्	अचिकीर्षिष्यताम्	अचिकीर्षिष्यन्
म० पु०	अचिकीर्षिष्यः	अचिकीर्षिष्यतम्	अचिकीर्षिष्यत
उ० पु०	अचिकीर्षिष्यम्	अचिकीर्षिष्याव	अचिकीर्षिष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चिकीर्ष्यात्	चिकीर्ष्यास्ताम्	चिकीर्ष्यासुः
म० पु०	चिकीर्ष्याः	चिकीर्ष्यास्तम्	चिकीर्ष्यास्त
उ० पु०	चिकीर्ष्यासम्	चिकीर्ष्यास्व	चिकीर्ष्यास्म

यङन्त धातु

पौनःपुन्य और अतिशय अर्थ में एक स्वर-विशिष्ट व्यञ्जनादि धातु के उत्तर यङ्-प्रत्यय होता है। यङ् का य शेष रहता है यङ् प्रत्ययान्त धातु को यङन्त धातु कहते हैं। यङन्त धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—पुनः पुनः अतिशयेन वा करोति = चेक्रीयते (बार बार अथवा अत्यन्त करता है।)

यङ् परे रहने से धातु अभ्यस्त होकर यावतीय अभ्यस्त–कार्य प्राप्त होता है, अभ्यस्त होने से, समस्त भाग धातु-संज्ञा प्राप्त होकर स्वतन्त्र यङन्त धातु में गण्य होता है और चतुर्लकार में भ्वादिगणीय धातु के तुल्य उसके रूप होते हैं।

यङन्त होने से, अभ्यस्त धातु के पूर्व भाग के अन्त्य स्वर का गुण और अकार की वृद्धि होती है। यथा पुनः पुनः शोचति—शुच् + य+ते = शोशुच्यते; लुप्—लोलुप्यते ; रुद्—रोरुद्यते ; भिद्—बेभिद्यते, लप्—लालप्यते।

यङ् परे रहने से, अभ्यस्त मकारान्त और नकारान्त धातु के पूर्व भाग के स्वर वर्ण के पश्चात् 'म्' होता है। परन्तु लान्त, वान्त और यान्त धातुओं के पश्चात् विकल्प से होता है। यथाः—मन्—मम्मन्यते; क्रम्—चङ्क्रम्यते; चल्—चञ्चल्यते, चाचल्यते।

जिस धातु की उपधा में ऋकार होता है, अभ्यस्त उस धातु के पूर्व भाग के पश्चात् 'री' होता है। यथाः—नृत्—नरीनृत्यते।

यङन्त होने से, अभ्यस्त ऋकारान्त धातु के पूर्व—भाग का ऋ-ए और परभाग का ऋ—री होता है। यथा कृ—चेक्रीयते; सृ + सेस्रीयते।

यङ् परे रहने से अभ्यस्त चर्—चञ्चूर फल्—पम्फुल; हन्—जङ्घन्यते, जेघ्नीयते; दह्—दन्दह्, शप्—शंशप्, भज् बम्भज् होता है। जङ्घन्यते, जेघ्नीयते; दह्—दन्दह्यते; शप्—शंशप्यते; भज्—बम्भज्यते

यङ् परे रहने से अभ्यस्त स्रन्स्— सनीस्रस्, पत्—पनीपत्, पद-पनीपद्, वच्—वनीवच्, ध्वन्स्—दनीध्वस् होता है। यथाः-स्रन्स-सनीस्रस्यते; पत्—पनीपत्यते; पद्—पनीपद्यते; वच्—वनीवच्यते; ध्वन्स्— दनीध्वस्यते।

यङ् परे रहने से अभ्यस्त गॄ—जेगिल, दा—देदी, जन्—जाजन् और जञ्जन्, शी—शाशय्, स्वप्—सोषुप्, जेघ्री, दन्श्—दन्दश्, स्था—तेष्ठी, अट्—अटाट् होता है। यथा:—गॄ—जेगिल्यते; दा—देदीयते; जन्—जाजन्यते, जञ्जन्यते; शी—शाशय्यते; स्वप्—सोषुप्यते; घ्रा—जेघ्रीयते; दन्श—दन्दश्यते; स्था—तेष्ठीयते; अट्—अटाट्यते।

यङ् परे रहने से अभ्यस्त व्ये—वेवी, और चाय्—चेकी होता है। यथा:—व्ये+वेवीयते; चाय्—चेकीयते।

यङन्त धातु के रूप

चेक्रीय धातु

लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चेक्रीयते	चेक्रीयेते	चेक्रीयन्ते
म० पु०	चेक्रीयसे	चेक्रीयेथे	चेक्रीयध्वे
उ० पु०	चेक्रीये	चेक्रीयावहे	चेक्रीयामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चेक्रीयताम्	चेक्रीयेताम्	चेक्रीयन्ताम्
म० पु०	चेक्रीयस्व	चेक्रीयेथाम्	चेक्रीयध्वम्
उ० पु०	चेक्रीयै	चेक्रीयावहै	चेक्रीयामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचेक्रीयत	अचेक्रीयेताम्	अचेक्रीयन्त
म० पु०	अचेक्रीयथाः	अचेक्रीयेथाम्	अचेक्रीयध्वम्
उ० पु०	अचेक्रीये	अचेक्रीयावहि	अचेक्रीयामहि

यङ्लुगन्त धातु

कई धातुओं के उत्तर विकल्प से यङ् का लोप होता है। लोप होने से उनको यङ्लुगन्त धातु कहते हैं। यङ्लुगन्त धातु परस्मैपदी होता है। यथा:—लिह्—लेलिह्यति—लेलेढि। लप्—लालपीति, लालप्ति; सिच्—सेसेचीति, सेसेक्ति; दीप्—देदीपीति; शुच्—शोशोचीति, शोशोक्ति; भू—बोभवीति, बोभोति; नृत्—नरीनर्ति, नर्नर्ति; वृत्—वरीवर्ति, वर्वर्त्ति।

यङ्लुगन्त धातु के रूप

लेलिह् धातु

लट्

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लेलेढि	लेलीढः	लेलिहन्ति
म० पु०	लेलेक्षि	लेलीढः	लेलीढ
उ० पु०	लेलेह्मि	लेलिह्वः	लेलिह्मः

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	लेलिढे	लेलिहाते	लेलिहते
म० पु०	लेलिक्षे	लेलिहाथे	लेलीढ्वे
उ० पु०	लेलिहे	लेलिह्वहे	लेलिह्महे

लोट्

(परस्मैपद)

प्र० पु०	लेलेढु, लेलीढात्	लेलीढाम्	लेलिहन्तु
म० पु०	लेलेढि	लेलीढम्	लेलीढ
उ० पु०	लेलिहानि	लेलिहाव	लेलिहाम

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लेलीढाम्	लेलिहाताम्	लेलिहताम्
म० पु०	लेलिक्ष्व	लेलिहाथाम्	लेलीढ्वम्
उ० पु०	लेलिहै	लेलिहावहै	लेलिहामहै

लङ्

(परस्मैपद)

प्र० पु०	अलेलेट् (ड्)	अलेलीढाम्	अलेलिहन्
म० पु०	अलेलेट् (ड्)	अलेलीढम्	अलेलीढ
उ० पु०	अलेलेहम्	अलेलिह्व	अलेलिह्म

(आत्मनेपद)

प्र० पु०	अलेलीढ	अलेलिहाताम्	अलेलिहत
म० पु०	अलेलीढाः	अलेलिहाथाम्	अलेलीढ्वम्
उ० पु०	अलेलिहि	अलेलिह्वहि	अलेलिह्महि

विधिलिङ्

(प०) लेलिह्यात् ; लेलिह्याः ; लेलिह्याम् ;
(आ) लेलिहीत, लेलिहीथाः , लेलिहीय ।

लुङ्

(प०) अलेलिक्षत् अलेलिक्षताम् , अलेलिक्षन् , अलेलिक्षः, अलेलिक्षतम्, अलेलिक्षत इत्यादि ।

(आ०) अलेलिक्षत—अलेलीढ , अलेलिक्षाताम् , अलेलिक्षन्त, अलेलिक्षथाः, अलेलीढाः इत्यादि ।

नामधातु

काम्य (काम्यच्)—आत्मसम्बन्धी (अपनी) इच्छा समझाने से शब्द के उत्तर काम्य—प्रत्यय होता है। काम्य-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी होते हैं। यथा:—आत्मन: पुत्रमिच्छति = पुत्रकाम्यति (पुत्र की कामना करता है) एवं—धनकाम्यति, यशस्काम्यति इत्यादि।

विशेष: —काम्य (काम्यच्) प्रत्यय तभी होता है जब स्वत: कामना हो। दूसरे के लिए कामना करने पर यह प्रत्यय नहीं होता। यथा:—गुरो: पुत्रमिच्छति—यहाँ गुरो: पुत्रकाम्यति प्रयोग अशुद्ध है।

काम्य प्रत्ययान्त धातु के रूप

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पुत्रकाम्यति	पुत्रकाम्यत:	पुत्रकाम्यन्ति
म० पु०	पुत्रकाम्यसि	पुत्रकाम्यथ:	पुत्रकाम्यथ
उ० पु०	पुत्रकाम्यामि	पुत्रकाम्याव:	पुत्रकाम्याम:

लोट्

प्र० पु०	पुत्रकाम्यतु	पुत्रकाम्यताम्	पुत्रकाम्यन्तु
म० पु०	पुत्रकाम्य	पुत्रकाम्यतम्	पुत्रकाम्यत
उ० पु०	पुत्रकाम्यानि	पुत्रकाम्याव	पुत्रकाम्याम

लङ्

प्र० पु०	अपुत्रकाम्यत्	अपुत्रकाम्यताम्	अपुत्रकाम्यन्
म० पु०	अपुत्रकाम्य:	अपुत्रकाम्यतम्	अपुत्रकाम्यत
उ० पु०	अपुत्रकाम्यम्	अपुत्रकाम्याव	अपुत्रकाम्याम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पुत्रकाम्येत्	पुत्रकाम्येताम्	पुत्रकाम्येयुः
म० पु०	पुत्रकाम्येः	पुत्रकाम्येतम्	पुत्रकाम्येत
उ० पु०	पुत्रकाम्येयम्	पुत्रकाम्येव	पुत्रकाम्येम

लृट्

प्र० पु०	पुत्रकाम्यिष्यति	पुत्रकाम्यिष्यतः	पुत्रकाम्यिष्यन्ति
म० पु०	पुत्रकाम्यिष्यसि	पुत्रकाम्यिष्यथः	पुत्रकाम्यिष्यथ
उ० पु०	पुत्रकाम्यिष्यामि	पुत्रकाम्यिष्यावः	पुत्रकाम्यिष्यामः

इसी प्रकार अन्य लकारों के भी रूप होंगे। अवशिष्ट प्रत्येक लकार के एक एक रूप नीचे लिखे जाते हैं।

लिट्—पुत्रकाम्यामास, पुत्रकाम्याम्बभूव, पुत्रकाम्याञ्चकार।

लुङ्—अपुत्रकाम्यीत्।

लुट्—पुत्रकाम्यिता।

लृङ्—अपुत्रकाम्यिष्यत्।

आशीर्लिङ्—पुत्रकाम्यात्।

क्य (क्यच्):—आत्मसम्बन्धी इच्छा में मकारान्त और अव्यय-भिन्न शब्द के उत्तर क्य प्रत्यय होता है। क् इत् हो जाने से य शेष रहता है। क्य प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी होते हैं। यथाः—आत्मनः पुत्र-मिच्छति = पुत्र + य + ति—

क्य प्रत्यय का य परे रहने से पूर्व अवर्ण के स्थान में ई होता है। यथाः—पुत्र + य + ति = पुत्रीयति (पुत्र की कामना करता है)।

मान्त—किं काम्यति ; अव्यय—स्वः काम्यति— यहाँ क्य प्रत्यय नहीं हुआ।

क्य और क्यङ् परे रहने से शब्द का अन्तस्थित ह्रस्व स्वर दीर्घ होता है।

आचरण (पोषण-सम्माननादि रूप व्यवहार) के अर्थ में उपमान[1] कर्म और अधिकरण कारक के उत्तर क्य होता है। यथा शिष्यं पुत्रमिव आचरति = पुत्रीयति शिष्यम् (शिष्य के साथ पुत्र जैसा व्यवहार करता है); भृत्यं सखायमिव आचरति—सखीयति भृत्यम् (भृत्य के साथ मित्र जैसा व्यवहार करता है); मित्रं रिपुमिव आचरित = रिपूयति मित्रम् (मित्र को शत्रुवत् देखता है); उपाध्यायं पितरमिव आचरति=पित्रीयति उपाध्यायम् (गुरु को पितातुल्य समझता है); कुटयां प्रासादे इवाचरति-प्रासादीयति कुटयाम् (कुटी को महल समझकर रहता है।

भोजनेच्छा अर्थ में अशन शब्द के उत्तर; पानेच्छा अर्थ में उदक शब्द के उत्तर, और आकाङ्क्षा अर्थ में धन शब्द के उत्तर क्य होता है। क्य परे रहने से असन—अशना, उदक-उदन् और धन-धना होता है।

यथा: - अन्नं भोक्तुमिच्छति = अशनायति अंन्नम् (अन्न खाने की इच्छा करता है); जलं पातुमिच्छति=उदन्यति जलम् (जल पीने) की इच्छा करता है); धनम् अभिकांक्षति =धनायति धनम् (धन की आकांक्षा करता है)।

कारण अर्थ में नमस्, तपस् और वरिवस् शब्द के उत्तर क्य होता है। यथाः—देवं नमस्करोति; = नमस्यति देवम् (देवता को नमस्कार करता है); तापसः तपः करोति, चरति=तपस्यति तापसः (तपस्वी तप करता है); गुरून् शुश्रूषते=परिचरति, सेवते=वरिवस्यति गुरून् गुरु की सेवा करता है) ; वरिवः - परिचर्यां करोति = वरिवस्यति।

---

१. जिसके साथ उपमा दी जाती है वह उपमान और जिसकी उपमा दी जाती है वह उपमेय होता है।

क्य और क्यङ् परे अन्तस्थित ऋ—री होता है।

क्य-प्रत्ययान्त धातु के रूप

पुत्रीय धातु

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पुत्रीयति	पुत्रीयत:	पुत्रीयन्ति
म० पु०	पुत्रीयसि	पुत्रीयथ:	पुत्रीयथ
उ० पु०	पुत्रीयामि	पुत्रीयाव:	त्रीयाम:

लोट्

प्र० पु०	पुत्रीयतु	पुत्रीयताम्	पुत्रीयन्तु
म० पु०	पुत्रीय	पुत्रीयतम्	पुत्रीयत
उ० पु०	पुत्रीयाणि	पुत्रीयाव	पुत्रीयाम

लङ्

प्र० पु०	अपुत्रीयत्	अपुत्रीयताम्	अपुत्रीयन्
म० पु०	अपुत्रीय:	अपुत्रीयतम्	अपुत्रीयत
उ० पु०	अपुत्रीयम्	अपुत्रीयाव	अपुत्रीयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पुत्रीयेत्	पुत्रीयेताम्	पुत्रीयेयु:
म० पु०	पुत्रीये:	पुत्रीयेतम्	पुत्रीयेत
उ० पु०	पुत्रीयेयम्	पुत्रीयेव	पुत्रीयेम

लृट्

प्र० पु०	पुत्रीयिष्यति	पुत्रीयिष्यत:	पुत्रीयिष्यन्ति
म० पु०	पुत्रीयिष्यसि	पुत्रीयिष्यथ:	पुत्रीयिष्यथ
उ० पु०	पुत्रीयिष्यामि	पुत्रीयिष्याव	पुत्रीयिष्याम:

लिट्— पुत्रीयामास; पुत्रीयाम्बभूव, पुत्रीयाञ्चकार ।

लुङ्—अपुत्रीयीत् ।

लुट्— पुत्रीयिता ।

लृङ्—अपुत्रीयिष्यत् ।

आशीर्लिङ—पुत्रीय्यात् ।

क्यङ्—आचरण अर्थ में उपमान कर्तृकारक के उत्तर 'क्यङ्' प्रत्यय होता है, क्यङ् का य रहता है क्यङ् प्रत्ययान्त धातु आत्मने-पदी होते हैं। यथाः—दण्ड इवाचरति = दण्डायते; पुत्र इवाचरति = पुत्रायते; विष्णुरिवाचरति = विष्णूयते ।

क्यङ् परे रहने से, व्यञ्जनान्त सकार का विकल्प से लोप होता है। यथा—पय इवाचरति; पयायते, पयस्यते ।

करण अर्थ में—शब्द, वैर और कलह शब्द के उत्तर क्यङ् होता है। यथाः—शब्दं करोति = शब्दायते, वैरं करोति = वैरायते; कलहं करोति = कलहायते ।

अनुभव अर्थ में सुख, दुःख और कृच्छ्र शब्द के उत्तर क्यङ् होता है। यथा सुखम् अनुभवति = सुखायते ; दुःखमनुभवति = दुःखायते ; कृच्छ्र-मनुभवति कृच्छ्रायते ।

उद्वमन (उद्गिरण) अर्थ में बाष्प, फेन, धूम और ऊष्मन् शब्द के उत्तर क्यङ् होता है। यथाः—बाष्पमुद्वमति = धूमायते; ऊष्माण-मुद्वमति = ऊष्मायते ।[1]

उद्गार-पूर्वक चर्वण अर्थ में रोमन्थ शब्द के उत्तर क्यङ् होता है। यथाः—रोमन्थायते गौः (उद्गीर्य—उगाल कर—चर्वयतीत्यर्थः)।

भृश, शीघ्र, चपल, मन्द, पण्डित, उत्सुक, सुमनस्, दुर्मनस्, उन्मनस्—इन शब्दों के उत्तर अभूततद्भाव[2] अर्थ में क्यङ् होता है। यथाः—अभृशो भृशो भवति = भृशायते; अशीघ्रः शीघ्रो भवति = शीघ्रायते; अचपलश्चपलो भवति = चपलायते; अमन्दो मन्दो भवति = मन्दायते; अपण्डितः पण्डितो भवति = पण्डितायते; अनुत्सुकः उत्सुको भवति = उत्सुकायते; असुमनाः सुमनाः भवति = सुमनायते[3] । अदुर्मनाः दुर्मनाः भवति = दुर्मनायते; अनुन्मनाः उन्मनाः भवति = उन्मनायते ।

१. क्यङ् परे अन्त्य नकार का लोप होता है ।

२. पूर्व में जैसा नहीं था वैसा होना।

३. सुमनस्—आदि शब्द के सकार का लोप होता है ।

क्विप् प्रत्ययान्त धातु के रूप

सुजन धातु

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सुजनति	सुजनतः	सुजनन्ति
म० पु०	सुजनसि	सुजनथः	सुजनथ
उ० पु०	सुजनामि	सुजनावः	सुजनामः

लोट्

प्र० पु०	सुजनतु	सुजनताम्	सुजनन्तु
म० पु०	सुजन	सुजनतम्	सुजनत
उ० पु०	सुजनानि	सुजनाव	सुजनाम

लङ्

प्र० पु०	असुजनत्	असुजनताम्	असुजनन्
म० पु०	असुजनः	असुजनतम्	असुजनत
उ० पु०	असुजनम्	असुजनाव	असुजनाम

विधिलिङ्—सुजनेत् ।

लृट्—सुजनिष्यति ।

लिट्—सुजनामास, सुजनाम्बभूव, सुजनाञ्चकार ।

लुङ्—असुजनीत् ।

लुट्—सुजनिता ।

लृङ्—असुजनिष्यत् ।

आशीर्लिङ्—सुजन्यात् ।

णिच्—करण अर्थ में शब्द के उत्तर णिच् प्रत्यय होता है णिच् होने से वे सभी कार्यविधान होते हैं जो णिच् प्रकरण में दिये गये हैं। यथाः—प्रश्नं करोति = प्रश्नयति; शब्दं करोति = शब्दयति; पवित्रं करोति—पवित्रयति ।

णिच् परे रहने से पृथु—प्रथ्, मृदु—म्रद्, दृढ—द्रढ्, स्थूल—स्थव्, दूर—दव् अन्तिक—नेद्, बहुल् - वह्, दीर्घ—द्राघ् होता है। यथा:— पृथुं करोति=प्रथयति; मृदुं करोति = म्रदयति; दृढं करोति = द्रढयति; स्थूलं करोति = स्थवयति; दूरं करोति = दवयति; अन्तिकं करोति = नेदयति; बहुलं करोति = बंहयति, दीर्घं करोति = द्राघयति।

शब्द विशेष के उत्तर अर्थ विशेष में भी णिच् होता है। यथा—त्वचं गृह्णाति = त्वचयति, पाशं विमोचयति = विपाशयति; वस्त्रं समाच्छादयति = संवस्त्रयति; वर्मणा संनह्यति = संवर्मयति; मुण्डं करोति = मुण्डयति; एवं श्लक्ष्णयति, लवणयति, सत्यं करोति आचष्टे वा सत्यापयति; वेदमाचष्टे = वेदापयति; वीणया आचष्टे उपगायति = उपवीणयति; श्लोकैरुपस्तौति = उपश्लोकयति; सेनया अभिमुखं याति-अभिषेणयति; पुच्छम् उत्क्षिपति = उत्पुच्छायते।

कण्ड्वादि

य (यक्)—कण्डू [१]आदि धातुओं के उत्तर स्वार्थ में य प्रत्यय होता है। यथा:—कण्डूयति, कण्डूयते; 'मृगीमकण्डूयत कृष्णसार:'।

असू—असूयति (असूया—दोषदर्शन करता है; असन्तुष्ट वा विरक्त होता है, पराङ्मुख होता है) प्राय: चतुर्थ्यन्त व्यक्ति वा वस्तु के साथ प्रयुक्त होता है। यथा:—असूयन्ति सचिवोपदेशाय, असूयन्ति मह्यं प्रकृतय: इत्यादि।

भिषज् - भिषज्यति (चिकित्सा करता है)

चित्री— चित्रीयते (विस्मय-आश्चर्य-उत्पादन करता है); चित्रीयते हेममृग:।

मही—महीयते (पूजां लभते-पूजित सम्मानित होता है-सुखी समृद्ध होता है)

---

१. ये नामधातुएँ हैं:—कण्डूञ् गात्रविघर्षणे (खुजलाना); असूङ् उपतापे; भिषज् चिकित्सायाम्, चित्रङ् आश्चर्ये; महीङ् पूजायाम्; हृणीङ् लज्जायाम्।

हृणी—हृणीयते (लज्जित होता है)। त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते।

अनुवाद

जलं पिपासति पथिकः=पथिक जल पीने की इच्छा करता है। सुशीलः बालकः पुस्तकानि पापठ्यते=सुशील बालक पुस्तकोंको बार-बार पढ़ता है। यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम्=जो संसार को तड़पाता है वही मुझे दुःख देता है। राजा दरिद्राय अन्नं दित्सति=राजा दरिद्र को अन्न देने की इच्छा करता है।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो:—मैं इस पुस्तक को पढ़ना चाहता हूँ। वे फूल लेने की इच्छा करें। सिपाही शत्रुओं को मारने की इच्छा करेगा। दूकान-दार बार बार वस्तुओं की गणना करता है। वह भृत्यों के साथ मित्र की तरह आचरण करता है। कौन रस्सी को साँप समझता है। अध्यापकों को अपने शिष्यों के साथ पुत्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। वह नदी में स्नान करना चाहता है। राम अपने गुरु को प्रणाम करता है। वह अपने सगे भाई के साथ शत्रु का सा व्यवहार करता है। गायें पेड़ की छाया मे पागुर करती हैं। वह एक ही काम को बार-बार करता है। वह सभा में नाचना चाहता है। वे कक्षा में बार-बार हँसते हैं।

निम्नलिखित वाक्यखण्डों को एक शब्द में प्रकट कीजिए:-हन्तुमिच्छति। ज्ञातुमिच्छति। पुत्रमिवाचरति। बाष्पमुद्वमति। लब्धुमिच्छति। आत्मनः पुत्रमिच्छति। जीवितुमिच्छति। पुनः पुनः नृत्यति। कलहं करोति। आत्मनः यशः इच्छति। तपः करोति। पर इव आचरति। अपण्डितः पण्डितो भवति। बन्धुरिव आचरति। राजा इवाचरति। अचपलश्चपलो भवति। वह जानना चाहता है। वह जीतना चाहता है। वह राजा के समान आचरण करता है। वह पुत्र की कामना करता है। वह मरना ही चाहता है। निन्दा करना चाहता है। वह पीना चाहता है। वह सूचित करना चाहता है। वह खेलना चाहता है। वह उड़ना चाहता है। वह मुक्ति की आकाङ्क्षा करता है। वह हवन करना चाहता है।

सनन्त, यङन्त धातुओं की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

परस्मैपद और आत्मनेपद विधान

भ्वादिगणीय धातु

क्रम्—उपसर्ग-हीन क्रम् धातु विकल्प से आत्मनेपदी होता है। यथा:—क्रमते, क्रामति। किन्तु उत्साह, अप्रतिबंध और वृद्धि अर्थ में नित्य आत्मनेपदी होता है। यथा:—उत्साह—क्षेत्रकर्षणाय क्रमते (उत्सहते इत्यर्थः); अप्रतिबन्ध—शास्त्रेषु क्रमते बुद्धिः (न प्रतिहन्यते-अप्रतिहता भवतीत्यर्थः); वृद्धि;—सतां श्रीः क्रमते (वर्द्धते इत्यर्थः)

ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिःपदार्थों का ऊर्ध्वगमन समझाने से 'आ' पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—आक्रमते भानुः (नभो मण्डलम् आरोहतीत्यर्थः)। ज्योतिर्भिन्न अन्य पदार्थों के ऊर्ध्व गमन में यह धातु आत्मनेपदी नहीं होता। यथा:—आक्रामति धूमो गगनम्; शैलमाक्रामति।

आरम्भ अर्थ में प्र और उप पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—भोक्तुं प्रक्रमते, उपक्रमते (आरभते इत्यर्थः)

पादविक्षेप अर्थ में वि-पूर्वक क्रम धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—साधु विक्रमते बाजी। अन्य अर्थ में नहीं होता है। यथा:—विक्रामति राजा (विक्रमं प्रकाशयतीत्यर्थः)।

क्रीड्-आ, अनु और परिपूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा—आक्रीडते, अनुक्रीडते, परिक्रीडते माणवकः।

सम् पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः। किन्तु कूजन (अव्यक्तध्वनि) अर्थ में नहीं होता है। यथा:—संक्रीडति रथः; संक्रीडन्ति विहङ्गमाः।

गम्—कर्म न रहने से सम् पूर्वक गम् धातु (मिलनार्थ) आत्मनेपदी होता है। यथा:—"एते भगवत्यौ कलिन्दकन्या-मन्दाकिन्यौ सङ्गच्छेते"। कर्म रहने से नहीं होता। यथा:—सङ्गच्छति मित्रम्।

सम्पूर्वक अकर्मक ऋ (ऋच्छ) धातु भी आत्मनेपदी होता है। यथा:—समृच्छति; "समारन्त ममाभीष्टाः सङ्कल्पाः।"

चर्—सकर्मक होने से उत् पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—गुरुवचनमुच्चरते (उल्लङ्घयतीत्यर्थः)।

तृतीयाविभक्त्यन्त पद के योग से सम् पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—पादेन सञ्चरने; रथेन सञ्चरते, "क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणाम्।"

जि—वि और परा पूर्वक जि धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—विजयते, पराजयते,

तप्—कर्म न रहने से अथवा अपना अङ्ग (अवयव) कर्म होने से उत् और वि-पूर्वक तप् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—उत्तपते, वितपते रविः (दीप्यते इत्यर्थः); उत्तपते पाणिम्। स्वाङ्ग कर्म न होने से नहीं होता। यथा:—वितपति भुवं सविता।

नी-कर्ता में अवस्थित किन्तु कर्ता के अङ्ग से भिन्न कर्म होने से, अपनयन अर्थ में वि-पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है। यथा क्रोधं विनयते (शमयतीत्यर्थः)। कर्तृगत न होने से नहीं होता। यथा:—गुरोः क्रोधं विनयति। अङ्ग होने से नहीं होता। यथा:—व्रणं विनयति।

शिक्षा—अर्थ में 'वि+नी' परस्मैपदी होता है। यथा:—"विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।"

यम्—अकर्मक होने से आ-पूर्वक 'यम्' धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—आयच्छते (दीर्घीभवतीत्यर्थः) सकर्मक को नहीं होता। यथा:—आयच्छति कूपाद् रज्जुम् (आकर्षति, उद्धरतीत्यर्थः)। अपना अवयव ही यदि कर्म हो तो आत्मनेपदी होता है। यथा:—आयच्छते पादमात्मीयम् (दीर्घीकरोतीत्यर्थः)।

विवाह—अर्थ समझाने से उपपूर्वक यम् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा:—सुलक्षणां कन्यामुपयच्छते; "मेनां विधिनोपयेमे"।

रम् - वि; आ और परिपूर्वक रम् धातु परस्मैपदी होता है। यथा:-

"हा हन्त किमिति चित्तं विरमति नाद्यापि विषयेभ्यः । ;' आरमति उद्याने; "क्षणं पर्य्यरमत् तस्य दर्शनात्" ।

उप पूर्वक रम् धातु विकल्प से परस्मैपदी होता है । यथा:—इत्युक्त्वोपरराम; "यत्रोपरमते चित्तम्" "नात्र सीतेत्युपारंस्त" ।

वद्—मतभेद कलह अर्थ में वि पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है । यथा:—तत्त्वे विवदन्ते मुनयः (नानामतं प्रकटयन्तीत्यर्थः), क्षेत्रे विवदन्ते कर्षकाः (विप्रतिपद्यमाना विचित्रं वदन्तीत्यर्थः ।

बहुत आदमियों का मिलकर स्पष्ट शब्दोच्चारण अर्थ अभीष्ट हो तो सम्+प्र पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है । यथाः - सम्प्रवदन्ते विप्राः (सम्भूय मिलित्वा व्यक्तं वदन्तीत्यर्थः) । मनुष्य-भिन्न अन्यत्र नहीं होता । यथा:—"वरतनु ! सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः ।"

कर्म न रहने से अनु-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है । यथा गुरोरनुवदते शिष्यः (यथा गुरुणोक्तम्, तथा शिष्यो वदतीत्यर्थः) कर्म रहने से नहीं होता । यथा:—वाद्युक्तम् अनुवदति; 'गिरम् अनुवदति शुकस्ते ।'

अनेक मनुष्यों का एकत्र होकर परस्पर विरुद्ध वाक्य कथन अर्थ अभीष्ट हो तो वि + प्र' पूर्वक वद् धातु विकल्प से आत्मनेपदी होता है । यथा:—विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैद्याः (एको यादृक् वदति, तद् विरुद्धमपरो वदतीत्येवं सम्भूय विरुद्धमन्योऽन्यं वदन्तीत्यर्थः) ।

निन्दा, तिरस्कार अर्थ में अप पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है यथा:—न्यायमपवदते ।

स्था—किसी संदिग्ध विषय में निर्णय के लिये किसी का आश्रय ग्रहण समझाने से स्था धातु आत्मनेपदी होता है । यथा:—"संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः" (कर्णादीन् नेतृत्वेन आश्रयतीत्यर्थः)—तिष्ठतेरत्र अवस्थानमेवार्थः ।

'अभिप्राय-प्रकाश' अर्थ में स्था धातु आत्मनेपदी होता है । यथा:—रामाय तिष्ठते सीता (स्वाभिप्रायं प्रकाशयतीत्यर्थः) ।

प्रतिज्ञा (अङ्गीकार) अर्थ में 'आ' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है यथाः—शब्दं नित्यमातिष्ठते (शब्दो नित्यः इति प्रतिजानीते, अभ्युपगच्छति, अङ्गीकरोतीत्यर्थः)

सम्, अव, प्र और कदाचित् वि उपसर्ग के परवर्ती स्था धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते" ; "क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ"; 'हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे" 'पदैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्"।

उत् पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—मुक्तौ उत्तिष्ठते उद्युङ्क्ते, उद्यमं करोतीत्यर्थः) किन्तु उत्थान अर्थ में नहीं होता। यथाः-आसनात् उत्तिष्ठति।

देवपूजा, मिलन, मैत्रीकरण और मार्गगमन अर्थ में उप-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है। यथा (देवपूजा) विष्णुमुपतिष्ठते वैष्णवः (पूजयतीत्यर्थः) मिलन—यमुनामुपतिष्ठते गङ्गा (यमुनया सह सङ्गच्छते, मिलतीत्यर्थः) मैत्रीकरण—साधुमुपतिष्ठते साधुः (मैत्रीं करोतीत्यर्थः); मार्गगमन—अयं पन्थाः काशीमुपतिष्ठते (प्राप्नोतीत्यर्थः)।

मन्त्र-द्वारा आराधना अर्थ में उप-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—गायत्र्या सूर्य्यमुपतिष्ठते।

लाभेच्छा समझाने से उप-पूर्वक स्था धातु विकल्प से आत्मनेपदी होता है। यथाः—धनिनमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा भिक्षुः (धनलाभेच्छया धनिसमीपम् गच्छतीत्यर्थः।

अकर्मक उपपूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है। यथा भोजनकाले उपतिष्ठते (सन्निहितो भवतीत्यर्थः)। सकर्मक होने से नहीं होता यथा—शिष्यो गुरुमुपतिष्ठति।

ह्वे—स्पर्द्धा अर्थात् युद्धार्थ आह्वान अर्थ में 'आ' पूर्वक ह्वे धातु आत्मनेपदी होता है। यथा—कृष्णः कंसमाह्वयते (स्पर्द्धमानः परिभवेच्छया—आह्वानं करोतीत्यर्थः)। स्पर्द्धाभिन्न अर्थ में नहीं होता। यथाः—पिता पुत्रमाह्वयति।

अदादिगणीय धातु

विद्—पहचानना अर्थ में सम्—पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—"पितरावपि मां न प्रतिसंविदाते"।

जानना अर्थ में अकर्मक होने से, सम् = पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—'के न संविद्रते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा'।

हन्—आत्म-अवयव (अपना अङ्ग) कर्म होने से, 'आ' पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—आहते स्वं शिरः (ताडयतीत्यर्थः) स्वाङ्ग कर्म न होने से नहीं होता। यथाः—आहन्ति चोरम्।

ह्वादि और स्वादिगणीय धातु

दा—आ—पूर्वक दा धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—विद्यामादत्ते, शास्त्रमादत्ते। किन्तु विस्तार अर्थ में नहीं होता। यथा—मुखं व्याददाति सिंहः (विस्तारयतीत्यर्थः), नदी कूलं व्याददाति; वैद्यो विस्फोटकं व्याददाति।

श्रु-कर्म न रहने से सम्—पूर्वक श्रु धातु आत्मनेपदी होता है। यथा-"संश्रृणुष्व कपे !" "हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः"। यहाँ कर्म की विवक्षा नहीं इस लिए आत्मनेपद है।

तुदादिगणीय धातु

कॄ—चतुष्पद जन्तु अथवा पक्षी कर्ता होने से, हर्ष—हेतु अथवा आहारान्वेषण या वास-ग्रहण के लिए भूमि-विलेखन (पाँव से मिट्टी खोदकर विखेरना) अर्थ में अप—पूर्वक कॄ धातु आत्मनेपदी होता है; और आदि में सुट् का आगमन होता है; सुट् का स् रहता है यथा-अपस्किरते वृषभः। (हर्षाद् भूमिमालिखतीत्यर्थः); अपस्किरते मयूरः) (भक्षार्थी भूमिं विलिख्य विक्षिपतीत्यर्थः); अपस्किरते सारमेयः (वासार्थी, शयनार्थी भूमिं विदारयतीत्यर्थः)।

किन्तु—अपकिरति कुसुमम्।

गॄ—अव पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—अवगिरतेऽन्नम्।

प्रतिज्ञा—अर्थ में सम् पूर्वक गृ धातु आत्मनेपदी होता है। यथा सङ्गिरते प्रतिजानीते इत्यर्थः।

किन्तु—सङ्गिरति ग्रासम्।

प्रच्छ्—विदा लेना अर्थ में आपूर्वक प्रच्छधातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—"आपृच्छस्व प्रियसखममुखम्।"

विश्—'नि' पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—"किष्किन्धाद्रिं न्यविशत" (प्रविवेश इत्यर्थः)।

रुधादिगणीय धातु

भुज्—पालन (रक्षा) भिन्न अन्य अर्थ में भुज् धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—ओदनं भुङ्क्ते (अभ्यवहरतीत्यर्थः), "सदयं बुभुजे स मेदिनीम्" (भुक्तवान्), सुखं भुङ्क्ते (अनुभवतीत्यर्थः)। (पालन-अर्थ में) भुनक्ति स्वाराज्यम्।

युज्—स्वरादि और स्वरान्त उपसर्गपूर्वक युज् धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—(स्वरादि उपसर्ग) उद्युङ्क्ते, (स्वरान्त उपसर्ग) प्रयुङ्क्ते, नियुङ्क्ते, अनुयुङ्क्ते उपयुङ्क्ते। यज्ञपात्रकर्म होने से नहीं होता है। यथाः—स्रुवं प्रयुनक्ति।

तनादिगणीय धातु

कृ—अनु और परा पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होता है। यथाः—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य", पराकरोति दानम् (निरस्यतीत्यर्थः)।

क्र्यादिगणीय धातु

क्री—वि, परि और अव-पूर्वक क्री धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—'गवां शतसहस्रेण विक्रीणीषे सुतं' यदि परिक्रीणीते, अवक्रीणीते।

ज्ञा—अपह्नव (अपलाप, गोपन) अर्थ में अप-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः उक्तम् अपजानीते (अपलपतीत्यर्थः)।

स्मरण—भिन्न अर्थ में सम् और प्रति-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है। यथाः—उक्तम् अपजानीते अपलपतीत्यर्थः)।

स्मरण—भिन्न अर्थ में सम् और प्रति-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है। यथा :—सञ्जानीते (अवेक्षते इत्यर्थः) "हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते" (अंगीकरोतीत्यर्थः)। (स्मरण-अर्थ में) गुरुः शिष्यं शिष्यस्य वा सञ्जानाति (स्मरतीत्यर्थः)।

अनु-पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होता है। यथा:—"अनुजानीहि मां गमनाय", "ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य।"

णिजन्त धातु

णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन् और अधि+इ (अध्ययनार्थ) धातु परस्मैपदी होता है। यथा :—बोधयति पद्मम्, योधयति सैनिकम्, नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्, अध्यापयति शिष्यम्।

णिजन्त भोजनार्थ और चलनार्थ धातु परस्मैपदी होता है। यथा—भोजयति, आशयति चलयति, कम्पयति, किन्तु, अद् धातु नहीं होता। यथा :—आदयते।

अणिजन्त अवस्था में प्राणी अर्थात् चेतन-पदार्थ कर्ता होने से अकर्मक णिजन्त धातु परस्मैपदी होता है। यथा :—

अणिजन्त	णिजन्त
बालः शेते	माता बालं शाययति
शिशुः जागर्ति	माता शिशुं जागरयति

प्राणी कर्ता न होने से नहीं होता। यथा :—जलं शुष्यति—सूर्यो जलं शोषयति, शोषयते ; नदी वर्द्धते—जलदकालो नदीं वर्द्धयति, वर्द्धयतेवा।

सनन्त धातु

सनन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातु आत्मनेपदी होता है। यथा :—धर्मं जिज्ञासते, गुरुं शुश्रूषते, नष्टं सुस्मूर्षते चन्द्रं दिदृक्षते।

अनु-पूर्वक ज्ञा धातु नहीं होता। यथा :—अनुजिज्ञासति।

लुङ् विभक्ति में द्युतादि धातु विकल्प से परस्मैपदी होता है। यथा—अद्युतत्, अद्योतिष्ट।

स्य और सन् परे रहने से वृत् आदि धातु विकल्प से परस्मैपदी होता है। यथा :=वृत्+लट्=वत्स्यंति, वर्तिष्यते, वृत्+सन्=विवृत्सति, त्रिवर्त्तिषते।

लुट् विभक्ति में भी क्लृप धातु विकल्प से परस्मैपदी होता है। यथा :- कल्पितासि, कल्पितासे।

लिट्, लुट्, और लृङ् विभक्ति में मृ धातु परस्मैपदी होता है। यथा :- लिट्—ममार, लुट्—मर्ता, लृट्—मरिष्यति, लृङ्—अमरिष्यत्।

अनुवाद

हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यप:=हंस दूध ग्रहण कर लेता है और उसमें मिले हुए जल को त्याग देता है। नह्येष घृष्टो विरमति=यह ढीठ रुकता ही नहीं। वीरः शत्रून् पराजयते=वीर पुरुष शत्रुओं को पराजित कर देता है। प्रबलेन वेगेन प्रवहति नदी=नदी प्रबल वेग से बहती है। शशाङ्कः कुमुदान्येव बोधयति=चन्द्रमा केवल कुमुदनियों को ही प्रफुल्लित करता है। आलोकः अन्धकारं नाशयति=प्रकाश अन्धकार का नाश कर देता है। उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुकरूपेण रावणः=रावण भिक्षुक के रूप में सीता के पास पहुँचा।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो :—नादत्ते भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। बुभुजे पृथिवीमेव केवलाम्, य इमाम् आश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्रैः। हिताद्य यः सम्शृणुते स किं प्रभुः। स्वर्गलोकं न प्रजानाति मूर्खः। व्यतिजिगौ समुद्रोऽपि न धैर्यं तस्य गच्छतः। अयं पन्थाः काशीमुपतिष्ठते, न तस्य वाक्ये सन्तिष्ठेत जनः। असौ प्रक्रमते योद्धुमेकोऽपि बहुभिः सह। किं वा भूयः प्रियमुपकरोमि। आशंसन्ते समितिषु सुरा जयम्। नन्दनस्य लक्ष्मीः विजिग्ये भवनैः। श्रियमाशंसति लोलाम्। सवितारं देवमुपतिष्ठस्व।

संस्कृत में अनुवाद करो :—यात्री ग्रामीणों के दल के साथ रवाना हुआ। सज्जन पाप कार्य से विरत रहते हैं। ईंधन जल कर जल को ताप देता है। उसने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली है। गवैये का स्वर काँप रहा है।

साँड़ खुशी से सींग के द्वारा मिट्टी खोद रहा है। रवीन्द्र अपने छोटे भाई महेन्द्र से खेलेगा। जवाहरलालनेहरू हवाई जहाज से लन्दन गये थे। च्यूँटी दब जाने पर काट लेती है। गरीब पर हजारों मुसीबतें आती हैं। राज्यपाल का शासन निष्पक्ष है। किसान खेतों से धान बटोरता है।

परस्मैपद और आत्मनेपद में क्या भेद है? विभिन्न प्रकार के उपसर्गों के संयोग से ग्रह धातु के अर्थ में क्या-क्या भेद होते हैं? बताओ। यज् धातु के परस्मैपद के आत्मनेपद के प्रयोग में क्या अर्थभेद होता है।—बताओ।

जि, क्रम, गम्, दा, भुज् और विश् धातुओं के आत्मनेपदी रूपों का प्रयोग कर एक-एक वाक्य बनाओ।

दा, गम्, और श्रु धातुओं के आत्मनेपदी तथा रम् धातु के परस्मैपदी प्रयोग दिखा कर पृथक्-पृथक् वाक्य बनाओ।

जि धातु किस स्थिति में आत्मनेपदी बन जाता है?

'ब्राह्मणो यजति' और 'ब्राह्मणो यजते' इन दोनों प्रयोगों में क्या अर्थ-भेद है?

गम् धातु किस अवस्था में आत्मनेपदी होता है:—उदाहरण देकर समझाओ।

शुद्ध करो:—गुरुं शुश्रूषति शिष्यः। आसन्नाद् उत्तिष्ठते। गुरुं शुश्रूषन् सर्व विजयति। रामः शत्रुन् पराजयन् सोत्साहं समरक्षेत्रे निविशति। विजयतु राष्ट्रपतिः। सत्धुना सङ्गच्छति साधुः। पृथिवीं वितपते सूर्यः। राजा चिरं पृथिवीं भुङ्क्ताम्। दरिद्रो दुःखशतानि भुनक्ति। एवं विवदन्तस्ते न्यायालयं गताः। शिक्षकमनुकुरुते छात्रः। वाराणसीं निकषा गङ्गा प्रवहते। राज्ञो धनमाददाति भिक्षुः। आक्रामते धूमो हर्म्यतलात्।

कर्मवाच्य और भाववाच्य

कर्मवाच्य और भाववाच्य धातु आत्मनेपदी होते हैं। अतः उनमें केवल आत्मनेपद की ही विभक्तियों का प्रयोग होता है।

कर्मवाच्य के कर्मपद में जो पुरुष और जो वचन होता है, क्रियापद में भी वही पुरुष और वही वचन रहता है। अर्थात् कर्मपद में यदि अस्मद् हो तो क्रियापद में उत्तमपुरुष की विभक्ति रहेगी, युष्मद् रहने पर मध्यम पुरुष की विभक्ति और तद्भिन्न रहने पर प्रथम पुरुष की विभक्ति रहेगी। इसी प्रकार कर्मपद यदि एकवचन हो तो क्रिया पद में भी एकवचन, द्विवचन होने पर द्विवचन और बहुवचन होने पर बहुवचन ही होगा।

भाववाच्य के क्रिया-पद में सदा प्रथम पुरुष का एकवचन ही होता है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में सभी धातुओं के पर य होता है। यथा:—गम्—गम्यते; भिद्—भिद्यते; पठ्—पठ्यते, छिद्—छिद्यते; त्यज्—त्यज्यते; शुच्—शुच्यते; भुज्—भुज्यते; स्पृश्—स्पृश्यते; लभ्—लभ्यते; सृज्—सृज्यते; नी—नीयते, म्ला—म्लायते, हन्—हन्यते, सेव्—सेव्यते, ज्ञा—ज्ञायते लुप्—लुप्यते इत्यादि।

ग धातु (जाना, पाना, मरना)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते
म० पु०	गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे
उ० पु०	गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
म० पु०	गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
उ० पु०	गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लङ्

प्र० पु०	अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
म० पु०	अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
उ० पु०	अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	गम्येत	गम्येयाताम्	गम्येरन्
म० पु०	गम्येथाः	गम्येयाथाम्	गम्येध्वम्
उ० पु०	गम्येय	गम्येवहि	गम्येमहि

लृट्

प्र० पु०	गस्यते	गंस्येते	गंस्यन्ते
म० पु०	गंस्यसे	गंस्येथे	गंस्यध्वे
उ० पु०	गंस्ये	गंस्यावहे	गंस्यामहे

लिट्

प्र० पु०	जग्मे	जग्माते	जग्मिरे
म० पु०	जग्मिषे	जग्माथे	जग्मढ्वे
उ० पु०	जग्मे	जग्मिवहे	जग्मिमहे

लुट्– गन्ता ।

लृङ्—अगंस्यत ।

आशी:—गंसीष्ट ।

य परे रहने से शी धातु के स्थान में शय् होता है। यथा:—शय्यते ।

य परे रहने से दा, धा, मा, गै, हा, पा, स्था धातुओं के आकार को

ईकार हो जाता है। यथाः—दा—दीयते, धा—धीयते ; मा—मीयते ; गैं—गीयते ; हा—हीयते ; पा—पीयते ; सो—सीयते, स्था—स्थीयते।

जि—जीयते; श्रु—श्रूयते; चि—चीयते; स्तु—स्तूयते; स्मृ—स्मर्यते; स्तृ—स्तर्यते; ऋ—अर्य्यते; तृ—तीर्यते; कॄ—कीर्य्यते; पॄ—पूर्यते; ग्रह्—गृह्यते; प्रच्छ्—पृच्छ्यते; व्यध्—विध्यते; यज्—इज्यते ; वच्—उच्यते; वद्—उद्यते; वप्—उप्यते; वस्—उष्यते; वह्—उह्यते; स्वप्—सुप्यते; ह्वे—हूयते; दन्श्—दश्यते; भ्रन्श्—भ्रश्यते; शन्स्—शस्यते; मन्थ्—मथ्यते; भन्ज्—भज्यते; बन्ध्—बध्यते; शास-शिष्यते।

य परे होने पर णिजन्त धातु के अन्तस्थित इकार का लोप हो जाता है यथाः—कारि-कार्यते; स्वापि – स्वाप्यते, इषि—इष्यते दर्शि—दर्श्यते।

लिट्, लुट्; लृङ्, आशीर्लिङ्।

सेव् धातु (सेवा करना)

लिट्—सिषेवे, सिषेवाते, सिषेविरे।

लुट्—सेविता, सेवितारौ, सेवितारः।

लृट्—सेविष्यते, सेविष्येते, सेविष्यन्ते।

लृङ्—असेविष्यत, असेविष्येताम्, असेविष्यन्त।

आशीर्लिङ्—सेविषीष्ट, सेविषीयास्ताम्, सेविषीरन्।

भुज् धातु

लिट्—बुभुजे, बुभुजाते, बुभुजिरे।

लुट्—भोक्ता, भोक्तारौ, भोक्तारः।

लृट्—भोक्ष्यते, भोक्ष्येते, भोक्ष्यन्ते।

लृङ्—अभोक्ष्यत, अभोक्ष्येताम्, अभोक्ष्यन्त।

आशीर्लिङ्—भुक्षीष्ट, भुक्षीयास्ताम्, भुक्षीरन्।

भू धातु (होना)

लिट् (भाववाच्य)—बभूवे।

लुट्, लृट्, लृङ्, आशीर्लिङ्, इन चार विभक्तियों के परे स्वरान्त धातु, ग्रह्, दृश् और हन् धातुओं के उत्तर विकल्प से इ होता है।

इ परे होने पर धातु के अन्त्य स्वर और उपधा अकार की वृद्धि होती है। यथाः—

स्वरान्त श्रु धातु (सुनना)

लिट्—शुश्रुवे।
लुट्—श्रोता, श्राविता।
लृट्—श्रोष्यते श्राविष्यते।
लृङ्+अश्रोष्यत, अश्राविष्यत;
आशीर्लिङ्—श्रोषीष्ट, श्राविषीष्ट।

ग्रह् धातु (लेना)

लिट्—जगृहे।
लुट्—ग्रहीता; ग्राहिता।
लृट्-ग्रहीष्यते, ग्राहिष्यते।
लृङ्—अग्रहीष्यत, अग्राहिष्यत।
आशीर्लिङ्—ग्रहीषीष्ट, ग्राहिषीष्ट।
इ परे रहने पर उपधा लघु स्वर को गुण होता है। यथाः—

दृश् धातु (देखना)

लिट्—ददृशे।
लुट्-द्रष्टा, दर्शिता।
लृट्- द्रक्ष्यते, दर्शिष्यते।
लृङ्—अद्रक्ष्यत, अदर्शिष्यत।
आशीर्लिङ्—द्रक्षीष्ट, दर्शिषीष्ट।
इ परे होने पर हन् धातु की ह के स्थान में घ होता है। यथाः—
लिट्—जघ्ने।
लुट्—हन्ता, घानिता।
लृट्—हनिष्यते, घानिष्यते।
लृङ्—अहनिष्यत, अघानिष्यत।
आशीर्लिङ्—वधिषीष्ट, घानिषीष्ट।

इ परे होने पर आकारान्त धातु के उत्तर य होता है। यथा:—

दा धातु (देना)

लिट्—ददे।

लुट्—दाता, दायिता।

लृट्—दास्यते, दायिष्यते।

लृङ्—अदास्यत, अदायिष्यत।

आशीर्लिङ्—दासीष्ट, दायिषीष्ट।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में लुङ्—विभक्ति के 'त' के स्थान में इ होता है। इ परे होने पर अन्त्य स्वर और उपधा अकार की वृद्धि होती हैं और उपधा लघुस्वर को गुण होता है। यथा:—

वद् (बोलना)—अवादि, अवदिषाताम्, अवादिषत।

सिव्—(सीना)—असेवि, असेविषाताम्, असेविषत।

भज्—(भाग करना)—अभाजि, अभक्षाताम्, अभक्षत।

मन् (सोचना)—अमानि, अमंसाताम्, अमंसत।

स्वरान्त धातु ग्रह्, दृश्, हन् और दा धातु के लुङ् के 'त' को छोड़कर दूसरी विभक्तियों मे लुट् आदि की तरह कार्य होते हैं। यथा:—

श्रु—अश्रावि; अश्रोषाताम्, अश्राविषाताम्; अश्रोषत; अश्राविषत,

ग्रह् (लेना)—अग्राहि; अग्राहिषाताम्, अग्रहीषाताम्, अग्राहिषत, अग्रहीषत।

दृश् (देखना)—अदर्शि ; अदृक्षाताम्, अदर्शिषाताम् ; अदृक्षत, अदर्शिषत।

हन् (हत्या करना)—अवधि, अघानि; अवधिषाताम्; अहसताम्, अघानिषाताम्; अवधिषत, अहसत, अघानिषत।

दा (देना)—अदायि; अदिषाताम् ; अदायिषाताम् ; अदिषत, अदायिषत।

य परे रहने पर तन् धातु के अन् स्थान में विकल्प से आ होता है। यथा:—तायते, तन्यते।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में य परे होने पर जन् धातु के स्थान में विकल्प से जा, खन् धातु के स्थान में विकल्प से खा और सन् धातु के स्थान में विकल्प से सा होता है। यथा:—जायते, जन्यते; खायते, खन्यते, सायते, सन्यते।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में लुट्, लृट्, लृङ् और आशीर्लिङ् तथा लुङ् विभक्ति में धातु के उत्तर जात 'सि' परे रहने से, स्वरान्त धातु, ग्रह्, दृश् और हन् धातु के उत्तर विकल्प से इण् होता है। इण् का इ अवशिष्ट रहता है।

विकल्प पक्ष में—कर्तृवाच्य के नियम से ही धातु के रूप होंगे, केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष है। हन्—आशीर्लिङ् में वध् होता है।

यथा:—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आ० लिङ्
कृ	कारिता	कारिष्यते	अकारिष्यत	कारिषीष्ट
	कर्त्ता	करिष्यते	अकरिष्यत	कृषीष्ट
दृश्	दर्शिता	दर्शिष्यते	अदर्शिष्यत	दर्शिषीष्ट
	द्रष्टा	द्रक्ष्यते	अद्रक्ष्यत	द्रक्षीष्ट
हन्	घानिता	घानिष्यते	अघानिष्यत	घानिषीष्ट
	हन्ता	हनिष्यते	अहनिष्यत	वधिषीष्ट
ग्रह	ग्राहिता	ग्राहिष्यते	अग्राहिष्यत	ग्राहिषीष्ट
	ग्रहीता	ग्रहीष्यते	अग्रहीष्यत	ग्रहीषीष्ट

ञित् (ञ् इत्) और णित् (ण्—इत्) प्रत्यय परे रहने से; आकारान्त धातु के उत्तर य होता है। यथा:—दायिता; (पक्षे) दाता।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में लुङ् के त के स्थान में इण् होता है; इण् का इ रहता है। इण् परे पूर्वोक्त इण् के तुल्य कार्य होता है। यथा श्रु + लुङ् त: = अश्रावि; (आताम्)—अश्राविषाताम्, अश्रोषाताम्; (अन्त)—अश्राविषत, अश्रोषत।

अनुतापार्थक अनु + तप् धातु के उत्तर इण् नहीं होता। यथा:—अन्वतप्त।

लुङ् का त परे रहने से हन् के स्थान में वध और घन् होता है, अन्यत्र विकल्प से होता है। यथाः—(लुङ् प्रथम पुरुष)—अवधि, अघानि, अवधिषाताम् । अहसाताम्, अघानिषाताम्, अवधिषत, अहसत, अघानिषत ।

इण् और कृत् का णम् (णमुल्) परे रहने से भन्ज् और लम्भ् धातु के नकार का विकल्प से लोप होता है। यथाः—भन्ज् + लुङ् त = अभाजि, अभञ्जि ; (लम्भ्)—अलाभि, अलम्भि । (उपसर्ग)—प्रालम्भि ।

लुट्, लृट्, लृङ् और आशीर्लिङ् विभक्ति में पूर्वोक्त स्वरान्त-प्रकृति धातु भिन्न सभी धातुओं के रूप कर्तृवाच्य के नियम से होंगे। इसमें केवल आत्मनेपद होगा यही विशेष है। यथा :—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
त्यज्	त्यक्ता	त्यक्ष्यते	अत्यक्ष्यत	त्यक्षीष्ट
	त्यक्तारौ	त्यक्ष्येते	अत्यक्ष्येताम्	त्यक्षीयास्ताम्
	त्यक्तारः	त्यक्ष्यन्ते	अत्यक्ष्यन्त	त्यक्षीरन्

लिट् में कर्तृवाच्य के नियमानुसार ही धातु के रूप होंगे, केवल आत्मनेपद होगा यही विशेष है; यथाः—

सिव्	भुज्	दा
सिषेवे	बुभुजे	ददे
सिषेवाते	बुभुजाते	ददाते
सिषेविरे	बुभुजिरे	ददिरे

कर्मवाच्य में—कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा होती है और क्रियापद कर्म के अनुसार बैठता हैं अर्थात् कर्म में जो पुरुष और जो वचन रहता है, क्रिया में भी वही पुरुष और वही वचन होता है। यथाः—

कर्तृवाच्य			कर्मवाच्य		
स	बालकं	पश्यति	तेन	बालको	दृश्यते
त्वं	बालकौ	पश्यसि	त्वया	बालकौ	दृश्येते
अहं	बालकान्	पश्यामि	मया	बालकाः	दृश्यन्ते

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
वयं त्वां पश्यामः	अस्माभिः त्वं दृश्यसे
ते युवां पश्यन्ति	तैः युवां दृश्येथे ।
तौ युष्मान् पश्यतः	ताभ्यां यूयं दृश्यध्वे
युवां मां पश्यथः	युवाभ्याम् अहं दृश्ये
यूयम् आवां पश्यथ	युष्माभिः आवां दृश्यावहे
सः अस्मान् पश्यति	तेन वयं दृश्यामहे
अहं तम् अपश्यम्	मया सः अदृश्यत
अहं त्वां द्रक्ष्यामि	मया त्वं द्रक्ष्यसे ।
स चन्द्रं पश्यतु	तेन चन्द्रो दृश्यताम्
कः सूर्यं पश्येत्?	केन सूर्यो दृश्येत्?

एक कर्म वाले धातुओं का वाच्यान्तर उक्त प्रकार होगा[1]।

परन्तु दुहादि और न्यादि धातुओं के दो कर्म होते हैं :—एक मुख्य अथवा प्रधान कर्म और दूसरा गौण अथवा अप्रधान कर्म[2]।

कर्मवाच्य में—दुहादि धातु के गौण कर्म में और न्यादि धातु के मुख्य कर्म में प्रथमा होती है। अन्य कर्म द्वितीयान्त ही रहता है। जिस कर्म में प्रथमा हो, कर्मवाच्य की क्रिया उसी कर्म के अनुसार होगी। यथा :—

---

१. कर्मवाच्यप्रयोगे तु तृतीया कर्तृकारके। कर्मणि प्रथमा प्रोक्ता, कर्माधीनं क्रियापदम्।

२. क्रिया के साथ जिसका निकट सम्बन्ध रहता है, उसे मुख्य कर्म और क्रिया के साथ जिसका दूर सम्बन्ध (जिसमें अन्य कारक भी हो सकता है) रहता है उसे गौण कर्म कहते हैं। भिक्षुकः मां वस्त्रं याचते—कहने से जिस वस्तु को माँगता है उसके साथ ही क्रिया का निकट सम्पर्क होने से 'वस्त्रं' मुख्य कर्म और जिससे माँगता है उसके साथ क्रिया का दूर—सम्पर्क होने से 'मां' गौण कर्म है।

३. गौणे कर्मणि दुह्यादेः, प्रधाने नी-हृ-कृष्-वहाम्।

दुहादि (कर्तृवाच्य में)—गोपः गां दुग्धं दोग्धि—यहाँ गाम् गौण कर्म है क्योंकि वक्ता की इच्छा से उसमें अपादान कारक भी हो सकता था।

(कर्मवाच्य में)—गोपेन गौः दुग्धं दुह्यते। दरिद्रः राजानं धनं याचते—दरिद्रेण राजा धनं याच्यते। शिक्षकः मां हित वदति—शिक्षकेण अहं हितम् उद्ये। पूजकः वृक्षं पुष्पाणि चिनोति—पूजकेन वृक्षः पुष्पाणि चीयते। राजा चौरं शतं दण्डयति—राज्ञा चौरः शतं दण्ड्यते। शिष्यः गुरुं धर्मं पृच्छति—शिष्येण गुरुः धर्मं पृच्छ्यते। देवा जलधिम् अमृतं ममन्थुः—देवैः जलधिः अमृतं ममन्थे। गुरुः शिष्यं धर्मम् अनुशास्ति—गुरुणा शिष्यः धर्मम् अनुशिष्यते।

न्यादि—(कर्तृवाच्य)—भृत्यं भारं गृहं नयति हरति, कर्षति, वहति वा।

(कर्मवाच्य)—भृत्येन भारो गृहं नीयते·ह्रियते, कृष्यते, उह्यतेवा।

णिजन्त धातु के कर्मवाच्य मे—प्रयोज्य कर्म में प्रथमा होती है और प्रयोज्य-कर्मानुसार क्रिया होती है। यथा— कर्तृवाच्य में)—प्रभुः भृत्यं ग्रामं प्रेषयति। (कर्मवाच्य में)—प्रभुणा भृत्यः ग्रामं प्रेष्यते।

भाववाच्य—तिङन्त क्रिया के अकर्मक धातुओं का ही भाववाच्य होता है।

भाववाच्य में—कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है और क्रिया सदा प्रथम पुरुष के एकवचन की ही होती है[1]। कर्मवाच्य के कर्ता के समान भाववाच्य में भी क्रिया के साथ कर्ता का सम्बन्ध नहीं रहता। यथाः—मया' युगभ्याम्, तैः वा अत्र स्थीयते[2]।

१. प्रयोगे भाववाच्यस्य तृतीया कर्तृकारके। प्रथमः पुरुषश्चैकवचनं स्यात् क्रियापदे।

२. कृदन्त—क्रिया, कर्तृवाच्य में कर्ता का विशेषण, कर्मवाच्य में कर्म का विशेषण और भाववाच्य में क्लीब लिङ्ग तथा एकवचनान्त होता है। यथाः—स युष्मान् उक्तवान्; तेन यूयम् उक्ताः तेन उक्तम्।

कर्म-कर्तृवाच्य

कार्य होते समय यदि कर्म कारक कर्ता के रूप में प्रयुक्त हो अर्थात् कर्म ही स्वयं सिद्ध हो तो उसे कर्म कर्ता कहते हैं[1]। कर्म कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। अन्य कर्म पद नहीं रहता। कर्म-कर्तृवाच्य में क्रिया का रूप कर्म वाच्य को क्रिया के तुल्य होता है। यथाः—(कर्तृवाच्य)—भृत्यः काष्ठं भिनत्ति; (कर्म-कर्तृवाच्य) काष्ठं भिद्यते (स्वयमेव)।

वाच्यान्तर-प्रणाली

जिस वाच्य का प्रयोग रहता है उसको अन्य वाच्य में परिवर्तित करना हो तो समापिका क्रिया, उसके कर्ता एवं कर्म कोष परिवर्तित कर दिया जाता है। उस कर्ता या कर्म का यदि विशेषण हो तो वह भी बदल जायगा। अन्य पद नहीं बदलेंगे। यथाः—

कर्ता	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य
अहं	चन्द्रं	पश्यामि	(कर्तृ)
मया	चन्द्रः	दृश्यते	(कर्म)

कर्ता	कर्म	असमापिका क्रिया	समापिका क्रिया	वाच्य
शिशुः	वाद्यं	श्रुत्वा	नृत्यति	(कर्तृ)
शिशुना	वाद्यं	श्रुत्वा	नृत्यते	(भाव)

कर्ता	कर्तृविशेषण	समापिका क्रिया	वाच्य
सः	दुःखितः	भवति	(कर्तृ)
तेन	दुःखितेन	भूयते	(भाव)

कर्ता	कर्मविशेषण	कर्म	समापि० क्रि०	वाच्य
त्वया	पूर्णः	चन्द्रः	दृश्यताम्	(कर्म)
त्वं	पूर्णं	चन्द्रं	पश्य	(कर्तृ)

---

१. क्रियमाणं तु यत्कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति। [सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्तुः कर्मकर्तेति तद् विदुः]।

कर्ता	अन्य कारक	समापिका क्रिया	वाच्य
मया	गृहे	स्थीयते	(भाव)
अहं	गृहे	तिष्ठामि	(कर्तृ)
कर्ता	कर्म	कृदन्त क्रिया	वाच्य
सः	×	गतवान्[१]	(कर्तृ)
तेन	×	गतम्	(भाव)
तैः	दुग्धं	पीतम्	(कर्म)
ते	दुग्धं	पीतवन्तः	(कर्तृ)
मया	×	गन्तव्यम्	(भाव)
अहं	×	गमिष्यामि	(कर्तृ)
अस्माभिः	सत्यं	वक्तव्यम्	(कर्म)
वयं	सत्यं	ब्रूयाम	(कर्तृ)
कर्ता	क्रिया विशेषण	विधेय विशेषण	क्रिया वाच्य
रामः	अत्यन्तं	सुशीलः	[२](कर्तृ)
रामेण	अत्यन्तं	सुशीलेन	भूयते (भाव)

अनुवाद

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते = विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है। वृक्षेऽस्मिन् मानवो दृश्यते = इस वृक्ष पर मानव दिखलाई देता है। अचिरात् याथार्थ्यमलम्भि =

---

१. तिङन्त क्रिया द्वारा तिङन्त क्रिया का और कृदन्त क्रिया द्वारा कृदन्त क्रिया का वाच्यान्तर करना चाहिये। किन्तु कृदन्त क्रिया का अभाव होने से (अर्थात् वर्तमान काल के क्त प्रत्यय और तव्य, अनीय, य प्रत्यय के स्थल में) तिङन्त पद द्वारा वाच्यान्तर होगा। यथाः— तस्य मतम्—स गन्यते। मया गन्तव्यम्— अहं गमिष्यामि।

२. जहाँ क्रिया पद का प्रयोग नहीं रहता, वहाँ अस् धातु के लट् का रूप अन्तर्निहित होता है। इस लिए यहाँ 'अस्ति' अन्तर्निहित है। कर्तृवाच्य में भी यही नियम है।

शीघ्र ही यथार्थ भाव उपलब्ध हो गया। हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा = सुवर्ण को अग्नि में तपाये जाने पर ही उसका खरापन या खोटापन संलक्षित होता है। तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे = पृथ्वी का भारी बोझ उसके द्वारा अपने मंत्रियों पर छोड़ दिया गया। कतमः आर्येण राजर्षि वंशोऽलंक्रियते = आप द्वारा कौन सा राजर्षि कुल अलंकृत किया जाता है। कोऽप्युपायोऽनुष्ठीयताम् = कुछ तो उपाय कीजिए। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते = सम्मानित व्यक्ति का अयश उसके लिए मरण से भी अधिक होता है।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो:—बालकेन पुस्तकं पठ्यते। श्रूयते मया सर्वम्। पाठे मनो दीयते। ईदृशं रत्नं भुवि न दृश्यते। तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते। वैचित्र्यं विधातुः केन वा लक्ष्यते। मम स्कन्धे कुम्भोऽयमुत्क्षिप्यताम्। धूर्तैः विविधा वञ्चनाः क्रियन्ते। एतद् विज्ञानस्य युगमुच्यते। तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः। अन्ये लुप्यन्ते। देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्ममन्थे। शुष्कः काष्ठश्च मूर्खश्च भिद्यते न तु नम्यते। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य।

संस्कृत में अनुवाद करो:—बाजार में हल्ला गुल्ला सुनाई पड़ा। राजा की सेना पूर्णतया पराजित हुई। एक डाकू पकड़ा गया और विचारपति के सामने लाया गया। मैं अपने पिता के द्वारा संस्कृत सिखाया गया। एक पक्षी व्याध के द्वारा मारा गया। बालक किसके द्वारा पीटा गया। मेरी बहन के द्वारा कल ससुराल जाया जायेगा। तुम्हारा विवाह कब हुआ। इस मास में मेरे पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार किया जायगा।

वाच्यान्तर करो:—अहं सर्वैः पशुभिः भवत्सकाशे प्रस्थापितः। यद्येषः छागः केनाप्युपायेन लभ्येत (अस्माभिः)। अस्ति भारतवर्षे दिल्ली नाम नगरम्। दशरथो नाम राजाऽऽसीत्। मद्वचनं शृणु। कश्चिद् बालको हसति। धर्मात्मा राजा धर्मेण प्रजाः पालयति। अहं गच्छामि। ते गच्छन्ति। युवां गां पश्यतम्। आवां जलं पास्यावः युस्माभिः कथं रुद्यते। नगरे बहवो धनिनो वसन्ति।

वर्षासु नद्यः प्रबला भवन्ति । पूजनीया हि गुरवः । गौर्वनं गच्छति । युवा पुस्तकं गृह्णाति । मय. ज्ञानवन्तः पूज्यन्ते । द्विषद्भिः पुर्यधिक्रियते । पक्षिणो वृक्षे वसन्ति । मयेदं कृतम् । द्वौ बालकावहं दृष्टवान् । स इमं विषयं न जानाति । कोऽपि वधोपायश्चिन्त्यताम् । आवाभ्यां महद् दुःखमनुभूतम् । यदि च कृतां हि तवेच्छसि प्रतिज्ञाम् । ओषधीर्नावगच्छामि ता अहम् । अचक्षुर्विषयश्चन्द्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति ` गां दोग्धि पयः । नान्येन प्रसेनो हन्यते । कृत कार्यं दुष्करं पाण्डवैः । शोच्या गान्धारी पुत्रपौत्रैर्विहीना । शिशुः दुग्धं पिबति । नाविको नदीमतरत् । राजा प्रजाः पालयति । बालकेन चन्द्रः दृश्यते । पिता पुत्रं गृहं नयति । सीतां रावणोऽहरत् । बालिके वृक्षान् पुष्पाणि चिनुतः । दरिद्रो धनिकं धनं याचते । शिष्यो गुरुं शास्त्रं पृच्छति । पुत्राः पितरौ प्रणमन्ति । बालकाः क्रीडन्ति । ते स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निवसन्ति । चित्राङ्गो जलसमीपं गत्वा मृत इव तिष्ठेत् । शिक्षकः अस्मान् प्रक्ष्यति । किमर्थं रोदिषि ? धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञः उत्सृजेत् । किं पुनः शून्यमिव विश्वं प्रतिभाति ।

किसी क्रियापद को भाववाच्य में सोदाहरण प्रदर्शित करो ।

कर्तृवाच्य में क्रिया का वचन कैसे जाना जा सकता है ? क्या कर्मवाच्य में भी उसी प्रकार जाना जायेगा ? यदि नहीं, तो भेद बताओ ।

भाववाच्य में क्रिया का कौन वचन होता है । उदाहरण देकर समझाओ ।

भाववाच्य और कर्मवाच्य में क्या भेद है । सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।

द्विकर्मक क्रिया के वाच्यान्तर करने का क्या नियम है ।

शुद्ध करो—बालकेन चन्द्रः पश्यते । अहं स्वस्थाने गन्तव्यम् । कृष्णेन कंसो हतवान् । पुत्रशोकेनाहं तुद्यते । साधुभिर्यूयमुपदिश्यन्ते । कुम्भकारेण घटं कुरुते । शिशुना शय्यायां शीयते । पित्रा पुत्रं गृहं नयते ।

कृत्-प्रकरण

साधारण नियम

धातु के उत्तर तिङ् प्रत्यय को छोड़कर तव्य, निष्ठा, शत, शानच् अन।यर् इत्यादि कुछ प्रत्यय होते हैं। इन्हें कृत् प्रत्यय कहते हैं।

कृत् प्रत्यय होने पर धातु के अन्त्य स्वर और उपधा लघुस्वर को गुण होता है। किन्तु क् और ङ् के इत् होने पर गुण नहीं होता।

कृत् प्रत्यय के ण् अथवा ञ् इत् होने पर धातु के अन्त्यस्वर और उपधा अकार की वृद्धि होती है। और आकारान्त धातु के उत्तर इय् होता है।

कृत् प्रत्यय परे होने पर णिच् का लोप हो जाता है।

कृत् प्रत्यय का घ् इत् होने पर धातु के अन्तस्थित च् के स्थान में क् और ज् के स्थान में ग् होता है।

कृत् प्रत्यय का ख् इत् होने से पूर्व पद द्वितीया का एकवचनान्त होता है।

कृत् प्रत्यय का प् इत् होने पर ह्रस्वस्वरान्त धातु के उत्तर त् होता है

कृत् प्रत्यय का ध् परे रहने पर धातु के अन्तस्थित ओ के स्थान में अव् और औ के स्थान में आव् होता है।

कृत्य-प्रत्यय

तव्य (करणीय अर्थ में)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में सभी धातुओं के उत्तर तव्य प्रत्यय होते हैं।

लुट् विभक्ति में इट् आदि जो भी कार्य होते हैं, वे सभी तव्य प्रत्यय होने पर भी होते हैं। यथा—दा—दातव्य (अवश्य देना चाहिये), स्था—स्थातव्य, जि—जेतव्य, शी—शयितव्य, श्रु—श्रोतव्य, याच—याचितव्य, प्रच्छ्—प्रष्टव्य; वाञ्छ्—वाञ्छितव्य, त्यज्—त्यक्तव्य, यत्—यतितव्य, नृत्—नर्तितव्य, छिद्—छेत्तव्य, विद्—वेदितव्य, बुध्—बोद्धव्य, मन्—मन्तव्य, हन्—हन्तव्य, आप—आप्तव्य,

लभ्—लब्धव्य, क्षम्—क्षन्तव्य, गम्—गन्तव्य, चल्—चलितव्य, जीव् जीवितव्य, सेव्—सेवितव्य, दृश्—द्रष्टव्य, विश्—वेष्टव्य, स्पृश्—स्प्रष्टव्य, भक्ष्—भक्षितव्य, श्वस्—श्वसितव्य, हस्—हसितव्य, ग्रह्—ग्रहीतव्य, दुह्—दोग्धव्य, वह् वोढव्य, कारि–कारयितव्य, योजि—योजयितव्य, चिकीर्ष्, चिकीर्षितव्य, मीमांस्—मीमांसितव्य।

अनीय (कर्त्तव्य अर्थ में)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में सभी धातुओं के उत्तर अनीय प्रत्यय होता है। यथा—पा–पानीय (अवश्य पीना चाहिये), चि—चयनीय, शी—शयनीय, श्रु—श्रवणीय, कृ—करणीय, स्मृ—स्मरणीय, हृ—हरणीय, वच्—वचनीय, सिच्—सेचनीय, शुच्—शोचनीय, भुज्—भोजनीय, छिद्—छेदनीय, विद्—वेदनीय, मन्—मननीय, शुभ् शोभनीय, रम्—रमणीय-सेव्—सेवनीय, दृश्—दर्शनीय, रक्ष्—रक्षणीय, तुष्—तोषणीय, पूजि—पूजनीय, अर्चि—अर्चनीय, यापि—यापनीय, स्थापि—स्थापनीय, रोपि—रोपणीय, ख्यापि—ख्यापनीय, ज्ञापि—ज्ञापनीय, अध्यापि—अध्यापनीय, पालि—पालनीय।

ण्यत् (करणीय अर्थ में)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में ऋकारान्त और व्यञ्जनान्त धातुओं के उत्तर ण्यत् प्रत्यय होता है। ण और त् हो जाते हैं, य शेष रहता है। यथा—(ऋकारान्त)—कृ—कार्य, धृ—धार्य, मृ—मार्य, हृ—हार्य। (व्यञ्जनान्त)—वच्—वाच्य, सिच्—सेच्य, त्यज्—त्याज्य, यज्—याज्य, युज्—योज्य, भज्—भाज्य, भुज्—भोज्य, बुध्—बोध्य; छिद्—छेद्य, भिद्—भेद्य, विद्—वेद्य, मन्—मान्य, भक्ष्—भक्ष्य, शस्—शास्य, हस्—हास्य, वह्—वाह्य।

ण्यत् परे होने पर पच्, रुज् आदि धातुओं में च् के स्थान में क् और ज् के स्थान में ग् होता है। यथा—पच्—पाक्य, रुज्—रोग्य।

अर्थ विशेष में ण्यत् प्रत्यय के परे होने पर वच्, भुज्, युज् आदि धातुओं के च् के स्थान में क् और ज् के स्थान में ग् होता है। यथा—

(शब्द अर्थ में) वच्—वाक्य ; (भोग अर्थ में) भुज्—भोग्य, (अर्ह अर्थ में) युज्—योग्य ; (प्रभु अर्थ में) नि—पूर्वक युज् (कर्तृ-वाच्य में ण्यत्)—नियोग्य होता है।

अन्य अर्थों में क् वा ग् नहीं होते। यथा—वाच्य (वक्तव्य), भोज्य (भोजन), नियोज्य (नौकर आदि।

अमावस्या शब्द निपातन से सिद्ध होता है। यथा—अमा सह बसतोऽस्यां चन्द्रार्काविति अमावस्या।

यत् (य) (करने योग्य अर्थ में)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में स्वरान्त धातु के उत्तर यत् होता है। त् इत् हो जाता है और य शेष रहता है। यथा—चि—चेय (चयन या संग्रह करने योग्य), जि—जेय, नी—नेय, श्रु—श्रव्य, भू—भव्य।

यत् परे होने पर धातु के अन्तस्थित आकार के स्थान में एकार हो जाता है। यथा:—दा—देय, गा—गेय, पा—पेय, स्था—स्थेय, मा—मेय, हा—हेय, धा—धेय इत्यादि।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में शक्, सह् और पवर्गान्त धातुओं के उत्तर यत् होता है। यथा—शक्—शक्य, सह्—सह्य, शप्—शप्य; रभ्—रभ्य; लभ्—लभ्य, गम्—गम्य, नम्—नम्य, रम्—रम्य।

कर्मवाच्य और भाववाच्य, में उपसर्गहीन गद्, नद्, यम्, चर्, धातुओं के उत्तर यत् होता है। यथा—गद्—गद्य, मद्—मद्य; यम्—यम्य, चर्—चर्य्य। यदि ये ही धातु उपसर्ग से युक्त हों तो ण्यत् प्रत्यय होता है। यथा—नि-गद्—निगाद्य, प्रमद्—प्रमाद्य, नि-यम्—नियाम्य, वि-चर्—विचार्य। आपूर्वक चर् धातु के उत्तर यत् होता है। यथा:—आचर्य (गन्तव्य), गुरु अर्थ में—आचार्य।

क्यप् (करने योग्य अर्थ में)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में इ, दृ, वृ, जुष्, शास् और स्तु धातु के उत्तर क्यप् होता है। क् और प् इत् हो जाते हैं और य शेष रहता है। यथा—इ—इत्य जाने या पाने योग्य); दृ—दृत्य, वृ-वृत्य जुष्—जुष्य, स्तु—स्तुत्य (स्तवनीय)।

कृ धातु में विकल्प से क्यप् होता है। यथा—कृत्य, विकल्प पक्ष में ण्यत्—कार्य।

शास् धातु में आकार के स्थान में इकार होता है। यथा—शिष्य।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में सुबन्त पद के परवर्त्ती वद् धातु के उत्तर क्यप् और यत् प्रत्यय होते हैं और क्यप् पक्ष में व के स्थान में उ होता है। यथा—ब्रह्मोद्य, ब्रह्मवद्य (वेदवक्ता)।

मृषा शब्द के परे में यदि वद् हो तो केवल क्यप् होता है। यथा—मृषोद्य (मिथ्यावादी)।

भाववाच्य में सुबन्त पद के परवर्ती भू धातु के उत्तर क्यप् होता है। यथा:—ब्रह्मभूय (ब्रह्म स्वरूप होना), देवभूय (देवता स्वरूप पाना)।

भाववाच्यमें सुबन्त पद के परवर्ती हन् धातु के उत्तर क्यप् होता है। साथ ही न् के स्थान में त् एवं स्त्रीलिङ्ग होता है। यथा -स्त्रीहत्या, गोहत्या, पितृहत्या, ब्रह्महत्या (ब्राह्मण की हत्या)।

भावबाच्य में व्रज् , यज् , विद् , कृ , शी, भृ और मन् धातुके उत्तर क्यप् होता है। तथा—क्यप् होने पर ये शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—व्रज्—व्रज्या, यज्—इज्या, विद्—विद्या, कृ—कृत्या, शी—शय्या, भृ—भृत्या, मन्—मन्या।

राजसूय प्रभृति पद निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा—राजा सूयते अत्र इति राजसूयः। कृष्टपच्यः, अव्यथ्यः; सरतीति सूर्यः।

केलिम (केलिमर) (करने योग्य अर्थ में)

कर्म-कर्तृवाच्य में धातु के उत्तर केलिम होता है। क् इत होने से केवल एलिम शेष रहता है। यथा—भिद् —भिदेलिम (भेदन योग्य) पच्—पचेलिम (पकाने योग्य), छिद्—छिदेलिम (काटने योग्य)।

कृत्य प्रत्यय के प्रयोग के नियम (उचित) अर्थ में

कृत्य-प्रत्यय-साधित पद जब क्रिया के समान व्यवहृत होते हैं तब वे नपुंसकलिङ्ग के प्रथमा के एकवचनान्त होते हैं और कर्मवाच्य में कर्म के विशेषण होते हैं। अतः कर्म के जो लिङ्ग विभक्ति और वचन हों,

वही होते हैं। यथा—(भाववाच्य में)—मया स्थातव्यम्, त्वया स्नातव्यम्, शिशुना शयितव्यम्।

(कर्मवाच्य में)—त्वया वृक्षः सेचनीयः, वृक्षौ सेचनीयौ-वृक्षाः सेचनीयाः; मया नदी द्रष्टव्या, नद्यौ द्रष्टव्ये, नद्यो द्रष्टव्याः; तेन पुष्पं चेयम्, पुष्पे चेये, पुष्पाणि चेयानि।

कृत्य-प्रत्यय सम्बन्धित पद जब विशेषण होते हैं। तो विशेष्य के लिङ्ग-विभक्ति और वचन प्राप्त होते हैं। यथा—गन्तव्यो ग्रामः, गन्तव्यं ग्रामम्, गन्तव्येन ग्रामेण, गन्तव्याय ग्रामाय, गन्तव्यात् ग्रामात्, गन्तव्यस्य ग्रामस्य, गन्तव्ये ग्रामे; दृश्या नदी, दृश्यां नदीं, दृश्यया नद्या, इत्यादि। पानीयं जलम्, पानीयेन जलेन, पानीयस्य जलस्य इत्यादि।

कृत्य प्रत्यय भविष्यत् काल तथा औचित्य और अनुज्ञा के अर्थ में होते हैं। यथा—(भविष्यत् काल में)—मया गन्तव्यम् (मैं जाऊँगा), त्वया कार्यम् (तुम करोगे), तेन शयनीयम् (वह सोवेगा)।

औचित्य अर्थ में—असत्सङ्गः परिहर्तव्यः, दीनेभ्यो धनं देयम्, परनिन्दा न कर्त्तव्या।

अनुज्ञा अर्थ में—त्वया अध्ययनीयम् (तुम पढ़ना), त्वया इह भोक्तव्यम् (तुम यहाँ भोजन करना), त्वया प्रातस्तत्र गन्तव्यम् (प्रातः काल तुम वहाँ जाना)।

अनुवाद

तेन अवश्यमेव गन्तव्यम्-वह अवश्य जावे। तथा वर्त्तेथाः, यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि—ऐसा व्यवहार करना, जिससे मैं (कोई स्त्री) उस राजर्षि की कृपापात्र बन सकूँ। तन्मयाऽवश्यं देशान्तरं गन्तव्यम्-सो मुझे अवश्य ही देशान्तर में जाना चाहिये। त्याज्यः दुष्टः प्रियोऽप्यासीत् अंगुलीवोरगक्षता—साँप द्वारा काटी गयी अँगुली के समान दुष्ट प्रिय व्यक्ति का भी त्याग कर देना चाहिये। आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया—गुरुजनों की आज्ञा में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये। चपलेन सह स्नेहः सर्वदा न कर्तव्यः—सदा चंचल व्यक्ति के साथ स्नेह करना चाहिए।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो:- दर्शनीयः खल्वयं जनः मम निम्नकमेन दृश्यमेव पाठ्यम्। इमानि फलानि त्वया भोक्तव्यानि। सुप्ता मयैव भवती प्रबोधनीया। हीनसेवा न कर्तव्या, कर्त्तव्यो महदाश्रयः। उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः। वाच्यस्त्वया मद्-वचनात् स राजा। अयं नियोगः पत्युस्ते कार्या नात्र विचारणा। न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः। राज्ञा महतां सेवा कर्तव्या। आप्तानां वचः श्रोतव्यम्। भृत्स्य प्रभोरनुसरणमविचारेणैव कर्तव्यम्। विदुषा भवता नैतादृशे कर्मणि प्रवर्त्तितव्यम्।

संस्कृत में अनुवाद करो :—तुम विश्वनाथ-मन्दिर का दर्शन करना। तुम वहाँ मत ठहरना। प्रत्येक स्त्री को रामायण का पाठ करना चाहिये। तुम प्रातः जल्दी ही वहाँ पहुँचना। गरीबों की सहायता करनी चाहिये ये फूल नहीं तोड़े जाने चाहिये। तुम किसी के साथ झगड़ा मत करना। गुरुजनों का सम्मान करना चाहिये।

तव्य, अनीय और य प्रत्ययों से बने दो दो शब्दों को अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिये।

निम्नलिखित वाक्य-खण्डों के लिये एक शब्द का प्रयोग कीजिये—दातुमुचितम्, वक्तुमुचितम्, गन्तुं योग्यम्।

वाक्य और वाच्य; भोग्य और भोज्य तथा नियोग्य और नियोज्य में अर्थभेद बतलाइये।

शुद्ध करो:—एतत् न गृहीतव्यम्। अहं स्वस्थाने गन्तव्यम्। विप्राय इदं न दातव्यम्। कथं मया तस्यापराधः सहितव्यः। गुरुषु-भक्ति र्विधेयम्। शय्यायां शेतव्यम्।

कृत्य-प्रत्यय

अ—प्रत्ययान्त धातु के उत्तर भाववाच्य में 'अ' प्रत्यय होता है। अ प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा (सनन्त)—जिज्ञासा; पिपासा; चिकीर्षा; जिगीषा; जिगमिषा; लिप्सा; जिघांसा, चिकित्सा मीमांसा; जुगुप्सा; (यङन्त)—अटाट्या। (नामधातु)– तपस्या; वरिवस्या अशनाया; पुत्रकाम्या; कण्डूया।

निष्ठा प्रत्यय में जिन धातुओं के उत्तर इट् होता है, ऐसे आदि में गुरुस्वर-विशिष्ट व्यञ्जनान्त धातु के उत्तर भाववाच्य में 'अ' होता है। यथा—(ईह्—ईहा; चेष्टा, भिक्ष्—भिक्षा; सेव्—सेवा; निन्द—निन्दा; शङ्क्—शङ्का; अर्च—अर्चा; काङ्क्ष्—आकाङ्क्षा, ईक्ष्—परीक्षा; कम्प्—अनुकम्पा; शन्स्—आशंसा, प्रशंसा; क्रीड्—क्रीडा; बाध्—बाधा; वाञ्छ्—वाञ्छा।

अङ्

धातुपाठ में षकार—इत् (षित्) धातु के उत्तर भाववाच्य में अङ् प्रत्यय होता है। ङ् इत् होने से केवल अ अवशिष्ट रहता है। अङ्—प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—जृष्—जरा; क्षमूष्—क्षमा; त्रपूष्—त्रपा; व्यथ्—व्यथा; त्वर्—त्वरा।

भिदादि धातुओं के उत्तर भाववाच्य में अङ् होता है। यथा—भिद्—भिदा; छिद्—छिदा; पीड्—पीडा; मृज्—मृजा; दय्—दया, तोलि—तुला।

चिन्ति, पूजि, कथि और चर्चि धातुओं के उत्तर भी भाववाच्य में अङ् होता है। यथा—चिन्ता; पूजा; कथा; चर्चा।

उपसर्ग, "श्रत्" और अन्तर शब्द पूर्व में रहने से आकारान्त धातु के उत्तर भाववाच्य में अङ् होता है। यथा—भा—आभा, प्रभा, विभा, प्रतिभा मा—प्रमा, उपमा, प्रतिमा; धा—विधा, व्यवधा, अभिधा उपधा; ज्ञा—अभिज्ञा, प्रज्ञा, अनुज्ञा, संज्ञा, अवज्ञा, प्रतिज्ञा, उपज्ञा, आज्ञा; ख्या—आख्या, संख्या; अभिख्या; स्था—संस्था, अवस्था, आस्था, निष्ठा, प्रतिष्ठा; धा—श्रद्धा, अन्तर्द्धा।

अच्

पच् प्रभृति धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अच् प्रत्यय होता है। च् इत् होने से केवल 'अ' बचता है। यथा—पचतीति—पचः, पाचकः, दीव्यतीति—देवः, क्षमते इति क्षमः; धरतीति—धरः, हरतीति—हरः।

चरतीति—चरः वा चराचरः, चलतीति—चलः वा चलाचलः, पततीति—पतः वा पतापतः; वदतीति—वदः वा वदावदः।

कर्मवाचक पद के परवर्त्ती हृ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अच् होता है। यथा—अंश हरतीति—अंशहरः (दायादः–उत्तराधिकारी), भागं हरति - भागहरः (अंशीदार), रोगहरः, शोकहरः, दुःखहरः, क्लेशहरः[1]।

कर्मवाचक पद के परवर्त्ती अर्ह् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अच् होता है। यथा—पूजाम् अर्हतीति—पूजार्हः, (पूजा के योग्य); तत् अर्हति—तदर्हः, सत्कारम् अर्हति—सत्कारार्हः, निन्दाम् अर्हति—निन्दार्हः (निन्दा योग्य)।

अधिकरणवाचक पद के परवर्त्ती शी धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अच् होता है। यथा—शिलायां शेते इति - शिलाशयः; भूमौ शेते—भूमिशयः शय्यायां शेते - शय्याशयः; बिले शेते—बिलेशयः (सर्पः)।

पार्श्व आदि शब्द के परवर्त्ती शी धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अच् होता है। यथा—पार्श्वेन शेते इति—पार्श्वशयः; पृष्ठेन शेते—पृष्ठशयः; उदरेण शेते—उदरशयः; उत्तानः शेते—उत्तानशायः ; अवमूर्द्धा शेते। अवमूर्द्धशयः।

इवर्णान्त धातु के उत्तर भाववाच्य में और कर्तृभिन्न कारक वाच्य में अच् प्रत्यय होता है। यथा—जि—जयः, क्षि—क्षयः, श्रि—श्रयः, ली—लयः, नी—नयः, भी—भयम्।

अण्

कर्मवाचक पद के परवर्त्ती धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अण् प्रत्यय होता है। ण् इत् होने पर अ शेष रहता है। यथा—कुम्भं करोति इति—कुम्भकारः, तन्तून् वयति—तन्तुवायः; तन्त्रं वयति—तन्त्रवायः, शास्त्राणि करोति - शास्त्रकारः, ऐसे ही सूत्रकारः, भाष्यकारः, चाटुकारः, कर्मकारः (लोहार), सूत्रं धारयति—सूत्रधारः, रथं करोति रथकारः (बढ़ई), वारिवाहः (मेघ)।

---

१. भारवहन अर्थ में अच् प्रत्यय नहीं होता। यथाः—भारं हरति—भारहारः (यहाँ अण् प्रत्यय हुआ है)।

अथुच्

टु—संसृष्ट धातु के उत्तर भाववाच्य में अथुच् प्रत्यय होता है -च् इत् हो जाता है। यथा टुवेप् वेपथुः; टुवम्—वमथुः, टुश्वि –श्वयथुः; टुक्षु—क्षवथुः; टुदु—दवथुः; टुभ्राज्—भ्राजथुः।

अनि

नञ् के परे धातु के भाववाच्य में आक्रोश और अभिशाप अर्थ में अनि प्रत्यय होता है। अनिप्रत्यय–निष्पन्न शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—जीव—अजीवनिः (सत्ताराहित्य) ; जन्–अजननिः (जन्म का अभाव)।

अनट् (ल्युट्)

भाववाच्य में और कर्तृभिन्न कारक—वाच्य में धातु के उत्तर अनट् प्रत्यय होता है। अनट् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—(भाववाच्ये) गम्—गमनम् ; वम्–वमनम् ; आ+रुह्—आरोहणम् ईक्ष्–ईक्षणम ; पत् –पतनम् ; अधि + इ = अध्ययनम् ; दा दानम् ; गा, गै—गानम् ; चि–चयनम् ; श्रि—श्रयणम् ; श्रु –श्रवणम् ; कृ—करणम् ; स्मृ–स्मरणम् ; स्पृश्—स्पर्शनम् ; सिच्—सेचनम् ; नृत्—नर्तनम् ; रुद्–रोदनम्। (कर्मवाच्ये)—भुज्यते इति –भोजनम् (खाने की वस्तु ; (करणवाच्ये)—क्रियते अनेन इति—करणम् ; भूष्यते अनेन इति भूषणम् (आभूषण), (सम्प्रदानवाच्ये)—सम्प्रदीयते अस्मै इति—सम्प्रदानम् ; (अपादानवाच्ये)—अपादीयते अस्मात् इति अपादानम्; (अधिकरणवाच्ये)– स्थीयते अत्र इति—स्थानम्।

एकं वक्ति इति—एकवचनम्—यहाँ कर्तृवाच्य में अनट् हुआ है।

ष्ठिव्—ष्ठीवनम्, ष्ठेवनम ; सिव्–सीवनम्, सेवनम् ; लिख्—लिखनम् ; लेखनम्।

कर्तृभिन्न कारकवाच्य में विहित अनट् प्रत्ययान्त शब्द कहीं कहीं वाच्यलिङ्ग (विशेषण) होता है। यथा—राजभिः भुज्यन्ते इति—राजभोजनाः, छिद्यते अनेन इति –छेदनः (परशु)।

अनीय (करने योग्य अर्थ में)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में धातु के उत्तर अनीय प्रत्यय होता है।

अनीय पर रहने से अन्त्य स्वर और उपधा लघु स्वर का गुण होता है। यथा—पा+आनीय=पानीय; भुज्—भोजनीय; श्रु—श्रावणीय; कृ—करणीय, हृ—हरणीय; रम्—रमणीय; शी—शयनीय; चि—चयनीय; स्मृ—स्मरणीय; वच्—वचनीय; सिच्—सेचनीय; शुच् शोचनीय; भुज्—भोजनीय; छिद्—छेदनीय; विद्+वेदनीय; मन्—मननीय; शुभ्—शोभनीय; सेव्—सेवनीय, रक्ष्—रक्षणीय; तुष्—तोषणीय; पूजि-पूजनीय।

अप्

ऋवर्णान्त और उवर्णान्त धातु के उत्तर भाववाच्य में और कर्तृ भिन्न कारकवाच्य में अप् प्रत्यय होता है। प इत् होने से अ शेष रहता है। अप् प्रत्ययान्त शब्द प्रायः पुंलिङ्ग होते हैं यथा—कृ—करः; शृ—शरः, गृ—गरः; स्तु—स्तवः; रु—रवः; भू—भवः। भी—भयम्; वृष् वर्षम्; श्रि—श्रयः; चि—चयः; ग्रह्—ग्रहः; मद्—मदः।

अस्

सरति इति—सरः; चेतति इति—चेतः; पीयते इति—पयः; उच्यते इति—वचः; मन्यते अनेन इति मनः; रज्यते अनेन इति=रजः; ताम्यति अनेन इति—तमः इत्यादि।

आलुच्

शीलादि अर्थ में स्पृह् आदि धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में आलुच् प्रत्यय होता है—च् को इत् संज्ञा हो जाती है। यथा- स्पृहि—स्पृहयालुः; दया—दयालुः; निद्रा—निद्रालुः; तन्द्रा—तन्द्रालुः; श्रद्धा—श्रद्धालुः; शीः—शयालुः; गृहि—गृहयालुः; पति—पतयालुः।

इत्नु

शीलादि अर्थ में णिजन्त स्तनि, मदि, दूषि, पुषि, गदि और हृषि

धातुओं के उत्तर इत्नु प्रत्यय होता है। यथा—स्तनयित्नुः, मदयित्नुः, दूषयित्नुः, पोषयित्नुः, गमयित्नुः, हर्षयित्नुः।

इत्र

करणवाच्य में पू आदि धातुओं के उत्तर इत्र होता है। यथा—पूयते अनेन—पवित्रम्, चर्—चरित्रम्, वह्—वहित्रम्, (पोत, जलयान) खन्—खनित्रम्, (खन्ता) लू—लवित्रम् (कटारी), धू—धवित्रम् (मृगचर्म का पंखा), ऋ—अरित्रम्।

इन्

शकृत् और स्तम्भ् शब्दों के परवर्ती कृ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में इन् प्रत्यय होता है। यथा—शकृत्करिः (बछड़ा), स्तम्बकरिः (अन्न, धाम)।

इन प्रत्यय होने पर फलेग्रहि, आत्मम्भरि, कुक्षिम्भरि और उदरम्भरि आदि कुछ पद निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा—फलानि गृह्णाति—फलेग्रहिः (फलवान्), आत्मानं बिभर्ति—आत्मम्भरिः (स्वार्थी, लोभी); कुक्षिम्भरिः, उदरम्भरिः (पेटू)।

इनि

निन्दाबोधक कर्मवाच्य पद के परवर्ती वि—पूर्वक क्री धातु के उत्तर कर्तृवाच्य के अतीत काल में इनि प्रत्यय होता है। न् इत् होने से इ शेष रहता है। यथा—मांसं विक्रीतवान्—मांसविक्रयी; इसी प्रकार—सुतविक्रयी, तैलविक्रयी; सोमविक्रयी आदि।

इष्णुच् ('वाला' अर्थ में)

शील, धर्म और सम्यक् करण अर्थ में सह् आदि[1] धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में इष्णुच् प्रत्यय होता है। च् इत् होने से इष्णु शेष रहता है। यथा—सह्—सहिष्णुः, रुच्—रोचिष्णुः, वृध्—वर्धिष्णु,

१. सह्, रुच्, वृध्, अलंकृ, निराकृ, प्रजन्, उत्पच्, उत्पत्, उन्मद्, अपत्रप्, वृत्, चर्, प्रभू।

अलङ्कृ = अलङ्करिष्णुः, निराकृ—निराकरिष्णुः, प्रजन्—प्रजनिष्णुः, उत्पच्—उत्पचिष्णुः, उत्पत्—उत्पतिष्णुः, उन्मद्—उन्मदिष्णुः, अपत्रप्-अपत्रपिष्णुः, वृत्—वर्तिष्णुः, चर्—चरिष्णुः, प्र + भू = प्रभविष्णुः।

उ (इच्छुक अर्थ में)

सनन्त धातु, भिक्ष् धातु और 'आ' पूर्वक शन्स् धातु के उत्तर, कर्तृवाच्य में उ प्रत्यय होता है। यथा—जिज्ञासुः, पिपासुः, बुभुक्षुः, चिकीर्षुः, विवक्षुः, जिघृक्षुः, जिघांसुः, तितीर्षुः, ईप्सुः, दित्सुः, लिप्सुः, जिगीषुः, जिगमिषुः, भिक्षुः, आशंसुः। निपातनात् इच्छुः (इच्छार्थक इष् धातु से)।

उकञ्

शीलादि अर्थ में लष् आदि धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में उकञ् होता है। ञ् इत् होने से उक शेष रहता है। यथा—लष्—लाषुकः, कम्—कामुकः, पत्—पातुकः, पद्—पादुकः स्था—स्थायुकः, भू—भावुकः, वृष्—वर्षुकः, गम्—गामुकः, शॄ—शारुकः। हन् के स्थान में घात हो जाता है—घातुकः।

उर्

शीलार्थ—विद्—विदुरः, भिद्—भिदुरः, छिद्—छिदुरः इत्यादि।

ऊक्

शीलार्थ—जागृ—जागरूकः; यज्—यायजूकः; जप्—जञ्जपूकः; वद् वावदूकः; दन्श्—दन्दशूकः इत्यादि।

क

जिन धातुओं की उपधा में इ, उ अथवा ऋ रहता है, उन धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में क प्रत्यय होता है। क् इत् होने से 'अ' शेष बचता है। यथा—वेत्ति इति—विदः, बुध्यते इति—बुधः, रोहति इति—रुहः।

कॄ, गॄ, ज्ञा और प्री धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क होता है। ॠ के स्थान में इर् और ई के स्थान में इय् होता है। यथा—किरति

इति—किरः, गिरति इति—गिरः, जानाति इति—ज्ञः प्रीणाति इति प्रियः।

उपसर्ग—पूर्वक आकारान्त धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क होता है। यथा—प्र + ज्ञा = प्रज्ञः, वि + ज्ञा = विज्ञः, अभि + ज्ञा = अभिज्ञः, प्र + दा = प्रदः, प्र + भा = प्रभः, नि + भा = निभः, वि + आ + घ्रा = व्याघ्रः।

कर्मवाचक शब्द के परवर्ती उपसर्गहीन आकारान्त धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क होता है और धातु के आकार का लोप होता है यथा— अन्नं ददाति = अन्नदः (अन्नदाता); भूमिं ददाति = भूमिदः, धनं ददाति = धनदः, वारि ददाति = वारिदः, ज्ञानं ददाति = ज्ञानदः, (कवच) आतपात् त्रायते = आतपत्रम्। (छाता), धर्मं जानाति = धर्मज्ञः, रसं जानाति = रसज्ञः, नॄन् पाति = नृपः, भुवं पाति = भूपः, भूमिं पाति = भूमिपः, मधु = पिबति = मधुपः।

सुबन्त पद और उपसर्ग के परवर्ती स्था धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क होता है और धातु के आकार का लोप होता है। यथा—गृहे तिष्ठति = गृहस्थः, वने तिष्ठति = वनस्थः, मध्ये तिष्ठति = मध्यस्थः, प्रकृतौ तिष्ठति = प्रकृतस्थः। ऐसे ही सुस्थः, दुःस्थः, संस्थः। उत् + स्था = उत्थः (खड़ा होने वाला); नि + स्था = निष्ठः (निपुण, तत्पर, निष्ठायुक्त, लवलीन)।

सुबन्त पद के परवर्ती दुह् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क होता है। दुह् के ह् के स्थान में घ् हो जाता है। यथा—कर्म दोग्धि इति = कामदुघा (धेनु, गाय)।

गौर्गौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥

कानच्

अतीतकाल में आत्मनेपदी धातु में उत्तर कानच् प्रत्यय होता है। क् और च् इत् होने से अन शेष रहता है।

लिट् की "आते" विभक्ति में जो जो कार्य होते हैं—आन परे भी वेही कार्य होंगे। यथा—युध् - युयुधानः, रुच्—रुरुचानः, वन्द्—ववन्दानः, शिक्ष्—शिशिक्षाणः, व्यथ्-विव्यथानः, सह्—सेहानः, सेव्—सिषेवाणः, कृ—चक्राणः, वच्—उचानः।

कानच् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न शब्द विशेषण होते हैं। स्वभावतः उनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के अनुसार ही होंगे। यथा—शुश्रुवान् पुरुषः, शुश्रूवांसं पुरुषम्, शुश्रुवुषा पुरुषेण इत्यादि।

कर्मवाच्य में भी कानच् प्रत्यय होता है। यथा—सिषेवाणः (वह—जिसकी सेवा की गयी थी)।

कि

उपसर्ग और अन्तर् शब्द के परवर्ती धा धातु के उत्तर भाववाच्य में कि प्रत्यय होता है। क् इत् हो जाने से इ बचता है कि परे धा धातु के आकार का लोप होता है। यथा—विधिः, निधिः, सन्धिः, आधिः, उपाधिः, अन्तर्द्धिः।

कर्मवाचक पद के धा धातु के उत्तर अधिकरणवाच्य में होता है। यथा—जलानि धीयन्ते अस्मिन् इति—जलधिः, ऐसे ही वारिधिः, पयोधिः, जलनिधिः, वारिनिधिः, पयोनिधिः।

क्त

अतीतकाल में धातु के उत्तर कर्मवाच्य और भाववाच्य में क्त प्रत्यय होता है। क इत् हो जाने से त शेष रहता है। क्त आदि निष्ठा-कहलाते हैं।

निष्ठा प्रत्यय परे रहने से सेट् धातु उत्तर इट् होता है। तिङन्त प्रकरण में जो धातु अनिट् कहे गये हैं, उन धातुओं के उत्तर क्त प्रत्यय रहने पर इट् नहीं होता।

अकर्मक धातु के उत्तर कर्तृवाच्य और भाववाच्य में क्त प्रत्यय होता है।

गत्यर्थ और प्राप्त्यर्थ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में भी क्त होता है। यथाः—ग्रामं गतः, गृहं प्रस्थितः, गङ्गां प्राप्तः, विद्यामधिगतः।

उपसर्ग के योग से सकर्मक होने पर भी शी (अधि+शी), स्था अधि+स्था, उप+स्था), आस् (अधि + आस्, अनु+आस्, उप+आस्), वस् (अधि+वस्, उप+वस्), जन् (अनु+जन्), श्लिष् (आ+श्लिष) और रुह् (आ + रुह्, अधि + रुह्) धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में भी क्त प्रत्यय होता है। यथा—शय्यामधिशयितः; आसनमधिष्ठितः, गुरुमुपस्थितः, आश्रममध्यासितः, पितरमन्वासितः, शिवमुपासितः, शिलातलमध्युषितः, हरिवासरमुपोषितः, अग्रजमनुजातः; शिशुमाश्लिष्टः, तुरगमारूढः, योगमधिरूढः।

पूजार्थं, इच्छार्थ, ज्ञानार्थ और ञीत् (ञि-इत्) धातु के उत्तर वर्तमान काल में भी क्त होता है। यथा-मम देवः पूजितः (पूज्यते इत्यर्थः)

निष्ठा-प्रत्यय परे रहने से—जिन धातुओं के उत्तर विकल्प से इट् होता है उन धातुओं के उत्तर और श्रि, उवर्णान्त, 'वृ' ऋदन्त तथा ईदित्[1] (ईकार इत्) धातुओं के उत्तर इट् नहीं होता।

निष्ठा—प्रत्यय परे रहने से दिव्—धू, सिव्—स्यू, ष्ठिव्—ष्ठ्यू, प्याय्—पी और प्या; स्फाय्—स्फी और स्फा, व्ये—वी, ह्वे—हू, हा ही, जन्—जा, सन्—सा, खन्—खा, श्वि—शू होता है।

मद् भिन्न दान्त, रान्त और ओदित[2] धातु तथा ग्लै, म्लै, द्रा स्त्यै धातु के परस्थित निष्ठा-प्रत्यय का त–न होता है। न पर रहने से दान्त धातु के द् के स्थान में भी न् होता है।

ह्री, घ्रा, त्रे, नुद् और विन्द् धातु के उत्तर निष्ठा—प्रत्यय का त विकल्प से न होता है।

निष्ठा—प्रत्यय परे रहने से क्षुध्, वस् और लुभ् धातु के उत्तर इट होता है। चिन्ता, लिप्सा अर्थ में लुभ् धातु को इट् नहीं होता। यथा:— लुभितः (विमोहितः, आकुलीकृतः), लिप्सार्थे—लुब्धः।

१—ईदित् धातु—कृत्, पृच्, जन्, त्रस्, दीप्, पुष्, प्याय्, मद् इत्यादि।

२—ओदित् धातु—डी, भञ्ज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, रुज्, विज्, भुज्, लज्, लस्ज् श्वि, हा इत्यादि।

निष्ठा प्रत्यय रहने से जप्, वम्, क्लिश्, हृष्, मृष्, रुष्, सम्—पूर्वक घुष्, वि और आ पूर्वक श्वस् धातु के उत्तर विकल्प से इट् होता है।

निष्ठा प्रत्यय परे रहने से छादि और ज्ञापि के स्थान में विकल्प से छाद् और ज्ञप् होता है। यथा—छन्न, छादित, ज्ञप्त, ज्ञापित।

निष्ठा प्रत्यय परे रहने से दा धातु के स्थान में दत् होता है। आ और प्र उपसर्ग पूर्व में रहने से दा धातु के स्थान में विहित दत् के दकार का विकल्प से लोप होता है। यथा—आ+दा =आदत्त, आत्त; प्र+दा = प्रदत्त, प्रत्त।

इट्युक्त निष्ठा—प्रत्यय परे रहने से पू, शी, धृष्, स्विद्, जागृ और (क्षमार्थ) मृष्, धातु को गुण होता है। यथा--पू--पवित; शी--शयित, धृष--धर्षित, स्विद्—स्वेदित, जागृ—जागरित, मृष्—मर्षित।

क्षै, पच् और शुष् धातु--परस्थित निष्ठा प्रत्यय के तकार में मिलकर यथाक्रम—क्षाम, पक्व और शुष्क होते हैं।

इट् युक्त निष्ठा प्रत्यय परे रहने से णिच् का लोप होता है। यथा—कथि—कथित, कारि—कारित, पालि—पालित, स्थापि—स्थापित, श्रावि—श्रावित।

उदाहरण

क्त निष्पन्न पद

अनिट् आकारान्त—ख्या—ख्यात, घ्रा—घ्राण, घ्रात, ज्ञा—ज्ञात, दा—दत्त, आ+दा—आदत्त, आत्त, प्र+दा—प्रदत्त, प्रत्त, द्रा—द्राण, धा—हित, पा—पीत, मा—मित, या—यात, स्था—स्थित, स्ना—स्नात, हा—हीन।

इकारान्त—क्षि—क्षीण, चि—चित, जि—जित, श्रि—श्रित, श्वि—शून।

ईकारान्त—क्री—क्रीत, क्षी—क्षीण, डी—डीन, दी—दीन, नी—नीत, प्री—प्रीत, भी—भीत, ली—लीन, ह्री—ह्रीण।

उकारान्त—च्यु—च्युत, दु—दून, द्रु—द्रुत, नु—नुत, यु—युत, रु-रुत, श्रु—श्रुत, स्तु - स्तुत, हु—हुत।

ऊकारान्त—दू—दून, धू—धूत, पू—पूत, ब्रू—उक्त, भू—भूत, लू—लून, सू—सूत।

ऋकारान्त—कृ—कृत, दृ—दृत, धृ—धृत, मृ—मृत, वृ—वृत।

ॠकारान्त—कॄ—कीर्ण, गॄ—गीर्ण, जॄ—जीर्ण, तॄ—स्तीर्ण, दॄ—दीर्ण, पॄ—पूर्ण, शॄ—शीर्ण, स्तॄ-स्तीर्ण।

एकारान्त—वे—ऊत, व्ये—वीत, ह्वे—हूत।

ऐकारान्त—क्षै—क्षाम, गै—गीत, ग्लै—ग्लान, त्रै—त्राण, त्रात, ध्यै—ध्यात, म्लै—म्लान, श्यै—श्यान (शुष्क), शीन (द्रवावस्थायाः कठिनीभूतः, घनीभूतः, यथा—शीनं घृतम् स्पर्शार्थं शीते यथा—शीतः समीरणः), स्त्यै—स्त्यानः।

ओकारान्त—दो—दित, शो—शित, शात, सो—सित।

कान्त—शक—शक्त।

चान्त - पच्—पक्व, पृच्—पृक्त, मुच्—मुक्त, रिच्—रिक्त, वच्—उक्त, सिच्—सिक्त।

छान्त—प्रच्छ्—पृष्ट, मूर्च्छ्—मूर्त।

जान्त—त्यज्—त्यक्त, भज्—भक्त, भन्ज्—भग्न, भुज्—भुक्त, मस्ज्—मग्न, मृज्—मर्ष्ट, यज्—इष्ट, युज्—युक्त, रन्ज्—रक्त, रुज्—रुग्ण, सन्ज्—सक्त, सृज्—सृष्ट।

णान्त—क्षण—क्षत।

तान्त—वृत्—वृत्त।

दान्त—अद्—जग्ध (भक्ष्यार्थे—अन्नम्); क्लिद्=क्लिन्न, क्षुद्=क्षुण्ण, खिद्=खिन्न, नुद्=नुन्न, नुत्त, पद्=पन्न, भिद्=भिन्न, (खण्डार्थे भित्तम्); मद्=मत्त, विद्=विन्न, वित्त (ख्यात), सद्=सन्न।

धान्त=क्रुध्=क्रुद्ध, बन्ध्=बद्ध, बुध्=बुद्ध, युध्=युद्ध, रुध्=रुद्ध, व्यध्-विद्ध, शुध्=शुद्ध, सिध्=सिद्ध।

नान्त = खन् = खात, जन् = जात, तन् = तत, मन् = मत, सन् = सात, हन् = हत ।

पान्त = आप् = आप्त, क्षिप् = क्षिप्त, गुप् = गुप्त, तप् = तप्त, तृप् = तृप्त, दीप् = दीप्त, दृप् = दृप्त, लिप् = लिप्त, लुप् = लुप्त, वप् = उप्त, स्वप् = सुप्त ।

भान्त = रभ् = रब्ध, लभ् = लब्ध, लुभ् = लुब्ध, स्तन्भ् = स्तब्ध ।

मान्त — कम् = कान्त, क्रम् = क्रान्त, क्लम् — क्लान्त, क्षम् = क्षान्त, गम् = गत, चम् = चान्त, तम् — तान्त, दम्, दान्त, नम् = नत, भ्रम् = भ्रान्त, यम् = यत, रम् = रत, शम् = शान्त, श्रम् = श्रान्त ।

यान्त = प्याय् — पीन, प्यान, स्फाय् = स्फीत, स्फात ।

रान्त = चूर् = चूर्ण, पूर् = पूर्ण ।

वान्त = दिव् = द्यूत, ष्ठिव् = ष्ठ्यूत, सिव् = स्यूत ।

शान्त = क्रुश् = क्रुष्ट, दन्श् = दष्ट, दिश् = दिष्ट, दृश् = दृष्ट, नश् = नष्ट, भ्रन्श् = भ्रष्ट, विश् = विष्ट, स्पृश् = स्पृष्ट ।

सान्त = अस् = भूत (दिवादि में अस्त), ग्रस् = ग्रस्त, त्रस् = त्रस्त, ध्वन्स् = ध्वस्त, शन्स् = शस्त, शास् = शिष्ट, स्रन्स् = स्रस्त, ।

हान्त = गाह् = गाढ, गुह् = गूढ, दह् = दग्ध, दिह् = दिग्ध, नह् = नद्ध, मुह् — मुग्ध, मूढ, रुह् = रूढ, लिह् = लीढ, वह् = ऊढ; सह् = सोढ, स्निह् = स्निग्ध ।

सेट् — आस् = आसित, ईक्ष् = ईक्षित, क्षुध् = क्षुधित, ग्रह् = गृहीत, जागृ = जागरित, निन्द् = निन्दित, पठ् = पठित, पत् = पतित, मुद् = मुदित, लक्ष् = लक्षित, लिख् = लिखित, सेव् = सेवित, हस् = हसित ।

वेट् = क्लिश् = क्लिष्ट, क्लिशित, सम् + घुष् = सङ्घुष्ट, सङ्घुषित, जप् — जप्त, जपित, मुष् = मुष्ट, मुषित, रुष् = रुष्ट, रुषित, वम् = वान्त, वमित, आ + श्वस् = आश्वस्त, आश्वसित, वि + श्वस् = विश्वस्त, विश्वसित, हृष् = हृष्ट, हृषित ।

क्तवतु

कर्तृवाच्य में धातु के उत्तर अतीतकाल में क्तवतु प्रत्यय होता है । क् और उ इत हो जाने से तवत् शेष रहता है ।

धातु से क्त प्रत्यय परे रहने पर जो जो कार्य होते हैं वे सब क्तवतु परे रहने पर भी होंगे। यथा—कृ—कृतवान्, स्था—स्थितवान्, भुज्—भुक्तवान् इत्यादि।

क्त्वा

दो क्रियाओं का एक ही कर्त्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया-बोधक धातु के उत्तर अनन्तर अर्थ में क्त्वा प्रत्यय होता है। क् इत् होने से त्वा अवशिष्ट रहता है। यथा = भुक्त्वा व्रजति (भोजन के अनन्तर जाता है)।

क्त्वा प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय होती है। इसको असमापिका या पूर्वकालिक क्रिया भी कहते हैं।

निषेधार्थक अलम् और खलु शब्द के योग से क्त्वा होता है। यथा—अलं भुक्त्वा, खलु गत्वा (अर्थात् न भोक्तव्यम्, न गन्तव्यम्)।

क् इत् (कित्) धातु अगुण होते हैं किन्तु इट् होने से उनका भी गुण होता है।

क्त्वा परे श्रि, उवर्णान्त, वृ और ऋदन्त धातु के इट् नहीं होता है।

ज्ञा ज्ञात्वा, स्ना—स्नात्वा, जि—जित्वा, श्रि श्रित्वा, नी—नीत्वा

श्रु – श्रुत्वा, भू—भूत्वा, कृ—कृत्वा, वृ—वृत्वा, स्मृ—स्मृत्वा।

अनिट्—चान्त, पच्—पक्त्वा, सिच—सिक्त्वा, मुच्—मुक्त्वा।

जान्त—त्यज् = त्यक्त्वा; भुज् = भुक्त्वा, मृज् = मृष्ट्वा।

दान्त—भिद् = भित्त्वा, छिद् = छित्त्वा।

धान्त—युध् = युद्ध्वा, बुध् = बुद्ध्वा, क्रुध् = क्रुद्ध्वा।

पान्त—क्षिप् = क्षिप्त्वा, तप = तप्त्वा, आप् = आप्त्वा।

भान्त—रभ् = रब्ध्वा, लभ् = लब्ध्वा।

शान्त—स्पृश् = स्पृष्ट्वा, दृश् = दृष्ट्वा।

षान्त—कृष् = कृष्ट्वा, पिष् = पिष्ट्वा। द्विष् = द्विष्ट्वा।

हान्त = दह् = दग्ध्वा, दुह् = दुग्ध्वा, नह् = नद्ध्वा।

कित् प्रत्यय परे रहने से दा = दत्, धा = हि, स्था = स्थि, मा = मि, गै = गी, (पानार्थ) पा = पी, (त्यागार्थ) हा = हि, शो = शि, सो = सि,

धाव् = विकल्प से धौ होता है। यथा = दा = दत्त्वा, धा = हित्वा, स्था = स्थित्वा, मा = मित्वा, गै = गीत्वा, पा = पीत्वा, हा = हित्वा।

क्त्रि

गणपाठ के समय जिन धातुओं में डु संयुक्त रहता है उनके उत्तर उसके निर्वृत्त अर्थ में क्त्रि प्रत्यय होता है। उसका त्रिम रहता है। यथा = कृ = क्रियया निर्वृत्तम् = कृत्रिमम्। दा के स्थान में दत् होता है। दानेन निर्वृत्तम् = दत्त्रिमम्। पच् = पाकेन निर्वृत्तम् = पक्त्रिमम्।

क्तिन्

भाववाच्य में धातु के उत्तर क्तिन् होता है। क् और न् इत् होकर ति शेष रहता है। यथा = ख्या = ख्यातिः, गै = गीतिः, मा = मितिः, स्था = स्थितिः, नी = नीतिः, प्री = प्रीतिः, भी = भीतिः, मन् = मतिः, तृप् = तृप्तिः, दीप् = दीप्तिः, क्रम् = क्रान्तिः, नम् = नतिः, भ्रम् = भ्रान्तिः, कृश्-कृष्टिः, दृश् = दृष्टिः इत्यादि।

विशेष = क्तिन् प्रत्यय-निष्पन्न शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

क्नु

शीलादि अर्थ में त्रस्, गृध्, धृष् और क्षिप् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क्नु होता है। क् इत् होने से नु शेष रहता है। यथा-त्रस्नुः, गृध्नुः, धृष्णुः, क्षिप्नुः,।

क्यप्

कर्मवाच्य और भाववाच्य में इ, दृ, भृ, कृ, जुष्, शास्, स्तु, धातु और उपधा में ऋकार विशिष्ट धातु के उत्तर क्यप् होता है। क् और प् इत् परे रहने से य शेष रहता है। यथा = इ = इत्य, दृ = आदृत्य, भृ = भृत्य, कृ = कृत्य। (पक्षान्तर में ण्यत् होता है), जुष् = जुष्यः, शास् = शिष्यः, स्तु = स्तुत्यः।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में सुबन्त पद के परवर्ती वद् धातु के उत्तर क्यप् और यत् होते हैं। क्यप् पक्ष में व के स्थान में उ होता है। यथा = ब्रह्म + वद् + क्यप् = ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्म + वद् + यत् = ब्रह्मवद्यम्, वेदवाक्यं ब्रह्मज्ञानं वा इत्यर्थः।

मृषा शब्द के परवर्ती होने से केवल क्यप् होता है। यथा: – मृषा+वद्+क्यप्=मृषोद्यम् (मिथ्यावचनम् इत्यर्थः)।

भाववाच्य में सुबन्त पद के परवर्ती भू धातु के उत्तर क्यप् होता है। यथा--ब्रह्मन् + भू = ब्रह्मभूयम् (ब्रह्मत्वम्), देवभूयम् (देवत्वम्), विप्रभूयम् (विप्रत्वम्)।

भाववाच्य में सुबन्त पद के परवर्ती हन् धातु के उत्तर क्यप् होता है। और न के स्थान में त् तथा स्त्रीलिङ्ग होता है। यथा = स्त्रीहत्या, गोहत्या, ब्रह्महत्या, नरहत्या, आत्महत्या।

क्वनिप्

अतीतकाल में कर्मवाचक पद के परवर्ती दृश् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क्वनिप् होता है। क्, इ और प् इत् हो जाने से वन् रहता है। यथा = पारं दृष्टवान्=पारदृश्वा।

यह शब्द के परवर्ती कृ और युध् धातु के उत्तर भी क्वनिप् प्रत्यय होता है। यथा = सहकृतवान्=सहकृत्वा (सहकारी इत्यर्थः), सह युद्धवान् = सह युद्ध्वा।

क्वरप्

शीलादि अर्थ में इ, नश्, जि, सृ और गम् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क्वरप् होता है। क् और प् इत् होने से वर शेष रहता है। यथा = नश्वरः, (गम् धातु में म् के स्थान में त् हो जाता है) गत्वरः।

क्वसु

कर्तृवाच्य में परस्मैपदी धातु के उत्तर अतीतकाल में क्वसु प्रत्यय होता है। क् और उ इत् होने से वस रहता है।

लिट् का व परे रहने से धातु में जो-जो कार्य होते हैं वस् परे रहने पर भी वही कार्य होंगे। यथा = भू = बभूवस्, श्रु=शुश्रुवस्, स्तु = तुष्टुवस्, विद् = विविद्वस्।

क्वसु परे घस्, इण् और आकारान्त धातु के उत्तर इट् होता है। यथा=-घस् = जक्षिवस्, इण् = ईयिवस्, स्था = तस्थिवस्, दा=ददिवस्, पा=पपिवस्।

अभ्यस्त कार्य के पश्चात् जो धातु एक स्वर विशिष्ट रहते हैं। क्वसु प्रत्यय परे उन धातुओं के उत्तर इट् होता है। यथा = पच् = पेचिवस्, पत् = पेतिवस्, वच् = ऊचिवस्, वस्=ऊषिवस्, यज् = ईजिवस्, सद् = सेदिवस्।

क्वसु प्रत्यय परे रहने से गम्, हन्, विश्, दृश् और तुदादि विद (विन्द्) धातु के उत्तर विकल्प से इट् होता है। यथा = गम् = जग्मिवस्, जगन्वस्, हन्—जघ्निवस्, जघन्वस्, विश्=विविशिवस्, विविश्वस्, दृश् = ददृशिवस् ददृश्वस्, विन्द = विविदिवस्, विविद्वस्।

क्विन्

उपमानवाचक तद्, यद्, एतद्, भवत्, अस्मद्, युष्मद्, अदस् इदम्, अन्य आदि शब्दों के परवर्ती दृश् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क्विन् और कञ् प्रत्यय होते हैं। क्विन् प्रत्यय पूरा इत्संज्ञक हो जाता है। और कञ् में क्, ञ् इत् होने से अ शेष रहता है।

क्विन् और कञ् प्रत्ययान्त दृश धातु परे होने पर तद्, यद्, एतद्, अस्मद् और युष्मद् शब्दों के द् का लोप हो जाता है। तथा उसके पूर्ववर्ती अ के स्थान में आ होता हैं यथा = स इव दृश्यते=तादृक्, तादृशः, यादृक्, यादृशः, एतादृक, एतादृशः, अस्मादृक्, अस्मादृशः, युष्मादृक्, युष्मादृशः।

क्विन् और कञ् प्रत्ययान्त दृश् धातु परे होने पर अदस् के स्थान में अमु, इदम् के स्थान में ई, किम् के स्थान में की, भवत् के स्थान में भवा, समान के स्थान में स और अन्य के स्थान में अन्या होते हैं। यथा=असौ इव दृश्यते + अमूदृक्, अमूदृशः; अयमिव दृश्यते+इदृक्; ईदृशः; क इव दृश्यते+कीदृक् कीदृशः भवानिव दृश्यते+भवादृक भवादृशः; समान इव दृश्यते + सदृक्; सदृशः; अन्य इव दृश्यते+ अन्यादृक् अन्यादृशः।

क्विप्

सुबन्त पद या उपसर्ग के परवर्ती धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में क्विप प्रत्यय होता हैं और पूरा क्विप इत हो जाता है। यथा + सद+

(सभायां सीदति इति) = सभासद्, सू = (पुत्रं सूते) = पुत्रसूः, वीरसूः, रत्नसूः, कामसूः, द्विष् (धर्म द्वेष्टि) = धर्मद्विट्, मित्रद्विट्, द्रुह् (यज्ञं द्रुह्यति), यज्ञध्रुक्, मित्रध्रुक्, दुह् कामं दोग्धि) = कामधुक्, गोधुक्, विद् (शास्त्रं वेत्ति) = शास्त्रविद्, धर्मविद्, ब्रह्मविद्; भिद् = (गोत्रं पर्वतं भिनत्ति) = गोत्रभित्, छिद् पक्षं छिनत्ति) = पक्षच्छिद्, जि शत्रुं जयति) शत्रुजित्, नी (सेनां नयति) = सेनानीः, अग्रणीः, राज् = (स्वेन एव राजते) = स्वराट्, (विशेषेण राजते) = विराट्; (जलं स्पृशति) जलस्पृक्।

क्विप् परे दिव् = द्यू होता है। यथा: = अक्षैः दीव्यति = अक्षद्यूः। शास् धातु के स्थान में शी होता है। यथा = मित्रं शास्ति = मित्रशीः।

भाववाच्य में और कर्मादि कारकवाच्य में भी क्विप् होता है। यथा:—(भावे) आ + शास् = आशीः, (कर्मवाच्य में) = उच्यते इति वाक्, (करणवाच्य में)–ध्यायति अनया इति = धीः, (अधिकरणवाच्य में) संसीदन्ति अस्याम् इति = संसद्, परितः सीदन्ति अस्याम् इति = परिषद्, उपनिषण्ण परं श्रेयः अस्याम् इति उपनिषद्।

सु कर्मन्, पाप, पुण्य और मन्त्र शब्द के परवर्ती कृ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अतीतकाल में क्विप् होता है। यथा = सु = कृतवान् सुकृत्; कर्म = कृतवान् कर्मकृत्, पापकृत्।

भ्रूण, ब्रह्म और वृत्र शब्द के परवर्ती हन् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य अतीत काल में क्विप् होता है। यथा: = भ्रूणं जघान = भ्रूणहा, ब्रह्महा

प्र + अन्च् = प्राङ्, सन् + अन्च् = सम्यङ्; सह + अनच् = सध्र्यङ्, तिरस् + अन्च् = तिर्यङ्।

खच्

'प्रिय' आदि शब्द के परवर्ती वद् आदि धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में खच् प्रत्यय होता है। ख् और च् इत् होने से अ रहता है। खित् कार्य भी होता है। यथा = प्रियं वदति इति = प्रियंवदः, वशं वदति = वशंवदः, प्रियं करोति–प्रियङ्करः, क्षेमङ्करः, भयङ्करः। वाचं यच्छति–वाचंयमः, सर्वं कषति = सर्वङ्कषः, कूलङ्कषः; परान्–शत्रून् तापयति–परन्तपः, अरीन्

दाम्यति दमयति वा = अरिन्दमः, पुरं दारयति = पुरन्दरः। धुरं धारयति = धुरन्धरः, वसूनि धारयति = वसुन्धरा, पतिं वृणोति = पतिंवरा, विश्वं बिभर्ति = विश्वम्भरः (विष्णुः), विश्वम्भरा (पृथिवी) सर्वं सहते = सर्वंसहा, धनं जयति = धनञ्जयः, भुजेन = कौटिल्येन, भुजं = वक्रं वा गच्छति = भुजङ्गमः, प्लवेन = लम्फेन गच्छति = प्लवङ्गमः, तुरेण वेगेन गच्छति = तुरङ्गमः, विहायसा गच्छति = विहङ्गमः, हृदयं गच्छति = हृदयङ्गमः।

खल्

सु, दुर्, और ईषत् शब्द के परवर्ती धातु के उत्तर कर्मवाच्य और भाववाच्य में खल प्रत्यय होता है। ख् और ल् इत् होने से अ मात्र शेष रहता है। यथा = सुखेन क्रियते = सुकरः, दुःखेन क्रियते = दुष्करः, ईषत्करः, सुगमः, दुर्गमः, सुवहः, दुर्वहः, सुत्यजः, दुस्त्यजः, सुलभः, दुर्लभः।

खश्

असूर्य आदि कर्मवाचक पद के परवर्ती दृश् आदि धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में खश् प्रत्यय होता है। ख् और श् इत् होने से अ रहता है। यथाः = सूर्यम् अपि न पश्यति इति = असूर्यम्पश्या, जनम् एजयति = जनमेजयः स्तनं धयति = स्तनन्धयः, स्तनन्धयी, नाडि = वंशनलीं = धमति = नाडिन्धमः, अभ्रं लेढि = अभ्रंलिहः, (ख परे लिह् धातु का गुण नहीं होता) विधुं तुदति = विधुन्तुदः, अरुषि = तुदति = अरुन्तुदः (अरुष् शब्द के सकार का लोप होता है), आत्मानं पण्डितं मन्यते = पण्डितम्मन्यः, आत्मानं धन्यं मन्यते = धन्यम्मन्यः, कृतार्थम्मन्यः, सुभगम्मन्यः, कूलम् उद्रुजति = विभनक्ति = कुलमुद्रुजः, कूलम् उद्वहति = कूलमुद्वहा।

खि

आत्मन्, उदर और कुक्षि शब्द के परवर्ती भृ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में खि होता है। ख् इत् होने से इ शेष रहता है। यथाः—

आत्मानं बिभर्त्ति—आत्मम्भरिः (नान्त शब्द के नकार का लोप होता है), उदरम्भरिः, कुक्षिम्भरिः ।

घञ्

भाववाच्य में और कर्तृभिन्न कारक वाच्य में धातु के उत्तर घञ् प्रत्यय होता है , घ् और ञ् इत् होने से अ शेष रहता है । घञ प्रत्ययान्त शब्द प्रायः पुंल्लिग होते हैं। यथा—(भाववाच्ये)—पच्—पाकः, त्यज्—त्यागः, नश्—नाशः, पठ्—पाठः, स्रु—स्रावः उपसर्ग-पूर्वक रु—आरवः, विरावः संरावः, शुच्—शोकः ।

(कर्मवाच्ये)—भुज्यते इति—भोगः, प्रास्यते—क्षिप्यते इति-प्राशः ।

(कर्मवाच्ये)—रज्यते अनेनेति—रागः ।

(अपादानवाच्ये)—आहरन्ति रसम् अस्मात् इति—आहारः ।

(अधिकरणवाच्ये)—रज्यति अस्मिन् इति रङ्गः ।

रभ्—आरम्भः, लभ्—आलम्भः, ।

घिनुण्

युज्, त्यज्, भज्, भुज्, रन्ज्, रुज् 'सम्' पूर्वक सृज्, वि पूर्वक विच् और 'सम्' पूर्वक पृच् धातु के उत्तर शील अर्थ में कर्तृवाच्य में घिनुण् प्रत्यय होता है। घ् उ, और ण् इत् होने से इन् शेष रहता है। यथा—युज् योगी, वियोगी, प्रतियोगी, त्यज्—त्यागी, परित्यागी, भज्—भागी, विभागी, भुज्—भोगी, सम्भोगी, रनज्—रागी विरागी, अनुरागी (रन्ज धातु के नकर का लोप होता हैं), रुज्—रोगी, सम्+सृज्—संसर्गी, वि+विच्—विवेकी, सम्+पृच्—सम्पर्की ।

घ्यण्

कर्मवाच्य और भाववाच्य में शब्दार्थक 'वच' भोगार्थक 'भुज्' और अर्हार्थक 'युज्' धातु के उत्तर घ्यण् होता है। घ्, ण्, इत् होने से य रहता है । यथा—वच् —वाक्यम् (पदसङ्घातः), भुज्—भोग्य, युज्—योग्य ।

क्त प्रत्यय में अनिट् (पच्, रुज् आदि) धातु के उत्तर भी घ्यण् होता है। यथा—पच्—पाक्य, रुज्—रोग्य ।

ट (टक्)

दिवा प्रभृति कर्मवाचक पद के परवर्ती कृ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ट प्रत्यय होता है। ट् इत होने से अ रहता है। यथा—दिवा—दिनं करोति इति—दिवाकरः, विभां करोति—विभाकरः, प्रभाकरः, निशाकरः, भासं करोति इति – भास्करः, अहस्करः, अन्तकरः, किङ्करः, लिपिकरः, कर्म करोति मूल्येन इति – कर्मकरः।।

हेतु और अनुकूल अर्थ में कर्मवाचक पद के परवर्ती धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ट होता है। यथा—(हेतु अर्थ में) शोककरः बन्धुनाशः, अर्थकरः, यशस्करः विद्यालाभ; । (अनुकुल अर्थ में) आज्ञाकरः, वचन करः पुत्रः।

पुर, अग्र, अग्रे, अग्रतः इन शब्दों के परवर्ती सृ धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ट होता है। यथा जले चरति इति जलचरः, वारिणि चरति इति—वारिचरः, स्थले चरति इति - स्थलचरः, भुवि चरति—भूचरः,वने चरति—वनचरः, निशायां चरति—निशाचरः, पार्श्वे चरति—पार्श्वचरः, खे चरति—खचरः, ।

रात्रि शब्द विकल्प से द्वितीया एकवचनान्तवत होता है। यथा—रात्रौ चरति इति—रात्रिचरः, रात्रिञ्चरः।

कर्मवाचक पद के परवर्ती गै धातु के उत्तर कर्मवाच्य में ट होता है। यथा—साम गायति = सामगः।

कर्मवाचक पद के परवर्ती हन् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ट होता है तथा हन् के स्थान में घ्न होता है। यथा—शत्रु हन्ति – शत्रुघ्नः, पापं हन्ति—पापघ्नः, वातं हन्ति—वातघ्नः, पित्तं हन्ति—पित्तघ्नः, कृतं हन्ति – कृतघ्नः, मित्रं हन्ति—मित्रघ्नः, गां हन्ति – गोघ्नः, पशून् हन्ति-पशुघ्नं, त्रिदोषं हन्ति—त्रिदोषघ्नंः।

उपमानवाचक तद् , यद् , एतद्, किम्, भवत्, अस्मद्, युष्मद्, अदस् , इदम्, अन्य और समान शब्द के परवर्ती दृश् धातु के उत्तर कर्मवाच्य के टक् होता है।

टक् प्रत्ययान्त दृश् धातु परे रहने से तद् , अस्मद् और

युष्मद् शब्द के द् का लोप और तत्पूर्ववर्ती अ के स्थान में 'आ' होता है। यथा—स इव दृश्यते-तादृशः, यादृशः, एतादृशः, अस्मादृशः, युष्मादृशः।

टक प्रत्ययान्त दृश् धातु परे रहने से अदस् शब्द के स्थान में अमू इदम् शब्द के स्थान में ई, किम् शब्द के स्थान में की, भवत् शब्द के स्थान में भवा, समान शब्द के स्थान में स, और अन्य शब्द के स्थान में अन्या होता है यथा—असौ इव दृश्यते अमूदृशः, अयम् इव दृश्यते – ईदृशः, क इव दृश्यते—कीदृशः, भवान् इव दृश्यते –भवादृशः, समान इव दृश्यते—सदृशः, अन्य इव दृश्यते—अन्यादृशः।

ड

सुबन्त पद के परवर्ती गम् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ड प्रत्यय होता है। ड् इत् होने से अ शेष रहता है यथा —अन्तं गच्छति इति अन्तगः, अध्वानं गच्छति—अध्वगः, दूरं गच्छति—दूरगः पारं गच्छति—पारगः, सर्वं गच्छति—सर्वगः, सर्वत्र गच्छति—सर्वत्रगः, गृहं गच्छति—गृहगः, ग्रामं गच्छति—ग्रामगः, तल्पं गच्छति तल्पगः, खे गच्छति—खगः।

क्लेश, शोक और तमस् शब्द के परवर्ती अप-पूर्वक हन् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ड होता है। यथा—क्लेशम् अपहन्ति इति—क्लेशापहः, शोकम् अपहन्ति—शोकापहः, तमः अपहन्ति—तमोऽपहः।

अधिकरणवाचक गिरि शब्द के परवर्ती शी धातु के उत्तर 'ड' होता है। यथा—गिरीशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी।

उपसर्ग वा सुबन्त पद के परवर्ती जन् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ड होता है। यथा—सरसि जायते इति सरोजम्, मनसि जायते इति मनोजः, अप्सु जायते—अब्जम्, जले जायते—जलजम्, अग्रे जायते—अग्रजः, पङ्कात् जायते—पङ्कजम्, अङ्गात् जायते-अङ्गजः, आत्मनः जायते आत्मजः, स्वेदात् जायते—स्वेदजः, अण्डात् जायते अण्डजः, जरायोः जायते—जरायुजः, अनुजायते—अनुजः, प्रजायते—प्रजा।

पत, भुज, त्वरा, उरस् और विहायस् शब्द परवर्ती गम् धातु के

उत्तर कर्तृवाच्य में 'ड' प्रत्यय होता है एवं निम्नलिखित पद निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा-पतेन पक्षेण गच्छति—पतंगः, भुजं वक्त्रं गच्छति—भुजगः, त्वरया गच्छति—तुरगः, उरसा गच्छति—उरगः, विहायसा गच्छति—विहगः।

णक (ण्वुल्)

धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में 'ण' प्रत्यय होता है। ण् इत् होने से अक शेष रहता है। यथा—नी—नायकः, श्रु—श्रावकः, पू—पावकः, कृ—कारकः, स्मृ-स्मारकः,-तॄ-तारकः, नश्—नाशकः, पच्—पाचकः; पठ्—पाठकः, रिच्—रेचकः; सिच्—सेचकः, मुच्-मोचकः, रुध्-रोधकः, दा—दायकः, गा (गै)—गायकः, हन्—घातकः—(हन् के स्थान में घात् होता है), दृश्—दर्शकः, जनि—जनकः, पालि—पालकः, योजि—योजकः, स्थाप—स्थापकः।

निमित्त—अर्थ समझाने से भविष्यत्काल में धातु के उत्तर णक होता है। यथाः—अन्न भोजकः व्रजति (अन्न भोजन करने के लिए जाता है); ओदनं पाचकः प्रयाति (पक्तुमित्यर्थः), देवं दर्शकः प्रतिष्ठते (देवं द्रष्टुमित्यर्थः)

णमुल् (णम्)

पौनःपुन्य अर्थ में क्त्वा के स्थान में पूर्वकालिक क्रिया बोधक धातु के उत्तर णमुल प्रत्यय होता है। ण् और उल् इत् होने से अम् रहता है।

णमुल् प्रत्ययान्त क्रिया असमापिका और अव्यय होती है।

प्रयोग काल में णमुल् प्रत्ययान्त क्रिया द्विरुक्त होकर व्यवहृत होती है। यथा—(स्मृ) स्मारं स्मारं नमति (स्मृत्वा स्मृत्वा—पुनः पुनः स्मृत्वा इत्यर्थः)।

एवम्—पा—पायम्, श्रु—श्रावम्, स्तु—स्तावम्, नम्—नामम्,

१—णक और णिन् परे आकारान्त धातु के उत्तर य होता है।

ग्रह्—ग्राहम्, भुज्—भोजम्, भिद्—भेदम्, क्षिप्—क्षेपम्, मृश्—मर्शम्, स्पृश्—स्पर्शम्, हस्—हासम्, गाह्—गाहम्।

णमुल प्रत्यय परे रहने से हन् धातु के स्थान में घात् होता है। यथा—घातम्।

कथम्, इत्थम्, एवम् और अन्यथा शब्द के परस्थित कृ धातु के उत्तर णमुल् होता है यदि इस प्रकार णमुल् प्रत्यय निष्पन्न पद हों तो उनका अर्थ उन शब्दों के ही समान हो। यथा—कथङ्कारम् (कथमित्यर्थः—कैसे ?), इत्थङ्कारम् (इत्थमित्यर्थः—ऐसे ?) एवङ्करम् (एवमित्यर्थः—ऐसे ?), अन्यथाकारम् (अन्यथा इत्यर्थः—अन्य प्रकार से), यहाँ कृ धातु निरर्थक हैं।

साकल्य अर्थ समझाने से कर्म पद में परवर्ती दृश् और विद् धातु उत्तर णमुल् होता है। यथा— दरिद्र दर्शं ददाति (दरिद्रं दरिद्रं दृष्ट्वा—यं यं दरिद्रं पश्यति, तं तं ददाति—सर्वान् दरिद्रानित्यर्थः) विप्रवेदं भोजयति—सर्वान् विप्रानित्यर्थः)।

यावत् शब्द के परवर्ती जीव् धातु के उत्तर णमुल् होता है यथा—यावज्जीवम् अधीते (यावत् जीवति—तावत् इत्यर्थः।)

कर्मवाचक उदर शब्द के परवर्ती जीव् धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथा—उदरपूरं भुङ्क्ते (उदरं पूरयित्वा इत्यर्थः।) त्वरा समझाने से अपादान पद के परवर्ती धातु के उत्तर णमुल होता है। यथा—शय्योत्थायं धावति (शय्यायाः शीघ्रमुत्थायेत्यर्थः)।

कर्मवाचक नाम शब्द के परवर्ती ग्रह् धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथा—नामग्राहम् आह्वयति (नाम गृहीत्वा इत्यर्थः)।

तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पद के परवर्ती उपपूर्वक पीड् और उपपूर्वक रुध् धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथः—पार्श्वोपपीडं शेते (पार्श्वाभ्यां पार्श्वेन पार्श्वयोर्वा उपपीड्य शेते इत्यर्थः), व्रजोपरोधं गाः स्थापयति (व्रजेन व्रज उपरुध्य इत्यर्थः)।

किसी अवयव का परिक्लेश अथवा सम्पूर्ण रूप से पीड़ा समझाने

से उस अवयववाचक द्वितीयान्त पद के परवर्ती धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथा—स्तनसम्बाधमुरो जघान च (स्तनौ सम्बाध्य इत्यर्थः), उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः (नखैः उरो विदार्य्य हृतः इत्यर्थः)।

क्रियाविशेषणवाचक समूल शब्द के परवर्ती कष् (हिंसायाम्) और हन् धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथा—समूलकाषं कषति, समूलघातं हन्ति (समूलं कषति, हन्ति इत्यर्थः)।

जीव शब्द के परवर्ती ग्रह् धातु का णमुल् होता है। यथा—जीवग्राहं गृह्णातीत्यर्थः)।

करणबोधक शब्द के परवर्ती हन् और पिष् धातु का णमुल् होता है। यथा—पादघातं भूमिं हन्ति (पादेन हन्तीत्यर्थः)।

हस्तवाचक करणपद के परवर्ती ग्रह् धातु का णमुल् होता है यथा–हस्तग्राहं गृह्णाति (हस्तेन गृह्णाति इत्यर्थः) पाणिग्राहम् करग्राहम्।

कर्तृविशषण ऊर्ध्व शब्द के परवर्ती शुष् धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथा—ऊर्ध्वंशोषं शुष्यति तरुः (तरुः ऊर्ध्वः—उन्नतः एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः—खड़ा खड़ा सूख जाता है)।

उपमानवाचक कर्तृपद और कर्मपद के परवर्ती धातु के उत्तर णमुल् होता है। यथा—(कर्त्ता) विद्युत्प्रणाशं प्रणष्टः (विद्युदिव क्षणेनैव विनष्ट इत्यर्थः), शलभनाशं (नश्यति शलभ इव अविमृश्यकारी पुरुषो नश्यतीत्यर्थः), पार्थसञ्चारं चरति (पार्थ इव सशौर्य चरतीत्यर्थः), विच्छिन्नाभ्रविलायं वा विलीये नगमूर्द्धनि (विच्छिन्नाभ्रमिव विलीये इत्यर्थः।

(कर्म) पितृवेदं वेत्ति गुरुम् (गुरु पितरमिव जानातीत्यर्थः), पुत्रदर्शं पश्यति शिष्यम् (शिष्यं पुत्रमिव सस्नेहं पश्यतीत्यर्थः), रत्ननिधायं निदधाति (रत्नमिव सयत्नं निदधातीत्यर्थः), सैकतभेदं भिनत्ति शैलम् (सैकतमिव अनायासेनैव भिनत्तीत्यर्थः)' धनचायं चिनोति धर्मम्) (धनमिव अवधानेन च चिनोतीत्यर्थः)।

(अन्य उदाहरण)

चोरङ्कारम् आक्रोशति (चोरं कृत्वा—चौरोऽसि इत्युक्त्वेत्यर्थः)।

स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते, लवणङ्कारं भुङ्क्ते (स्वादु कृत्वा, लवणं कृत्वा इत्यर्थः)। पुष्पवर्ज्जम् (पुष्पं वर्ज्जयित्वा इत्यर्थः)

णिन् (णिनि)

धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में णिन् प्रत्यय होता है; ण् इत् होने से इन् शेष रहता है। यथा—मन्त्रयते इति मन्त्र्—मन्त्री; वद्—वादी, प्रतिवादी, परिवादी; वस्—वासी, प्रवासी, अधिवासी; राध्—अपराधी; चर्—व्यभिचारी, सञ्चारी, स्था—स्थायी; सृ—संसारी, द्विष्—द्वेषी; विद्वेषी, रुध्—रोधी, विरोधी, प्रतिरोधी, द्रुह्—द्रोही, विद्रोही, दिव्-परिदेवी, कृ—अधिकारी, लष्—अभिलाषी।

उपसर्ग और सुबन्तपद के परवर्ती धातु के उत्तर 'शील' और 'व्रत' अर्थ में णिन् होता है। यथा—(शील अर्थ में) मांसं भोक्तुं शीलम् अस्य इति—मांसभोजी, वने वस्तुं शीलमस्य—वनवासी, साधु करोति—साधुकारी, सत्यं वदति—सत्यवादी; प्रियं वदति—प्रियवादी, मनः हरति—मनोहारी, हृदयं गृह्णाति—हृदयग्राही, अनुयाति—अनुयायी, अनुजीवति—अनुजीवी, अनुगच्छति—अनुगामी।

(व्रत अर्थ में)—स्थण्डिले शेते—स्थण्डिलशायी, क्षीरपायी, शिरःस्नायी, अश्राद्धभोजी।

कर्तृवाचक उपमानपद के परवर्ती धातु के उत्तर णिन् होता है। यथा—सिंह इव विक्रमते—सिंहविक्रमी, सुधा इव स्यन्दते—सुधास्यन्दी।

करणवाचक पद के परवर्ती यज् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अतीतकाल में णिन् होता है। यथा—सोमेन इष्टवान्—सोमयाजी, अग्निष्टोमयाजी।

कर्मवाचकपद के परवर्ती हन् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में अतीतकाल में णिन् होता है। हन् धातु के ह के स्थान में घ और न् के स्थान में त होता है। यथा—पितरं जघान—पितृघाती, पितृव्यं जघान—पितृव्यघाती, पुत्रघाती, मित्रघाती।

भविष्यत्काल समझाने से भू, या, स्था, गम्, बुध्, युध् और रुध् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में णिन् होता है। यथा—भविष्यति इति—

भावी, या—यायी, स्था—स्थायी, प्रस्थायी, गम्—गामी, बुध्—प्रतिबोधी, युध्—प्रतियोधी, रुध्—प्रतिरोधी।

ण्यत्

कर्मवाच्य और भाववाच्य में उवर्णान्त धातु के उत्तर आवश्यक अर्थ में ण्यत् होता है। ण् और त् इत् होने से 'य' शेष रहता है। यथा—स्तु—स्ताव्य (अवश्यस्तवनीय)।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में ऋकारान्त और व्यञ्जनान्त धातु के उत्तर ण्यत् होता है। यथा—(ऋकारान्त)—कृ—कार्य, हृ—हार्य, स्मृ—स्मार्य (व्यञ्जनान्त)—वह्—वाह्य, हन्—घात्य (ण्यत् परे होने से हन् के स्थान में घात् होता है) जन्—जन्य, वध्—वध्य, त्यज्—त्याज्य, यज्—याज्य, बुध्—बोध्य, भुज्—भोज्य, वच्—वाच्य इत्यादि।

तव्य

कर्मवाच्य और भाववाच्य में धातु के उत्तर तव्य प्रत्यय होता है। लुट् का 'ता' परे रहते धातु का जैसा कार्य होता है तव्य प्रत्यय परे रहते भी वैसा कार्य होगा।

यथा—दा + तव्य = दातव्य, शी—शयितव्य, नी—नेतव्य, श्रु—श्रोतव्य, भू—भवितव्य, कृ—कर्तव्य, हन्—हन्तव्य, गम्—गन्तव्य, प्रच्छ्—प्रष्टव्य, श्वस्—श्वसितव्य, वह्—वोढव्य, सह्—सोढव्य, विश्—वेष्टव्य, स्पृश्—स्प्रष्टव्य, कारि—कारयितव्य, भोजि—भोजयितव्य इत्यादि।

यदि उत्तम क्रिया का कर्ता एक हो तो निमित्तार्थ में भविष्यत्काल में धातु के उत्तर तुमुन् प्रत्यय होता है। तुमुन् का उ और न् इत् होने से तुम् शेष रहता है यथा—भोक्तुं याति (भोजन करने के निमित्त जाता है)।

तुमन्त क्रिया अव्यय (असमापिका) होती है।

लुट् का 'ता' परे रहते जो जो कार्य होते हैं तुमुन् परे भी वैसे ही कार्य होंगे। यथा—दृश्—द्रष्टुं याति, भुज्—भोक्तुम् अभिलषति, अधीङ्—अध्येतुम् इच्छति।

दा—दातुम्, स्था—स्थातुम्, जि—जेतुम्, नी—नेतुम्, कृ—कर्तुम्,

श्रु—श्रोतुम्, गै—गातुम्, पच्—पक्तुम्, प्रच्छ्—प्रष्टुम्; त्यज्—त्यक्तुम्, भुज्—भोक्तुम्, अद्—अत्तुम्, क्रीड्—क्रीडितुम्, गम्—गन्तुम्, क्षम्—क्षन्तुम्, क्षमितुम्, मुह्—मोहितुम्, मोग्धुम्, मोढुम्, सह्—सहितुम्, सोढुम्, कारि—कारयितुम्, कथि—कथयितुम्।

कालवाचक शब्द और समर्थार्थक शब्द के योग से धातु के उत्तर तुमन् होता है। यथा—अध्येतुं कालोऽयम्, गन्तुं समयोऽयम्, शयितुं वेलेयम्। वोढुं समर्थः, भोक्तुं पटुः, वर्त्तितुं निपुणः, कारयितुं कुशलः योजयितुं प्रवीणः।

तृच्

धातु के उत्तर कर्तृवाचक में तृच् प्रत्यय होता है। च् इत् होने से तृ शेष रहता है। लुट् विभक्ति में जिस प्रकार कार्य हुआ है—तृच् प्रत्यय में भी उसी प्रकार कार्य होगा। यथा—दा—दाता, धा—धाता, पा—पाता, जि—जेता, नी—नेता, श्रु—श्रोता, कृ—कर्ता, हृ—हर्ता, क्षिप्—क्षेप्ता, सिच्—सेक्ता, विद्—वेत्ता, भुज्—भोक्ता, बुध्—बोद्धा, युध्—योद्धा, रुध्—रोद्धा, गम्—गन्ता, हन्—हन्ता, दृश्—द्रष्टा, ग्रह्—ग्रहीता, भू—भविता, सू—सविता, सोता, कारि—कारयिता।

त्र (ष्ट्रन्)

(करणवाच्ये)—(दा छेदने)-दाति अनेन इति दात्रम्, नयति अनेन—नेत्रम्, (शस् हिंसायाम्) शसति अनेन—शस्त्रम्, स्तौति अनेन—स्तोत्रम्, पतति-गच्छति अनेन पत्त्रम् (वाहनम् इत्यर्थः), दशति अनया—दंष्ट्रा।

त्रिम (क्त्रिमप्)

डु—संसृष्ट धातु के उत्तर तन्निर्वृत्त अर्थ में त्रिम प्रत्यय होता है। यथाः—डुकृ (क्रियया निर्वृत्तं निष्पन्नम्)—कृत्रिमम्, डुपच् (पाकेन निर्वृत्तम्)—पक्त्रिमम्, डुदा (दानेन निर्वृत्तम्)—दत्त्रिमम् (दा के स्थान में दत् होता है)।

न (नङ्)

यज्, यत्, प्रच्छ्, याच्, तप्, और रक्ष् धातुओं के उत्तर भाववाच्य

में न होता है यथा—यज्ञः, यत्नः, प्रश्नः, याच्ञा, तृष्णा, रक्ष्णः।
स्वप् धातु के उत्तर नन् होता है। यथा—स्वप्नः।

य (यत्)

कर्मवाच्य और भाववाच्य में स्वरान्त, पवर्गान्त[1] और शक्, सह् आदि धातुओं के उत्तर यत् होता है। त् इत् होने से 'य' शेष रहता है।

यत् परे रहने से अन्त्य स्वर का गुण हो जाता है। यथा—(स्वरान्त) चि + यत् = चेय, जि—जेय, नी—नेय; श्रु—श्रव्य भू—भव्य।

(पवर्गान्त)—जप् + यत् = जप्य, लभ्—लभ्य, गम्—गम्य, नम्—नम्य; रम्—रम्य, शक्—शक्य, सह्—सह्य।

यत् परे रहने से आकारान्त धातु और खन् धातु के 'टि' के स्थान में 'ए' होता है। यथा:—दा—देय, मा—मेय, स्था—स्थेय, खन्—खेय। उपसर्गविहीन गद्, मद्, यम् और चर् धातु के उत्तर यत् होता है। यथा:—गद्—गद्य, मद्—मद्य, यम्—यम्य, चर्—चर्य्य, किन्तु 'आ' पूर्वक चर् धातु, के भी उत्तर यत् होता है। यथा—आचर्य्य।

युच्

शीलादि अर्थ में क्रोधार्थ एवं भूषार्थ धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में युच् होता है। युच् के स्थान में अन होता है। यथा – क्रुध्—क्रोधनः, रुष्—रोषणः, कुप्—कोपनः, अ—मृष्—अमर्षणः, अलम्—कृ—अलङ्करणः।

शीलादि अर्थ में ज्वल् आदि धातुओं में उत्तर कर्तृवाच्य में यु होता है। यथा—ज्वल्—ज्वलनः, शुच् शोचनः, वृध्—वर्धनः, चल्—चलनः, दह्—दहनः।

णिजन्त धातुओं के उत्तर भाववाच्य में युच् होता है और युच् प्रत्यय से सिद्ध होने वाले शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—अर्चि अर्चना, कल्पि—कल्पना, कारि—कारणा, गणि—गणना, घटि—

---

१. लप्, वप्, चम् को छोड़कर।

घटना, प्र-तारि—प्रतारणा, धारि—धारणा, परि—पारणा, विमानि—विमानना, यन्त्रि—यन्त्रणा, याति—यातना, वासि—वासना।

युच् प्रत्यय से सिद्ध होने वाले शब्द कभी-कभी नपुंसकलिङ्ग भी होते हैं। यथाः—प्रेरि—प्रेरणम्, प्रीणि—प्रीणनम्, तर्पि-तर्पणम्, शोधि—शोधनम्, साधि—साधनम्, गोपि—गोपनम्।

वन्द्, विद्, आस्, ईष्, ग्रन्थ् और श्रन्थ् धातुओं के उत्तर भाववाच्य में युच् होता है। यथा—वन्द्—वन्दना, विद्—वेदना, आस्-आसना, ईष्-ईषणा, ग्रन्थ्—ग्रन्थना, श्रन्थ-श्रन्थना।

र

शीलादि अर्थ में नम् आदि धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में र होता है। यथा—नम्—नम्रः, हिन्स्—हिंस्रः, स्मि—स्मेरः, कम्प्—कम्प्रः, अजस्—अजस्रः, दीप्—दीप्रः।

ल्यप्

नञ्—भिन्न अव्यय पद के साथ समास होने से धातु के उत्तर क्त्वा के स्थान में ल्यप् होता है। ल् और प् के इत् होने से य शेष रहता है। यथा—आ + दा + ल्यप् = आदाय, वि + जि = विजित्य, वि + नी = विनीय, प्र + हृ = प्रहृत्य, आ + दृ आदृत्य, वि + हा = विहाय।

ल्यप् प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय होती है। इसको असमापिका क्रिया कहते हैं।

ल्यप् परे रहने से णिच् का लोप होता है। यदि णिच् का पूर्ववर्त्ती स्वर लघु हो तो णिच् का लोप न होकर णिच् के 'इ' के स्थान में 'अय्' होता है। यथा—वि + चारि = विचार्य, प्र + काशि = प्रकाश्य, (पूर्वस्वर लघु)—वि + गणि = विगणय्य, वि + रचि = विरचय्य।

ल्यप् परे रहने से आपि धातु का 'इ' विकल्प से अय् होता है। यथा प्र + आपि = प्रापय्य, प्राप्य।

ल्यु

नन्द आदि धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में ल्यु होता है यथा—

नन्दि—नन्दनः, मदी—मदनः, साधि—साधनः, वर्द्धि—वर्द्धनः, शोभि—शोभनः, सह्—सहनः, तप्—तपनः, दम्—दमनः, रमि—रमणः, सूदि-सूदनः, भीषि—भीषणः, नाशि—नाशनः।

ल्युट्

भाववाच्य में धातु के उत्तर ल्युट् होता है। यथा—गम्—गमनम्, भुज्—भोजनम्, शी—शयनम्, वम्—वमनम्, आ + रुह्—आरोहणम्, ईक्ष्—ईक्षणम्, चल्—चलनम्, पत्—पतनम्, स्खल् स्खलनम्, रक्ष्—रक्षणम्, भक्ष्—भक्षणम्, गर्ज्—गर्जनम्, लङ्घ्—लङ्घनम्, स्पन्द्—स्पन्दनम्, तृप्—तर्पणम्, मन्—मननम्, अधि + इ = अध्ययनम्, वन्च्—वञ्चनम्, पा पानम्, दा—दानम्, गा (गै)—गानम्' घ्रा—घ्राणम्, ज्ञा—ज्ञानम्, वि + धा = विधानम्, आ + दा = आदानम्, मा—मानम्, स्ना—स्नानम्, चि—चयनम्, श्रि—श्रयणम्, श्रु—श्रवणम्, कृ—करणम्, भृ—भरणम्, मृ—मरणम्; वृ- वरणम्, स्मृ—स्मरणम्, हृ—हरणम्, दृश्—दर्शनम्, स्पृश्—स्पर्शनम्; सिच्—सेचनम्, रन्ज्—रञ्जनम्, नृत्—नर्तनम्, मन्थ्—मन्थनम्, रुद्—रोदनम्, अङ्क्—अङ्कनम्।

करण और अधिकरणवाच्य में धातु के उत्तर ल्युट् होता है। यथा—(करणवाच्ये) नीयते अनेन इति—नयनम्, लोच्यते अनेन—लोचनम्, चर्य्यते अनेन—चरणम्, क्रियते अनेन—करणम्, साध्यते अनेन साधनम् भूष्यते अनेन—भूषणम्, मण्ड्यते अनेन—मण्डनम्, यायते अनेन—यानम्, वाह्यते अनेन—वाहनम्, अधिरुह्यते अनया—अधिरोहणी।

(अधिकरणवाच्ये) शय्यते अस्मिन्—शयनम्, भूयते अस्मिन् भवनम्, स्थीयते अस्मिन्—स्थानम्।

वनिप् (ङ्वनिप्)

अतीतकाल सु (स्वादि) और यज् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में वनिप् प्रत्यय होता है इ और प् इत् होने से वन् शेष रहता है यथा—

सुनोति + स्म (अभिषवं यज्ञाङ्गस्नानं कृतवान् इति)—सुत्वा, विधिना इष्टवान्—यज्वा ।

वरच्

शीलादि अर्थ में स्था आदि धातुओं के उत्तर कर्तृवाच्य में वरच् प्रत्यय होता है। च् इत् होने से वर शेष रहता है। यथा—स्था—स्थावरः, ईश् ईश्वरः, भास्—भास्वरः।

विण्

सुबन्त पद के परवर्ती भज् धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में विण् प्रत्यय होता है यह पूरे का पूरा इत् संज्ञक हो जाता है। यथा—अंशं भजते इति—अंशभाक्, दुःख भजते—दुःखभाक्।

शतृ

कर्तृवाच्य में परस्मैपद धातु के उत्तर वर्तमान काल में शतृ प्रत्यय होता है। श् ओर ऋ इत् होने से अत् शेष रहता है। यथा– धाव्––धावत्, दृश्—पश्यत्, मुच्—मुञ्चत् दिव्—दीव्यत्, अश्—अश्नत् श्रु––शृण्वत्, हिन्स्—हिंसत्, कथि—कथयत्, कारि– कारयत् चोरि, चोरयत्। एवमेव दा—ददत्, भी–बिभ्यत्, हा—जहत्।

अदादिगणीय विद् धातु के उत्तर शतृके स्थान में विकल्प से वसु होता है। यथा—विद्वस्, विदत्।

शानच्

कर्तृवाच्य में आत्मनेपदी धातु के उत्तर वर्तमान काल में शानच् प्रत्यय होता है। श्, च् इत् होने से आन शेष रहता है।

आन परे रहने से लट् की 'आते' विभक्ति का समस्त कार्य होता है। भ्वादि, दिवादि और तुदादिगणीय धातु के उत्तर विहित आन के स्थान में मान होता है यथा—(भ्वादि)—सेव्—सेवमानः, वृत्—वर्तमान (दिवादि)—जन् जायमान, विद्—विद्यमान। (तुदादि)—मृ—म्रियमाण, धृ–ध्रियमाण।

(अदादि)—शी– शयान, अधि + इ—अधीयान।

(तनादि)—मन्—मन्वान ।

(ह्वादि)—मा—मिमान ।

अदादि-गणीय आस् धातु के परस्थित आन-ईन होता है। यथा—आस्-आसीन ।

कर्तृवाच्य में उभयपदी धातु के उत्तर वर्तमान काल में शतृ और शानच् दोनों प्रत्यय होते हैं। यथा—

(भ्वादि) श्रि—श्रयत्, श्रयमाण, यज् – यजत्, यजमान ।

(अदादि) स्तु—स्तुवत्, स्तुवान, दुह्—दुहत्, दुहान ।

(ह्वादि) दा—ददत्, ददान, भृ—बिभ्रत्, बिभ्राण ।

(रुधादि) रुध्—रुन्धत्, रुन्धान ।

(तनादि) तन्—तन्वत्, तन्वान, कृ—कुर्वत्, कुर्वाण ।

(क्र्यादि) क्री—क्रीणत्, क्रीणान, ग्रह्—गृह्णत्, गृह्णान ।

कर्मवाच्य में धातु के उत्तर वर्तमान काल में शानच् होता है। शानच् परे रहने से आन के स्थान में मान होता है। यथा कृ—क्रियमाण, वच् –उच्यमान, दा—दीयमान, पा—पीयमान, ग्रह्—गृह्यमाण, सेव् सेव्यमान, वह्—उह्यमान, दृश्—दृश्यमान, कृष्—कृष्यमाण, सृज्—सृज्यमान, ज्ञा—ज्ञायमान ।

उपलक्षण और हेत्वर्थ में भी शतृ, शानच् होते हैं। यथा—स पशूनां वधं कुर्वन्नासीत् (वधक्रियया उपलक्षित इत्यर्थः), फलान्याहरन् वनं याति (फलाहरणाद्धेतोरित्यर्थः) ।

शील या शक्ति अर्थ में परस्मैपदी धातु के उत्तर भी शानच् होता है। यथा—हसमानः शिशुः, करिणं निघ्नानः, द्विपम्—अभिभवमानः-सिंहः ।

षक (ष्वुन्)

शिल्पविशेष के अर्थ में नृत्, खन्, और रन्ज् धातु के उत्तर षक होता है। ष् इत् होने से अक शेष रहता है। षक परे उपधा लघुस्वर का गुण और उपधा नकार का लोप होता है। यथा—नृत्—नर्तकः, खन्—खनकः, रन्ज्—रजकः ।

ष्ट्रन्

करणवाच्य में नी आदि धातुओं के उत्तर ष्ट्रन् होता है। यथा—नयति अनेन—नेत्रम्, दाति अनेन—दात्रम् शसति अनेन—शस्त्रम्।

स्यतृ

कर्तृवाच्य मे परस्मैपदी धातु के उत्तर भविष्यत्काल में स्यतृ प्रत्यय होता है। ऋ इत् होने से स्यत् शेष रहता है। लृट् परे धातु को जो जो कार्य-विधान होते हैं, स्यत् परे भी वही होंगे। यथा—भू—भविष्यत्, गम्—गमिष्यत्, श्रु—श्रोष्यत्, जि जेष्यत्, कारि—कारयिष्यत्।

स्यमान

कर्तृवाच्य में आत्मनेपद धातु के उत्तर भविष्यत्काल में स्यमान प्रत्यय होता है। स्यमान परे भी लृट् विभक्ति के परे रहने वाले समस्त कार्य विधान होते हैं यथा—सेविष्यमाण, वर्त्तिष्यमाण, जन्—जनिष्यमाण, पद्—पत्स्यमान, सह्—सहिष्यमाण।

कर्तृवाच्य में उभयपदी धातु के उत्तर भविष्यत्काल में स्यतृ और स्यमान दोनों होते हैं यथा—स्तु - स्तोष्यत्, स्तोष्यमाण, दा—दास्यत्, दास्यमान, धा—धास्यत्, धास्यमान, ग्रह्—ग्रहीष्यत्, ग्रहीष्यमाण, कृ—करिष्यत्, करिष्यमाण।

कर्मवाच्य में धातु के उत्तर भविष्यकाल में स्यमान होता है। यथा—ज्ञा—ज्ञास्यमान, ज्ञापिष्यमाण, श्रु—श्रोष्यमाण, श्राविष्यमाण, कृ—करिष्यमाण, कारिष्यमाण, दृश्—द्रक्ष्यमाण् दर्शिष्यमाण, दह्—धक्ष्यमाण, वच्—वक्ष्यमाण।

अनुवाद

तेन अवश्यमेव गन्तव्यम्—उसे अवश्य जाना चाहिए। तथा वर्तेथाः यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि—ऐसा व्यवहार करना जिससे वह राजा मुझपर प्रसन्न हो जाए। जरसा यस्मिन्नहार्य्यो रसः—वृद्धावस्था के कारण रस-ग्रहण सम्भव नहीं। त्याज्यः दुष्टः प्रियोऽप्यासीत् अङ्गुलीवोरगक्षता—साँप से डँसी गयी अँगुली के समान ही दुष्ट पुरुष का त्याग कर देना चाहिए। आज्ञा

गुरूणां ह्यविचारणीया—गुरुओं की आज्ञा में मीन-मेष नहीं करना चाहिए। चपलेन सह स्नेहः सर्वदा न कर्तव्यः—चपल व्यक्ति के साथ प्रेम नहीं करना चाहिए।

हरिम् पश्यन् जनः मुक्ति लभते—हरि को देखता हुआ व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। सा नीयमाना रुचिरान् प्रदेशान्—रमणीय प्रदेशों को ले जाती जाती हुयी वह। एवं निर्घृणं प्रहरन् न लज्जसे—इस प्रकार निर्दयता से पीटते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती।

स शापो न त्वया राजन् न च सारथिना श्रुतः—हे राजन्! वह शाप न तो तुम्हारे द्वारा ही सुना गया और न सारथि द्वारा। मया च दीर्घकालं तपस्तप्तम्—मेरे द्वारा बहुत समय तक तपस्या की गयी है। इति समालोच्य मुनिं हन्तुमुद्यतः—यह सोचकर (वह) मुनि को मारने को तैयार हुआ। क्व चायं कालस्त्वया विहृतः—यह समय तुम्हारे द्वारा कहाँ बिताया गया।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो—दर्शनीयः खल्वयं जनः। सुप्ता मयैव भवती प्रबोधनीया। हीनसेवा न कर्तव्या, कर्तव्यो महदाश्रयः। वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा। राज्ञा महतां सेवा कर्तव्या। न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।

विश्वामित्रमनुगच्छन्तौ तौ रेजतुः। केनापि पठ्यमानं श्लोकद्वयं शुश्राव। रामः पितृसत्यं पालयन् वनं जगाम। पीताम्बरं दधन् हरिस्तव मङ्गलं करोतु। यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि।

किं श्येनः शिशु हन्तु समर्थो भवति। नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्। चेष्टया न कोऽपि दैवमतिक्रमितुं शक्नुयात्। स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जाम्।

एवमभिधाय नापितः स्वगृहं गतः। तत्र जाताः पाण्डवाः पञ्च। तस्मात् स्थानादिह दिदृक्षुर्भवतां समीपमहमागतः। ततस्तेन मृगः एको व्यापादितः। स चैकदा निर्भरं प्रसुप्तः।

पथि क्वापि विषं दत्त्वा एतान्निहत्य रत्नानि ग्रहीष्यामि। कथं माम् एकाकिनं मुक्त्वा गच्छसि। किं यूयं मां दृष्ट्वैव सन्त्रस्ता व्रजथ।

नाहमर्थलिप्सुरेवं ब्रवीमि। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेद्! गृहं गत्वा अन्नं भक्ष-यिष्यामि। एकदा महती वृष्टिः सञ्जाता। शिशोरत्र रक्षकः कोऽपि नास्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो:—फूल चुन कर ला। लड़के विद्यालय से पढ़कर आते हैं। लड़के खेल कर घर लौटते हैं। बैल रस्सी तोड़कर भागा।

दीनों को धन देना चाहिये। भूल कर भी मिथ्या नहीं बोलना। सर्वत्र गुण का आदर करना चाहिये। कल मेरे यहाँ भोजन करना।

यहाँ लड़के खेलते-खेलते लड़ते थे। मैंने हँसते-हँसते कहा था। वह चिड़िया उड़ते-उड़ते पृथ्वी में गिरी। छात्र अध्ययन करते-करते बात कर रहे हैं।

गरमी से सब जल सूख गया था। समस्त फल गिर गये। तुम कहाँ थे? कुम्भकर्ण ने सीता को नहीं देखा। लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को मारा था।

तुम विश्वनाथ मंदिर का दर्शन करना। तुम वहाँ सुबह जल्दी ही पहुँच जाना। तुम किसी से झगड़ा मत करना। प्रत्येक विद्यार्थी गुरुजनों का सम्मान करे।

एक दिन जंगल में घूमते हुए मैंने एक शेर देखा। उसने किसी के द्वारा गाया जाता हुआ एक गीत सुना। कल मैंने हरि को मामा के घर जाते हुए देखा था। वह वेद पढ़ने के लिये काशी गया। मुझे दौड़ता हुआ एक घोड़ा दिखायी पड़ा।

वह कुछ खाना चाहता है। मैं देखने जाना चाहता हूँ। मैं इस समय वाराणसी जाने में समर्थ नहीं हूँ। वह कुछ फूल चुनने बगीचे में गयी। वह लड़की गरीब को कपड़ा देना चाहती थी।

एक दिन एक डाकू पकड़ कर राजा के सम्मुख लाया गया। तुम्हारे द्वारा एक बहुत सुन्दर चित्र लाया गया। राजा द्वारा महल की छत पर जाया गया।

घर जाकर उसने अपने भाई को देखा। कुछ फल इकट्ठे कर वह घर चला गया। गंगास्नान करके वह गाँव में लौट आया। मुँह धोकर वह घूमने चला गया। सर्प को मारकर उसने अपने भाई के प्राणों की रक्षा की।

शतृ, शानच्, क्वसु और कानच् के प्रयोगों को उदाहरण सहित बताओ।

हत्वा, श्रुत्वा और व्यापादितः—शब्दों के धातु बतलाकर उनके लट् के प्रयोग बताओ।

शतृ, स्यतृ के प्रयोग सोदाहरण बताओ।

तुम् प्रत्यय का प्रयोग दिखाते हुए चार वाक्य बनाओ।

क्त का प्रयोग वर्तमान काल के कर्मवाच्य में तथा भूतकाल के कर्तृवाच्य दिखाकर दो दो वाक्य बनाओ।

शुद्ध करो:—एतत् न गृहीतव्यम्। अहं स्वस्थाने गन्तव्यम्। विप्राय इदं न दत्तव्यम्। कथम् अहं तस्यापराधः सहितव्यः। गुरुषु भक्तिर्विधेयम्। शय्यायां शेतव्यम्। मृगो व्याघ्रात् बिभ्यन् पलायते। गावं ददन् द्विजं याति। पथि गच्छन्तो नारी आगच्छतं स्वामिनं ददर्श। परस्परं विवदन्तस्ते धर्माधिकारिणं जगाम। रामः रावणं हतः। कृष्णेन कंसो हतवान्। स ग्राम गतवन्तः। चौरेण धनमपहृत्य पलायितवान्। अहं वीतरागः इदं व्रतमध्यवसितम्। वृक्षे अवस्थित्वा रात्रिं यापय। रामः शत्रून् पराजयन् सोत्साहं समरक्षेत्र निविशति। वृक्षेभ्यः पतमानानि फलानि गज भक्षयति। त्वं विद्यालयं गन्तव्यम्। दक्षिणां प्रतिगृहीत्वा ब्राह्मणः प्रस्थितः।

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

७२

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विरचित

संस्कृत-

व्याकरण-कौमुदी

(चतुर्थ भाग)

अनुवादकः—

पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २२१००१

आमुख

स्वर्गीय पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत संस्कृत व्याकरण-कौमुदी के अन्तिम चतुर्थ भाग का यह नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ है। प्रथम भाग में सुबन्त प्रकरण, द्वितीय और तृतीय भागों में सुबन्त का विस्तृत विवरण दिया गया है। क्रिया के साथ सम्बन्ध रहने के कारण कृत् प्रकरण भी तृतीय भाग के अन्त में दिया गया है।

इस चतुर्थ भाग में कारक-प्रकरण, विभक्ति-निर्णय, तद्धित-प्रकरण और समास-प्रकरण का विस्तृत विवरण दिया गया है। पूर्व भागों की तरह इनके प्रयोगों के उदाहरण, अनुवाद आदि भी दिये गये हैं। इन अन्तिम प्रकरणों को उत्तम रूप से सीखे बिना व्याकरण का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। इस कारण क्रिया के साथ-साथ इन विषयों को भी अच्छी तरह पढ़ लेना चाहिए।

भारत को प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं। इस कारण उन भाषाओं के शुद्ध प्रयोग जानने के लिए संस्कृत का साधारण ज्ञान अपेक्षित है। यही कारण है कि आजकल शिक्षित वर्ग संस्कृत सीखना चाहता है। हमारी 'संस्कृत व्याकरण की उपक्रमणिका' तथा प्रस्तुत व्याकरण-कौमुदी के चारों भाग हिन्दी में लिखे होने के कारण वे इनसे थोड़े समय में शिक्षक की सहायता के बिना भी संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

संस्कृत पाठशालाओं तथा स्कूल-कालेजों में ये पुस्तकें पढ़ायी जायँ तो शिक्षार्थियों को संस्कृत व्याकरण सीखने में विशेष सहायता प्राप्त होगी।

निवेदक—

गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

संस्कृत
व्याकरण-कौमुदी
चतुर्थ भाग

कारकप्रकरण

कारकः—क्रिया के साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है उसको कारक कहते हैं।[1] यथा—तीर्थक्षेत्रे राजा स्वहस्तेन कोषात् दरिद्राय धनं यच्छति। इस वाक्य में—

कः यच्छति ?—राजा—कर्ता, प्रथमा विभक्ति।
किं यच्छति ?—धनम्—कर्म, द्वितीया विभक्ति।
केन यच्छति ?—स्वहस्तेन—करण, तृतीया विभक्ति।
कस्मै यच्छति ?—दरिद्राय—सम्प्रदान, चतुर्थी विभक्ति।
कस्मात् यच्छति ?—कोषात्—अपादान, पञ्चमी विभक्ति।
कुत्र यच्छति ?—तीर्थक्षेत्रे—अधिकरण, सप्तमी विभक्ति।

इस प्रकार राजा, धन, स्वहस्त, दरिद्र, कोष और तीर्थक्षेत्र इन छः पदों का क्रिया के साथ अन्वय है। अतः ये कारक हैं।

सम्बन्ध पद और सम्बोधन पद कारक नहीं माने जाते। यथा :—रामस्य पुत्रः गच्छति—इसमें गच्छति क्रिया पद के साथ रामस्य पद का कोई सम्बन्ध न होकर पुत्रः (कर्ता) के साथ है। इसी प्रकार भगवन् ! भीतान् रक्ष—इसमें भी रक्ष क्रियापद के साथ भगवन् का

---

1. क्रियोपयोगि क्रियान्वयि कारकम्।

कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध पद में षष्ठी और सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

कारक के छः भेद हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण।

कर्ता :—क्रिया-सम्पादन में जो स्वतन्त्र अर्थात् प्रधान भाव से विवक्षित होता है (अर्थात् जो अन्य किसी कारक के अधीन न होकर स्वयं क्रिया-निष्पादन करता है) उसे कर्ताकारक कहते हैं।[1] यथा :— हरिः पठति—यहाँ पठन क्रिया का व्यापार हरि के अधीन है। राजा यच्छति—यहाँ यच्छ् (देना) क्रिया का व्यापार राजा के अधीन है। अतः हरिः और राजा कर्ताकारक हैं।

कर्म :—कर्ता की क्रिया द्वारा जो आक्रान्त होता है उसे कर्म कहते हैं[2]। यथा :—राजा धनं यच्छति, बालः चन्द्रं पश्यति—यहाँ राजा (कर्ता) की यच्छ् क्रिया द्वारा आक्रान्त धन है और बाल की दृश्-क्रिया द्वारा आक्रान्त है चन्द्र।

अधि-पूर्वक शी, स्था, आस् धातु और अधि तथा आ पूर्वक वस् धातु के अधिकरण-कारक की कर्मसंज्ञा होती है। यथा :—(अधि+शी) शय्यायां शेते=शय्याम् अधिशेते; (अधि+स्था) गृहे तिष्ठति=गृहम् अधितिष्ठति; (अधि+आस्) आसने आस्ते=आसनम् अध्यास्ते; (अधि+वस्) नगरे वसति=नगरम् अधिवसति; (आ+वस्) गुरोरालयम् आवसति।

दुह्, याच्, चि, प्रच्छ, नी, मन्थ् आदि कुछ धातुओं के दो कर्म रहते हैं। एक को मुख्य अथवा प्रधान कर्म और दूसरे को गौण अथवा अप्रधान कर्म कहते हैं। क्रिया के साथ प्रधान भाव से जिसका अन्वय होता है उसको प्रधान कर्म और अप्रधान भाव से जिसका अन्वय होता है उसको अप्रधान कर्म कहते हैं। यथा :—गोपः गां पयः दोग्धि, दरिद्रः नृपं धनं याचते, शिष्यः गुरुं धनं याचते, शिष्यः गुरुं

१. स्वतन्त्रः कर्ता। २. क्रियाव्याप्यं कर्म।

धर्मं पृच्छति—यहाँ पय, धन, और धर्म प्रधान कर्म तथा गौ, नृप और गुरु अप्रधान कर्म हैं। अप्रधान कर्म को 'अकथित' या 'अविवक्षित' कर्म भी कहते हैं। अर्थात् दोनों कर्मों के बीच में किसी अन्य कारक की प्रवृत्ति की सम्भावना रहती है पर वक्ता की इच्छा के अभाव से उन सब कारकों की प्रवृत्ति न होकर कर्मकारक की प्रवृत्ति होती है उसे ही 'अकथित, अविवक्षित वा अप्रधान कर्म" कहते हैं। पूर्वोक्त उदाहरणों में गो आदि की कर्मसंज्ञा हुई है परन्तु विवक्षता रहने से गोः पयः दोग्धि, नृपाद् धनं याचते, गुरोर्धर्मं पृच्छति-इस प्रकार अपादानादि कर्मों की भी प्रवृत्ति हो सकती थी।

अवशिष्ट द्विकर्मक धातुओं के उदाहरण :—मालाकारो वृक्षं पुष्पं चिनोति; पिता पुत्रं गृहं नयति; देवा जलधिममृतं ममन्थुः, पुत्रं नीतिं ब्रूते वदति वा; तण्डुलान् ओदनं पचति शत्रुं राज्यं जयति; दुष्टान् शतं दण्डयति राजा; बालं गृहं रुणद्धि; चौरः साधुं धनं मुष्णाति; शिष्यं धर्मं शास्ति; ग्रामम् अजां कर्षति, हरति, वहति वा।

करण :—कर्ता की क्रियासिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक हो उसे करणकारण कहते हैं। यथा :—रामः दण्डेन श्वानं हन्ति; लेखन्या लिखति इत्यादि।

सम्प्रदान :—दानकर्म के उद्देश्यभूत जो कारक अर्थात् कर्ता जिसके उद्देश्य से स्वत्वत्यागपूर्वक कोई वस्तु दान करता है उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं। यथा :—विप्राय दक्षिणां ददाति; शिष्याय विद्यां ददाति।

जिसे उद्देश्य करके किसी क्रिया का अनुष्ठान किया जाता है उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :— युद्धाय सन्नह्यते राजा। (युद्धम् उद्दिश्य, अभिप्रेत्य इत्यर्थः); ज्ञानाय विद्यामधीते शिष्यः (ज्ञानार्थमित्यर्थः), नृपायोपहारं प्रजाः प्रेषयन्ति इत्यादि।

रुच्यर्थक (रुचि-अर्थ विशिष्ट) धातु का कर्ता जिसकी प्रीति उत्पादन करता है—उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :— मोदकः शिशवे रोचते; साधवे रोचते धर्मः; कदाचिच्चाटुवचनं सुजनेभ्यो न रोचते; इदं मह्यं स्वदते इत्यादि।

स्पृहि धातु के प्रयोग में कर्ता का जो ईप्सित अर्थात् अभिलषित विषय उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :—धर्माय स्पृहयति।

धारि धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (जिससे ऋण लिया जाता है) की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :—स मह्यं शतं धारयति।

क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक और असूयार्थक[१] धातु के प्रयोग में क्रोधादि का जो उद्देश्य हो अर्थात् जिसके प्रति क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या आदि होता है—उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :—भृत्याय क्रुध्यति; शत्रवे द्रुह्यति; प्रतिवेशिने ईर्ष्यति; प्रतिद्वन्द्विने असूयति।

प्रति-पूर्वक आ-पूर्वक 'श्रु' धातु के प्रयोग में जो याच्ञा करता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :—भिक्षुकाय वस्त्रं प्रतिशृणोति, आशृणोति वा (वस्त्रं याचमानाय भिक्षुकाय वस्त्रं दातुमङ्गीकरोतीत्यर्थः)।

अपादानः—अपाय अर्थात् विश्लेष (अलग होना) के अर्थ में ध्रुव (जिससे कोई चीज अलग या वियुक्त होती है) की अपादान[२] संज्ञा होती है और अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :—वृक्षात् फलं पतति।

भयार्थ और रक्षार्थ[३] धातु के भय-हेतु की अपादान संज्ञा होती है। यथा :—(भयार्थ) साधुः दुर्जनात् बिभेति, सज्जनः पापात् त्रस्यति।

उत्पत्ति के कारण[४] शब्द की अपादान संज्ञा होती है। यथा :—बीजादङ्कुरो जायते; मृदो घटो जायते; सुवर्णात् कुण्डलं जायते; दुग्धात् घृतमुत्पद्यते।

भू धातु के प्रयोग में आविर्भाव भूमि अर्थात् आद्य-प्रकाशस्थान की अपादान संज्ञा होती है। यथा हिमवतः गङ्गा प्रभवति (तत्र प्रथमतः उपलभ्यते इत्यर्थः) इत्यादि।

---

१. क्रुधद्रुहेर्ष्यासुयार्थानां यं प्रति कोपः।

२. यतोऽपायः; 'ध्रुवमपायेऽपादानम्'।

३. यतो भीः; यतस्त्राणम्, 'भीत्रार्थानां भयहेतुः'। ४. यतो भूः, 'भुवः प्रभवः।'

विरामार्थक[1] धातु के प्रयोग में जिससे विराम होता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा :—अध्ययनात् विरमति; कलहात् निवर्त्तते इत्यादि।

जुगुप्सार्थक धातु के प्रयोग में जिससे जुगुप्सा[2] होती है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा :—पापात् जुगुप्सते; नरकात् बीभत्सते।

प्रमादार्थक धातु के प्रयोग में जिस विषय में प्रमाद होता[3] है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा :—पाठात् प्रमाद्यति; अध्ययनात् अनवधानम्; स्वाधिकारात् प्रमत्तः।

अन्तर्धान अर्थ में जिससे अपने को छिपाना[4] चाहता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा :—गुरोः अन्तर्धत्ते; पितुः निलीयते।

वारणार्थक धातु के प्रयोग में निवार्य्यमाण का (जिसका निवारण किया जाता है—उसका) जो अभिलषित पदार्थ[5] उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा :—यवेभ्यो गां वारयति; अन्नेभ्यः काकं निषेधयति; व्यसनात् पुत्रं निवारयति।

जिसके पास नियम-पूर्वक अध्ययन किया जाता है, जिसके पास सुना जाता है और जिससे लिया अथवा पाया जाता है उसकी अपादान[6] संज्ञा होती है। यथा : —गुरोः शास्त्रम् अधीते, पठति, इदं मया तातात् श्रुतम्; प्रजाभ्यः करम् आदत्ते, गृह्णाति वा; गुरोः ज्ञानं लभते प्राप्नोति वा।

अधिकरण :—कर्त्ता और कर्म द्वारा तन्निष्ठक्रिया का जो आधार अर्थात् क्रियाश्रयभूत कर्ता और कर्म जिसमें अवस्थान करते हैं उसे अधिकरण कारक कहते हैं। इसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

आधार चार प्रकार का होता है :—१—आश्लेष (एकदेश-सम्बन्धी); २—विषय; ३—व्याप्ति (सार्वत्रिक सम्बन्ध वाला)और ४—सामीप्यबोधक। यथा :–(१) वने व्याघ्रः प्रतिवसति (वनस्यैकदेशे

---

१. यतो विरामः।
२. यतो जुगुप्सा।
३. यतः प्रमादः।
४. यतोऽन्तर्द्धिः।
५. यतो वारणम्।
६. यत आदानम्।

इत्यर्थः) गृहे स्वपिति (गृहस्यैकदेशे इत्यर्थः), नद्यां स्नाति (नद्याः एक-देशे इत्यर्थः)। (२) विद्यायास् अनुरागः (विद्याविषये इत्यर्थः); भोगे अभिलाषः (भोगविषये इत्यर्थः); सदा धर्म्मे मतिं कुर्य्यात् (धर्मविषये इत्यर्थः)। (३) तिलेषु तैलं विद्यते (तिलस्य सर्वान् अवयवान् व्याप्य इत्यर्थः); दुग्धे माधुर्यमस्ति (दुग्धस्य सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थः); वह्नौ दाहिका शक्तिरस्ति (वह्नेः सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थः)। (४) गङ्गायां घोषः (गङ्गायाः समीपे इत्यर्थः); गङ्गासागरसङ्गमे कपिलस्य आश्रमः आसीत् (तत्समीपे इत्यर्थः)।

काल की भी अधिकरण संज्ञा होती है। यथा :—आषाढस्य प्रथम-दिवसे; शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्; वार्द्धके मुनि-वृत्तीनाम्।

जिस स्थल में जिस कारक का विधान हुआ है वक्ता की इच्छा के अनुसार उसका अन्यथा भाव भी हो सकता है[1]। यथाः–गृहं गच्छति; गृहं प्रविशति—गृहे प्रविशति; पुष्पेभ्यः स्पृहयति - पुष्पाणि स्पृहयति; पुष्पेभ्यः स्पृहा—पुष्पेषु स्पृहा; अरये कुप्यति—अरौ कुप्यति; गां दुग्धं दोग्धि, गोभ्यः दुग्धं दोग्धि; शिष्याय विद्यां वितरति, शिष्ये विद्यां वितरति; हिमवतो गङ्गा प्रभवति, हिमवति गङ्गा प्रभवति।

एक पद में अनेक कारकों का सन्देह होने से अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण, कर्म और कर्ता इस क्रम के अनुसार परवर्ती कारक होते हैं। यथा :—दरिद्रम् आहूय धनं ददाति; गङ्गां गत्वा स्नाति; गृहं प्रविश्य निःसरति।

विभक्ति-निर्णय

प्रथमा–कर्तृकारक में अर्थात् उक्त कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा :—रामः पुस्तकं पठति; हरिः गच्छति।

अभिधेय मात्र में अर्थात् जिस स्थल में क्रिया पद आदि नहीं रहते-केवल अभिधेय समझाने के लिए शब्द प्रयोग किया जाता है वहाँ प्रथमा विभक्ति होती है। यथा :—ज्ञानम्, विद्या, तरुः इत्यादि।

---

१. विवक्षावशात् कारकाणि।

सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा:–राम ! हरे ! इत्यादि।

'इति' आदि अव्यय शब्द के योग में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा :—दशरथ इति राजा बभूव; लोकाः वसन्तर्तुम् ऋतुराज इति वदन्ति; दुष्टानां सङ्गः इति परित्यक्तुं साम्प्रतम्।

द्वितीया :—कर्मकारक में अर्थात् अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा :—पुष्पं मा छिन्धि, फलं चेद् भोक्ष्यसे शिशो !।

व्याप्ति अर्थ में कालवाचक और अध्ववाचक (मार्ग के परिमाण-वाचक—क्रोश आदि) शब्द के उत्तर में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा :—(कालवाचक)—द्वादश वर्षाणि व्याकरणशास्त्रमधीते (द्वादश-वर्षाणि व्याप्य इत्यर्थः), दिनम् उपवसति (दिनं व्याप्य इत्यर्थः); न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः; वने न्यूषुः पाण्डवा द्वादशाब्दान्। (अध्ववाचक)—पाठशाला क्रोशं स्थिता (क्रोशं व्याप्य इत्यर्थः); योजनं भृत्येन अनुगतः (योजनं व्याप्य इत्यर्थः); "सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता"; "बहून् क्रोशान् राजते विन्ध्यशैलः"।

समया, निकषा, धिक्, प्रति, अनु, अन्तरा, अन्तरेण, यावत् (अवधि, पर्यन्त), अभितः, परितः, सर्वतः, उभयतः शब्दों के योग से द्वितीया होती है। यथा :—पर्वतं समया नदी वहति; समया सौध-भित्तिम् (सौधभित्तेः समीपे इत्यर्थः) शिखी; चन्द्रं समया; ग्रामं निकषा वनम् (ग्रामस्य समीपे इत्यर्थः); लङ्कां निकषा; धिक् कृपणं जनम्; रामः पितरं प्रत्याह; दीनं प्रति दया कार्या; स्वामिनम् अनु भृत्यः गच्छति, हिमालयं विन्ध्यगिरिञ्चान्तरा पुण्यभूमयः; वनं यावत् अनु-सरति (वनपर्यन्तम् इत्यर्थः); स्तन्यत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व। परिजनो राजानम् अभितः स्थितः; त्रिपथगाम् अभितः (त्रिपथगायाः अभिमुखम् इत्यर्थः), दिनमणिमभितः कुतोऽन्धकारः। पृथिवीं परितः सिन्धुः (पृथिव्याश्चतुर्दिक्षु इत्यर्थः)। पृथिवीं सर्वतः जीवाः वसन्ति (पृथिव्याः-समन्तात् इत्यर्थः); प्रदेशं सर्वतो निन्दा कृपणस्य प्रजायते। पन्थानम् उभयतः महीरुहाः राजन्ते (पथः उभयोः पार्श्वयोः इत्यर्थः); नदीमुभयतः स्थानं जनेन तटमुच्यते।

क्रिया के विशेषण में द्वितीया होती है और वह नपुंसक लिङ्ग क एकवचन होता है यथा :—स सुखं तिष्ठति; त्वं दुःखं स्थास्यसि; अधिव ब्रूते; मृदु हसति; साधु भाषते; हरिः अत्यन्तं सुशीलः।

तृतीया :—करण कारक और अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—

"गावो घ्राणेन पश्यन्ति, वेदैः पश्यन्ति पण्डिताः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥"
(अनुक्ते कर्तरि)—प्रसार्य्यते केन करः कृशानौ ?

सहार्थक शब्द के योग में तृतीया होती है। यथा :—सुजनैः सह संवसेत्, दुष्टेन सह न प्रव्रजेत्, केनापि साकं कलहं न कुर्यात्; सन्दध्या-न्नारिणा समम्।

सह शब्द का प्रयोग न रहने से सहार्थ में भी तृतीया होती है। यथा :—व्यञ्जनेन अन्नं भुङ्क्ते (व्यञ्जनेन सह इत्यर्थः) नृपो; मन्त्र-यतेऽमात्यैः (अमात्यैः सह इत्यर्थः)।

हीनार्थ, निषेधार्थ और प्रयोजनार्थ शब्द के योग से तृतीया होती है। यथाः—(हीनार्थ) "धर्मेण हीना पशुभिः समानाः", ऊनाः किलै-केन मता दशग्रहाः। गर्वेण शून्यः। (निषेधार्थ) अलं विवादेन (विवादं मा कुरु इत्यर्थः); विरोधेन किम् ? (विरोधो व्यर्थः इत्यर्थः), "धनेन किं यो न ददाति, नाश्नुते ?"; कृतं बहुजल्पनेन (बहुजल्पनं न कार्यम् इत्यर्थः)। (प्रयोजनार्थ) न मे सांसारिक-वैभवेन प्रयोजनम्; कोऽर्थः विवादेन; किं तया लक्ष्म्या राजन् !; "तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम्"; अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः ?

जो अङ्ग विकृत होने से, अङ्गी अर्थात् शरीर का विकार लक्षित है, उस विकृत अङ्ग के वाचक शब्द के उत्तर तृतीया होती है। यथा :—नेत्रेण काणः, कर्णेन वधिरः, पादेन खञ्जः, पृष्ठेन कुब्जोऽयमधर्मकारी।

जिस लक्षण अर्थात् चिह्न द्वारा कोई व्यक्ति सूचित होता है, उस लक्षण के बोधक शब्द के उत्तर 'विशिष्ट' अर्थ में तृतीया होती है।

यथा :—जटाभिः तापसः; भूषाभिः शिशुम् अदर्शम्, छात्रेणोपाध्यायम् अद्राक्षम्; "मयैको बालको दृष्टः सौन्दर्येण गुणेन च"; "जटाभिः स्निग्धताम्राभिराविरासीत् वृषध्वजः"; "त्रिवर्णराजिभिः कण्ठैरेते मञ्जुगिरः शुकाः।"

अपवर्ग अर्थात् क्रियासमाप्ति और फलप्राप्ति समझाने से कालवाचक और अध्ववाचक शब्द के उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—(कालवाचक)—त्रिभिः दिवसैः कृतम्, "त्रिभिर्वर्षैः शब्दशास्त्रं पपाठ।" (अध्ववाचक)—"क्रोशेन अधीतः ग्रन्थाध्यायः।"

स्थल विशेष में, क्रिया विशेषण के तुल्य व्यवहार किये गये 'प्रकृति' आदि शब्द के उत्तर तृतीया होती है। यथा :—'प्रकृत्या दर्शनीयः' 'भूषाभिः किं सुन्दरो यः प्रकृत्या ?'; स्वभावेन सरलः; आकृत्या सुन्दरः; जातया ब्राह्मणः; गोत्रेण वात्स्यायनः; नाम्ना हरिः; वयसा युवा; प्रायेण खिन्नः; वेगेन गच्छति; त्वरया धावति; यत्नेन लिखति; सुखेन न स्वपिति; दुःखेन याति; क्लेशेन वदति; क्रमेण आयाति; विधिना पूजयति।

जिस मूल्य से कोई वस्तु खरीदी जाती है वहाँ मूल्यबोधक शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम् ? रूप्यकत्रयेण।

गत्यर्थक धातु के प्रयोग से वाहनवाचक शब्द के उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—वायुयानेन कलिकातानगरं प्रयाति।

वह् धातु के प्रयोग में, जिस पर धर कर वहन किया जाता है उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—"स श्वानं स्कन्धेन उवाह", "भर्तृराज्ञां मूर्ध्ना आदाय"।

शपथवाचक शब्द के योग से, जिसके नाम से शपथ की जाती है उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—जीवितेनैव शपामि ते।

जिस दिशा वा मार्ग से जाया जाता है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है यथा :—"कतमेन दिग्विभागेन गतः जाल्मः"।

चतुर्थी :—सम्प्रदान-कारक[1] में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा :—“दीनेभ्यो दीयतामन्नं यदि धर्ममभीप्ससि”।

तादर्थ्य[2] (निमित्तार्थ) समझाने से अर्थात् जिसके निमित्त कोई वस्तु या क्रिया अभिप्रेत होती है उसके उत्तर चतुर्थी विभक्ति होती है यथा :—यूपाय दारु (यूपनिमित्तम् इत्यर्थः), कुण्डलाय सुवर्णम्, अश्वाय घासः, पाकाय स्थाली; स्नानाय नदीं याति; पाकाय अग्निम् आहरति।

विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय, खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥”

निवृत्ति[3] समझाने से, निवर्त्तनीय अर्थात् जिसकी निवृति की जाय, उसके उत्तर चतुर्थी होती है। यथा :—मशकाय धूमः (मशकनिवृत्तये इत्यर्थः); पिपासायै जलम्; आतपाय छत्रम्; तापाय स्नानम्; रोगायौषधमाहरेत्; पापाय प्रायश्चित्तमाचरेत्; (पापनिवृत्तये इत्यर्थः)।

तुमुन् प्रत्ययान्त[4] असमापिका क्रिया अव्यक्त रखने से उसके कर्म-कारक में चतुर्थी होती है। यथा :—काष्ठाय याति (काष्ठम् आहर्तुम् इत्यर्थः), वनाय सज्जी भवति (वनं गन्तुम् इत्यर्थः)।

क्लृप्त्यर्थ[5] धातु (क्लृप् धातु और तदर्थक सम् पूर्वक पद्, भू, जन्-प्रभृति धातु) के प्रयोग में, सम्पद्यमान अर्थात् जो फल उत्पन्न होता है उसके उत्तर चतुर्थी होती है। यथा:—भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते (ज्ञानरूपेण परिणमति इत्यर्थः); ज्ञानं सुखाय सम्पद्यते; धर्मः स्वर्गाय भवति; बन्धाय जायते रागः।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट्[6] शब्दों के प्रयोग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा :—गुरवे नमः, “नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै। नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो

---

१. चतुर्थी सम्प्रदाने।　　२. तादर्थ्ये चतुर्थी।

३. निवृत्तौ निवर्तनीयात्।　　४. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः।

५. क्लृपि सम्पद्यमाने च।　६. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च।

नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः।" "स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु"; "स्वस्ति प्रजाभ्यो विदधाति राजा"। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। इन्द्राय वषट्।

हित[1] शब्द में योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा :—ब्राह्मणाय। हितम्, प्रजाभ्यो हितम्।

समर्थार्थक शब्द के योग से चतुर्थी होती है। यथा:—भोजनाय समर्थः; 'सदा शठः शठाय अलम्' (शठः शठेन सार्धं प्रतिद्वन्द्वितां कर्तुं समर्थः इत्यर्थः)।

समर्थार्थक क्रिया के योग से भी चतुर्थी होती है। यथा :—मल्लो मल्लाय शक्ष्यति; "नमस्तत् कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति"।

अवज्ञा[2] अर्थ में, दिवादि गणीय मत् धातु के अवज्ञा-सूचक कर्म में (गौण कर्म में) विकल्प से चतुर्थी होती है। यथा :—अहं त्वां तृणाय (तृणं वा) मन्ये; तृणाय मन्यते भोगान् (पक्षे-तृणम्) "तृणाय विश्वं कुपितो न मन्यते"; नाहं त्वां कुक्कुराय मन्ये।

कारकादि कर्म होने से चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। यथा :—काकं मन्यते याचकम्; त्वामहं शृगालं मन्ये।

चेष्टा अर्थ हो तो गमनार्थक[3] धातु के कर्म में विकल्प से चतुर्थी होती है यथा :—नगराय (नगरं वा) गच्छति; व्रजाय (व्रजं वा) व्रजति। चेष्टा अर्थ न हो तो चतुर्थी नहीं होती। यथा:—मनसा काशीं गच्छति। पथवाचक शब्द कर्म होने से भी चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। यथा :—पन्थानम् अध्वानं वा गच्छति।

उत्पात के द्वारा जो सूचित (ज्ञापित) होता है उसके उत्तर चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा :—वाताय कपिला विद्युत्।

---

१. हितयोगे च। २. मन्यकर्मण्यनादरे विभाषा प्राणिषु।

३. गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि।

पञ्चमी :—अपादानकारक[1] में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :—पापी स्वर्गात् पतत्यधः, वृक्षात् पत्राणि पतन्ति।

जिससे उत्कर्ष वा अपकर्ष निर्धारित होता है उसके उत्तर अपेक्षा अर्थ में पञ्चमी होती है। यथा :–धनात् विद्या गरीयसी; "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"; "सत्यादप्यनृतं श्रेयः"; "दारिद्र्यान्मरणं वरम्"; "मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः"; "चैत्ररथादनूने वृन्दावने"; "श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते"; "कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः"।

ल्यप् प्रत्ययान्त[2] असमापिका क्रिया अव्यक्त रहने से उसके कर्म और अधिकरण कारक में पञ्चमी होती है। यथा :—सौधात् प्रेक्षते (सौधम् आरुह्य इत्यर्थः); श्वशुरात् जिह्रेति (श्वशुरं वीक्ष्य इत्यर्थः); आसनात् अवलोकयति (आसने उपविश्य इत्यर्थः); "रथादयं पश्यति वीरसिंहः" (रथे उपविश्य इत्यर्थः)।

अन्यार्थ[3] शब्द के योग में पञ्चमी होती है। यथा :—धर्मादन्यः कोऽस्ति दुःखापहारी"; "अव्यतिरिक्तेयम् अस्मच्छरीरात्"; "आत्मा देहाद् विलक्षणः।"

अन्यार्थबोधक क्रिया के योग में भी पञ्चमी होती है। यथा :—स्वर्णं रजतात् भिद्यते।

आरभ्यार्थक शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :—'मालत्याः प्रथमावलोकदिवसादारभ्य'; "दिग्विजयादारभ्य सर्वम् आचचक्षे", जन्मनः प्रभृति सेव्यतां हरिः; अत्र भवति सर्वैव आत्मसम्पत्; अभिजनात् प्रभृति अन्यूनैव लक्ष्यते।

आरात् और बहिः शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :—ग्रामात् आरात् वनम् (ग्रामस्य समीपे दूरे वा इत्यर्थः);

१. अपादाने पञ्चमी। २. ल्यब्-लोपे कर्मण्यधिकरणे च।
३. अन्यारादिरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।

"शिक्षेत शिक्षकादाराद् बाल्यात् प्रभृति सन्नयम्"; "पुराद् बहिर्दुष्ट-जनान् विवासयेत् ।"

दिग्, देश और कालवाचक शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :-(दिग्वाचक) ग्रामात् पूर्वः पर्वतः; गृहात् उत्तरः विद्यालयः। (देशवाचक) वसति रामः श्यामात् पूर्वदेशे। (कालवाचक) "बाल्यात्परं साऽथ वयः प्रपेदे"; "अस्मात् परम्"; "भोजनात् प्राक्"; "शयनात् अनन्तरम्"; "ऊर्ध्वं प्रिये मुहूर्तािद्धि"।

'आ' और 'आहि' प्रत्ययान्त शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :—उद्यानात् उत्तरा गृहम्; गृहात् उत्तराहि सरः (उत्तरस्यां दिशि इत्यर्थः); हिमालयात् दक्षिणा भारतवर्षम्; प्रयागात् दक्षिणाहि विन्ध्यः (दक्षिणस्यां दिशि इत्यर्थः)।

ऋते[1] शब्द के योग में पञ्चमी और द्वितीया होती है। यथा:— "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः", "विविक्तात् ऋते अन्यत् शरणं नास्ति"; "उपदेशादृते विद्या न कदापि समुद्भवेत्"; "ऋते सुषुप्तिं विश्रामं लभते न मनः क्वचित्"।

पृथक् और विना[2] शब्द के योग से पञ्चमी, द्वितीया और तृतीया होती है। यथा :—विद्यायाः पृथक् (विद्यां, विद्यया वा पृथक्) सुखं न स्यात् (विद्याव्यतिरेकेण सुखं न भवति इत्यर्थः) "श्रमाद् विना को लभते निजेष्टम् ?" "स्वाधीनतां विना किञ्चिदन्यत्सुखकरं न हि"; "सहायेन विना नैव कार्यं किमपि सिध्यति"।

अभिविधि (व्याप्ति) और मर्यादा (सीमा) अर्थ में आ (आङ्) अव्यय शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :-(अभिविधि) "आमूलात् श्रोतुमिच्छामि" (मूलाद् आरभ्य इत्यर्थः); "आजन्मनः" (जन्मनः आरभ्य इत्यर्थः); 'आबाल्याद्धार्मिको भवेत्'; 'आमनोः'।

---

१. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।

२. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् ।

(मर्यादा) "आपरितोषाद् विदुषाम्" (परितोषं मर्य्यादीकृत्य); आकैलासात् (कैलासपर्य्यन्तम् इत्यर्थः)।

"दद्यान्नावसरं कञ्चित् कामादीनां मनागपि ।
आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद् वेदान्तचिन्तया ॥"
"आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयः।"

हेतु अर्थ में हेतुबोधक शब्द के उत्तर पञ्चमी और तृतीया होती है। यथा :—अज्ञानात् अज्ञानेन वा बन्धः; ज्ञानात् ज्ञानेन वा मुक्तिः; अधर्माल्लभते दुःखम्; धर्मेण सुखमश्नुते ।

'सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्य्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥

षष्ठी :—जिसके साथ किसी का किसी प्रकार का सम्बन्ध दिखलाना हो, वहाँ षष्ठी[1] विभक्ति होती है। यथा :—नृपस्य धनम् (स्व-स्वामिभावसम्बन्धः); दशरथस्य पुत्रः (जन्य-जनक-भावसम्बन्धः); मम हस्तः (अङ्गाङ्गिभावसम्बन्धः); पृथिव्याः गन्धः (गुण-गुणिभाव-सम्बन्धः); श्रुतेः अर्थः (वाच्यवाचकभावसम्बन्धः); नद्याः उदकम् (आधाराधेयभावसम्बन्धः); "मूर्खाणां बहवो दोषाः, विदुषां बहवो गुणाः" (विषय-विषयिभावसम्बन्धः)।

कृत् प्रत्यय के प्रयोग में अनुक्त कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है। यथा :—(कर्ता में) मम भोजनम् (मत्कर्तृकं भोजनं); शिशोः शयनम्; अश्वस्य गतिः; तव पिपासा; तस्य बुभुक्षा; कालिदासस्य कृतिः; "शृणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य"; "नास्तिकस्य कुतो भक्तिर्नृशंसस्य कुतो दया" ? भर्तुः प्रणाशात्; सूदस्य पाकः; इत्यादि (कर्म में) पयसः पानम् (दूध या जल पीना); अन्नस्य भोजनम्; सुखस्य भोग; "शास्त्राणां परिचय"; धनस्य दाता; धर्मस्य प्रणेता; भूभृतां वेत्ता; "आहर्ता क्रतूनाम्"; "गुरुः शिष्योपकर्ता सत्पथस्य च दर्शकः; आवृत्तिः सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी"।

---

१. षष्ठी शेषे ।

कर्ता और कर्म दोनों[1] में षष्ठी प्राप्ति की सम्भावना रहने से केवल कर्म में षष्ठी होती है यथा :—गोपेन गवां दोहः; शिशुना पयसः पानम्; नृपेण धनस्य दानम्; सूर्येण जलस्य शोषणम्; चौरेण अर्थस्य हरणम्; छात्रेण ग्रन्थस्य पाठः ।

स्त्रीलिङ्ग-विहित कृत् प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा :—कुलालस्य कुलालेन वा घटस्य कृतिः ।

स्त्रीलिङ्ग-विहित अ प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी होती है । यथा :—छात्रस्य शास्त्रस्य पिपठिषा; राज्ञः ग्रामस्य जिगमिषा; तन्तुवायस्य वस्त्रस्य चिकीर्षा; मम चन्द्रस्य दिदृक्षा; गुरोः शिष्यस्य प्रशंसा ।

कृत्य प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है—पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है । यथा :—मम (मया वा) कर्तव्यम्; तव (त्वया वा) गन्तव्यम्; तस्य (तेन वा) पुस्तकं पठितव्यम्; "न श्राव्यं सत्सुतानां तु रोदनं मातृतातयोः" "नास्ति असाध्यं नाम मनोभुवः"; "न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम् ।" "न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः" "राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्यं मया लङ्घ्यमिदं वनम्" ।

भाववाच्य-विहित क्त प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा :-मम (मया वा) आगतम्; मम शयितम्; मम जागरितम् ।

वर्त्तमानकाल में विहित क्त प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता में नित्य षष्ठी होती है । यथा :—राज्ञां मतः (राजभिर्मन्यते इत्यर्थः); सतां पूजितः (सद्भिः पूज्यते इत्यर्थः); "अहमेव मतो महीपतेः" (महीपतिना मन्यमान-इत्यर्थः); "विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्" (मया ज्ञायते इत्यर्थः) ।

शतृ, शानच्, क्वसु, कानच्, स्यत् और स्यमान प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी नहीं होती । यथा :—(शतृ) गृहं गच्छन्, जलं पिबन् ।

१. उभयप्राप्तौ कर्मणि ।

(शानच्) अन्नं भुञ्जानः; व्याकरणमधीयानः । (क्वसु) ओदनं पेचिवान्; ग्रामं जग्मिवान् । (कानच्) गुरुं ववन्दानः; शास्त्रं शिशिक्षाणः । (स्यत्) गृहं गमिष्यन्; वेदं पठिष्यन् । (स्यमान) गुरुं सेविष्यमाणः; धनं दास्यमानः ।

तुमुन्, क्त्वा, ल्यप् और णमुल् प्रत्यय के प्रयोग में, षष्ठी नहीं होती । यथा :—(तुमुन्) गृहं गन्तुं; चन्द्रं द्रष्टुम् । (क्त्वा) जलं पीत्वा; फलं गृहीत्वा । (ल्यप्) गृहम् आगत्य; व्याकरणम् अधीत्य । (णमुल्) कृष्णं स्मारं स्मारम्; शास्त्रं श्रावं श्रावम् ।

उकारान्त कृत् प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी नहीं होती । यथा :— जलं पिपासुः; रिपून् जिष्णुः, शिलां क्षिप्नुः विपक्षं निराकरिष्णुः; फलं गृहयालुः ।

उक और शीलार्थ तृन् प्रत्यय के प्रयोग से षष्ठी नहीं होती । यथा :—(उक) गृहं गामुकः; जलं वर्षुकः; शत्रुं घातुकः । (तृन्) परापवादं वक्ता खलः; "पितरम् आराधयिता भव", "सम्भावयिता बुधान्, न्यग्भावयिता शत्रून्" ।

भविष्यत् काल में विहित अक और णिन् प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी नहीं होती । यथा :—(अक) भक्तं भोजको व्रजति । (णिन्) गृहं गामी ।

खलर्थ प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती । यथा :— नैतत् सुकरं भवता; नैतत् दुष्करं तेन; सर्वम् ईषत्करं सुधिया । मया दुर्मर्षणः शत्रुः; त्वया दुःशासनो रिपुः ।

किन्तु कामुक शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है । यथाः— विद्यायाः कामुकः ।

निष्ठा प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी नहीं होती । यथा :—(क्त) तेन शास्त्रमधीतम्; मया पयः पीतम्; त्वया गङ्गा दृष्टा । (क्तवतु) स नगरं गतवान्; त्वं गुरुं पृष्टवान्; अहं तां दृष्टवान् ।

स्मरणार्थ धातु (स्मृ अधि + इ—इक्), दय् धातु और ईश् धातु के कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा :—(स्मृ) माता पुत्रस्य

(पुत्रं वा) स्मरति; "स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुर-सुन्दरीभ्यः"; "कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ?" (अधि + इ) अध्येति तव लक्ष्मणः; (त्वां स्मरति इत्यर्थः) । (दय्) दाता दरिद्रस्य दयते । (ईश्) पिता पुत्रस्य ईष्टे (यथेष्टं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः) । पक्ष में सर्वत्र द्वितीया विभक्ति होगी ।

हिंसावाचक जासि, पिष् और 'नि' तथा 'प्र' पूर्वक हन् धातु के कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा :—(उत् + जासि) चौरस्य उज्जासयति (चौरं हिनस्ति इत्यर्थः); "निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम् ।" (पिष्) शत्रोः पिनष्टि; "प्रवृत्त एव स्वमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि ।" ('नि' और 'प्र' उपसर्गपूर्वक हिंसार्थक धातु) निहन्ति, प्रहन्ति, प्र + नि + हन्ति; प्र + णि + हन्ति वा चौरस्य; 'नि-प्रहन्तुममरेशविद्विषाम् ।' पक्ष में द्वितीया विभक्ति ।

तृप्त्यर्थ धातु के करण कारक में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा :—अन्नस्य (अन्नेन वा) तृप्तः; "अपां हि तृप्ताय न वारिधारा, स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा" ।

"नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ।।"

कृत्वसुच् और सुच् प्रत्यय के प्रयोग में कालवाचक शब्द के अधि-करण में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा :—(कृत्वसुच्) पञ्चकृत्वो दिवसस्य ईश्वरम् उपास्ते; सप्तकृत्वो दिनस्यागच्छति; "शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः" । (सुच्) द्विरह्नो भुङ्क्ते, त्रिर्वासरस्य स्वपिति । पक्ष में सप्तमी विभक्ति होगी । यथा :—द्विरह्नि भुङ्क्ते इत्यादि ।

अस्तात्, असि, अति और अतसु प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है । यथा :—(अस्तात्) पुरस्तात् उद्यानस्य; उपरिष्टात् मञ्चस्य । (असि) पुरो नगरस्य; अधो वृक्षस्य । (आति) उत्तरात् समुद्रस्य; दक्षिणात् हिमालयस्य । (अतसु) उत्तरतो गृहस्य; नक्षिणतो ग्रामस्य ।

एनप् प्रत्ययान्त शब्द के योग से षष्ठी अथवा द्वितीया विभक्ति

होती है। यथा :—सौधस्य दक्षिणेन उद्यानम् (पक्ष में सौधं दक्षिणेन उद्यानम्); "तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयम्"।

तुल्यार्थ शब्द के योग से षष्ठी वा तृतीया होती है। यथा :—मम तुल्यः, मया तुल्यो वा। "पितुरेव तुल्यः"; "युधिष्ठिरस्य सदृशो न जातः सत्यभाषणः"; "श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य ?"; "न दैवतं ह्यस्ति गुरोः समानम्"; "धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः"।

आशीर्वाद अर्थ में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित शब्द और एतदर्थक शब्द के योग से षष्ठी और चतुर्थी होती है। यथा :—पुत्रस्य (पुत्राय वा) आयुष्यम्, चिरजीवनम्, मद्रम्, भद्रम्, शुभम्, क्षेमम्, कुशलम्, मङ्गलम्, सुखम्, शर्म, अर्थः, फलम्, हितं, पथ्यं वा भूयात्, अस्तु, जायताम्, सम्पद्यताम् वा।

दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्द के योग से षष्ठी और पञ्चमी होती है। यथा :—ग्रामस्य (ग्रामाद् वा) दूरम्; नगरस्य (नगराद् वा) अन्तिकम्।

हेतु शब्द का प्रयोग रहने से, निमित्तबोधक शब्द के उत्तर षष्ठी होती है। यथा :—अन्नस्य हेतोः वसति; "अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्"।

हेतु शब्द का प्रयोग रहने से [1]निमित्तबोधक सर्वनाम शब्द के उत्तर षष्ठी और तृतीया होती है। यथा :—कस्य हेतोः स आगतः ? वा केन हेतुना स आगतः ?

शिष्ट प्रयोग में धातुओं के कर्मादि कारक रहने पर भी उनकी कर्मत्वादि विवक्षा न करने से "सम्बन्ध विवक्षा" में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा :—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य"; "सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्"; "किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्"; "तञ्च

---

१. निमितार्थक शब्द के योग से प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं। यथा :—किं निमित्तम्, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते वा वसति।

व्यसृजत् भरतस्य"; "जय सेनायास्तावत् संवेद्य गच्छ"; "तावद् भयस्य भेतव्यम्"; "स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्तव्यः" ।

जब किसी घटना के बाद कुछ समय बीतने की विवक्षा हो वहाँ उस घटना-सूचक शब्द के उत्तर षष्ठी विभक्ति होती है। यथा :— "अद्य दशमो मासः तातस्य उपरतस्य" "कतिपये संवत्सराः तस्य तपः तप्यमानस्य" ।

सप्तमी :—अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा :— शय्यायां शेते, भूमौ उपविशति ।

जिस कारक (कर्ता वा कर्म) की क्रिया के काल द्वारा अन्य किसी क्रिया का निरूपण होता है उसके उत्तर सप्तमी विभक्ति होती है। यथा :—विधौ उदिते स आगतः, (विधूदय-समकालम् आगतः इत्यर्थः), गोषु दुह्यमानासु गतः; तयोः सुप्तयोः स जजागार; जनेषु जागरितेषु चौराः पलायिताः; "वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः"; "कः पौरवे वसुमतीं शासति अप्रियमाचरति" "क एष मयि स्थिते चन्द्र-गुप्तम् अभिभवितुम् इच्छति" ।

क्रिया द्वारा अनादर व्यक्त होने से अनादर के कर्म में (अर्थात् जिसका अनादर किया जाता है उसके उत्तर) सप्तमी और षष्ठी होती है। यथा :—रुदति बाले (रुदतो बालस्य वा) जननी बहिर्गता (रुदन्तं बालम् अनादृत्य इत्यर्थः); पश्यति त्वयि मरिष्यामि (पश्यन्तं त्वाम् अनादृत्य इत्यर्थः) ।

जाति, गुण, क्रिया अथवा संज्ञा द्वारा समुदाय से एक देश को पृथक् करना निर्द्धारण कहलाता है। जिससे निर्द्धारण किया जाता है उसके उत्तर सप्तमी और षष्ठी होती है। यथा :—(जाति द्वारा) मनुष्येषु (मनुष्याणां वा) क्षत्रियः शूरः। (गुण द्वारा) गोषु (गवां वा) कृष्णा बहुक्षीरा। (क्रिया द्वारा) अध्वगेषु (अध्वगानां वा) धावन्तः शीघ्रगामिनः। (संज्ञा द्वारा) कविषु (कवीनां वा) कालिदासः श्रेष्ठः ।

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः, प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः, नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥"

"ब्राह्मणेषु च विद्वांसो, विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः, कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥"

प्रशंसा अर्थ में साधु और निपुण शब्द के योग से सप्तमी होती है। यथा :—व्याकरणे साधुः साहित्ये निपुणः ।

इनि-प्रत्यय सहित क्त प्रत्यय के प्रयोग में कर्म में सप्तमी होती है। यथा :—"अधीती चतुर्षु आम्नायेषु"; "गृहीती षट्सु अङ्गेषु" ।

अन्तर और अधीन शब्द के योग में सप्तमी होती है। यथा :—"निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः"; "त्वयि अधीनम्" ।

प्रसित और उत्सुक शब्द के योग से सप्तमी और तृतीया होती यथा :—सत्कार्ये (सत्कार्येण वा) प्रसितः (आसक्तः); विद्यायां (विद्यया वा) उत्सुकः ।

दो क्रियाओं के मध्यवर्ती कालवाचक और अध्ववाचक शब्द के उत्तर सप्तमी और पञ्चमी होती है। यथा :—(कालवाचक) अयम् अद्य भुक्त्वा त्र्यहे (त्र्यहात् वा) भोक्ता; (अध्ववाचक) अयम् इह स्थित्वा क्रोशे (क्रोशाद् वा) लक्ष्यं विध्येत् ।

दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्द के उत्तर सप्तमी तथा द्वितीया, तृतीया एवं पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा :—ग्रामस्य दूरे (दूरम्, दूरेण, दूराद् वा); गृहस्य अन्तिके, (अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकाद् वा) ।

साक्षिन्, प्रतिभू, कुशल, स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, प्रसूत और आयुक्त शब्द के योग से सप्तमी और षष्ठी विभक्ति होती है। यथा :-विवादे (विवादस्य वा) साक्षी; व्यवहारे (व्यवहारस्य वा) प्रतिभूः मीमांसायां (मीमांसाया वा) कुशलः; गोषु (गवां वा) स्वामी; ब्राह्मण्यां (ब्राह्मण्याः वा) प्रसूतः; ग्रन्थरचने (ग्रन्थरचनस्य वा) आयुक्तः ।

निमित्तबोधक शब्द के कर्म कारक में समवेत रहने से सप्तमी विभक्ति होती है। यथा :—"चर्मणि द्वीपिनं हन्ति; दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति, मांसेषु हरिणो हतः ॥" (चर्मणि-चर्मनिमित्तम् इत्यर्थः) ।

अनुवाद

वेत्ति धर्मं शिष्यः—शिष्य धर्म को जानता है। वेदयति शिष्यं धर्मम्=शिष्य को धर्म सिखाता है। भक्तः हरिं पश्यति=भक्त हरि को देखता है। दर्शयति हरिं भक्तम्=भक्त को हरि का दर्शन करवाता है। भारं वहति, नयति वा भृत्यः=भृत्य भार ढोता है। वाहयति, नाययति वा भारं भृत्यान्=भृत्यों द्वारा भार ढुवाता है। अन्नम् अत्ति, खादति वा बालकः=बालक अन्न खाता है। अन्नम् आदयति, खादयति वा बालकेन माता=माता बालक को अन्न (खाद्य पदार्थ) खिलाती है। अजां ग्रामं नयति, हरति वा गोपः=ग्वाला बकरी को गाँव में ले जाता है। अजां ग्रामं नाययति, हारयति वा गोपेन (स्वामी)=ग्वाले द्वारा बकरी को गाँव में लिवाता है। हारयति, कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्=भृत्य द्वारा चटाई बनवाता है। सारथिः अश्वेन रथं वाहयति=सारथि अश्व द्वारा रथ को चलाता है। विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि=गुणवान् व्यक्तियों को भी क्रूर व्यक्तियों से भय लगता ही है। शैशवात् प्रभृति पोषितां प्रियां छद्मना परिददामि मृत्यवे =बचपन से लेकर पालित-पोषित अपनी इस प्रिया को मैं छलपूर्वक मृत्यु को सौंप रहा हूँ। सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति=किसी पुण्य द्वारा ही श्रेष्ठ पुरुषों का सङ्ग सज्जनों को प्राप्त होता है। गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च वित्तं न च वयः=गुणियों की पूजा उनके गुणों के कारण होती है धन या अवस्था के कारण नहीं। लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः=पहले से ही काट दी गयी लता में फूल कहाँ से आ सकता है। प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत्=सीता स्वभाव से ही राम को प्रिय थी। प्रकृत्या यद् वक्रम्=जो प्रकृति से ही टेढ़ा है। दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् आलाप इव श्रूयते=वृक्ष-वाटिका की दाहिनी ओर कुछ कानाफूँसी जैसे सुनायी पड़ रही है। भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्=आपके इन मधुर शब्दों से ही मेरा आतिथ्य पूर्ण हो गया है। शकुन्तला सखीम् अङ्गुल्या तर्जयति= शकुन्तला अंगुली से अपनी सखी को तर्जन करती है। सृष्टिरपरा

प्रतिभाति सा मे=वह तो मुझे कोई दूसरी ही सृष्टि मालूम पड़ रही है। अथ भवन्तमन्तरेण कीदृशः अस्या दृष्टिरागः=अच्छा, आपके प्रति उसका दृष्टि का अनुराग कैसा था। पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या=तुम्हारे पिये बिना जो जल तक नहीं पीती थी। तमस्तपति सूर्ये कथमाविर्भविष्यति=सूर्य के प्रकाश में अन्धकार का उदय कैसे हो सकता है। यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान्=(सदा) मित्र से संलाप करने वाले से ज्यादा कोई पुण्यवान् नहीं है। कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किञ्चिदिव श्रमात्=एक दिन कुछ थका हुआ सा वह सीता के अङ्क में सोया था। अङ्गारः शतधौतेन मलिनत्वं न मुञ्चति=सौ बार धोने से भी कोयले का कालापन नहीं जाता। सर्वेषु श्वापदेषु सिंहः बलिष्ठः=सभी शिकारी पशुओं में सिंह ही सबसे बलवान् होता है। पक्षिणां वायसो धूर्तः=पक्षियों में कौआ धूर्त होता है। न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित्=दुर्जन के साथ न ठहरना ही चाहिए और न कहीं जाना चाहिए। तद्भवतां विनोदाय विचित्रां कथां कथयामि=अब में आपके विनोद के लिए विचित्र कहानी सुनाता हूँ। जगतीह यत्किञ्चिद् घटते तत्सर्वं शुभाय= इस संसार में जो कुछ भी घटित होता है सब शुभ के लिए। तस्य पितरि परमा प्रीतिर्बभूव=पिता में उसकी बहुत प्रीति हो गयी। अतो भवद्भ्यो धर्मं श्रोतुम् इहागतः=इसलिए मैं आपसे धर्म श्रवण करने के लिए यहाँ आया हूँ। यदेव भवद्भ्यो रोचते तत् कथयामि= जो आपको रुचिकर लगे वही कहता हूँ। अर्द्धासनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ =इन्द्र के आधे आसन पर बैठा। शून्यमन्ववसद् वनम्=एक निर्जन वन में रहने लगा। राज्ञः शासनाच्चास्मै शुभानि वासांसि प्रददुः=राजा की आज्ञा से उन्होंने इसे अच्छे-अच्छे वस्त्र दिये। त्वं हि मे पालनात् पतिः=तुम ही मेरे पति हो क्योंकि तुमने मेरा पालन किया। हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा=सुवर्ण की शुद्धता अथवा श्यामिका का निर्णय अग्नि में ही होता है। चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया=दूसरों द्वारा भेद डाले जाने की आशङ्का से यहाँ देर तक नहीं रुक सकता।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो :—अहं भ्रात्रा सह गच्छामि । शिशुः स्वभावेन सरलः । वृद्धिं विना देहस्य बलमपि विफलं स्यात् । आदित्याज्जायते वृष्टिः, वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । साधवे कोऽपि न कुप्यति । लोभात् जनः अर्थाय यतते । बुद्धिमतां संसर्गो लाभाय सुखाय च भवति । अस्य प्रभावात् त्वं शत्रूणाम् अजेयो भविष्यसि । न मातुः सेवाया अपरं कञ्चन धर्मं करोम्यहम् । राजा यज्ञाय पृथिवीं दुदोह । पिष्टकं बालकाय रोचते । राजा चौरः शतं दण्डयते । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति । कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः । माता शिशवे चन्द्रं दर्शयति । माता पुत्रं विद्यालयं गमयति । हर्म्य-तलात् नदीं पश्यति । विद्यां विना सुखं न भवति । दैत्यान् घातुको हरिः । उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये । नाम्ना तमात्मजन्मानम् अजं चकार । उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि । उद्यानमभितः क्षणं परिभ्रम्य अध्ययने मनो निवेशय । त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् । फलेभ्यो गच्छति भृत्यः । अध्ययनाद् विरमति मूढः । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । वाराणसीमुपवसन्ति वृद्धाः । उदधिः सुधां ममन्थे देवैः । सारथिः युद्धक्षेत्रं रथं नयति । धर्मात् पराजयते दुर्जनः । पुरा किल दुष्यन्तो नाम राजासीत् ।

संस्कृत में अनुवाद करो :—लड़के, तुम क्या करते हो ? वह अच्छा पढ़ता है । हमारे प्रति कृपा कीजिए । बिना परिश्रम कोई कार्य सिद्ध नहीं होता । मैं सारी रात जागता रहा । अस्त्र से उसकी अंगुली छिन्न हो गयी । वह शोक हेतु क्रन्दन करता है । हमारे साथ तू भी आ । मूर्ख पुत्र से क्या प्रयोजन ? वृथा आलाप से प्रयोजन नहीं । पिता के तुल्य कौन पूजनीय है ? पिता जी को प्रणाम । हम अध्ययन के लिए विद्यालय में आये हैं । घर से निकलो । मित्र के बिना कौन हित करता है ? नगर से बाहर रहना अच्छा है । चन्द्र की अपेक्षा सूर्य बृहत्तर है । तेरा निवास कहाँ है ? पृथिवी के नीचे और सात लोक हैं । उसके ऊपर पुष्पवृष्टि हुई । हम लोगों में कौन पुरस्कार पायेगा । मेघ के गरजने पर मयूर नाचते हैं । वह युद्ध में जाने को तैयार होता है । पहाड़ पर चढ़कर गाँव देखता है । पर्वतों में हिमालय उच्चतम है ।

वह घर के भीतर दीपक जलाकर पढ़ता है। इस गाँव के चारों ओर निबिड वन है। वे दरिद्र हैं, इसलिए सभी के अवज्ञाभाजन हैं। भीम के पीछे अर्जुन का जन्म हुआ था। तेरे पढ़ने पर मैं पढ़ूँगा। जिस विद्या से धर्मज्ञान हो वही श्रेष्ठ है। राजा दरिद्रों को धन दे रहा है। मुझ पर क्रुद्ध मत हो। जो मैंने कल बताया था, उस पर मेरे पिता जी ने विश्वास नहीं किया। मैंने उससे एक किताब माँगी। वृक्ष फलों से ही जाना जाता है। राम अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में गया। अपमान से मृत्यु श्रेयस्कर है। विद्यालय में वह सब छात्रों से अधिक बुद्धिमान् है। उसने अपने शिष्य से पुस्तक खरीदवायी। मिथिला में एक गुणी राजा रहता था। कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं। हरि समस्त विश्व में व्याप्त हैं। कन्या प्रत्येक वृक्ष का सिञ्चन करती है। योगी अपने भक्तों को विष्णु का दर्शन करवाता है। सारथी घोड़ों से रथ खिचवाता है। वह अपने भाई के साथ रहता है। कृपा करके आप कल अपने भाई के साथ मेरे घर पर आइयेगा। आँखों में आँसू भरकर उसने अपने पिता की ओर देखा। यदि शीघ्र ही वर्षा नहीं हुई तो पौधे सूख जायेंगे। वह अपने मित्रों की परीक्षा में वहाँ रुका रहा।

शुद्ध करो :—अरण्येऽधिवस्तुं यतय इच्छन्ति। संन्यासी बहवो दिनान्येकस्थाने नावसेत्। यद् रामादन्तरेणायोध्या शून्या दृश्यते, तत् कैकेयीवचनस्य परिणामः। अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मानः सन्ति। अस्य वर्त्मनः परितः पलाशवृक्षाः दृश्यन्ते। हा धिङ् मेऽन्यायाचरणं कुर्वते। स सकला रात्रिरेवं विचारयंस्तस्थौ। दुर्योधनः पाण्डवान्नास्निह्यत्। मम वचनं स न विश्वसिति। सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा। स भोजनादनु बहिरगच्छत्। संसारसुखानि केवलं दुःखस्थानस्तीति साधोरन्तरेण को जानाति। इयं नगरी त्रयः क्रोशा आयता। धनिनं द्रव्यं याचितं भिक्षुकैः। अम्भोनिधिं सुधां ममन्थे देवैः। तेषां मे च सख्यमस्ति। अयं वित्तसञ्चयस्त एव। तां वा अत्रानय, मां वा तत्र नय। हे जगन्नाथ! मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व। क्रुद्धः पुरुषः शिलायामप्यधिशेते। पथिके उत्थिते सति तस्य सार्धमहगच्छम्। समागतेषु बालेषु तान् फलानि दातुमारभस्व। दम्भश्च पैशुन्यञ्च सदा गर्हनीयौ। पिता च माता च वार्द्धक्ये सदा परिपालपीयः। अजासु क्षेत्रं नीयमानासु ताः शस्यमखादयत्। भार्य्याया

अक्रोशन्त्याः सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा। रूपवती भार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति। यत् स एवम् उवाच तत् तस्य दोष एव। यत् क्रौर्य्यमित्याचक्षते, तत् प्रकृतिरेव खलानाम्। तं दिवसमारभ्य मम मनः पर्य्याकुलं जातम्। पुत्रविवाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास। स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास। अहं ते वीराञ्च शत्रून् पराजयन्त। त्वमहं गोपालसूनवश्च तत् कृत्यं कुर्य्युः। अहं वटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छतु। स मयि द्रुह्यति। अयं मम चिरन्तनो वियस्यो भवितव्यः। कुमन्त्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम्। जितोऽसौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम्। अहं त्वामेतत् कर्तुमिच्छामि। इमं ग्रन्थं वाचयितुं न शक्यते। विजयतु भवान् य एवं जनानानन्दयः। रे नृशंस! धिक् तव। मां सर्वं समर्पय। भरतः वने अधिवसन्तं रामं द्रष्टुं ययौ। विप्रान् धनमददात् राजा। शिक्षकः न कदापि सुशीलं बालकं क्रुध्यति। अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मानः सन्ति। तेन विना स्वर्गवासोऽपि मां न रोचते।

तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियों का प्रयोग किन-किन अवस्थाओं में होता है—सोदाहरण स्पष्ट करो।

नीचे लिखे शब्दों का अपने बनाये हुए लघुवाक्यों में प्रयोग करोः—

धिक्, विना, मासेन, फलाय, बहिः, पृथक्, नमः, अलम्, परितः, सह, स्वधा, ऋते, उत्सुकः, निपुणः, उत्तरा, आ, स्वस्ति, अभितः, निकषा, प्रति, शिष्याय, मोदकेभ्यः, शठानाम्, वातेन, प्रवाते, गायकात्, मोक्षाय, उपवने, सखिभिः, प्रमादात्, विनयः, श्वापदेषु, व्यतीतः, आदेशात्, महता, लोकेन, स्नेहात्।

रिक्त स्थानों में शब्द भरो :—तिक्तानि भेषजानि·········न रोचते। भिक्षुकः धनिनं······याचते। बालकस्य·········विस्मिताः जनाः······संगीतं शिक्षते। बालकाः·········उद्यानं प्रविशन्ति। तरोश्छायाम्········उपविशन्ति ·········।·········गुणिनोऽपि भयमस्ति। महीं······नृपे प्रजानां दुःखं कुतः। गुणाः······गुणिषु। रवेः······प्रतप्त······पान्थः······आश्रयति।······जलं प्रयच्छेत्।······दैत्याः हताः तस्यै·······नमः।·······यस्तिष्ठति स बान्धवः। एकः चन्द्र·······हन्ति। पुस्तकं·······देहि। तत्र कतिपयान्·······अवसत्। उभयतः गोपाः······। दर्शयति·······भक्तान्। वाहयति······भारम्। प्राण-

व्ययेनापि······कार्यं करणीयम्। भक्तिः······कल्पते।·········शिवं भजति। ······क्रोधः प्रभवति।······सेव्यः हरिः।

द्विकर्मक धातु कर्तृवाच्य से भाववाच्य या कर्मवाच्य कैसे बनती हैं—सप्रमाण स्पष्ट करो।

अपादान कारक को सोदाहरण लिखो।

हेत्वर्थ में कौन-सी विभक्तियाँ होती हैं? सोदाहरण लिखो।

एक निर्द्धारण विभक्ति को लिखो।

मासम् अधीतम् और मासेन अधीतम् का अपने बनाये हुए भिन्न वाक्यों में प्रयोग करो।

चिह्नित शब्दों को व्याकरणरीत्या उपपन्न करो :—क्रोशं कुटिला नदी। लक्ष्मीर्हरिं प्रति।

अकर्मक धातु सकर्मक कब बनती है। अपने उदाहरण में स्पष्ट करो।

कारक और विभक्ति में क्या अन्तर है? सोदाहरण स्पष्ट करो।

कर्मप्रवचनीय क्या है?

तद्धित-प्रकरण

इस प्रकरण में विहित सभी प्रत्ययों का नाम तद्धित है।[1]

ञ् ण् और क् इत् होने से एवं तद्धित प्रत्यय परे होने पर प्रातिपदिक के आदि स्वर की वृद्धि[2] होती है। यथा :—कश्यप्+अण्=काश्यपः।

सुभगा, दुर्भगा, अधिदेव, अधिभूत, इहलोक, परलोक, सर्वलोक, अकुशल, परस्त्री आदि प्रातिपदिकान्तर्गत उभय पद के आद्यस्वर की वृद्धि[3] होती है। यथा :—सुभगा+षेयण्—सौभागिनेयः।

सुपञ्चाल, अर्द्धपञ्चाल, अग्निदेवता, पितृदेवता, द्विवर्ष, त्रिवर्ष, चतुर्वर्ष, पञ्चवर्ष आदि प्रातिपदिकों के अन्तर्गत द्वितीय पद की आदि स्वर की वृद्धि[4] होती है। यथा :—सुपाञ्चालः।

मूर्द्धन्य ण् इत् होने से आदि स्वर की वृद्धि रूप जो कार्य विहित होता है वह सर्वत्र नहीं होता[5]। यथा :—रथ्+षिकण्=रथिकः।

तद्धित प्रत्यय का य और स्वरवर्ण परे होने पर प्रातिपदिक के अन्तःस्थित अ वर्ण और इ वर्ण का लोप[6] होता है। यथा :—शक्ति+षण्=शाक्तः।

तद्धित प्रत्यय के य और स्वर वर्ण परे होने पर प्रातिपदिक के अन्तःस्थित उ वर्ण को गुण[7] हो जाता है। यथा :—विष्णु+षण्=वैष्णवः।

ऋकार, ओकार और औकार के परस्थित तद्धित प्रत्यय के य स्वरवत् निर्वाह[8] होता है। यथा :—गो+यत्=गव्यम्।

डकार-इत् तद्धित प्रत्यय परे होने पर प्रातिपदिक की टि का लोप[9] हो जाता है। यथा :—किम्+डतर=कतरः।

---

१. तद्धिताः। २. अचो ग्ञ्णिति किति च। ३. सुभगादेरुभयोः।
४. सुपञ्चालादेर्द्वितीयस्य। ५. न णित् कार्यं सर्वत्र। ६. यस्येति च।
७. ओर्गुणः। ८. ऋदोद्भ्यो यः स्वरवत्। ९. टेर्लोपो डिति।

डकार-इत् तद्धित प्रत्यय होने पर विंशति शब्द के 'ति' भाग का लोप[1] हो जाता है। यथा :—विंशति + डट् = विंशः।

णकार-इत् तद्धित प्रत्यय होने पर पद के अन्तस्थित आदि स्वर स्थान जात य् के स्थान में 'इय्' और 'व्' के स्थान में 'उव्' होता[2] है। यथा :—व्यास + षिण् = वैयासकिः।

णकार-इत् तद्धित प्रत्यय होने पर द्वार आदि प्रातिपदिक के य् और व् के स्थान में 'इय्' और 'उव्' होते[3] हैं। यथा :—द्वार + षिकण् = दौवारिकः; स्वर + षण् = सौवरः।

स्वागत-आदि प्रातिपदिक के आदि य् और व् के स्थान में इय् और उव् नहीं होता[4] है। यथा :—स्वागतिकः।

श्वापद, न्यङ्कु इन दो प्रातिपदिकों में विकल्प से उपर्युक्त कार्य होता[5] है। यथा :—श्वापद + षण् = शौवापदः; श्वापदः।

जिस समन्त तद्धित प्रत्यय का च इत् हो उसके अन्त के सभी शब्द अव्यय[6] होते हैं। यथा :—त्रि = सुच् + त्रिः; बहु + चशस् = बहुशः।

अपत्य-प्रत्यय

अपत्य शब्द का अर्थ—पुत्र, कन्या अथवा गोत्र होता है। इन सभी अर्थों में जो समन्त प्रत्यय होंगे, उन्हें अपत्य कहते हैं।

आगे कहे जाने वाले सभी प्रत्यय अपत्य अर्थ में विहित[7] होंगे।

अपत्य अर्थ में अकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर इञ्[8] होता है। ञ् इत् हो जाने से इ बचता है। यथा:—शूरस्यापत्यम् = शौरिः; दशरथस्यापत्यम् = दाशरथिः; द्रोणस्यापत्यम् = द्रौणिः; युधिष्ठिरस्यापत्यम् = यौधिष्ठिरिः; अर्जुनस्यापत्यम् = आर्जुनिः; विकर्णस्यापत्यम् =

---

१. नेर्विंशतेः। २. इयुवौ यवयोराद्यचः पदान्ते णिति। ३. द्वारादीनाञ्च। ४. न स्वागतादीनाम्। ५. वा श्वापद-न्यङ्क्वोः। ६. अव्ययाश्रितः। ७. तस्यापत्यम्। ८. अत इञ्।

वैकर्णि:; कृष्णस्यापत्यम्=कार्ष्णि:; कुषीतकस्यापत्यम्=कौषीतकि:; प्रद्युम्नस्यापत्यम्=प्राद्युम्नि: ।

अपत्य अर्थ में बाहु आदि प्रातिपदिक के उत्तर इञ्[1] होता है। यथा :—बाहोरपत्यम्=बाहवि:, उपबाहोरपत्यम्=औपबाहवि:; सुमित्राया: अपत्यम्=सौमित्रि:; दुर्मित्राया: अपत्यम्=दौर्मित्रि:; वृषल्या अपत्यम्=वार्षलि: ।

इञ् प्रत्यय होने पर सुधातृ इस प्रातिपदिक के उत्तर अकङ्[2] होता है। ङ् इत् होने पर अक शेष रहता है। यथा :—सुधातुरपत्यम्—सौधातकि:; । व्यास, वरुण, निषाद, चण्डाल और विम्ब शब्द के उत्तर अकङ् होता है। यथा :—व्यासस्यापत्यम्—वैयासकि: इत्यादि ।

अपत्य अर्थ में नडादि प्रातिपदिक के उत्तर फक्[3] प्रत्यय होता है। फक् के स्थान में आयन आदेश हो जाता है। यथा :—नडस्यापत्यम्=नाडायन:; दासस्यापत्यम्=दासायन:; शकटस्यापत्यम्=शाकटायन:; द्रोणस्यापत्यम्=द्रौणायन:; पर्वतस्यापत्यम्=पार्वतायन:; बदरस्यापत्यम्=बादरायण:; दक्षस्यापत्यम्=दाक्षायण: ।

अपत्य अर्थ में गर्गादि प्रातिपदिक के उत्तर यञ्[4] प्रत्यय होता है। ञ् इत् होने से य शेष रहता है। यथा :—गर्गस्यापत्यम्=गार्ग्य:; वत्सस्यापत्यम्=वात्स्य:; अगस्तेरपत्यम्—आगस्त्य:; पुलस्तेरपत्यम्=पौलस्त्य:; मण्डोरपत्यम्=माण्डव्य:; मधोरपत्यम्=माधव्य:; जिगीषोरपत्यम्=जैगीषव्य:; कुण्डिन्या अपत्यम्=कौण्डिन्य; यज्ञवल्कस्यापत्यम्=याज्ञवल्क्य:; शण्डिलस्यापत्यम्=शाण्डिल्य:; चणकस्यापत्यम्=चाणक्य:; जमदग्नेरपत्यम्=जामदग्न्य:; पराशरस्यापत्यम्=पाराशर्य्य:; अग्निवेशस्यापत्यम्=आग्निवेश्य:; दितेरपत्यम्=दैत्य:; अदितेरपत्यम्=आदित्य:; प्रजापतेरपत्यम्=प्राजापत्य ।

---

१. बाह्वादिभ्यश्च ।
२. सुधातुरकङ् च ।
३. नडादिभ्य: फक् ।
४. गर्गादिभ्यो यञ् ।

अपत्य अर्थ में विद आदि प्रातिपदिक के उत्तर अञ्[1] होता है। ञ् इत् होने से अ बचता है। यथा :—विदस्यापत्यम्=वैदः; उर्वस्यापत्यम्=और्वः; कश्यपस्यापत्यम्=काश्यपः; कुशिकस्यापत्यम्=कौशिकः; भरद्वाजस्यापत्यम्=भारद्वाजः; विश्वानरस्यापत्यम्=वैश्वानरः; शरद्वतोऽपत्यम्=शारद्वतः; शुनकस्यापत्यम्=शौनकः; पुत्रस्यापत्यम्=पौत्रः; दुहितुरपत्यम्=दौहित्रः।

अपत्य अर्थ में शिव आदि प्रातिपदिक के उत्तर अण्[2] होता है। ण् इत् होने से अ शेष रहता है। यथा :—शिवस्यापत्यम्=शैवः; ककुत्स्थस्यापत्यम्=काकुत्स्थः; विश्रवणस्यापत्यम्=वैश्रवणः; रवणस्यापत्यम्=रावणः; पृथायाः अपत्यम्=पार्थः; इलायाः अपत्यम्=ऐलः; सपत्न्याः अपत्यम्=सापत्नः; यक्षस्यापत्यम्=याक्षः।

अपत्य अर्थ में भृगु आदि प्रातिपदिक के उत्तर षण्[3] होता है। यथा :—भृगोरपत्यम्=भार्गवः; मरीचेरपत्यम्=मारीचः; वशिष्ठस्यापत्यम्=वाशिष्ठः; कुत्सस्यापत्यम्=कौत्सः; गोतमस्यापत्यम्=गौतमः; अङ्गिरसोऽपत्यम्=आङ्गिरसः, विश्वामित्रस्यापत्यम्=वैश्वामित्रः; धृतराष्ट्रस्यापत्यम्=धार्तराष्ट्रः; पाण्डोपत्यम्=पाण्डवः; वसुदेवस्यापत्यम्=वासुदेवः; यदोरपत्यम्=यादवः; पुरोरपत्यम्=पौरवः; रघोरपत्यम्=राघवः; कुरोरपत्यम्=कौरवः; मनोरपत्यम्=मानवः; द्रुपदस्यापत्यम्=द्रौपदः; पर्वतस्यापत्यम्=पार्वतः।

ऐक्ष्वाक, कौरव्य, मनुष्य, मानुष ये चार शब्द निपातन[4] से सिद्ध होते हैं। यथा :—इक्ष्वाकोरपत्यम्=ऐक्ष्वाकः; कुरोरपत्यम्=कौरव्यः; मनोरपत्यम्=मनुष्यः, मानुषः।

अण् प्रत्यय होने पर संख्यावाचक शब्द के उत्तर डुर्[5] होता है। ड् इत् होने से उर् शेष रहता है। यथा :—द्वयोर्मात्रोरपत्यम्=द्वैमातुरः; षण्णां मातॄणामपत्यम्=षाण्मातुरः।

---

१. विदादिभ्योऽञ्। २. शिवादिभ्योऽण्। ३. भृग्वादेश्च।
४. ऐक्ष्वाककौरव्यमनुष्यमानुषाः। ५. मातुर्डुरसंख्यायाः।

अण् प्रत्यय परे होने पर कन्या शब्द के स्थान में कनीन आदेश[1] होता है। यथा :—कन्याया: अपत्यम् = कानीन: (अविवाहित स्त्री का बच्चा)।

अपत्य अर्थ में स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक के उत्तर ढक्[2] होता है। ढक् के स्थान में एय् हो जाता है। यथा :—गङ्गाया: अपत्यम् = गाङ्गेय:; राधाया: अपत्यम् = राधेय:; विनताया: अपत्यम् = वैनतेय:; ताडकाया: अपत्यम् = ताडकेय:; सरमाया: अपत्यम् = सारमेय:; भगिन्या: अपत्यम् = भागिनेय:; कुण्डचा: अपत्यम्=कौण्डेय:; रुक्मिण्या: अपत्यम् = रौक्मिणेय:; रोहिण्या: अपत्यम् = रौहिणेय:; गोधाया: अपत्यम्=गौधेय:। 'गोधाया: अपत्यम्' इस अर्थ में गौधेय और गोधार ये दो रूप निपातन से सिद्ध होते हैं।

अपत्य अर्थ में शुभ्र आदि प्रातिपदिक के उत्तर ढक्[3] होता है। यथा :—शुभ्रस्यापत्यम् = शौभ्रेय; अत्रेरपत्यम् = आत्रेय:; विमातुरपत्यम् = वैमात्रेय:; शकुनेरपत्यन्=शाकुनेय:; इतरस्यापत्यम्=ऐतरेय:।

ढक् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिक के अन्तस्थित उवर्ण का लोप[4] हो जाता है। यथा :—मृकण्डोरपत्यम्=मार्कण्डेय:; कमण्डल्वा: अपत्यम् =कामण्डलेय:।

पाण्डु और कद्रु शब्द के उवर्ण का लोप नहीं होता। यथा :— पाण्डोरपत्यम् = पाण्डवेय:; कद्र्वा: अपत्यम् = काद्रवेय:।

ढक् प्रत्यय होने पर कल्याणी आदि प्रातिपदिक के उत्तर इनङ्[5] प्रत्यय होता है। अङ् इत् होने से इन् शेष रहता है। कल्याण्या: अपत्यम् = काल्याणिनेय:; सुभगाया: अपत्यम्=सौभागिनेय:; दुर्भगाया: अपत्यम् = दौर्भागिनेय:; बन्धक्या: अपत्यम् = बान्धकिनेय:; कनिष्ठाया: अपत्यम् = कानिष्ठिनेय:।

---

१. कन्याया: कनीन च।
२. स्त्रीभ्यो ढक्।
३. शुभ्रादिभ्यश्च।
४. टेर्लोपोऽकद्र्वा।
५. कल्याण्यादीनामिनङ्।

कुलटा शब्द के उत्तर बिकल्प से इन् (इनङ्)[१] होता है। यथा :—कुलटायाः अपत्यम्=कौलटिनेयः; कौलटेयः।

अपत्य अर्थ में स्वसृ आदि प्रातिपदिक के उत्तर छ[२] प्रत्यय होता है। छ के स्थान में ईय् हो जाता है। यथा :—स्वसुरपत्यम्=स्वस्रीयः।

पितृष्वसृ और मातृष्वसृ शब्द के उत्तर विकल्प से छण् और ढक्[३] होते हैं। छण् के स्थान में ईय् हो जाता है। ढक् होने पर ऋकार का लोप हो जाता है। यथा :—पितृष्वसुरपत्यम्=पैतृष्वसेयः (ढक्) पैतृष्वस्रीयः (छण्); मातृष्वसुरपत्यम्=मातृष्वसेयः (ढक्); मातृष्वस्रीयः (छण्)।

अपत्य अर्थ में रेवती आदि प्रातिपदिक के उत्तर ठक् प्रत्यय[४] होता है। ठक् के स्थान में इक् हो जाता है। यथा :—रेवत्याः अपत्यम्=रैवतिकः; अश्वपाल्याः अपत्यम्=आश्वपालिकः।

बहुवचन में गर्गादिक के उत्तर विहित अपत्य-प्रत्यय का लोप[५] हो जाता है। यथा :—गर्गस्यापत्यानि=गर्गाः; वत्सस्यापत्यानि=वत्साः; अगस्तेरपत्यानि=अगस्तयः; विश्वावसोरपत्यानि=विश्वावसवः; बभ्रोरपत्यानि=बभ्रवः; मुद्गलस्यापत्यानि=मुद्गलाः, जमदग्नेरपत्यानि=जामदग्नयः; जातुकर्णस्यापत्यानि=जातुकर्णाः। किन्तु स्त्रीलिङ्ग में अपत्यप्रत्यय का लोप नहीं होता। यथा :—गार्ग्यः स्त्रियः।

बहुवचन में यस्कादि के उत्तर विहित अपत्य प्रत्यय का लोप[६] होता है। यथा :—यस्कस्यापत्यानि=यास्काः; द्रुह्यस्यापत्यानि=द्रुह्याः; तृणकर्णस्यापत्यानि=तृणकर्णाः; जङ्घारथस्यापत्यानि=जङ्घारथाः।

---

१. कुलटाया वा। २. स्वसुश्छः।
३. पितृष्वसुश्छण् मातृष्वसुश्च। ४. रेवत्यादिभ्यष्ठक्।
५. यञञोश्च। ६. यस्कादिभ्यो गोत्रे।

बहुवचन में विदादि के उत्तर विहित अपत्य-प्रत्यय का लोप[1] हो जाता है। यथा :—विदस्यापत्यानि = बिदा:; उर्वस्यापत्यानि = उर्वा:; कश्यपस्यापत्यानि = कश्यपा:; कुशिकस्यापत्यानि = कुशिका:; भरद्वाजस्यापत्यानि = भरद्वाजा:; उपमन्योरपत्यानि = उपमन्यव:; विश्वानरस्यापत्यानि = विश्वानरा:; ऋतभोगस्यापत्यानि=ऋतभोगा:; हर्यश्वस्यापत्यानि = हर्यश्वा:; शरद्वतस्यापत्यानि=शरद्वता:; शुनकस्यापत्यानि = शुनका: ।

बहुवचन में अत्र्यादि के उत्तर विहित अपत्य प्रत्यय का लोप[2] होता है। यथा :—अत्रेरपत्यानि = अत्रय:; भृगोरपत्यानि = भृगव:; कुत्सस्यापत्यानि = कुत्सा:; वशिष्ठस्यापत्यानि = वशिष्ठा:; गोतमस्यापत्यानि= गोतमा:; अङ्गिरसोऽपत्यानि = अङ्गिरस: ।

बहुवचन में राजसंज्ञावाचक प्रातिपदिक के उत्तर विहित अपत्य प्रत्यय का विकल्प से लोप[3] होता है। यथा :—रघोरपत्यानि = रघव:, राघवा:; कुरोरपत्यानि=कुरव:, कौरवा:; यदोरपत्यानि = यदव:, यादवा:; इक्ष्वाकोरपत्यानि = इक्ष्वाकव:, ऐक्ष्वाका:; वृष्णेरपत्यानि = वृष्णय:, वार्ष्णेया:; निमेरपत्यानि = निमय:, नैमेया: । स्त्रीलिङ्ग में अपत्यप्रत्यय का लोप नहीं होता । यथा :—यक्षस्यापत्यानि स्त्रिय: = याक्ष्य:; विदस्यापत्यानि स्त्रिय: वैद्य:; अत्रेरपत्यानि स्त्रिय:=आत्रेय्य:; रघोरपत्यानि स्त्रिय: = राघव्य: ।

विभिन्न अर्थों में अपत्य प्रत्यय

अपत्य अर्थ में जो जो प्रत्यय होते हैं वे सभी अर्थ विशेष में भी होंगे[4] ।

'तद् अधीते', 'तद् वेद' इन दो अर्थों में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त प्रत्यय[5] होंगे। यथा :—तर्कम् अधीते वेत्ति वा इति

---

१. बिदादे: । २. अत्रिभृगुकुत्सवशिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ।

३. तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् । ४. अर्थविशेषे चापत्यानि ।

५. तदधीते तद् वेद ।

तार्किकः (ठञ्); न्यायम् अधीते वेत्ति वा इति = नैयायिकः (ठक्); वेदान्तम् अधीते वेत्ति वा = वेदान्तिकः (ठक्); पुराणम् अधीते वेत्ति वा = पौराणिकः (ठक्); वेदम् अधीते वेत्ति वा = वैदिकः (ठक्); अलङ्कारम् अधीते वेत्ति वा = आलङ्कारिकः (ठक्); ज्यौतिषम् अधीते वेत्ति वा = ज्यौतिषिकः (ठक्); व्याकरणम् अधीते वेत्ति वा = वैयाकरणः (अण्)।

क्रम आदि प्रातिपदिक के उत्तर वुन्[1] होता है। वुन् को अक होता है। यथा :—क्रमम् अधीते वेत्ति वा = क्रमकः; शिक्षाम् अधीते वेत्ति वा = शिक्षकः, मीसांसाम् अधीते वेत्ति वा मीमांसकः; पदम् अधीते वेत्ति वा = पदकः।

'तेन प्रोक्तम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी[2] प्रत्यय होते हैं। यथा :—ऋषिणा प्रोक्तम् = आर्षम् (अण्); मनुना प्रोक्तम् = मानवम् (अण्), मानवीयम् (छ); विष्णुना प्रोक्तम् = वैष्णवम् (अण्); पतञ्जलिना प्रोक्तम् = पातञ्जलम् (अण्); कणादेन प्रोक्तम् = काणादम् (अण्); पाणिनिना प्रोक्तम् = पाणिनीयम् (छ); जैमिनिना प्रोक्तम् = जैमिनीयम् (छ); अत्रिणा प्रोक्तम् = आत्रेयम् (ढक्); उशनसा प्रोक्तम् = औशनसम् (अण्); अङ्गिरसा प्रोक्तम् = आङ्गिरसम् (अण्); पराशरेण प्रोक्तम् = पाराशरीयम् (छ); बृहस्पतिना प्रोक्तम् = बार्हस्पत्यम् (ण्य); नारदेन प्रोक्तम् = नारदीयम् (छ); वाल्मीकिना प्रोक्तम् = वाल्मीकीयम् (छ); बौधायनेन प्रोक्तम् = बौधायनीयम् (छ); तित्तिरिणा प्रोक्तम् = तैत्तिरीयम् (छ)।

'तेन निर्वृत्तम्' इस में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त[3] सभी प्रत्यय होंगे। यथा :—कायेन निर्वृत्तम् = कायिकम् (ठक्); अङ्गेन निर्वृत्तम् = आङ्गिकम् (ठञ्); शरीरेण निर्वृत्तम् = शारीरिकम् (ठक्); वाचा निर्वृत्तम् = वाचिकम् (ठक्); पुरुषेण निर्वृत्तम् =

---

१. क्रमादिभ्यो वुन्। २. तेन प्रोक्तम्।
३. तेन निर्वृत्तम्।

पौरुषेयम् (ढक्); मक्षिकाभिः निर्वृत्तम्=माक्षिकम् (अण्); क्षुद्राभिः निर्वृत्तम्=क्षौद्रम् (अञ्); दिनेन निर्वृत्तम्=दैनिकम्; मासेन निर्वृत्तम्=मासिकम्; वर्षेण निर्वृत्तम्=वार्षिकम् (ठञ्); संवत्सरेण निर्वृत्तम्=सांवत्सरिकम् (ठञ), साँवत्सरीयम् (छण्)।

अहन् शब्द के स्थान में ह्न अ आदेश होता है। यथा :—अह्ना निर्वृत्तम्=आह्निकम्।

'तेन रक्तम्' इस अर्थ में रञ्जक द्रव्यवाचक प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त[1] सभी प्रत्यय होंगे। यथा :—कषायेण रक्तम्=काषायम् (अण्); कुसुम्भेन रक्तम्=कौसुम्भम् (अण्); नील्या रक्तम्=नीलम् (अण्); हरिद्रया रक्तम्=हारिद्रम् (अञ्); मञ्जिष्ठया रक्तम्=माञ्जिष्ठम् (अण्); लाक्षया रक्तम्=लाक्षिकम् (ठक्); रोचनया रक्तम्=रौचनिकम् (ठक्); पीतेन रक्तम्=पीतकम् (कन्)।

"सा अस्य देवता" इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी[2] प्रत्यय होंगे। यथा :—शिवोऽस्य देवता=शैवः (अण्); विष्णुरस्य देवता=वैष्णवः (अण्); शक्तिरस्य देवता=शाक्तः (अण्); गणपतिरस्य देवता=गाणपत्यः (ण्य); प्रजापतिरस्य देवता=प्राजापत्यः (ण्य); वायुरस्य देवता=वायव्यः (यत्); अग्निरस्य देवता=आग्नेयः (ढक्); सोमोऽस्य देवता=सौम्यः (ष्यञ्); द्यावापृथिव्यौ अस्य देवते=द्यावापृथिवीयम् (छ), द्यावापृथिव्यम् (यत्); अग्नीषोमावस्य देवते=अग्नीषोमीयम् (छ); अग्नीषोम्यम् (यत्)।

'तस्य समूहः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी[3] प्रत्यय होंगे। यथा :—भिक्षाणां समूहः=भैक्षम् (अण्); अङ्गाराणां समूहः=आङ्गारम् (अण्); मयूराणां समूहः=मायूरम् (अण्); धेनूनां समूहः=धैनुकम् (वुञ्); कलापानां समूहः=कालापकम् (वुञ्); राजन्यानां समूहः=राजन्यकम् (वुञ्); राजपुत्राणां समूहः

---

१. तेन रक्तं रागात्। २. सास्य देवता।
३. तस्य समूहः।

=राजपुत्रकम् (वुञ्); मनुष्याणां समूहः=मानुष्यकम् (वुञ्); अपूपानां समूहः=आपूपिकम् (ठक् अथवा वुञ्); गणिकानां समूहः= गाणिक्यम् (ष्यञ्); ब्राह्मणानां समूहः=ब्राह्मण्यम् (य)।

समूह अर्थ में ग्राम, जन और बन्धु शब्द के उत्तर 'तल्'[1] प्रत्यय होता है। ल् इत् होने से त शेष रहता है। यथा :—ग्रामाणां समूहः=ग्रामता (स्त्रीलिङ्ग); जनानां समूहः=जनता; बन्धूनां समूहः=बन्धुता। इसी प्रकार सहायानां समूहः=सहायता; गजानां समूहः=गजता।

कमल आदि प्रातिपदिक के उत्तर समूह अर्थ में खण्डच्[2] प्रत्यय होता है। च् इत् होने से खण्ड शेष रहता है। यथा :—कमलानां समूहः =कमलखण्डम्; कुमुदानां समूहः=कुमुदखण्डम्। इसी प्रकार— पद्मिनीखण्डम्; नलिनीखण्डम्।

दूर्वा आदि प्रातिपदिक के उत्तर समूह अर्थ में काण्ड[3] प्रत्यय होता है। यथा :—दूर्वाणां समूहः=दूर्वाकाण्डम्; तृणानां समूहः=तृणकाण्डम्; कर्मणां समूहः=कर्मकाण्डम्।

'तत्र भवः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[4] होंगे। यथा :—मधुरायां भवः=माधुरः (अण्); कलिङ्गे भवः= कालिङ्गः (अण्); शरदि भवः=शारद (अण्); वसन्ते भवः=वासन्तिकः (ठञ्); हेमन्ते भवः=हैमन्तिकः (ठञ्), हैमन्तः (अण्); समुद्रे भवः =सामुद्रिकः (ठञ्); द्वीपे भवः=द्वैपायनः (फक्), द्वैप्यः (ष्यञ्); अकाले भवः=आकालिकः (ठक्); शश्वद्भवः=शाश्वतिकः (ठञ्); कुले भवः=कुलीनः (ख); दुष्कुले भवः=दौष्कुलेयः (ढक्), दुष्कुलीनः (ख); प्राचि भवम्=प्राच्यम् (यत्); दिशि भवम्=दिश्यम् (यत्); वर्गे भवम्=वर्ग्यम् (यत्); कटे भवम्=कटचम् (यत्); दन्ते भवम्= दन्त्यम् (यत्); तालौ भवम्=तालव्यम् (यत्); ओष्ठे भवम्=

१. ग्राम-जन-बन्धुभ्यस्तल्। २. कमलादिभ्यः खण्डच्।
३. दूर्वादिभ्यः काण्डः। ३. तत्र भवः।

ओष्ठ्यम् (यत्); जिह्वामूले भवम्=जिह्वामूलीयम् (छ), अन्तरे भवम्=आन्तरिकम् (ठक्); मनसि भवम्=मानसम् (अण्), मानसिकम् (ठक्); शरीरे भवम्=शारीरिकम् (ठक्); अरण्ये भवः=अरण्यको मनुष्यः (वुन्), आरण्यः पशुः (अण्); कोशे भवम्=कौशेयम् (ढक्); इह भवम्=ऐहिकम् (ठञ्); लोके भवम्=लौकिकम् (ठण्); भूमौ भवः=भौमः (अण्); दिवि भवः=दिव्यः (यत्); अग्रे भवम्=अग्र्यम् (यत्); आदौ भवम्=आद्यम् (यत्); अन्ते भवम्=अन्त्यम् (यत्); वेशे भवा=वेश्या (यत्); सर्वकाले भवम्=सार्वकालिकम् (ठञ्); कदाचिद् भवम्=कादाचित्कम् (वुञ्); सम्प्रति भवम्=साम्प्रतिकम् (ठञ्); अध्यात्मं भवम्=आध्यात्मिकम् (ठञ्); अधिभूतं भवम्=आधिभौतिकम् (ठञ्); अधिदेवं भवम्=आधिदैविकम् (ठञ्); मध्यन्दिने भवम्=माध्यन्दिनम् (अण्); नगरे भवः=नागरिकः (ठक्); ग्रामे भवः=ग्राम्यः (य), ग्रामीणः (खञ्) ।

अकस्मात्, बहिस् इन दो प्रातिपदिक शब्दों की टि का लोप होता है। यथा :—अकस्माद् भवम्=आकस्मिकम् (ठञ्); बहिर्भवम्=बाह्यम् (यञ्), बाहीकम् (ईकक्) ।

भव आदि अर्थ में स्त्री शब्द के उत्तर नञ् और पुम् शब्द के उत्तर स्नञ् प्रत्यय होते[1] हैं। ञ् इत् होने पर न और स्न शेष रहते हैं। यथा :—स्त्रियां भवः=स्त्रैणः; स्त्रियाः अपत्यम्=स्त्रैणः; स्त्रिया जितः=स्त्रैणः; स्त्रीणां समूहः=स्त्रैणम्; स्त्रीषु भक्तिर्यस्य=स्त्रैणः। पुंसु भवम्=पौंस्नम्; पुंसः अपत्यम् = पौंस्नम्;पुंसः इदम्=पौंस्नम् पुंसः कर्म=पौंस्नम् ।

हैमन, शौवस्तिक, पौनःपुनिक, प्रतीच्य, उदीच्य और तिरश्चीन शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा :—हेमन्ते भवम्=हैमनम् (अण्); श्वो भवम्=शौवस्तिकम् (ठञ्); पुनः पुनर्भवम्-पौनःपुनिकम् (ठञ्); प्रतीचि भवम्=प्रतीच्यम् (यत्); उदीचि भवम्=उदीच्यम् (यत्); तिरश्चि भवम्=तिरश्चीनम् (ख) ।

---

१. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ।

'तत्र साधुः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त[1] सभी प्रत्यय होंगे। यथा :—सभायां साधुः=सभ्यः (यत्); समाजे साधुः=सामाजिकः (ठक्); अतिथौ साधुः=आतिथेयः (ढञ्); वेदे साधुः=वैदिकः (ठक्); सङ्ग्रामे साधुः=सङ्ग्रामिकः (ठञ्); संयुगे साधुः=सांयुगीनः (खञ्), वितण्डायां साधुः=वैतण्डिकः (ठक्); संकथायां साधुः=सांकथिकः (ठक्); सङ्ग्रहे साधुः=साङ्ग्रहिकः (ठक्)।

ऋणबोधक देय अर्थ में कालवाचक प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त[2] सभी प्रत्यय होंगे। यथा :—मासे देयम्=मासिकम् (ठञ्) वर्षे देयम्=वार्षिकम् (ठञ्); अब्दे देयम्=आब्दिकम् (ठञ्); संवत्सरे देयम्=सांवत्सरिकम् (ठञ्); अग्रहायणे देयम्=आग्रहायणिकम् (ठञ्), श्रावणे देयम्=श्रावणिकम् (ठक्)।

व्याप्तिबोधक अधीष्ट (पूजापूर्वक नियुक्त), भृत (वेतनादि द्वारा क्रीत), भूत और भावी इन चार अर्थों में कालवाचक शब्द के उत्तर ठञ्[3] प्रत्यय होता है। यथा :—मासं व्याप्य अधीष्टः=मासिको गुरुः; मासं व्याप्य भृतः=मासिको दासः; मासं व्याप्य भूतः=मासिको व्याधिः; मासं व्याप्य भावी=मासिक उत्सवः। इसी प्रकार दैनिकम्, वार्षिकम् आदि। चतुरो मासान् व्याप्य भावि व्रतम्=चातुर्मास्यम् व्रतम् (ष्यञ्)।

द्वन्द्व समास में वर्ष शब्द के उत्तर ख, छ और ठञ् प्रत्यय[4] होते हैं एवं विकल्प से उनका लोप हो जाता है। यथा :—द्वे वर्षे अस्य वयः= द्विवर्षीणः (ख), द्विवर्षीयः (छ), द्विवार्षिकः (ठञ्), द्विवर्षः; पञ्च वर्षाण्यस्य वयः=पञ्चवर्षीणः, पञ्चवर्षीयः, पञ्चवार्षिकः, पञ्चवर्षः; षोडश वर्षाण्यस्य वयः=षोडशवर्षः।

---

१. तत्र साधुः। २. देयमृणे।
३. तमधीष्टो भृतो भूतो भावी। ४. वर्षाल्लुक् च।

'ततः आगत' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[1] होंगे। यथा :—मथुराया आगतः=माथुरः (अण्); नगरादागतः=नागरिकः (ठक्), आपणादागतः=आपणिकः (ठक्); उपाध्यायादागतम्=औपाध्यायकम् (कञ्); पितामहादागतम्=पैतामहकम् (वुञ्); मातुरागतम्=मातृकम् (ठञ्); सवितुरागतम्=सावित्रम् (अण्); भ्रातुरागतम्=भ्रातृकम् (ठञ्); पितुरागतम्=पैतृकम् (ठञ्), पित्र्यम् (यत्); स्त्रिया आगतम्=स्त्रैणम् (नञ्); पुंसः आगतम्= पौंस्नम् (स्नञ्)।

'तत् अर्हति' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[2] होंगे। यथा :—शतमर्हति=शतिकः (ठञ्); सहस्रमर्हति= साहस्रिकः (ठञ्); छेदमर्हति=छेद्यः (यत्); भेदमर्हति=भेद्यः (यत्); दण्डमर्हति दण्ड्यः (यत्); अर्घमर्हति=अर्घ्यः (यत्); वधमर्हति= वध्यः (यत्); यज्ञमर्हति=यज्ञीयः (छ); दक्षिणामर्हति=दक्षिणीयः (छ), दक्षिण्यः (यत्)।

'तस्मात् अनपेतम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[3] होंगे। यथा :—धर्मादनपेतम्=धर्म्यम् (यत्); न्यायादनपेतम्=न्याय्यम् (यत्); अर्थादनपेतम्=अर्थ्यम् (यत्); पथोऽनपेतम्=पथ्यम् (यत्); विधेरनपेतम्=वैधम् (अण्); शास्त्रादनपेतम्=शास्त्रीयम् (छ)।

'तस्य इदम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[4] होंगे। यथा :—विष्णोरिदम्=वैष्णवम् (अण्); शिवस्येदम् =शैवम् (अण्); जनपदस्येदम्=जानपदम् (अण्); तस्येदम्=तदीयम् (छ); एतस्येदम्=एतदीयम् (छ); देवस्येदम्=दैवम् (अण्); असुरस्येदम्=आसुरम् (अण्); सम्राजः इदम्=साम्राज्यम् (ष्यञ् अथवा ण्य); इन्द्रस्येदम्=ऐन्द्रम् (अण्); महेन्द्रस्येदम्=माहेन्द्रम्

१. ततः आगतः। २. तदर्हति।
३. तस्मादनपेतम्। ४. तस्येदम्।

(अण्); मनसः इदम्=मानसम् (अण्); शरीरस्येदम्=शारीरम् (अण्); पितुरिदम्=पित्र्यम् (यत्); गोरिदम्=गव्यम् (यत्); महिषस्येदम्=माहिषम् (अण्); वेणोरिदम्=वैणवम् (अण्); पलाशस्येदम्=पालाशम् (अण्); खदिरस्येदम्=खादिरम् (अण्); बिल्वस्येदम्=बैल्वम् (अण्); मुञ्जानामिदम्=मौञ्जम् (अण्); स्त्रिया इदम्=स्त्रैणम् (नञ्); पुंस इदम्=पौंस्नम् (स्नञ्); गङ्गाया इदम्=गाङ्गम् (अण्); हिमवतः इदम्=हैमवतम् (अण्); पशुपतेरिदम्=पाशुपतम् (अण्); शङ्करस्येदम्=शाङ्करम् (अण्); सुरस्येदम्=सौरम् (अण्); चन्द्रस्येदम्=चान्द्रम् (अण्); वेदस्येदम्=वैदिकम् (ठञ्); उपनिषदः इदम्=औपनिषदम् (अण्); पृथिव्या इदम्=पार्थिवम् (अण्); जलस्येदम्=जलीयम् (छ); तेजसः इदम्=तैजसम् (अण्); वायोरिदम्=वायवीयम् (छ); शत्रोरिदम्=शात्रवम् (अण्); रुरोरिदम्=रौरवम् (अण्); न्यङ्कोरिदम्=नैयङ्कवम्, न्याङ्कवम् (अण्); श्वापदस्येदम्=शौवापदम् (अण्), श्वापदम् (अण्); भरतस्येदम्=भारतम् (अण्); भारतवर्षस्येदम्=भारतवर्षीयम् (छ); युष्माकमिदम्=युष्मदीयम् (छ); अस्माकमिदम्=अस्मदीयम् (छ)।

एकवचन में युष्मद् के स्थान में त्वद् और अस्मद् के स्थान में मद् हो जाता है। यथा :—तव इदम्=त्वदीयम् (छ); मम इदम्=मदीयम् (छ)।

खञ् और अण् प्रत्यय परे रहने पर युष्मद् के स्थान में युष्माक और अस्मद् के स्थान में अस्माक हो जाता है। यथा :—युष्माकमिदम्=यौष्माकीणम् (खञ्), यौष्माकम् (अण्); अस्माकमिदम्=आस्माकीनम् (खञ्), आस्माकम् (अण्)।

एकवचन में युष्मद् के स्थान में तवक और अस्मद् के स्थान में ममक[1] होते हैं। यथा :—तव इदम्=तावकीनम् (खञ्), तावकम् (अण्); मम इदम्=मामकीनम् (खञ्), मामकम् (अण्)।

---

१. तवकममकावेकवचने।

छ प्रत्यय परे होने पर—पर, स्व, राजन् आदि प्रातिपदिक के उत्तर क होता है। यथा :—परस्येदम्=परकीयम्। स्व शब्द के उत्तर विकल्प से क होता है। यथा :—स्वस्य इदम्=स्वकीयम्, स्वीयम्।

सौर, सारव, स्वायम्भुव, भवदीय और अन्यदीय शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा :—सूर्यस्येदम्=सौरम् (अण्) दिनम्; सरय्वा इदम्=सारवम् (अण्) जलम्; स्वयम्भुवः इदम्=स्वायम्भुवम् (अण्) धामः; भवतः इदम्=भवदीयम् (छ); अन्यस्येदम्=अन्यदीयम् (छ)।

'तस्य विकारः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[1] होंगे। यथा :—सुवर्णस्य विकारः=सौवर्णः (अण्); रजतस्य विकारः=राजतः (अण्); सीसस्य विकारः=सैसः (अण्); दारोर्विकारः=दारवः (अण्); देवदारोर्विकारः=दैवदारवः (अण्); पयसां विकारः=पायसः (अण्); अग्नेः विकारः=आग्नेयः (ढक्); मुद्गस्य विकारः=मौद्गः (अण्); इक्षोर्विकारः=ऐक्षवः (अण्); गुडस्य विकारः=गौडः (अण्); पिष्टस्य विकारः=पैष्टः (अण्); तिलस्य विकारः=तैलम् (अण्)

'तद् अस्य पण्यम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[2] होंगे। यथा :—लवणमस्य पण्यम्=लावणिकः (ठञ्); तैलमस्य पण्यम्=तैलिकः (ठञ्); अपूपा अस्य पण्यम्=आपूपिकः (ठञ्); तण्डुलमस्य पण्यम्=ताण्डुलिकः (ठञ्); मोदका अस्य पण्यम्=मौदकिकः (ठञ्); उशीरमस्य पण्यम्=औशीरिकः (ठञ्); ताम्बूलमस्य पण्यम्=ताम्बूलिकः (ठञ्)।

'तद् अस्य प्रहरणम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के अत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[3] होंगे। यथा :—धनुरस्य प्रहरणम्=धानुष्कः (ठक्); असिः अस्य प्रहरणम्=आसिकः (ठक्); परशुरस्य प्रहरणम्=पारशविकः; प्रासोऽस्य प्रहरणम्=प्रासिकः; परश्वधः अस्य प्रहरणम्=

१. तस्य विकारः। २. तदस्य पण्यम्।
३. प्रहरणम्।

पारश्वधिकः (ठञ्); तरवारिरस्य प्रहरणम्=तारवारिकः, शक्तिरस्य प्रहरणम्=शाक्तीकः (ईकक्), यष्टिरस्य प्रहरणम्=याष्टीकः (ईकक्)।

'तद् अस्य प्रयोजनम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[1] होंगे। यथा :—स्वर्गः प्रयोजनमस्य=स्वर्ग्यम् (यत्); यशः प्रयोजनमस्य=यशस्यम् (यत्); आयुः प्रयोजनमस्य=आयुष्यम् (यत्); कामः प्रयोजनस्य=काम्यम् (यत्); गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य=गृहप्रवेशनीयम् (छ); अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य=अनुप्रवचनीयम् (छ); संवेशनं प्रयोजनमस्य=संवेशनीयम् (छ)।

'तद् अस्य शीलम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[2] होंगे। यथा :—तपोऽस्य शीलम्=तापसः (अण्); 'गुरोः दोषाणामावरणं छत्त्रम्'—छत्त्रमस्य शीलम्=छात्त्रः (ण)[3]; भिक्षाऽस्य शीलम्=भैक्षः (अण्); प्ररोहोऽस्य शीलम्=प्रारोहः (अण्), चुरा अस्य शीलम्=चौरः (अण्)।

'तद् अस्य प्राप्तम्' इस अर्थ में कालवाचक प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[4] होंगे। यथा :—समयोऽस्य प्राप्तः= सामयिकः (ठञ्); कालोऽस्य प्राप्तः=कालिकः (ठञ्); दिष्टमस्य प्राप्तः=दैष्टिकः (ठक्); ऋतुरस्य प्राप्तः=आर्तवः (अण्)।[5]

ग्रन्थ बोध हो तो 'अधिकृत्य कृतम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[6] होंगे। यथा :—राममधिकृत्य कृतम्=रामायणम्; भगवन्तम् अधिकृत्य कृतम्—भागवतम् (अण्); भारतमधिकृत्य कृतम्=भारतम्; वाक्यं पदञ्चाधिकृत्य कृतम्=वाक्यपदीयम् (छ); राघवान् पाण्डवाँश्चाधिकृत्य कृतम्=राघवपाण्डवीयम् (छ); किरातमर्जुनञ्चाधिकृत्य कृतम्=किरातार्जुनीयम् (छ); अनुशासनमधिकृत्य कृतम्=आनुशासनिकम् (ठञ्); अश्वमेधमधिकृत्य कृतम्=

१. प्रयोजनम्। २. शीलम्।
३. छत्त्रादिभ्यो णः। ४. समयस्तदस्य प्राप्तम्।
५. ऋतोरण्। कालाद्यत्। प्रकृष्टे ठञ्। ६. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे।

आश्वमेधिकम् (ठञ्); 'आश्रमवासमधिकृत्य कृतम्=आश्रमवासिकम् (ठञ्); मुषलमधिकृत्य कृतम्=मौषलम् (अण्); महाप्रस्थानमधिकृत्य कृतम्=माहाप्रस्थानिकम् (ठञ्); स्वर्गारोहणमधिकृत्य कृतम्=स्वार्गारोहणिकम् (ठक्)।

'तस्मै प्रभवति' इस अर्थ में सन्ताप आदि प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[1] होंगे। यथा :—सन्तापाय प्रभवति=सान्तापिकः (ठञ्); सन्नाहाय प्रभावति=सन्नाहिकः (ठञ्); सङ्ग्रामाय प्रभवति=साङ्ग्रामिकः (ठञ्); सङ्घाताय प्रभवति=साङ्घातिकः (ठञ्); उत्पाताय प्रभवति=औत्पातिकः (ठञ्)।

'तस्मै प्रभवति' इस अर्थ में धनुः बोधक कर्म शब्द के उत्तर उकञ्[2] प्रत्यय होगा। यथा :—कर्मणे प्रभवति=कार्मुकं धनुः।

'तस्मै हितम्' इस अर्थ में प्रातिपादिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[3] होंगे। यथा :—यज्ञाय हितम्=यज्ञीयम् (छ); अध्वराय हितम्=अध्वरीयम् (छ); ब्रह्मणे हितम्=ब्रह्मण्यम् (यत्); विश्वजनेभ्यो हितम्=विश्वजनीनम् (ख); सर्वजनेभ्यो हितम्=सर्वजनीनम् (ख), सार्वजनिकम् (ठञ्)।

तद्युक्त कालबोधक नक्षत्रवाचक प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[4] होंगे। यथा :—विशाखया नक्षत्रेण युक्तो मासः=वैशाखः (अण्); राधया नक्षत्रेण युक्तो मासः=राधः (अण्); ज्येष्ठया नक्षत्रेण युक्तो मासः=ज्यैष्ठः (अण्); आषाढया नक्षत्रेण युक्तो मासः=आषाढः (अण्); श्रवणया नक्षत्रेण युक्तो मासः=श्रावणः (अण्), श्रावणिकः (ठञ्); भद्रया नक्षत्रेण युक्तो मासः=भाद्रः (अण्); भद्रपदया नक्षत्रेण युक्तो मासः=भाद्रपदः (अण्); प्रोष्ठपदया नक्षत्रेण युक्तो मासः=प्रौष्ठपदः (अण्); अश्विन्या नक्षत्रेण युक्तो मासः=आश्विनः (अण्); अश्वयुजा नक्षत्रेण

---

१. तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः। २. कर्मण उकञ्।
३. तस्मै हितम्। ४. नक्षत्रेण युक्तः कालः।

युक्तो मासः=आश्वयुजः (अण्); कृत्तिकया नक्षत्रेण युक्तो मासः= कार्तिकः (अण्), कार्तिकिकः (ठक्); अग्रहायण्या नक्षत्रेण युक्तो मासः=आग्रहायणः (अण्), आग्रहायणिकः (ठक्); मृग्या नक्षत्रेण युक्तो मासः=मार्गः (अण्); मृगशीर्षेण नक्षत्रेण युक्तो मासः= मार्गशीर्षः (अण्); मघया नक्षत्रेण युक्तो मासः=माघः (अण्); फल्गुन्या नक्षत्रेण युक्तो मासः=फाल्गुनः (अण्), फाल्गुनिकः (ठक्); चित्रया नक्षत्रेण युक्तो मासः=चैत्रः (अण्), चैत्रिकः (ठक्)

तिष्य और पुष्य शब्दों के य का लोप होता है। यथा :—तिष्येण नक्षत्रेण युक्तो मासः=तैषः (अण्); पुष्येण नक्षत्रेण युक्तो मासः= पौषः (अण्) ।

'तद् वहति' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[1] हों। यथा :—धुरं वहति=धुर्यः (यत्), धौरेयः (ढक्); सर्वधुरां वहति=सर्वधुरीणः (ख); चतुर्धुरां वहति=चतुर्धुरीणः (ख); हलं वहति=हालिकः (ठक्); सीरं वहति=सैरिकः (ठक्); रथं वहति=रथ्यः (यत्); युगं वहति=युग्यः (यत्); शकटं वहति= शाकटः (अण्)

'तेन जीवति' इस अर्थ में वेतन आदि प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[2] होंगे। यथा :—वेतनेन जीवति=वैतनिकः (ठक्) ; वाहनेन जीवति=वाहनिकः (ठक्); जालेन जीवति= जालिकः (ठक्); उपदेशेन जीवति=औपदेशिकः (ठञ्); धनुषा जीवति=[3]धानुष्कः (ठक्); क्रयविक्रयाभ्यां जीवति=क्रयविक्रयिक (ठन्); आयुधेन जीवति=आयुधिकः (ठक्), आयुधीयः (छण्); वागुरया जीवति=वागुरिकः (ठक्); नावा जीवति=नाविकः (ठन्); व्यवहारेण जीवति=व्यावहारिकः (ठक्) ।

वृद्धि (व्याज), आय, लाभ, शुल्क (कर) अथवा उपदा (उत्कोच) देने के अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त

---

१. तद् वहति । २. वेतनादिभ्यो जीवति । ३. इसुसुक्तान्तात्कः ।

सभी प्रत्यय[1] होंगे। यथा :—पञ्च वृद्धिर्दीयते यस्मिन् सः=पञ्चकः (कन्) धनी; शतम् आयः दीयते यस्मिन् सः=शातिकः शत्यो वा भूस्वामी, सहस्रं लाभः दीयते यस्मिन् सः=साहस्रः वणिक्; शतं शुल्कः दीयते यस्मिन् सः=शतिको राजा; पञ्च उपदा दीयते यस्मिन् सः—पञ्चकः सचिवः।

तादर्थ्यबोधक प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[2] होंगे। यथा :—पादार्थमुदकम्=पाद्यम् (यत्); अर्घार्थमुदकम्=अर्घ्यम् (यत्); वलये इदम्=वालेयम् (ढञ्); अतिथये इदम्=आतिथ्यम्; अग्निदेवतायै इदम्=अग्निदेवत्यम् (यत्); पितृदेवताभ्य इदम्=पितृदेवत्यम्।

स्वार्थवाचक प्रत्यय

स्वार्थ में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय[3] होंगे। प्रत्यय होने पर प्रातिपदक का अर्थ पूर्ववत् ही रहेगा। यथा :-बन्धुरेव=बान्धवः; चोर एव=चौर; चण्डाल एव=चाण्डालः; मन एव=मानसम्, देवता एव=दैवतम्; प्रज्ञ एव=प्राज्ञः; कुतुकमेव=कौतुकम्; कुतूहलमेव=कौतूहलम्; मरुदेव=मारुतः; रक्ष एव=राक्षसः (अण्); भेषजमेव=भेषज्यम् (ञ्य); इतिहैव=ऐतिह्यम् (ञ्य); त्रिलोकी एव=त्रैलोक्यम् (ष्यञ्); करुणा एव=कारुण्यम् (ष्यञ्) द्विगुणावेव=द्वैगुण्यम् (ष्यञ्); त्रिगुणा एव=त्रैगुण्यम्; षड्गुणा एव=षाड्गुण्यम्; चत्वारो वर्णा एव=चातुर्वर्ण्यम्; सेना एव=सैन्यम्; (ष्यञ्); सन्निधिरेव=सान्निध्यम् (ष्यञ्); समीपमेव=सामीप्यम् (ष्यञ्); उपमा एव=औपम्यम्; सुखमेव=सौख्यम् (ष्यञ्); सोदर एव=सोदर्यः (यत्); एक एव=एककः (कन्); अत्यय एव=आत्ययिकः (ठक्); सूर एव=सूर्यः (यत्); मर्त्त एव=मर्त्यः (यत्); समानमेव=सामान्यम् (ष्यञ्);

---

१. तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

१. तादर्थ्ये। ३. स्वार्थे।

बाल एव=बालकः (कन्); नौरेव=नौका (कन्); नवमेव=नव्यम् (यत्); वागेव=वाचिकम् (ठक्) स्नात एव=स्नातक; भिक्षुरेव=भिक्षुकः ।

स्वार्थ में देव शब्द से उत्तर तल् प्रत्यय होता[1] है । यथा :—देव एव=देवता ।

स्वार्थ में भाग, रूप, नामन् इन तीन प्रातिपदिकों के उत्तर धेयट् प्रत्यय[2] होता है । यथा :—भाग एव=भगाधेयम्; रूपमेव=रूपधेयम्; नामैव=नामधेयम् ।

स्वार्थ में मृत् शब्द के उत्तर तिकन्[3] प्रत्यय होता है । यथा :—मृदेव=मृत्तिका ।

प्रशंसा अर्थ में मृद् शब्द के उत्तर स[4] और स्न प्रत्यय होते हैं, यथा :—प्रशस्ता मृद्=मृत्सा, मृत्स्ना ।

नव शब्द के उत्तर स्वार्थ में त्नप्, तनप् और ख प्रत्यय[5] होते हैं एवं नव शब्द के स्थान में नू आदेश होता है । यथा :-नवमेव=नूत्नम्; (त्नप्), नूतनम् (तनप्), नवीनम् (ख) ।

विनय आदि शब्दों के उत्तर स्वार्थ में ठक् प्रत्यय[6] होता है । यथा :—विनय एव=वैनयिकः; समय एव=सामयिकः, उपचार एव=औपचारिक; उत्सर्ग एव=औत्सर्गिकः; उपाय एव=औपयिकः [निपातने ह्रस्वः]; अकस्मादेव=आकस्मिकम्; मुक्ता एव=मौक्तिकम्; व्यास एव=वैयासिक; आदेश एव=आदेशिकः; चतुरर्थ एव=चातुरर्थिकः ।

"सः अस्य निवासः", "सः अस्य अभिजनः", इन दो अर्थों में प्रातिपदिक के उत्तर यथासंभव उक्त सभी प्रत्यय[7] होंगे । यथा :—मधुरा अस्य निवासः=माधुरः; मिथिला अस्य निवासः=मैथिलः कम्बोजोऽस्य निवासः=काम्बोजः; कश्मीरोऽस्य निवासः=काश्मीरः;

---

१. देवात्तल्
२. भागरूपनामभ्यो धेयः ।
३. मृदस्तिकन् ।
४. सस्नौ प्रशंसायाम् ।
५. नवस्य नू शब्दादेशः त्नप्-तनप्-खाश्च ।
६. विनयादिभ्यष्ठक् ।
७. सोऽस्य निवासः । अभिजनश्च ।

गन्धारोऽस्य निवासः=गान्धारः; कलिङ्गोऽस्य निवासः=कालिङ्गः; उत्कलोऽस्य निवासः=औत्कलः; सिन्धुरस्य निवासः=सैन्धवः; तक्षशिलाऽस्य निवासः=ताक्षशिलः, विदेहोऽस्य निवासः=वैदेहः; पञ्चालोऽस्य निवासः=पाञ्चालः; मगधोऽस्य निवासः=मागधः (अण्); अयोध्या अस्य निवासः=आयोध्यिकः (ठञ्); मद्रोऽस्य निवासः=माद्रः; अङ्गोऽस्य निवासः=आङ्गः; वङ्गोऽस्य निवासः=वाङ्गः (अण्)। इस प्रकार अभिजन अर्थ में भी यथा :—गन्धारोऽस्याभिजनः=गान्धारः (अण्) इत्यादि।

बहुवचन में 'निवास' और 'अभिजन' विहित प्रत्यय का लोप हो जाता है। यथा :—अङ्ग एषां निवासः=अङ्गाः; वङ्ग एषां निवासः=वङ्गाः; कलिङ्ग एषां निवासः=कलिङ्गाः, विदेह एषां निवासः=विदेहाः; उत्कल एषां निवासः=उत्कलाः; कम्बोज एषां निवासः=कम्बोजाः; मगध एषां निवासः=मगधाः; पञ्चाल एषां निवासः=पञ्चालाः; कश्मीर एषां निवासः=कश्मीराः।

स्त्रीलिङ्ग में बहुवचन विहित प्रत्यय का लोप नहीं होता। यथा :—मगध आसां निवासः=मागध्यः; पञ्चाल आसां निवासः=पाञ्चाल्यः; विदेह आसां निवासः=वैदेह्यः; कलिङ्ग आसां निवासः=कालिङ्ग्यः।

'सः अस्य राजा' इस अर्थ में पूर्व-सूत्रविहित सभी प्रत्यय[१] और कार्य होंगे। यथा :—कश्मीरस्य राजा=काश्मीरः; कलिङ्गस्य राजा=कालिङ्गः; विदेहस्य राजा=वैदेहः; पञ्चालस्य राजा=पञ्चालः; मगधस्य राजा=मागधः; निषधस्य राजा=नैषधः (अण्)। बहुवचन में-कश्मीराः; कलिङ्गाः; विदेहाः; पञ्चालाः; मगधाः; निषधाः इत्यादि।

'तस्य भावः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर[२] यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय होंगे। यथा :- कुमारस्य भावः=कौमारम् (अण्); शिशोर्भावः=शैशवम् (अण्); वृद्धस्य भावः=वार्द्धकम् (वुञ्); स्थविरस्य

१. सोऽस्य राजेत्येवम्। २. तस्य भावः।

भावः=स्थाविरम् (अण्); गुरोर्भावः=गौरवम् (अण्); लघोर्भावः=लाघवम्; सुष्ठुभावः=सौष्ठवम्; ऋजोर्भावः=आर्जवम्; मृदोर्भावः=मार्दवम्; पटोर्भावः=पाटवम्; सुरभेः भावः=सौरभम् (अण्); रमणीयस्य भावः=रामणीयकम् (वुञ्); कमनीयस्य भावः=कामनीयकम् (वुञ्); स्थिरस्य भावः=स्थैर्यम् (ष्यञ्); धीरस्य भावः=धैर्यम् (ष्यञ्); गम्भीरस्य भावः=गाम्भीर्यम् (ष्यञ्); कृशस्य भावः=कार्श्यम् (ष्यञ्); जडस्य भावः=जाड्यम् (ष्यञ्); शीतस्य भावः=शैत्यम् (ष्यञ्); उष्णस्य भावः=औष्ण्यम्; दृढस्य भावः=दार्ढ्यम्; मन्दस्य भावः=मान्द्यम्; सुभगस्य भावः=सौभाग्यम्, दुर्भगस्य भावः=दौर्भाग्यम्; मधुरस्य भावः=माधुर्यम् (ष्यञ्); माधुरी (ष्यञ् [1]यलोप ङीष्); मूर्खस्य भावः=मौर्ख्यम्; विषमस्य भावः=वैषम्यम्; समस्य भावः=साम्यम्; कातरस्य भावः=कातर्यम्; कर्कशस्य भावः=कार्कश्यम्; बालस्य भावः=बाल्यम्; शुक्लस्य भावः=शौक्ल्यम्; सुमनसो भावः=सौमनस्यम्; दुर्मनसो भावः=दौर्मनस्यम्; प्रवीणस्य भावः=प्रावीण्यम्; उदासीनस्य भावः=औदासीन्यम्; कृष्णस्य भावः=कार्ष्ण्यम्; मध्यस्थस्य भावः=माध्यस्थ्यम्; उदारस्य भावः=औदार्यम्; विगुणस्य भावः=वैगुण्यम्; सुजनस्य भावः=सौजन्यम्; स्थूलस्य भावः=स्थौल्यम्; अधिकस्य भावः=आधिक्यम् (ष्यञ्)।

'तस्य भावः' 'तस्य कर्म' इन दो अर्थों में प्रातिपदिक के उत्तर यथासम्भव उक्त सभी प्रत्यय होते हैं। यथा :—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा=ब्राह्मण्यम्; चोरस्य भावः कर्म वा=चौर्य्यम्; अलसस्य भावः कर्म वा=आलस्यम्; सेनापतेर्भावः कर्म वा=सैनापत्यम्; अधिपतेर्भावः कर्म वा=आधिपत्यम्; सख्युर्भावः कर्म वा=सख्यम्; शूरस्य भावः कर्म वा=शौर्य्यम्, वीरस्य भावः कर्म वा=वीर्यम्; दूतस्य भावः कर्म वा=दूत्यम् (यत्), दौत्यम् (ष्यञ्), पुरोहितस्य भावः कर्म वा=पौरोहित्यम् (यक्); सुहितस्य भावः कर्म वा=सौहित्यम् (ष्यञ्);

१. हलस्तद्धितस्य।

सारथेर्भावः कर्म वा=सारथ्यम् (ष्यञ्); आस्तिकस्य भावः कर्म वा=आस्तिक्यम् (यत्); नास्तिकस्य भावः कर्म वा=नास्तिक्यम् (यत्); पण्डितस्य भावः कर्म वा=पाण्डित्यम् (ष्यञ्); वणिजो भावः कर्म वा=वाणिज्यम् (ष्यञ्), शुचेर्भावः कर्म वा=शौचम् (अण्); अशुचेर्भावः कर्म वा=अशौचम् (अण्); मुनेर्भावः कर्म वा=मौनम् (अण्), अकुशलस्य भावः कर्म वा=आकौशलम् (अण्); अनुकूलस्य भावः कर्म वा=आनुकूल्यम् (ष्यञ्); प्रतिकूलस्य भावः कर्म=प्रातिकूल्यम् (ष्यञ्); पुरुषस्य भावः कर्म वा=पौरुषम् (अण्); सुभ्रातुर्भावः कर्म वा=सौभ्रात्रम् (अण्) दुर्भ्रातुर्भावः कर्म वा=दौर्भ्रात्रम् (अण्); सुहृदो भावः कर्म वा=सौहृदम् (अण्), सौहार्द्यम् (ष्यञ्), सौहृद्यम् (यञ्); दुर्हृदो भावः कर्म वा=दौर्हार्दम् (अण्); अनृशंसस्य भावः कर्म वा=अनृशंस्यम् (यञ्); कुशलस्य भावः कर्म वा=कौशल्यम् (यञ्), कौशलम् (अण्); चपलस्य भावः कर्म वा=चापल्यम् (ष्यञ्), चापलम् (अण्); निपुणस्य भावः कर्म वा=नैपुण्यम् (ष्यञ् वा ण्य), नैपुणम् (अण्); सहायस्य भावः कर्म वा=साहाय्यम् (ष्यञ्), साहायकम् (वुञ्); चतुरस्य भावः कर्म वा=चातुर्य्यम् (ष्यञ्), (अण् और ङीप्)।

अण् आदि सभी प्रत्यय जो अपत्य आदि अर्थों में प्रदर्शित किये गये[1] हैं, तद्भिन्न और भी अर्थों में दिखाई देते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। यथा :—धर्मं चरति=धार्मिकः (ठक्); वशं गतः–वश्यः (यत्); पृथिव्या ईश्वरः=पार्थिवः (अण्); सर्वभूमेरीश्वरः=सार्वभौमः (अण्); चक्षुषा गृह्यते=चाक्षुषम् (अण्) रूपम्; श्रवणेन गृह्यते=श्रावणः (अण्) शब्दः; रसनया गृह्यते=रासनः (अण्) रसः; त्वचा गृह्यते=त्वाचः (अण्) स्पर्शः; चक्षुषा निष्पन्नम्=चाक्षुषम् (अण्) प्रत्यक्षम्; श्रवणेन निष्पन्नम्=श्रावणम् (अण्); रसनया निष्पन्नम्=रासनम् (अण्); त्वचा निष्पन्नं=त्वाचम् (अण्); पारं गतवान्=पारीणः

१. इतरेष्वपि दृश्यन्ते।

(खञ्); पारावारं गतवान् = पारावारीणः (खञ्) ; अर्थेन क्रीतः=आर्थः (अण्); विद्यया लब्धम् = वैद्यम्, विद्यायां कुशलः = वैद्यः (अण्); स्त्रिया जितः = स्त्रैणः (नञ्); द्वारे नियुक्तः = दौवारिकः (ठक्); भाण्डागारे नियुक्तः = भाण्डागारिकः (ठक्); हिमवतः प्रभवति = हैमवती (अण्) गङ्गा; विदूरात् प्रभवति = वैदूर्यो (ञ्य) मणिः; रथेन सञ्चरते= रथिकः (ठन्); शकुनीन् हन्ति = शाकुनिकः (ठञ्); शकुन्तान् हन्तिः = शाकुन्तिकः (ठञ्); सहसा वर्त्तते = साहसिकः (ठक्) चौर; जलेन वर्त्तते = जलीयः (छ) मत्स्यः; अनुकूलं वर्त्तते = आनुकूलिकः (ठञ्); प्रतिकूलं वर्त्तते = प्रातिकूलिकः (ठञ्); नावा तार्या = नाव्या (यत्) नदी; वयसा तुल्यः = वयस्यः (यत्); तुलया सम्मितम् = तुल्यम् (यत्); गृहपतिना संयुक्तः = गार्हपत्यः (ष्यञ्) अग्निः; समाने तीर्थे गुरौ वसति = सतीर्थ्यः (यत्); समाने उदरे शयितः = समानोदर्यः (यत्), अग्रे दीयते = अग्रियम् (घ); अग्रियम् (छ); लोके विदितः = लौकिकः (ठञ्); सर्वलोके विदितः = सार्वलौकिकः (ठञ्); नित्यं क्रियते दीयते वा = नैत्यम् (अण्), नैत्यकम् (वुञ्), नैत्यिकम् (ठक्); निमित्तेन क्रियते दीयते वा = नैमित्तिकम् (ठक्); प्रवेशनेन दीयते = प्रावेशनम् (अण्), प्रावेशनिकम् (ठक्); सर्वाङ्गाणि व्याप्नोति = सर्वाङ्गीणः (ख) तापः; आप्रपदं प्राप्नोति=आप्रददीनः (ख) पटः; अनुपदं बद्धा = अनुपदीना (ख) उपानत्; अभ्यमित्रं सम्यक् गच्छति = अभ्यमित्रीयः (छ), अभ्यमित्रीणः (ख); सप्तभिः पदैरवाप्यते = साप्तपदीनम् (खञ्) सख्यम्; इन्द्रस्य आत्मनो लिङ्गम् — इन्द्रियम् (घच्); कुशाग्रमिव = कुशाग्रीता (छ) बुद्धि; काकतालमिव = काकतालीयम्[1] (छ); प्राक् सम्भूतः = प्राचीनः (ख); अर्वाक् सम्भूतः = अर्वाचीनः (ख); सुस्नातं पृच्छति = सौस्नातिकः (ठञ्); सुखशयनं पृच्छति= सौखशायनिकः (ठञ्); परदारान् गच्छति = पारदारिकः (ठक्); याचितेन निर्वृत्तम् = याचितकम् (कन्); अर्थं गृह्णाति = आर्थिकः (ठञ्); आपणस्य धर्म्यम् = आपणिकम् (ठक्); नरस्य धर्म्या=नारी (अञ् और ङीप्); वातस्य शमनं कोपनं वा=वातिकम् (ठक्); पित्तस्य शमनं कोपनं वा = पैत्तिकम् (ठञ्); सन्निपातस्य शमनं कोपनं वा =

१. काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालम् ।

सान्निपातिकम् (ठञ्); अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य=आस्तिकः (ठक्); नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य=नास्तिकः (ठक्); अस्ति दिष्टमिति मतिर्यस्य=दैष्टिकः (ठक्); आमलक्याः फलम्=आमलकम् (मयट्-लोप); बदर्या फलम्=बादरम् (अण्), अश्वत्थस्य फलम्=आश्वत्थम् (अण्), न्यग्रोधस्य फलम्=नैयग्रोधम् (अण्)।

ह्यो गोदोहात् उद्भवति=हैयङ्गवीनम् (खञ्); अद्य श्वो वा घटते=अद्यश्वीनो वियोगः; अद्य श्वो वा प्रसविष्यते या सा=अद्यश्वीना (ख) गौः; पन्थानं गच्छति यः स=पथिकः (ष्कन्); पन्थानं नित्यं गच्छति =पान्थः (ण); साक्षात् दृष्टवान्=साक्षी (इनि); वृद्ध्या जीवति =वार्द्धिकः (ठक्); अमुष्मिन् (परलोके) हितम्=आमुष्मिकम् (ठक्) अमुष्य (मृतस्य) पुत्रः=आमुष्यायणः (फक्); पुनः पुनरनुष्ठानं सङ्घटनं वा=पौनःपुन्यम् (ष्यञ्)—ये सब निपातन से सिद्ध होते हैं।

फलबोधक प्रातिपदिक के परवर्ती प्रत्यय[1] का लोप हो जाता है। यथा :—व्रीहीणां फलानि=व्रीहयः; यवानां फलानि=यवाः; माषाणां फलानि=माषाः।

जम्बू शब्द के परवर्ती प्रत्यय का विकल्प से लोप[2] होता है। यथा :—जम्ब्वाः फलम्=जम्बूः, जाम्बवम् (अण्)।

हरीतक्याः फलम्=हरीतकी; द्राक्षायाः फलम्=द्राक्षा; शेफालिकायाः पुष्पम्=शेफालिका; मल्लिकायाः पुष्पम्=मल्लिका। इसी प्रकार मालती, जाती, केतकी, माधवी, नवमल्लिका, यूथी[3]।

तद्धित प्रत्यय होने पर प्रातिपदिक के अन्तःस्थित नकार का लोप हो[4] जाता है। यथा :—अग्निशर्मणोऽपत्यम्=आग्निशर्मिः (इञ्); उडुलोम्नोऽपत्यम्=औडुलोमिः (इञ्); राज्ञां समूहः=राजकम् (वुञ्); हस्तिनां समूहः=हास्तिकम् (ठक्); पन्थानं गच्छति=पथिकः (ठन्); सर्वकर्मसु कुशलः=सर्वकर्मीणः (ख); नामैव=नामधेयम्

---

१. फले लुक्।
२. जम्ब्वा वा।
३. हरीतक्यादिभ्यश्च।
४. नस्तद्धिते।

(धेय); द्वयोरह्नोर्भवः=द्व्यहीनः (ख); साम वेत्ति अधीते वा= सामकः (वुन्); आत्मनः इदम्=आत्मीयम् (छण्)।

अण् प्रत्यय होने पर अन् भागान्त प्रातिपदिक के नकार का लोप नहीं होता[1]। यथा :—यूनो भावः=यौवनम्; मघोनः इदम्=माघवनम्, शुनां समूहः=शौवनम्; पर्वणि क्रियते दीयते वा=पार्वणम्; सामनि कुशलः=सामनः; सुत्वनः इदम्=सौत्वनम्; यज्वनोऽपत्यम्=याज्वनः; चर्मणा परिवृतः=चार्मणः; कर्मास्य शीलम्=कार्मणः, भस्मनो विकारः =भास्मनः।

तद्धित का य परे होने पर अन् भागान्त प्रातिपदिक के नकार का लोप[2] नहीं होता। यथा :—सामनि साधुः=सामन्यः; ब्रह्मणि साधुः= ब्रह्मण्यः; अध्वनि साधुः=अध्वन्यः; राजनि साधुः=राजन्यः; कर्मणे प्रभवति=कर्मण्यः; मूर्ध्नि भवः=मूर्धन्यः। कर्म वा भाव अर्थ में नकार का लोप हो जाता है। यथा :—राज्ञो भावः कर्म वा=राज्यम् (यत्)।

ख प्रत्यय होने पर अध्वन्, आत्मन् इन दो प्रातिपदिकों के नकार का लोप[3] नहीं होता। यथा :—अध्वनि साधुः=अध्वनीनः; आत्मने हितम्=आत्मनीनम्।

अपत्यार्थ विहित अण् प्रत्यय परे होने पर मन् भागान्त प्रातिपदिक के नकार का लोप[4] होता है। यथा :—सुनाम्नोऽपत्यम्=सौनामः; दुर्नाम्नोऽपत्यम्=दौर्नामः; कृतनाम्नोऽपत्यम्=कार्तनामः। वर्मन् शब्द में लोप नहीं होता। यथा :—चन्द्रवर्मणः अपत्यम्=चान्द्रवर्म्मणः।

हितनामन् इस प्रातिपदिक के नकार का विकल्प से लोप[5] होता है। यथा—हितनाम्नोऽपत्यम्=हैतनामः; हैतनामनः।

विकारार्थ विहित अण् प्रत्यय परे होने पर हेमन् और अश्मन् इन

---

१. अन्।
२. ये चाभावकर्मणोः।
३. आत्माध्वानौ खे।
४. न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः।
५. वा हितनाम्नः।

दो प्रातिपदिकों के नकार का लोप[1] हो जाता है। यथा :—हेम्नो विकार हैमः, अश्मनो विकारः=आश्मः।

कोष अर्थ चर्मन् शब्द के नकार का लोप[2] होता है। यथा :—चर्मणो विकारः=चार्मः (अण्) कोषः।

जाति भिन्न अर्थ में ब्रह्मन् शब्द के नकार का लोप[3] होता है। यथा—ब्रह्मास्य देवता=ब्राह्मम् (अण्) अस्त्रम्, ब्राह्मं हविः, ब्राह्मी ओषधिः; ब्रह्म उपास्ते=ब्राह्मः; ब्रह्मण इयम्=ब्राह्मी तनुः। जाति अर्थ में ब्रह्मन् शब्द के नकार का लोप नहीं होता। यथा :—ब्रह्मणोऽपत्यम्=ब्राह्मणः।

अण् प्रत्यय होने पर इन् भागान्त प्रातिपदिक के नकार का लोप[4] नहीं होता। यथा :—बलिनः इदम्—बालिनम्; हस्तिनः इदम्=हस्तिनम्; मेधाविनः इदम्=मैधाविनम्; स्रग्विणः इदम्=स्राग्विणम्। अपत्य अर्थ में लोप होता है। यथा :—मेधाविनोऽपत्यम्=मैधावः; मायाविनोऽपत्यम्=मायावः। गाथिन् आदि में नहीं होता। यथा :—गाथिनोऽपत्यम्=गाथिनः; केशिनोऽपत्यम्=कैशिनः। इन् के संयुक्त वर्ण से मिलित होने पर नहीं होता। यथा :—स्रग्विणोऽपत्यम्=स्राग्विण; तपस्विनोऽपत्यम्=तापस्विनः; चक्रिणोऽपत्यम्=चाक्रिणः।

भावार्थक प्रत्यय

'तस्य भावः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर त्व और तल्[5] प्रत्यय होते हैं। द्वितीय में ल् इत् होने से त शेष रहता है। त्व प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग और तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—प्रभोर्भावः=प्रभुत्वम्, प्रभुता; भीरोर्भावः=भीरुत्वम्, भीरुता; मनुष्यस्य भावः=मनुष्यत्वम्, मनुष्यता; अमरस्य भावः=अमरत्वम्, अमरता; पशोर्भावः=पशुत्वम्, पशुता; शूरस्य भावः=शूरत्वम्,

---

१. हेमाश्मनोर्विकारे। २. चर्मणः कोष उपसंख्यानम्।
३. ब्राह्मोऽजातौ। ४. इनण्यनपत्ये।
५. तस्य भावस्त्वतलौ।

शूरता; चपलस्य भावः=चपलत्वम्, चपलता; नास्तिकस्य भावः नास्तिकत्वम्, नास्तिकता; अलसस्य भावः=अलसत्वम्, अलसता; अन्धस्य भावः=अन्धत्वम्, अन्धता; मूर्खस्य भावः=मूर्खत्वम्, मूर्खता; मूकस्य भावः=मूकत्वम्, मूकता; राज्ञो भावः=राजत्वम्, राजता; यूनो भावः=युवत्वम् युवता; न्यूनस्य भावः=न्यूनत्वम्, न्यूनता।

'तस्य भावः' इस अर्थ में पृथु आदि प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से इमनिच्[1] प्रत्यय होता है। इ और च इत् संज्ञक होने पर इमन् बचता है। पक्ष में त्व और तल् होते हैं। इमन् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा :—पृथोर्भावः=प्रथिमा, पृथुत्वम्, पृथुता; नीलस्य भावः=नीलिमा, नीलत्वम्, नीलता; पीतस्य भावः=पीतिमा, पीतत्वम्, पीतता; रक्तस्य भावः=रक्तिमा, रक्तत्वम्, रक्तता; शुक्लस्य भावः=शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता; उष्णस्य भावः=उष्णिमा, उष्णत्वम्, उष्णता; जडस्य भावः=जडिमा, जडत्वम्, जडता; मधुरस्य भावः=मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता; शीतस्य भावः=शीतिमा, शीतत्वम्, शीतता; प्रियस्य भावः=प्रेमा, प्रियत्वम्, प्रियता; गुरोर्भावः= गरिमा, गुरुत्वम्, गुरुता; ह्रस्वस्य भावः=ह्रसिमा, ह्रस्वत्वम्, ह्रस्वता; दीर्घस्य भावः=द्राघिमा, दीर्घत्वम्:, दीर्घता; बहोर्भावः=भूमा, बहुत्वम्, बहुता; क्षुद्रस्य भावः=क्षोदिमा, क्षुद्रत्वम्, क्षुद्रता।

इमनिच् प्रत्यय होने पर शब्द के अन्तःस्थित टि भाग का लोप[2] हो जाता है। यथा :—लघोर्भावः=लघिमा, लघुत्वम्, लघुता; अणोर्भावः=अणिमा, अणुत्वम्, अणुता; स्वादोर्भावः=स्वादिमा, स्वादुत्वम्, स्वादुता; पटोर्भावः=पटिमा, पटुत्वम्, पटुता; ऋजोर्भाव=ऋजिमा, ऋजुत्वम्, ऋजुता; महतो भावः=महिमा, महत्त्वम्, महत्ता।

इमनिच् प्रत्यय होने पर पृथु, मृदु, दृढ, कृश, भृश, परिवृढ, इन सभी शब्दों के ऋ के स्थान र[3] होता है। यथा—पृथोर्भावः=प्रथिमा पृथुत्वम्, पृथुता; मृदोर्भावः=म्रदिमा, मृदुत्वम्, मृदुता; दृढस्य भावः=

१. पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा। २. टेः। ३. र ऋतो हलादेर्लघोः।

द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता; कृशस्य भावः=क्रशिमा, कृशत्वम्, कृशता; भृशस्य भावः=भ्रशिमा, भृशत्वम्, भृशता; परिवृढस्य भावः= परिव्रढिमा, परिवृढत्वम्, परिवृढता।

क्रिया आदि के साम्य होने पर प्रातिपदिक के उत्तर वति[1] प्रत्यय होता है। इ इत् होने से वत् शेष रहता है। यथा—चन्द्रः इव मुखम्= चन्द्रवन्मुखम्; हिममिव शीतलम्=हिमवच्छीतलम्, समुद्र इव गम्भीरः =समुद्रवद् गम्भीरः; पर्वत इव उन्नतः=पर्वतवदुन्नतः; ब्राह्मण इवाधीते= ब्राह्मणवदधीते; क्षत्रिय इव युध्यते=क्षत्रियवद् युध्यते; पितरमिव पूजयति=पितृवत्पूजयत्युपाध्यायम्; पुत्रमिव स्निह्यति=पुत्रवत् स्निह्यति शिष्यम्; गृहे इव वसति=गृहवद् वसति वने; शय्यायामिव शेते= शय्यावच्छेते भूतले; देवदत्तस्येव भवनम्=देवदत्तवद् भवनम् यज्ञदत्तस्य; रामस्येव पितृभक्तिः=रामवत् पितृभक्तिर्भरतस्य; राजेव= राजवत्; आत्मेव=आत्मवत्।

'तेन वित्तः' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय[2] होते हैं। यथा :—अर्थेन वित्तः (प्रसिद्धः)=अर्थचुञ्चुः, अर्थचणः; बिद्यया वित्तः=विद्याचुञ्चुः, विद्याचणः; ज्ञानेन वित्तः= ज्ञानचुञ्चुः, ज्ञानचणः; मायया वित्तः=मायाचुञ्चुः, मायाचणः, अस्त्रेण वित्तः=अस्त्रचुञ्चुः; अस्त्रचणः; कर्मणा वित्तः=कर्मचुञ्चुः, कर्मचणः।

'तत् अस्य सञ्जातम्' इस अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर इतच् प्रत्यय[3] होता है। यथा :—तारका अस्य सञ्जाताः=तारकितं नभः; पल्लवा अस्य सञ्जाताः=पल्लवितः तरुः; फलानि अस्य सञ्जातानि =फलितो वृक्षः; पुष्पाण्यस्याः सञ्जातानि=पुष्पिता लताः; तरङ्गा अस्याः सञ्जाताः=तरङ्गिता नदी; उत्कण्ठा अस्य सञ्जाता=उत्कण्ठितं मनः; अन्धकारमस्य सञ्जातम्=अन्धकारितं जगत्, कलङ्कोऽस्याः सञ्जातः=कलङ्किता तनुः; कर्दमोऽस्य सञ्जातः=कर्दमितः

---

१. तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः। २. तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ।

३. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्।

पन्थाः; पुलकान्यस्य सञ्जातानि=पुलकितं शरीरम्; अङ्कुरम् अस्य सञ्जातम्=अङ्कुरितं धान्यम्; व्याधिरस्य सञ्जातः=व्याधितो मनुष्यः। इसी प्रकार मञ्जरी=मञ्जरितः, स्तबकः=स्तबकितः, किसलयः=किसलयितः; मुकुलः=मुकुलितः; कुवलयम्=कुवलयितः; कोरकः=कोरकितः; निद्रा=निद्रितः; मुद्रा=मुद्रितः; बुभुक्षा=बुभुक्षितः; पिपासा=पिपासितः; सुखम्=सुखितः; दुःखम्=दुःखितः; व्रणम्=व्रणितः; हर्षः=हर्षितः; तिलकम्=तिलकितः; गर्वः=गर्वितः; क्षुध् वा क्षुधा=क्षुधितः; सीमन्तः=सीमन्तितः; ज्वरः=ज्वरितः; रोगः=रोगितः; रोमाञ्चः=रोमाञ्चितः; पण्डा=पण्डितः; कज्जलम्=कज्जलितः; तृषा=तृषितः; कल्लोलः=कल्लोलित; शैवलः=शैवलितः; कन्दलः=कन्दलितः; बिम्बः=बिम्बितः; प्रतिबिम्बः=प्रतिबिम्बितः; मूर्च्छा=मूर्च्छितः; दीक्षा=दीक्षितः।

परिमाणवाचक प्रत्यय

परिमाण अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर द्वयसच्, मात्रच् और दघ्नच् प्रत्यय[1] होते हैं। च् इत होने से द्वयस, मात्र और दघ्न शेष रहते हैं। यथाः—हस्तः प्रमाणमस्य=हस्तद्वयसम्, हस्तमात्रम्, हस्तदघ्नम्; जानुः प्रमाणमस्य=जानुद्वयसम्, जानुमात्रम्, जानुदघ्नम्; ऊरुः प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्, ऊरुमात्रम्, ऊरुदघ्नम्; वितस्तिः प्रमाणमस्य=वितस्तिद्वयसम्, वितस्तिमात्रम्, वितस्तिदघ्नम्; तालः प्रमाणमस्य=तालद्वयसम्, तालमात्रम्, तालदघ्नम्; गजः प्रमाणमस्य=गजद्वयसम्, गजमात्रम्, गजदघ्नम्।

परिमाण अर्थ में यद्, तद्, एतद्, इन तीन प्रातिपदिकों के उत्तर वतुप्[2] होता है उ, प् इत् होने से वत् शेष रहता है।

वतुप् होने पर यद्, तद्, एतद्, इनके द् के स्थान में आ[3] होता है। यथा :—यत् परिमाणमस्य=यावान्; तत् परिमाणमस्य=तावान्; एतत् परिमाणमस्य=एतावान्।

१. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। २. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्।
३. आ सर्वनाम्नः।

किम् और इदम् शब्द के उत्तर वतुप् होने पर वतुप् प्रत्यय के व के स्थान में घ (इय) होता[1] है। यथा :—किं परिमाणमस्य=कियान्; इदं परिमाणमस्य=इयान्।

संख्या-परिमाण बोध होने पर किम् शब्द के उत्तर डति होता[2] है। ड इत् होने से अति शेष रहता है। यथा :—का संख्या परिमाण-मस्य=कति; इसी प्रकार यति, तति=ये शब्द सदा बहुवचन होते हैं।

अवयववाचक प्रत्यय

अवयव अर्थ में संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर तयप्[3] होता है। प् इत् होने से तय शेष रहता है। यथा :—चत्वारोऽवयवा अस्य चतुष्टयम्; पञ्च अवयवा अस्य=पञ्चतयम्; शतमवयवा अस्य=शततयम्; सहस्रमवयवा अस्य=सहस्रतयम्।

अवयव अर्थ में द्वि और त्रि इन दो प्रातिपादिकों के उत्तर विकल्प से अयच्[4] होता है। च् इत् होने से अय शेष रहता है। पक्ष में तयच् प्रत्यय होता है यथा—द्वौ अवयवौ अस्य=द्वयम्, द्वितयम्; त्रयोऽवयवा अस्य=त्रयम्, त्रितयम्।

अवयव अर्थ में 'उभ' इस प्रातिपदिक के उत्तर नित्य अयच्[5] होता है यथा :—उभौ अवयवौ अस्य=उभयम्।

'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थ में दशन् भागान्त प्रातिपदिक के उत्तर 'ड' होता है। ड् इत् होने से अ शेष रहता[6] है। यथा :—एकादश अधिका अस्मिन्=एकादशं शतम्; इसी प्रकार—द्वादशं शतम्; चतुर्दशं शतम्।

'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थ में शत् भागान्त और विंशति शब्द के उत्तर ड[7] होता है। यथा :—त्रिंशत् अधिका अस्मिन्=त्रिंशं शतम्;

---

१. किमिदंभ्यां वो घः। २. किमः संख्यापरिमाणे डति च।

३. संख्याया अवयवे तयप्। ४. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा।

५. उभादुदात्तो नित्यम्। ६. तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताद् डः।

७. शदन्तविंशतेश्च।

इसी प्रकार चत्वारिंशं शतम्; पञ्चपञ्चाशं शतम्; विंशतिरधिका अस्मिन् विंशं शतम्; इसी प्रकार एकविंशं शतम् ।

पूरणवाचक प्रत्यय

पूरण अर्थ में संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर डट्[1] होता है । ड् और ट् इत् होने से अ शेष रहता है । यथा—एकादशानां पूरणः= एकादशः; इसी प्रकार द्वादशः; त्रयोदशः, चतुर्दशः इत्यादि ।

पूरण अर्थ में नकारान्त संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर मट्[2] होता है । ट इत् होने से म शेष रहता है । यथा—पञ्चानां पूरणः= पञ्चमः; सप्तानां पूरणः=सप्तमः; अष्टानां पूरणः=अष्टमः; नवानां पूरणः=नवमः, दशानां पूरणः=दशमः । संख्यावाचक अन्य शब्द पूर्व में होने पर नहीं होता । यथा—एकादशानां पूरणः=एकादशः; इसी प्रकार द्वादशः; त्रयोदशः ।

पूरण अर्थ में षष्, कति कतिपय और चतुर इन चार प्रातिपदिकों के उत्तर थट् प्रत्यय[3] होता है । ट् इत् होनेसे थ शेष रहता है । यथा :- चतुर्णां पूरणः=चतुर्थः; षण्णां पूरणः=षष्ठः; कतीनां पूरणः=कतिथः ।

पूरण अर्थ में द्वि शब्द के उत्तर तीय[4] होता है । यथा—द्वयोः पूरणः=द्वितीयः ।

पूरण अर्थ में तृतीय, तुर्य्य और तुरीय ये तीन शब्द निपातन[5] से सिद्ध होते हैं । यथा —त्रयाणां पूरणः=तृतीयः; चतुर्णां पूरणः=तुर्यः, तुरीयः ।

पूरण अर्थ में विंशति आदि संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से तमट् प्रत्यय[6] होता है । ट् इत् होने से तम शेष रहता है । पक्ष में डट् प्रत्यय होता है । यथा :-विंशतेः पूरणः=विंशतितमः, विं[ ]शः । इस

---

१. तस्य पूरणे डट् । २. नान्तादसंख्यादेर्मट् ।
३. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् । ४. द्वेस्तीयः ।
५. तृतीयतुर्यतुरीयाः । ६. विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ।

प्रकार एकविंशतितमः, एकविंशः; द्वाविंशतितमः, द्वाविंशः; त्रिंशत्तमः, त्रंशः; चत्वारिंशत्तमः, चत्वारिंशः; पञ्चाशत्तमः, पञ्चाशः ।

शत आदि प्रातिपदिक के उत्तर नित्य तमट् होता[1] है । यथा :— शतस्य पूरणः=शततमः; सहस्रस्य पूरणः=सहस्रतमः; अयुतस्य पूरणः=अयुततमः; मासतमः; अर्द्धमासतमः; संवत्सरतमः ।

षष्टि आदि संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर नित्य तमट्[2] होता है । यथा :—षष्टे पूरणः=षष्टितमः; इसी प्रकार सप्ततितमः; अशीतितमः; नवतितमः । संख्यावाचक से अन्य शब्द पूर्व में होने पर नहीं होता । यथा —एकषष्टेः पूरणः=एकषष्टितमः; एकषष्टः; द्विषष्टेः पूरणः=द्विषष्टितमः; द्विषष्टः ।

पूरण अर्थ में बहु, पूग, गण, संघ इन चार प्रातिपदिकों के उत्तर तिथुक्[3] होता है । उक् इत् होने से तिथ् शेष रहता है । यथा :—बहूनां पूरणः=बहुतिथः; पूगानां पूरणः=पूगतिथः; गणानां पूरणः=गणतिथः; सङ्घानां पूरणः=सङ्घतिथः ।

पूरण अर्थ में वतु प्रत्ययान्त प्रातिपदिक के उत्तर इथुक् प्रत्यय[4] होता है । उक् इत् होने से इथ् शेष रहता है । यथा :—यावतां पूरणः= यावतिथः । इसी प्रकार तावतिथः; कियतिथः; इयतिथः; एतावतिथः ।

अस्त्यर्थ के प्रत्यय

'तद् अस्य अस्ति' 'तद् अस्मिन् अस्ति' इन दो अर्थों में प्रातिपदिक के उत्तर मतुप्[5] होता है । उ, प्, इत् होने से मत् शेष रहता है । यथा :—मतिरस्यास्ति=मतिमान्; श्रीरस्यास्ति=श्रीमान्; अंशवोऽस्य सन्ति=अंशुमान्; पिता अस्यास्ति=पितृमान्; धनुरस्यास्ति=धनुष्मान्; वपुरस्यास्ति=वपुष्मान्; अग्निरस्मिन्नस्ति=अग्निमान्; वायुरस्मि-

१. नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ।

२. षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ।

३. बहुपूगगणसंघस्य तिथुक् ।

४. वतोरिथुक् ।

५. तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

न्नस्ति=वायुमान्; नद्योऽस्मिन् सन्ति=नदीमान् देशः; गावोऽस्यां सन्ति=गोमती शाला ।

मकारान्त, अवर्णान्त, मकारोपध और अवर्णोपध प्रातिपदिक के उत्तर विहित मतुप् के स्थान में व[1] हो जाता है । यथा :—किमस्यास्ति =किंवान्; ज्ञानमस्यास्ति=ज्ञानवान्; धनमस्यास्ति=धनवान्; बलमस्यास्ति=बलवान्; विद्या अस्यास्ति=विद्यावान्; दया अस्यास्ति= दयावान्; क्षमा अस्यास्ति=क्षमावान्; आत्मा अस्यास्ति=आत्मवान्; भाः अस्यास्ति=भास्वान्; लक्ष्मीरस्यास्ति=लक्ष्मीवान्; शमी अस्मिन्नस्ति=शमीवान् ।

यव आदि प्रातिपदिक के उत्तर विहित मतुप् के म के स्थान में व नहीं होता । यथा-यवमान्; द्राक्षामान्; गरुत्मान्; हरित्मान्; ककुद्मान्, ऊर्मिमान्; भूमिमान्; कृमिमान् ।

प्रातिपदिक के अन्त में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ वर्ग हो तो उनके उत्तर विहित मतुप् के म के स्थान में[2] व होता है । यथा :—तडित् अस्मिन्नस्ति=तडित्वान्, विद्युत् अस्मिन्नस्ति=विद्युत्वान् ।

मतुप् प्रत्यय होने पर एवं संज्ञा का बोध होने पर उदन्वत् आदि शब्द निपातन से सिद्ध[3] होते हैं । यथा :–उदकम् अस्मिन्नस्ति=उदन्वान् समुद्रः; अन्यत्र उदकवान्; राजा अस्मिन्नस्ति=राजन्वान् (शोभनराजयुक्तो देशः); अन्यत्र राजवान्; चर्म अस्यामस्ति=चर्मण्वती नाम नदी; अन्यत्र चर्मवती; अस्थि अस्मिन्नस्ति=अष्ठीवान् (जानूरुसन्धिः); अन्यत्र अस्थिवान्; चक्रमस्यास्ति=चक्रीवान् राजा; अन्यत्र चक्रवान्; कक्ष्या अस्यास्ति=कक्षीवान् नाम महर्षिः; अन्यत्र कक्ष्यावान्; लवणमस्मिन्नस्ति=रुमण्वान् नाम पर्वतः; अन्यत्र लवणवान् ।

कुमुद, नड, वेतस, इन तीन प्रातिपदिकों के उत्तर ड्मतुप् होता[4] है । ड्, उ, प् इत् होने से मत् शेष रहता है । यथा :—कुमुदान्यस्मिन्

१. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः । २. झयः ।
३. उदन्वादयः संज्ञायाम् । ४. कुमुद-नड-वेतसेभ्यो ड्मतुप् ।

सन्ति=कुमुद्वान्; नडान्यस्मिन् सन्ति=नड्वान्; वेतसान्यस्मिन् सन्ति=वेतस्वान्; महिषा अस्मिन् सन्ति=महिष्मान् देशः।

अस्‌भागान्त, माया, मेधा, स्रज् इन सब प्रातिपदिकों के उत्तर विकल्प से विनि[1] होता है। इ इत् होने से विन् शेष रहता है। पक्ष में मतुप् होता है यथा :—यशोऽस्यास्ति=यशस्वी, यशस्वान्; तेजोऽस्यास्ति=तेजस्वी, तेजस्वान्; पयोऽस्यामस्ति=पयस्विनी नदी, पयस्विनी धेनुः; मायाऽस्यास्ति=मायावी, मायावान्; मेधा अस्यास्ति=मेधावी, मेधावान्; स्रक् अस्यास्ति=स्रग्वी, स्रग्वान् तापसः।

एकाधिक स्वरविशिष्ट अवर्णान्त प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से इनि[2] होता है। इ इत् होने से इन् शेष रहता है। पक्ष में यथासम्भव मतुप् वा विनि प्रत्यय होते हैं। यथा :—ज्ञानमस्यास्ति=ज्ञानी, ज्ञानवान्; बलमस्यास्ति=बली, बलवान्; धनमस्यास्ति=धनी, धनवान्; शिखा अस्यास्ति=शिखी, शिखावान्; चूडा अस्यास्ति=चूडी, चूडावान्; माया अस्यास्ति=मायी, मायावी; साहसम् अस्यास्ति=साहसी, साहसवान्; विवेकोऽस्यास्ति=विवेकी, विवेकवान्; उत्साहोऽस्यास्ति=उत्साही, उत्साहवान्; सुखम् अस्यास्ति=सुखी, सुखवान्; दुःखमस्यास्ति=दुःखी दुःखवान्; प्रणयोऽस्यास्ति=प्रणयी, प्रणयवान्; कृच्छ्रमस्यास्ति=कृच्छ्री, कृच्छ्रवान्; सहस्रमस्यास्ति=सहस्री, सहस्रवान्।

जातिबोध होने पर हस्त और कर, इन दो प्रातिपदिकों के उत्तर नित्य इनि[3] होता है। यथा :—हस्तोऽस्यास्ति=हस्ती गजः; करोऽस्यास्ति=करी गजः। अन्यत्र हस्तोऽस्यास्ति=हस्तवान् पुरुषः।

ब्रह्मचारी बोध होने पर वर्ण शब्द के उत्तर नित्य इनि[4] होता है यथा :—वर्णः अस्यास्ति=वर्णी ब्रह्मचारी; अन्यत्र वर्णवान्।

स्थान बोध होने पर पुष्कर आदि प्रातिपदिक के उत्तर नित्य इनि[5]

---

१. अस्-माया-मेधा-स्रजो विनिर्वा। २. इन् वा नैकस्वरादवर्णात्।
३. हस्तकराभ्यां जातौ। ४. वर्णाद् ब्रह्मचारिणि।
५. पुष्करादिभ्यो देशे।

होता है। यथा—पुष्कराण्यस्यां सन्ति=पुष्करिणी दीर्घिका; पद्मान्यस्यां सन्ति=पद्मिनी; इसी प्रकार उत्पलिनी; पङ्कजिनी; सरोजिनी; सरोरुहिणी; अरविन्दिनी; अम्भोजिनी; अब्जिनी; कमलिनी; कुमुदिनी; कैरविणी; बिसिनी; मृणालिनी; तमालिनी; नलिनी; तरङ्गिणी; कल्लोलिनी; तटिनी; प्रवाहिणी।

याचना बोध होने पर अर्थ शब्द से उत्तर नित्य इनि[1] होता है। यथा :– अर्थोऽस्यास्ति=अर्थी याचकः। अन्यत्र अर्थवान्।

अर्थ शब्द प्रातिपदिक के अन्त में होने पर इनि[2] होता है। यथा :– विद्यारूपोऽर्थः प्रयोजनमस्यास्ति=विद्यार्थी; इसी प्रकार धनार्थी; धान्यार्थी; हिरण्यार्थी; गुरुदक्षिणार्थी।

आकारान्त प्राण्यक्षवाचक शब्द के उत्तर एवं सिध्म (चर्म रोग विशेष) आदि शब्द के उत्तर विकल्प से लच्[3] प्रत्यय होता है। च इत् होने से ल शेष रहता है। यथा :—चूडा अस्यास्ति=चूडालः; शिराः अस्य सन्ति=शिरालः; जङ्घा अस्यास्ति=जङ्घालः; कर्णिका अस्यास्ति= कर्णिकालः; सिध्मम् अस्यास्ति=सिध्मलः; मांसमस्यास्ति=मांसलः; श्रीरस्यास्ति=श्रीलः; पक्ष्मास्यास्ति=पक्ष्मलः; स्नेहोऽस्यास्ति= स्नेहलः; शीतो गुणोऽस्यास्ति=शीतलः; इसी प्रकार पिङ्गलः; पृथुलः; मृदुलः; मञ्जुलः; मण्डलः; चटुलः; कपिलः; ग्रन्थिलः; कुशलः; पांसुलः; श्लेष्मलः; पेशलः; कुण्डलः; अंसलः; वत्सलः। पक्ष में मतुप् प्रत्यय होता है।

फेन शब्द के उत्तर विकल्प में लच् और इलच्[4] होते हैं। यथा :– फेनोऽस्मिन्नस्ति=फेनलः, फेनिलः। पक्ष में=फेनवान्।

अस्ति अर्थ में लोमन् आदि शब्दों के उत्तर श[5] प्रत्यय पामन आदि शब्दों के उत्तर न और पिच्छ आदि शब्दों के उत्तर इलच्

---

१. अर्थाच्चासन्निहिते। २. तदन्ताच्च।

३. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्, सिध्मादिभ्यश्च।

४. फेनादिलच्च। ५. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः।

प्रत्यय होता है। यथा :—लोमान्यस्य सन्ति=लोमशः; इसी प्रकार रोमशः, गिरिशः; कर्कशः; कपिशः; पाम अस्यास्ति=पामनः; इसी प्रकार—श्लेष्मणः; हेमनः; वलिनः; पिच्छम् अस्यास्ति=पिच्छिलः; इसी प्रकार पङ्किलः, तुन्दमस्यास्ति=तुन्दिलः।

दन्त शब्द के उत्तर उन्नत अर्थ का बोध होने पर उरच् प्रत्यय[1] होता है। यथा :—उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य=दन्तुरः।

ऊष, शुषि, मुष्क और मधु शब्दों से उत्तर प्रातिपादिक में र[2] प्रत्यय होता है। यथा :—ऊषरः, शुषिरः, मुष्करः, मधुरः।

ख आदि शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में र प्रत्यय[3] होता है। यथा :—खम् (महत् कण्ठविवरम्) अस्यास्ति=खरः (गर्दभः), मुखमस्यास्ति=मुखरः, इसी प्रकार नखरः, कुञ्जरः, नगरम्, पाण्डुरः, पांसुरः वा पांसुलः।

नड, शाद इन दो शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में ड्वलच्[4] प्रत्यय होता है। ड् च् इत् होने से वल शेष रहता है। यथा :—नडा अस्मिन् सन्ति=नड्वलः; शादा अस्मिन् सन्ति=शाद्वलः।

रजः आदि शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में वलच् प्रत्यय[5] होता है। वलच् प्रत्यय होने पर अन्त्य स्वर दीर्घ[6] हो जाता है। यथा :—रज अस्या अस्ति=रजस्वला; कृषिरस्यास्ति=कृषीवलः, इसी प्रकार—परिषद्वलः, पर्षद्वलः, ऊर्जस्वलः, दन्तावलो हस्ती, शिखावलो मयूरः।

संज्ञा बोध होने पर केश आदि शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में व[7] प्रत्यय होता है। यथा :—केशाः सन्त्यस्य=केशवः, मणिरस्यास्ति=मणिवः नागविशेषः; अजगः अस्यास्ति=अजगवम् पिनाकः; गाण्डिरस्यास्ति=गाण्डिवम्, गाण्डीवम्; अर्णः अस्यास्ति=अर्णवः।

---

१. दन्त उन्नत उरच्। दन्तादुरः। २. ऊष-शुषि-मुष्क-मधो रः।

३. ख-मुख-नख-कुञ्ज नग-पाण्डु-पासुभ्यश्च।

४. नड-शादाद् ड्वलच्। ५. रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्।

६. वले। ७. केशाद् वोऽन्यतरस्याम्।

ऐश्वर्य बोध होने पर स्व शब्द के उत्तर प्रातिपदिक में आमिनच् प्रत्यय[१] होता है। यथा :—स्वम् ऐश्वर्यम् अस्यास्ति = स्वामी।

सहन अर्थ में शीत और उष्ण शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में आलुच् प्रत्यय होता[२] है। यथा :—शीतं न सहते=शीतालुः; उष्णं न सहते = उष्णालुः; तिग्मं न सहते = तिग्मालुः।

रोग बोध होने पर वात, अतीसार इन दो प्रातिपदिकों के उत्तर इनि प्रत्यय और क का आगम[३] होता है। यथा—वातोऽस्यास्ति = वातकी; अतिसारोऽस्यास्ति = अतिसारकी। किन्तु वातं न सहते = वातुलः।

तुन्दि, वलि आदि प्रातिपदिकों के उत्तर भ[४] प्रत्यय होता है। वलयोऽस्मिन् सन्ति = बलिभः, तुन्दिभः।

अर्शस् आदि शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में अच्[५] होता है। च् इत् होने से अ शेष रहता है। यथा :—अर्शांसि अस्य सन्ति = अर्शसः। उरोऽस्यास्ति = उरसः; पलितम् अस्यास्ति = पलितः; जटा अस्य सन्ति = जटाः, अम्लः गुणोऽस्यास्ति = अम्लः; अघमस्यास्ति = अघः; लवणो रसोऽस्यास्ति = लवणः।

अहम् और शुभम् शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में युस्[६] प्रत्यय होता है। स् इत् होने से यु शेष रहता है। यथा :—अहम् अस्यास्ति = अहंयुः, अहंकारवान्; शुभम् अस्यास्ति = शुभयुः, शुभान्वितः।

ज्योत्स्ना आदि शब्द निपातन से सिद्ध[७] होते हैं। यथा :—ज्योतिरस्या अस्ति = ज्योत्स्ना; तमोऽस्या अस्ति=तमिस्रा, शृङ्गे स्तः अस्य= शृङ्गिणः; मलमस्यास्ति = मलिनः, मलीमसः; अर्णांसि अस्मिन् सन्ति= अर्णवः।

---

१. स्वामिन्नैश्वर्ये। २. शीतोष्णतिग्मेभ्यस्तन्न सहते।
३. वातातिसाराभ्यां कुक् च। ४. तुन्दिवलिवटेर्भः।
५. अर्श आदिभ्योऽच्। ६. अहंशुभयोर्युस्।
७. ज्योत्स्नादयः।

वाग्मिन्, वाचाल, वाचाट, निपातन से सिद्ध[1] होते हैं। यथा :—वाचोऽस्य सन्ति=वाग्मी; यः कुत्सितं बहु भाषते स=वाचालः, वाचाटः।

मूल अर्थ में कर्ण आदि शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में जाहच्[2] होता है। यथा :—कर्णस्य मूलम्=कर्णजाहम्; अक्ष्णोः मूलम्=अक्षिजाहम्; इसी प्रकार भ्रूजाहम्; नखजाहम्; केशजाहम्; पादजाहम्; शृङ्गजाहम्; दन्तजाहम्।

मूल अर्थ में पक्ष शब्द के उत्तर प्रातिपदिक में ति[3] होता है। यथा :—पक्षस्य मूलम्=पक्षतिः।

भ्रातृ अर्थ[4] में मातृशब्द के उत्तर प्रातिपदिक में डुल् और पितृ शब्द के उत्तर व्य प्रत्यय होते हैं। यथा :—मातुर्भ्राता=मातुलः; पितुर्भ्राता=पितृव्यः।

पितृ और मातृ[5] अर्थ में मातृ, पितृ इन दो प्रातिपदिकों के उत्तर डामहच् होता है। ड् और च् इत् होने से आमह शेष रहता है। यथा :—मातुः पिता=मातामहः; पितुः पिता=पितामहः; मातुर्माता=मातामही: पितुर्माता=पितामही।

घट (कुशल)[6] अर्थ में कर्मन् प्रातिपदिक के उत्तर अठच् प्रत्यय होता है। यथा :—कर्मणि कुशलः=कर्मठः।

तृतीया विभक्ति के प्रयोग[7] में पूर्व शब्द से उत्तर प्रातिपदिकों में इनि होता है। इ इत् होने से इन् शेष रहता है। यथा :—पूर्वमनेन कृतं भुक्तं पीतं गतं वा=पूर्वी; कृतं पूर्वमनेन=कृतपूर्वी कटम्; भुक्तं पूर्वमनेन भुक्तपूर्वी ओदनम्; पीतं पूर्वमनेन=पीतपूर्वी पयः; गतं पूर्वमनेन=गतपूर्वी गृहम्।

---

१. वाग्मिन्-वाचाल-वाचाटाः।
२. मूले जाहच् कर्णादेः।
३. पक्षात्तिः।
४. मातृ-पितृभ्यां डुल्-व्यौ भ्रातरि।
५. मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्।
६. कर्मणि घटोऽठच्।
७. पूर्वादिनिः।

तृतीया विभक्ति[1] के प्रयोग में इष्टादि शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में इनि प्रत्यय होता है। यथा :—इष्टमनेन = इष्टी यज्ञे; अधीतमनेन अधीती शास्त्रे; श्रुतमनेन = श्रुती वेदे; गृहीतमनेन = गृहीती उपदेशे; आम्नातमनेन = आम्नाती इतिहासे; आसेवितमनेन = आसेविती गुरौ; निराकृतमनेन = निराकृती शत्रौ; उपकृतमनेन = उपकृती मित्रे; अवकीर्णमनेन = अवकीर्णी व्रते।

तुलनार्थक प्रत्यय

बहुतों के बीच में एक का उत्कर्ष[2] दिखाना अभीष्ट हो तो प्रातिपदिक के उत्तर तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं। तमप् का प् इत् होने से तम तथा इष्ठन् का न् इ त् होने से इष्ठ शेष रहता है। यथा :- अयमेषामतिशयेन पटुः = पटुतमः, पटिष्ठः; अयमेषामतिशयेन लघुः = लघुतमः, लघिष्ठः; अयमेषामतिशयेन गुरुः = गुरुतमः, गरिष्ठः। इसी प्रकार प्रियतमः, प्रेष्ठः; दीर्घतमः, द्राघिष्ठः; दृढतमः, द्रढिष्ठः; मृदुतमः, म्रदिष्ठः; कृशतमः, क्रशिष्ठः।

दो के बीच में एक का उत्कर्ष[3] दिखाना हो तो प्रातिपदिक से परे तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं। तरप् में प् इत् होने से तर शेष रहता है तथा ईयसुन् में उ, न् इत् होने से ईयस् शेष रहता है। यथा :—अयमनयोरतिशयेन पटुः = पटुतरः, पटीयान्; अयमनयोरतिशयेन लघुः = लघुतरः, लघीयान्; इसी प्रकार गुरुतरः, गरीयान्; प्रियतरः, प्रेयान्; दीर्घतरः, द्राघीयान्; दृढतरः, द्रढीयान्; मृदुतरः, म्रदीयान्; कृशतरः, क्रशीयान्।

इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय[4] होने पर प्रशस्य शब्द के स्थान में श्र और ज्य होते हैं। यथा :—अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः = श्रेष्ठः, ज्येष्ठः; अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः = श्रेयान्।

---

१. इष्टादिभ्यश्च। २. अतिशायने तमबिष्ठनौ।

३. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ द्वयोस्तरबीयसुनौ।

४. प्रशस्यस्य श्रः, ज्य च।

ज्या, इस आदेश[1] के परवर्ती ईयसुन् की ई के स्थान में आ हो जाता है। यथा—ज्यायान्।

इष्ठन् और ईयसुन् परे[2] होने पर वृद्ध शब्द के स्थान में ज्य होता है। यथा—अयमेषामनयोर्वा अतिशयेन वृद्धः=ज्येष्ठः, ज्यायान्।

इमनिच्; इष्ठन् और ईयसुन्[3] प्रत्यय होने पर स्थूल, दूर, युवन्, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र, इन छ शब्दों के अन्तस्थित य, व, र, ल आदि अंश लुप्त हो जाते हैं एवं तत्पूर्ववर्ती स्वर को गुण हो जाता है। स्थूल, दूर और युवन् शब्द पृथु आदि के अन्तर्गत नहीं हैं, इसलिए इनके उत्तर इमन् प्रत्यय नहीं होगा। यथा :—स्थूल=स्थविष्ठः, स्थवीयान्; दूर=दविष्ठः, दवीयान्; युवन्=यविष्ठः, यवीयान्; ह्रस्व =ह्रसिष्ठः; ह्रसीयान्; क्षिप्र=क्षेपिष्ठः, क्षेपीयान्; क्षुद्र=क्षोदिष्ठः, क्षोदीयान्।

इमनिच्, इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होने पर इनके आदि स्थित इ वर्ण का लोप[4] हो जाता है तथा बहु शब्द के स्थान में भू होता है। यथा :—बहु=भूमा, भूयान्, भूयिष्ठः।

इमनिच् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय[5] होने पर प्रिय के स्थान में स्थ, स्फिर के स्थान में स्फ, उरु के स्थान में वर, बहुल के स्थान में बंहि, गुरु के स्थान में गर, वृद्ध के स्थान में वर्षि, तृप्र के स्थान में त्रप्, दीर्घ के स्थान में द्राघ, और वृन्दारक के स्थान में वृन्द आदेश होते हैं। इनमें प्रिय, उरु, बहुल, गुरु और दीर्घ शब्द पृथु आदि के अन्तर्गत होने से इनके उत्तर इमनिच् प्रत्यय होता है। यथा :—प्रेमा; वरिमा; बंहिमा; गरिमा और द्राघिमा। इष्ठन् और इयसुन् सभी के उत्तर में होंगे। यथा :—प्रिय=प्रेयान्, प्रेष्ठः; स्थिर=स्थेष्ठः, स्थेयान्, उरु=

---

१ ज्यादादीयसः।   २. वृद्धस्य च।

३. स्थूल-दूर-युव-ह्रस्व-क्षिप्र-क्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः।

४. बहोर्लोपो भू च बहोः।

५. प्रिय-स्थिर-स्फिरोरु-बहुल-गुरु-वृद्ध-तृप्र-दीर्घ-वृन्दारकाणां प्र-स्थ-स्फ-वर-बंहि-गर्-वर्षि-त्रप-द्राघिवृन्दाः।

वरिष्ठः, वरीयान्; स्फिर=स्फेष्ठः, स्थेयान्; बहुल=बंहिष्ठः, बंहीयान्; गुरु=गरिष्ठः, गरीयान्; वृद्ध=वर्षिष्ठः, वर्षीयान्; तृप्र=त्रपिष्ठः, त्रपीयान्; दीर्घ=द्राघिष्ठः, द्राघीयान्; वृन्दारक=वृन्दिष्ठः, वृन्दीयान्।

अन्तिक शब्द के स्थान में[1] नेद और बाढ शब्द के स्थान में साध होते हैं। यथा :—नेदिष्ठः, नेदीयान्; साधिष्ठः, साधीयान्।

युवन् और अल्प[2] शब्दों के स्थान में विकल्प से कन् होता है। यथा :—अल्प=कनिष्ठ, कनीयान्, अल्पिष्ठः, अल्पीयान्; युवन्=कनिष्ठः, कनीयान्, यविष्ठः, यवीयान्।

इष्ठन् और ईयसुन् परे होने पर[3] विन् और मतुप् प्रत्यय का लोप हो जाता है। यथा :—अयमतिशयेन मायावी=मायिष्ठः, मायीयान्; अयमेषामतिशयेन बलवान्=बलिष्ठः, बलीयान्।

दो में एक का निर्द्धारण व्यक्त करना हो तो किम्, यत् और तद् इन तीन शब्दों के उत्तर प्रातिपदिक में डतरच् प्रत्यय[4] होता है। ड, त् इत् होने से अतर शेष रहता है। यथा :—अनयोः कतरः वैष्णवः; अनयोर्यतरो ब्राह्मणः ततरः आगच्छतु।

बहुत में जाति द्वारा एक का निर्द्धारण[5] दिखाना हो तो डतमच् प्रत्यय होता है। ड्, च् इत् होने से अतम शेष रहता है। यथा :—एषां कतमः शैवः; एषां यतमः क्षत्रियः ततमः प्रयातु।

एक और अन्य शब्दों के[6] प्रातिपदिक में डतरच् और डतमच् प्रत्यय होते हैं। यथा :—भवतोरेकतरः पठतु; भवतामेकतमः शृणोतु; तयोरन्यतरो यातः, तेषामन्यतमो मृतः।

दो वा बहुतों के मध्य में एक का उत्कर्ष दिखाना हो तो किम् शब्द, एकारान्त शब्द, तिङन्त शब्द और अव्यय शब्द के उत्तर तरप्

---

१. अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ। २. युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्।
३. विन्मतोर्लुक्। ४. कियत्तदोर्निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्।
५. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्। ६. एकान्याभ्याञ्च।

और तमप्[1] होते हैं तथा उनके उत्तर आमु (आम्) युक्त होता है। प् इत् होने से तराम् और तमाम् शेष रहते हैं। यथा :—किन्तराम्, किन्तमाम्; प्राह्णेतराम्; प्राह्णेतमाम्, पचतितराम्, पचतितमाम्; उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम्। द्रव्य अर्थ में नहीं होता। यथा—उच्चैस्तरः तरुः।

प्रशंसा अर्थ में प्रातिपदिक[2] के उत्तर रूपप् प्रत्यय होता है। यथा :–प्रशस्तो वैयाकरणः=वैयाकरणरूपः। इसी प्रकार नैयायिकरूपः; आलङ्कारिकरूपः; मीमांसकरूपः।

'ईषत् न्यून' इस अर्थ में[3] प्रातिपदिक के उत्तर कल्पप्, देश्य और देशीयर् प्रत्यय होते हैं। कल्पप् प्रत्यय में कल्प एवं देशीयर् प्रत्यय में देशीय शेष रहता है। यथा :–ईषदूनो विद्वान्=विद्वत्कल्पः, विद्वद्देशीयः। पूर्व में कहे गये प्रत्यय तिङन्त पद के उत्तर भी होंगे। यथा :–पठतितराम्; पठतितमाम्; पठतिरूपम्; पठतिकल्पम्; पठतिदेश्यम्; पठतिदेशीयम्।

'ईषत् न्यून' अर्थ में सुबन्त पद के[4] उत्तर विकल्प से बहुच् प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय सुबन्त पद के पूर्व होता है। यथा : – ईषदूनः पटुः=बहुपटुः, पटुकल्पः, पटुदेश्यः, पटुदेशीयः।

समास में[5] स्थान भागान्त प्रातिपदिक के उत्तर छ प्रत्यय होता है। यथा :—पितुरिव=स्थानं यस्य सः=पितृस्थानः, पितृस्थानीयः; इसी प्रकार भ्रातृस्थानः, भ्रातृस्थानीयः, मातृस्थाना, मातृस्थानीया।

समास में[6] जातिभागान्त प्रातिपदिक के उत्तर छ प्रत्यय होता है। यथा :—ब्राह्मणो जातिर्यस्य सः=ब्राह्मणजातीयः, इसी प्रकार क्षत्रियजातीयः, पुरुषजातीयः, स्त्रीजातीयः; वणिग्जातीयः; रजकजातीयः, तार्किकजातीयः; वैयाकरणजातीयः।

---

१. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्याप्रकर्षे।

२. प्रशंसायां रूपप्।

३. ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः।

४. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु।

५. स्थानान्ताद् विभाषा सस्थानेनेति चेत्।

६. जात्यान्ताच्छ बन्धुनि।

विभिन्न अर्थवाचक प्रत्यय

'क्रिया की अभ्यावृत्तिगणना'[१] (अर्थात् कितनी बार वह क्रिया सम्पन्न हुई इस) अर्थ में संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर कृत्वसुच् प्रत्यय होता है। उच् इत् होने से कृत्वस् शेष रहता है। यथा :— पञ्चवारान् भुङ्क्ते=पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते; सप्तवारान् स्वपिति=सप्त-कृत्वः स्वपिति; शतवारान् पठति=शतकृत्वः पठति।

'क्रिया की अभ्यावृत्तिगणना' अर्थ में[२] द्वि, त्रि, चतुर् इन तीन प्रातिपदिक शब्दों से उत्तर सुच् होता है। उ, च् इत् होने से स् शेष रहता है। यथा :—द्वौ वारौ भुङ्क्ते=द्विर्भुङ्क्ते; त्रीन् वारान् भुङ्क्ते =त्रिर्भुङ्क्ते।

सुच् प्रत्यय होने पर चतुर[३] शब्द के अन्तस्थित रेफ के परवर्ती स् का लोप हो जाता है। यथा :—चतुरो वारान् भुङ्क्ते=चतुर्भुङ्क्ते।

एक शब्द के उत्तर प्रातिपदिक[४] में सुच् प्रत्यय होता है एवं उसके साथ एक के स्थान में सकृत् आदेश और प्रत्यय का लोप हो जाता है। यथा—एकं वारं भुङ्क्ते; सकृद्भुङ्क्ते; एक वारमधीते—सकृदधीते।

'क्रिया की अभ्यावृत्तिगणना' एवं 'क्रिया[५] के अनुष्ठान काल का परस्पर नैकट्य' इन अर्थों में बहु शब्द के उत्तर प्रातिपदिक से विकल्प से धा प्रत्यय होता है पक्ष में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है। यथा :—बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते; बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते। यदि नैकट्य का बोध न हो, तब नहीं होगा। यथा :—बहुकृत्वो मासस्यागच्छति।

बह्वर्थ और अल्पार्थ[६] प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर विकल्प से शस् प्रत्यय होता है। यथा :—बहु ददाति=बहुशो ददाति; भूरि ददाति= भूरिशो ददाति; अल्पं ददाति=अल्पशो ददाति; स्तोकं ददाति= स्तोकशो ददाति। कारक के उत्तर ही यह प्रत्यय होगा।

---

१. संख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्।

२. द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। ३. रात् सस्य।

४. एकस्य सकृच्च। ५. विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले।

६. बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्।

वीप्सा अर्थ में संख्यावाचक[1] और एकदेशवाचक प्रातिपदिक शब्द के उत्तर विकल्प से शस् होता है। यथा :—संख्यावाचक—द्वौ द्वौ ददाति =द्विशो ददाति; पञ्च पञ्च ददाति =पञ्चशो ददाति। एकदेश-वाचक—पादं पादं ददाति =पादशो ददाति; अर्धमर्धं ददाति =अर्धशो ददाति।

'तस्य विकारः' एवं 'तस्य अवयवः'[2] इन अर्थों में प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर मयट् होता है। ट् इत् होने से मय शेष रहता है। यथा :—स्वर्णस्य विकारः =स्वर्णमयः घटः; स्वर्णमयी प्रतिमा; मृदो विकारः—मृन्मयः घटः, मृन्मयी प्रतिमा। हिरण्यस्य विकारः= हिरण्मयः, दारूण्यस्यावयवाः =दारुमयम् आसनम्। दर्भा अस्यावयवाः =दर्भमयो ब्राह्मणः; काष्ठान्यस्यावयवाः =काष्ठमयो हस्ती; ऊर्णा अस्यावयवाः =ऊर्णामयं वासः; अन्नान्यस्यावयवाः =अन्नमयो यज्ञः; अपूपाः अस्यावयवाः =अपूपमयं श्राद्धम्।

'व्याप्ति', संसर्ग' और 'अपृथग् भाव'[3] अर्थ में प्रातिपादिक के उत्तर मयट् प्रत्यय होता है। यथा :—जलेन व्याप्तं =जलमयं जगत् प्रलये; रोगेण व्याप्तं रोगमयं शरीरम्; धूमेन व्याप्तं =धूममयं गृहम्। तिलेन संसृष्टम् =तिलमयं तर्पणम्; घृतेन संसृष्टम् =घृतमयं व्यञ्जनम्, पापेन संसृष्टम् =पापमयं शरीरम्। विष्णोरपृथग्भूतम् =विष्णु-मयं जगत्; वाग्भ्योऽपृथग्भूतम् =वाङ्मयं शास्त्रम्; चितोऽपृथग्भूतः = चिन्मयः पुरुषः।

पुरीष अर्थ में गो[4] शब्द से प्रातिपदिक में मयट् प्रत्यय होता है। यथा :—गोः पुरीषम् =गोमयम्।

स्नेह अर्थ में[5] प्रातिपदिक के उत्तर तैलच् प्रत्यय होता है। च

---

१. संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्।

२. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः। ३. तत्प्रकृतवचने मयट्।

४. गोश्च पुरीषे। ५. स्नेहे तैलच्।

इत् होने से तैल शेष रहता है। यथा :—तिलस्य स्नेहः=तिलतैलम्, सर्षपस्य स्नेहः=सर्षपतैलम्; एरण्डस्य स्नेहः=एरण्डतैलम्।

विधा अर्थ में[1] संख्यावाचक प्रातिपदिक के उत्तर धा प्रत्यय होता है। धा प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं। यथा :—एका विधा=एकधा, द्वे विधे=द्विधा, तिस्रो विधाः=त्रिधा वा भुङ्क्ते।

'द्रव्य का विचालन'[2] अर्थात् अन्य भाव-सम्पादन अर्थ में धा प्रत्यय होता है। यथा :—पञ्चराशीन् एकधा कुरु; एकं राशिं पञ्चधा कुरु।

ऐकध्य[3] आदि शब्द विकल्प से निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा-एका विधा=ऐकध्यम्; द्वे विधे=द्वैधम्, द्वेधा; तिस्रो विधाः=त्रैधं, त्रेधा; षड् विधाः=षोढा। पक्ष में एकधा, द्विधा, त्रिधा और षड्धा।

कुत्सित् अर्थ में[4] प्रातिपदिक के उत्तर पाशप् प्रत्यय होता है। प् इत् होने से पाश शेष रहता है। यथा—कुत्सितो वैयाकरणः=वैयाकरणपाशः। इसी प्रकार मीमांसकपाशः; भिषक्पाशः; वैदिकपाशः; पाचकपाशः।

भूतपूर्व[5] अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर चरट् प्रत्यय होता है। ट् इत् होने से चर शेष रहता है। यथा :—आढ्यो भूतपूर्वः=आढ्यचरः; दृष्टो भूतपूर्वः=दृष्टचरः; अर्पितो भूतपूर्वः=अर्पितचरः; अधीती भूतपूर्वः=अधीतचरः।

सम्बन्ध बोध[6] हो तो भूतपूर्व अर्थ में चरट् और रूप्य प्रत्यय होते हैं। यथा :—देवदत्तस्य भूतपूर्वम्=देवदत्तरूप्यं, देवदत्तचरं वा भवनम्।

स्वार्थ[7] बोध होने पर तथा अज्ञात, कुत्सित, अनुकम्पा, अल्प और ह्रस्व अर्थ में अव्यय और विभक्त्यन्त सर्वनाम शब्दों की टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होता है। यथा :—उच्चैः, उच्चकैः; शनैः, शनकैः; त्वया, त्वयका; सर्वे, सर्वके; युवकयोः; अस्माभिः; अस्मकाभिः।

---

१. संख्याया विधार्थे धा। २. अधिकरणविचाले च।
३. ऐकध्यादयो वा। ४. याप्ये पाशप्। ५. भूतपूर्वे चरट्।
६. षष्ठ्या रूप्य च। ७. अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः।

असहाय[1] बोध होने पर एक शब्द के उत्तर आकिनिच् प्रत्यय होता है। इच् इत् होने से आकिन् शेष रहता है। यथा:-एक एव=एकाकी।

अज्ञात[2] अर्थ में अव्यय और सर्वनाम=भिन्न प्रातिपदिक के उत्तर स्वार्थ में क होता है। यथा :—कस्यायमश्वः, अश्वकः; इसी प्रकार उष्ट्रकः; गर्दभकः।

कुत्सित[3] अर्थ में प्रातिपादिक के उत्तर स्वार्थ में क होता है। यथा :—कुत्सितोऽश्वः=अश्वकः, कुत्सितो महिषः=महिषकः।

अल्प अर्थ में प्रातिपादिक के उत्तर स्वार्थ में क प्रत्यय[4] होता है। यथा :—अल्पं तैलम्=तैलकम्; इसी प्रकार क्षीपकम्; सलिलकम्।

स्व[5] अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर स्वार्थ में क होता है। यथा :—ह्रस्वो वृक्षः=वृक्षकः; ह्रस्वः पटः=पटकः; ह्रस्वो दन्तः=दन्तकः।

अनुकम्पा[6] अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर स्वार्थ में क प्रत्यय होता है। यथा :—अनुकम्पितः पुत्रः=पुत्रकः; इसी प्रकार वत्सकः, दुर्बलकः।

संज्ञा अर्थ में कन् प्रत्यय[7] होता है। यथा:—करभकः, रोहितकः, शर्विलकः।

स्त्रीलिङ्ग में प्रातिपदिक के उत्तर क प्रत्यय होने पर अन्त्य स्वर ह्रस्व[8] हो जाता है। यथा :—मालवी=मालविका; सागरी=सागरिका; लवङ्गी=लवङ्गिका; माधवी=माधविका; चण्डी=चण्डिका; कुशण्डी =कुशण्डिका; शेफाली=शेफालिका; मृणाली=मृणालिका; यूथी= यूथिका; बदरी=बदरिका; दूती=दूतिका; काली=कालिका; शारी= शारिका, सूची=सूचिका; ज्ञा=ज्ञका; वधू=वधुका।

---

१. एकादाकिनिच्चासहाये।
२. अज्ञाते।
३. कुत्सिते।
४. अल्पे।
५. ह्रस्वे।
६. अनुकम्पायाम्।
७. संज्ञायां कन्।
८. केऽणः।

स्त्रीलिङ्ग[1] में आप् प्रत्यय परे होने पर 'क' प्रत्यय के पूर्ववर्त्ती अ के स्थान पर इ हो जाता है। यथा :—बाला एव = बालिका; तरला एव = तरलिका; चतुरा एव = चतुरिका; निपुणा एव = निपुणिका; चपला एव = चपलिका; लता एव = लतिका; गोधा एव = गोधिका।

कुटी[2], शमी, शुण्डा, इन तीन प्रातिपदिक शब्दों से उत्तर ह्रस्वार्थ में र प्रत्यय होता है। यथा :—ह्रस्वा कुटी = कुटीरः; ह्रस्वा शमी = शमीरः; ह्रस्वा शुण्डा = शुण्डारः।

ह्रस्व[3] अर्थ में, अश्व, उक्षन्, वत्स, ऋषभ, इन चार प्रातिपदिक शब्दों से उत्तर ष्टरच् प्रत्यय होता है। ष् च् इत् होने से तर शेष रहता है। यथा :—ह्रस्वोऽश्वः = अश्वतरः; इसी प्रकार उक्षतरः, वत्सतरः; ऋषभतरः।

विभक्त्यर्थक प्रत्यय

पञ्चमी[4] विभक्ति के स्थान में विकल्प से तसिल् प्रत्यय होता है। इल् इत् होने से तस् शेष रहता है। यथा :—गृहात् = गृहतः; ग्रामात् = ग्रामतः; नगरात् = नगरतः; सर्वस्मात् = सर्वतः; विश्वस्मात् = विश्वतः; उभयस्मात् = उभयतः; भवतः = भवत्तः; एकस्मात् = एकतः; अन्यस्मात् = अन्यतः; पूर्वस्मात् = पूर्वतः; परस्मात् = परतः; दक्षिणस्मात् = दक्षिणतः; उत्तरस्मात् = उत्तरतः; हस्तात् = हस्ततः; वृक्षात् = वृक्षतः; मेघात् = मेघतः; जलात् = जलतः।

प्रयोगानुसार सप्तमी आदि सभी विभक्तियों के स्थान में विकल्प से तसिल् प्रत्यय होता है। यथा —पूर्वस्मिन् = पूर्वतः; दक्षिणस्मिन् = दक्षिणतः; उत्तरस्मिन् = उत्तरतः; प्रथमे = प्रथमतः; परिस्मन् = परतः; अग्रे = अग्रतः; आदौ = आदितः; मध्ये = मध्यतः; अन्ते = अन्ततः; पृष्ठे =

---

१. प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात् इदात्यसुपः।

२. कुटी-शमी-शुण्डाभ्यो रः।

३. वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे।

४. पञ्चम्यास्तसिल्।

पृष्ठतः; पार्श्वयोः=पार्श्वतः; सर्वस्मिन्=सर्वतः; आदिः=आदितः; सर्वः=सर्वतः; स्वरेण=स्वरतः।

परि[1] और अभि उपसर्ग के बाद में नित्य तसिल् प्रत्यय होता है। यथा :—परितः; अभितः।

हा[2] और रुह् धातु के प्रयोग में तसिल् नहीं होता। यथा :—स्वर्गात् हीयते; पर्वतादवरोहति।

सर्वनाम[3] शब्द के सप्तमी विभक्ति के स्थान में विकल्प से त्रल् होता है। ल् इत् होने से त्र शेष रहता है। यथा :—सर्वस्मिन्=सर्वत्र; उभयस्मिन्=उभयत्र; एकस्मिन्=एकत्र; अन्यस्मिन्=अन्यत्र; इतरस्मिन्=इतरत्र; पूर्वस्मिन्=पूर्वत्र; परस्मिन्=परत्र; अपरस्मिन्=अपरत्र।

विभक्त्यर्थक[4] तद्धित प्रत्यय होने पर एतद् के स्थान में अ, यद् के स्थान में य, और तद् के स्थान में त हो जाता है। यथा :—एतस्मात्=अतः; एतस्मिन्=अत्र; यस्मात्=यतः; यस्मिन्=यत्र; तस्मात्=ततः; तस्मिन्=तत्र।

तकारादि[5] और हकारादि विभक्ति परे होने पर किम् के स्थान में कु होता है। यथा—कस्मात्=कुतः, कस्मिन्=कुत्र, कुह।

क्व[6] निपातन से सिद्ध होता है। यथा :—कस्मिन्=क्व।

इदम्[7] के स्थान में इ होता है। यथा :—अस्मात्=इतः।

इदम्[8] को सप्तमी विभक्ति के स्थान में ह होता है। यथा—अस्मिन्=इह।

पञ्चमी[9] और सप्तमी विभक्तियों से भिन्न अन्यान्य विभक्तियों के स्थान में भी तसिल् और त्रल् प्रत्ययों का प्रयोग देखा जाता है।

---

१. पर्यभिभ्यां च। २. अपादाने चाहीयरुहोः।
३. सप्तम्यास्त्रल्। ४. एतदोऽन्, त्यदादीनामः।
५. कु तिहोः। ६. क्वाऽति।
७. इदम् इश्। ८. इदमो हः।
९. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते।

यथा :—स भवान्=ततो भवान्, तत्र भवान्; तं भवन्तम्=ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम्; तेन भवता=ततो भवत्ता, तत्र भवता; तस्मै भवते,= ततो भवते, तत्र भवते; तस्य भवतः=ततो भवतः तत्र भवतः।

काल का[1] बोध होने पर एक, सर्व, किम्, यत् और तद् शब्दों के उत्तर सप्तमी विभक्ति के स्थान में दा होता है। यथा :—एकस्मिन् काले=एकदा; सर्वस्मिन् काले=सर्वदा; कदा; यदा; तदा।

दा[2] होने पर सर्वशब्द के स्थान में विकल्प से स होता है। यथा :— सर्वस्मिन् काले=सदा, सर्वदा।

अन्य,[3] किम्, यद्, तद्, अदस् और अन्त शब्दों की सप्तमी विभक्ति के स्थान में दा, और र्हिल् होते हैं। र्हिल् में ल् इत् होने से र्हि शेष रहता है। यथा :—अन्यस्मिन् काले=अन्यर्हि, अन्यदा; कस्मिन् काले=कर्हि, कदा; यस्मिन् काले=यर्हि, यदा; तस्मिन् काले=तर्हि, तदा, तदानीम्।

इदम्[4] शब्द की सप्तमी विभक्ति के स्थान में दानीम् हो जाता है। यथा :—अस्मिन् काले=इदानीम्।

अधुना[5] एतर्हि ये दो शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा :— अस्मिन् काले अधुना; अस्मिन् एतस्मिन् वा काले=एतर्हि।

दिन[6] बोध होने पर पूर्व आदि प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर एद्युस् प्रत्यय होता है। यथा :—पूर्वस्मिन्नहनि, पूर्वेद्युः; अपरस्मिन्नहनि= अपरेद्युः; इसी प्रकार इतरेद्युः, अन्यतरेद्युः, अधरेद्युः, उत्तरेद्युः।

दिनार्थक विभक्ति के सहित पूर्व के स्थान में ह्यस्, समान के स्थान में सद्यस्, इदम् के स्थान में अद्य तथा पर के स्थान में श्वस्

---

१. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा।

२. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि।

३. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।

४. दानीं च।

५. अधुनैतर्हि।

६. एद्युस् पूर्वादिरहनि।

और परेद्यवि होते हैं। यथा :—पूर्वस्मिन्नहनि ह्यः; समानेऽहनि= अस्मिन्नहनि=अद्य; परस्मिन्नहनि=श्वः; परेद्यवि।

वत्सर अर्थ में विभक्ति सहित इदम् के स्थान में ऐषमस्, पूर्व के स्थान में परुत् और पूर्वतर के स्थान में परारि होता है। यथा :— अस्मिन् वर्षे=ऐषमः; पूर्वस्मिन् वर्षे=परुत्; पूर्वतरे वर्षे=परारि।

प्रकार अर्थ हो[1] तो तृतीया विभक्ति के स्थान में थाल् प्रत्यय होता है। ल् इत् होने से था शेष रहता है। यथा :—सर्वैः प्रकारैः सर्वथा, अन्येन प्रकारेण=अन्यथा; इतरेण प्रकारेण=इतरथा; उभयेन प्रकारेण=उभयथा; अपरेण प्रकारेण=अपरथा; येन प्रकारेण=यथा; तेन प्रकारेण=तथा।

कथम्[2] और इत्थम् ये दो पद निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा :— केन प्रकारेण=कथम्, अनेन एतेन वा प्रकारेण=इत्थम्।

दिग्, देश[3] और काल वाचक प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति के स्थान में अस्ताति हो जाती है। इ इत् होने से अस्तात् शेष रहता है। यथा :—परस्मिन् परस्मात् परो वा=परस्तात्।

अस्तात्[4] सहित अपर शब्द के स्थान में पश्चात् निपातन से सिद्ध होता है। यथा :—अपरस्मिन्, अपरस्मात् अपरो वा=पश्चात्।

अस्तात्[5] सहित ऊर्ध्व शब्द के स्थान में उपरि और उपरिष्टात् निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा :—ऊर्ध्वे, ऊर्ध्वात् ऊर्ध्वो वा=उपरि उपरिष्टात्।

पूर्व[6] अधर और अवर, इन तीन प्रातिपदिक शब्दों की सप्तमी

---

१. प्रकारवचने थाल्। २. कथमित्थमौ।

३. दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः।

४. पश्चात्। ५. उपर्य्युपरिष्टात्।

६. पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्।

पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति के स्थान में अस्तात् और असि होते हैं। असि में इ इत् होते से अस् शेष रहता है।

अस्तात् और असि होने पर पूर्व के स्थान में पुर्, अधर् के स्थान में अध् एवं अवर के स्थान में अव् आदेश होते हैं। यथा :— पूर्वस्मिन्, पूर्वस्मात्, पूर्वो वा=पुरस्तात्, पुरः। अधरस्मिन्, अधरस्मात्, अधरो वा=अधस्तात्, अधः। अवरस्मिन्, अवरस्मात्, अवरो वा=अवस्तात्, अवः।

दिग्वाचक[1] और देशवाचक दक्षिण एवं उत्तर शब्दों की सप्तमी पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति के स्थान में अतसुच् प्रत्यय होता है। उच् इत् होने से असत् शेष रहता है। यथा :—दक्षिणस्मिन्, दक्षिणस्मात्, दक्षिणो वा=दक्षिणतः; उत्तरस्मिन्, उत्तरस्मात् उत्तरो वा= उत्तरतः।

उत्तर[2] अधर और दक्षिण शब्दों की सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति के स्थान में आति प्रत्यय होता है। इ इत् होने से आत् शेष रहता है। यथा :—उत्तरस्मिन्, उत्तरस्मात् उत्तरो वा=उत्तरात्; इसी प्रकार अधरात्; दक्षिणात्।

अदूर[3] अर्थ में एनप् प्रत्यय होता है। प् इत् होने से एन शेष रहता है। उत्तरस्मिन् उत्तरो वा=उत्तरेण; इसी प्रकार अधरेण; दक्षिणेन। पञ्चमी विभक्ति के स्थान में एनप् प्रत्यय नहीं होता।

दक्षिण और उत्तर शब्दों की सप्तमी और प्रथमा विभक्ति के स्थान में आत् और आहि[4] होते हैं। आत् त् इत् होने से आ शेष रहता है। यथा :—दक्षिणा=दक्षिणाहि; उत्तरा=उत्तराहि।

विविध प्रत्यय

भव[5] अर्थ में सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रग् और कालवाचक अव्यय

---

१. दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्। २. उत्तराधरदक्षिणादाति।

३. एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः।

४. दक्षिणादाच्। आहि च दूरे। उत्तराच्च।

५. सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च।

शब्दों के उत्तर ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं एवं त का आगम होता है। यथा :—अद्य भवम्=अद्यतनम्; प्रातर्भवम्=प्रातस्तनम्; सायं भवम्=सायन्तनम्। इसी प्रकार दोषातनम्; दिवातनम्; पुरातनम्; चिरन्तनम्; सदातनम्; अधुनातनम्; इदानीन्तनम्; तदानीन्तनम्; प्राह्णेतनम्; प्रगेतनम्।

पूर्वाह्ण[1] और अपराह्ण शब्दों के उत्तर सप्तमी विभक्ति के स्थान में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय एवं त का आगमविकल्प से होता है। यथा :- पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम् (ठञ्); अपराह्णे भवम्=अपराह्णतनम्; आपराह्णिकम् (ठञ्)।

अर्द्ध[2] आदि प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर नित्य तनप् होता है यथा :—अर्द्धे भवः=अर्द्धतनः; उपरिभवः=उपरितनः; अधः भवः= अधस्तनः; प्राक्भवः=प्राक्तनः; पूर्वे भवः=पूर्वतनः।

आदि मध्य[3] इन दो प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर सप्तमी विभक्ति के स्थान में मन् होता है। न् इत् होने से म शेष रहता है। यथा :— आदिमः। मध्ये भवः=मध्यमः।

अग्र, अन्त, पश्चात्[4] इन तीन प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर डिमच् होता है। ड् च् इत् होने से इम शेष रहता है। यथा :—अग्रे भवः= अग्रिमः; अन्ते भवः=अन्तिमः; पश्चात् भवः=पश्चिमः।

चिर[5], परुत् और परारि इन तीन शब्दों के उत्तर त्न होता है। यथा :—चिरत्नम्; परुत्नम्; परारित्नम्।

दक्षिणा पश्चात्[6] और पुरस् इन तीन शब्दों के उत्तर त्यक् होता है। क् इत् होने से त्य शेष रहता है। यथा :—दाक्षिणात्यः; पाश्चात्त्यः; पौरस्त्यः।

---

१. विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्।
२. नित्यमूर्ध्वादिः।
३. आदिमध्याभ्यां मन्।
४. अग्रान्तपश्चाद्भ्यो डिमच्।
५. चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नः।
६. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्।

अमा[1], इह, क्व एवं तसिल् और त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों के उत्तर त्य होता है। यथा :—अमात्यः; इहत्यः; क्वत्यः। तसिल् प्रत्ययान्त—ततस्त्यः, अतस्त्यः; कुतस्त्यः। त्रल् प्रत्ययान्त शब्द—तत्रत्यः, अत्रत्यः, कुत्रत्यः।

विभक्त्यन्त[2] किम् शब्द के उत्तर चित् और चन होते हैं। यथा :-कश्चित्; कञ्चित्; केनचित्; कस्मैचित्; कस्माच्चित्; कस्यचित्; कस्मिंश्चित्; कुतश्चित्; क्वचित्; कुत्रचित्; कश्चन; किञ्चन; कञ्चन; कुतश्चन; क्वचन; कुत्रचन।

कृ, भू[3] और अस् धातुओं के योग में अभूततद्भाव अर्थ में प्रातिपदिक के उत्तर च्वि होता है। च्वि पूरा इत् हो जाता है।

अभूततद्भाव[4] अर्थ में प्रत्यय होने पर प्रातिपदिक के अन्तस्थित ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। यथा :—अलघुं लघुं करोति-लघूकरोति; अलघुर्लघुः भवति=लघूभवति; अलघुर्लघुः स्यात्=लघूस्यात्।

अभूततद्भाव[5] अर्थ में प्रत्यय होने पर प्रातिपदिक के अन्तस्थित अ वर्ण के स्थान में ई हो जाता है। यथा :—अशुक्लं शुक्लं करोति=शुक्लीकरोति; अशुक्लः शुक्ली भवति=शुक्लीभवति; अशुक्लः शुक्लः स्यात्=शुक्लीस्यात्।

अभूततद्भाव[6] अर्थ में प्रत्यय होने पर प्रातिपदिक के अन्तस्थित ऋकार के स्थान में री होता है। यथा :—अश्रोतारं श्रोतारं करोति=श्रोत्रीकरोति; श्रोत्रीभवति; श्रोत्रीस्यात्।

अभूततद्भाव अर्थ[7] में प्रत्यय होने पर परुस्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस् और रजस् इनके अन्त्य वर्ण का लोप हो जाता है। यथा :—अरूकरोति, अरूभवति, अरूस्यात्; विमनीकरोति, विमनीभवति, विमनी-

---

१. अमेहक्वतसिल्त्रल्भ्यस्त्यः। २. किमश्चिच्चनौ विभक्त्यन्तात्।

३. कृभ्वस्तियोगेऽभूततद्भावे च्विः। ४. च्वौ च।

५. अस्य च्वौ। ६. रीङ् ऋतः।

७. अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च।

स्यात्; उच्चक्षूकरोति, उच्चक्षूभवति; उच्चक्षूस्यात्; सुचेतीकरोति, सुचेतीभवति, सुचेतीस्यात्, विरहीकरोति, विरहीभवति, विरहीस्यात्; विरजीकरोति, विरजीभवति, विरजीस्यात् ।

कात्स्न्यं[1] बोध होने पर अभूत-तद्भाव अर्थ में कृ, भू और अस् धातु के योग में विकल्प से साति होता है। इ इत् होने से सात् शेष रहता है। यथा :—कृत्स्नं लवणं जलं करोति—जलसात्करोति; कृत्स्नं लवणं जलं भवति=जलसाद्भवति; कृत्स्नं लवणं जलं स्यात्=जलसात्स्यात् । इसी प्रकार भस्मसात्करोति, भस्मसाद्भवति, भस्मसात्स्यात् । पक्ष में च्वि प्रत्यय होने पर जलीकरोति, जलीभवति, जलीस्यात्; भस्मीकरोति; भस्मीभवति, भस्मीस्यात् ।

अभिविधि[2] बोध होने पर अभूततद्भाव अर्थ में कृ, भू, अस् और सम् पूर्वक पद् धातु के योग में विकल्प से साति होता है। यथा :—अग्निसात्करोति, अग्निसाद्भवति, अग्निसात्स्यात्, अग्निसात्सम्पद्यते । पक्ष में च्वि प्रत्यय होने पर अग्नीकरोति, अग्नीभवति, अग्नीस्यात्, अग्नीसम्पद्यते ।

अधीन[3] अर्थ में भी पूर्व नियमानुसार ही सब कार्य होंगे। यथा :-राज्ञोऽधीनं करोति राजसात्करोति, राज्ञोऽधीनं भवति=राजसाद्भवति, राज्ञोऽधीनं स्यात्=राजसात्स्यात्, राज्ञोऽधीनं सम्पद्यते=राजसात्सम्पद्यते । पक्ष में च्वि होने पर=राजीकरोति, राजीभवति, राजीस्यात् ।

देय[4] बोध होने पर कृ, भू, अस् और सम् पूर्वक पद् धातुओं के योग में साति और त्राच् होते हैं। च् इत् होने से त्रा शेष रहता है। यथा :—ब्राह्मणाय देयं करोति=ब्राह्मणसात्करोति, ब्राह्मणत्राकरोति, ब्राह्मणसाद्भवति, ब्राह्मणत्राभवति, ब्राह्मणसात्स्यात्, ब्राह्मणत्रास्यात्, ब्राह्मणसात्सम्पद्यते, ब्राह्मणत्रासम्पद्यते ।

---

१. विभाषा साति कात्स्न्यें ।
२. अभिविधौ सम्पदा च ।
३. तदधीनवचने ।
४. देये त्रा च ।

कृ[1] धातु के योग में द्वितीय, तृतीय, शम्ब और बीज इन सभी प्रातिपदिक शब्दों से उत्तर 'कर्षण' अर्थ में डाच् होता है। ड्, च् इत् होने से आ शेष रहता है। यथा—द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति=द्वितीयं, तृतीयं कर्षणं करोति इत्यर्थः; शम्बाकरोति=अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं प्रतिलोमं कर्षतीत्यर्थः; बीजाकरोति=बीजेन सह कर्षतीत्यर्थः।

गुणशब्द[2] अन्त में होने पर संख्यावाचक शब्द के उत्तर कृ धातु के योग में कर्षण अर्थ में डाच् होता है। यथा—द्विगुणाकरोति, त्रिगुणाकरोति क्षेत्रम्=द्विगुणं त्रिगुणं कर्षतीत्यर्थः।

यापन[3] बोध होने पर समय के उत्तर डाच् होता है। यथा :—समयाकरोति समयं यापयतीत्यर्थः।

व्यथन[4] अर्थ में सपत्र और निष्पत्र इन दो प्रातिपदिक शब्दों से उत्तर डाच् होता है। यथा :—सपत्राकरोति मृगं व्याधः=सपत्रं शरम् अस्य शरीरे प्रवेशयन् व्यथयतीत्यर्थः। निष्पत्राकरोति=शरीरात् शरम् अपरपार्श्वे निष्क्रामयन् व्यथयतीत्यर्थः।

निष्कोषण[5] अर्थ में निष्कुल प्रातिपादिक शब्द के उत्तर डाच् होता है। यथा :—निष्कुलाकरोति दाडिमम्=दाडिमस्य अन्तरवयवान् बहिर्निःसारयतीत्यर्थः।

आनुलोम्य[6] (आनुकूल्य) अर्थ में सुख और प्रिय इन दो प्रातिपदिक शब्दों के उत्तर डाच् होता है। यथा—सुखाकरोति, प्रियाकरोति मित्रम्=अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः।

प्रातिलोम्य[7] (प्रातिकूल्य) बोध होने पर दुःख प्रातिपदिक शब्द के उत्तर डाच् होता है। यथा :—दुःखाकरोति भृत्यः स्वामिनम् =पीडयतीत्यर्थः।

---

१. कृञो-द्वितीय-तृतीय-शम्ब-बीजात्-कृषो डाच्।

२. संख्यायाश्च गुणान्तायाः।

३. समयाच्च यापनायाम्।

४. सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने।

५. निष्कुलान्निष्कोषणे।

६. सुखप्रियादानुलोम्ये।

७. दुःखात् प्रातिलोम्ये।

पाक[1] अर्थ में शूल प्रातिपदिक शब्द के उत्तर डाच् होता है। यथा :—शूलाकरोति मासम् = शूलेन पचतीत्यर्थः।

शपथ[2] भिन्न अर्थ में प्रातिपदिक सत्यशब्द से उत्तर डाच् होता है। यथा :—सत्याकरोति भाण्डं वणिक् = क्रेतव्यमिति प्रतिजानीते इत्यर्थः।

मुण्डन अर्थ[3] में मद्र शब्द के उत्तर डाच् होता है। यथा—मद्राकरोति = साकल्यं मुण्डनं करोतीत्यर्थः।

तसिल्[4], त्रल्, चरट्, जातीय, देशीय और पाश प्रत्यय होने पर भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्दों को पुंवद्भाव हो जाता है। यथा—उत्तरस्यां दिशः = उत्तरतः, उत्तरस्यां दिशि = उत्तरतः, सर्वस्यां दिशि = सर्वत्र, अर्पिता भूतपूर्वा=अर्पितचरी, जात्या ब्राह्मणी=ब्राह्मणजातीया, इषदूना पण्डिता = पण्डितदेशीया, कुत्सिता पाचिका = पाचकपाशा।

कल्प,[5] रूप, तर और तम प्रत्यय के परे भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्द की पुंवद्भाव हो जाता है। यथा—ईषदूना पण्डिता = पण्डितकल्पा; प्रशस्ता गायिका = गायकरूपा; इयमनयोरतिशयेन निपुणा = निपुणतरा; इयमासामतिशयेन चपला = चपलतमा।

कल्प[6] आदि प्रत्यय के परे भाषित० = ईबन्त और ऊबन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों को विकल्प से पुंवद्भाव होता है। यथा :—ईषदूना विदुषी विदुषीकल्पा, विद्वत्कल्पा; ईषदूना मेधाविनी=मेधाविनीकल्पा, मेधाविकल्पा। इसी प्रकार—वामोरूरूपा, वामोरुरूपा; वामोरूतरा, वामोरुतरा; वामोरूतमा, वामोरुतमा।

शस्[7] प्रत्यय के परे बह्वर्थ और अल्पार्थ भाषितपुंस्क शब्दों की स्त्रीलिङ्ग में पुंवद्भाव हो जाता है। यथा—बह्वीभ्यो देहि = बहुशो देहि; अल्पाभ्यो देहि = अल्पशो देहि।

---

१. शूलात् पाके।
२. सत्यादशपथे।
३. मद्रात् परिवापणे।
४. पुंवत्तसिलादिषु भाषितपुंस्कस्य।
५. कल्पादिषु च।
६. ईबूपोर्विभाषा।
७. शसि बह्वल्पार्थस्य।

त्व और तल्[1], प्रत्यय के परे गुणवाचक भाषितपुंस्क शब्दों को स्त्रीलिङ्ग में पुंवद्भाव हो जाता है। यथाः—निपुणाया भावः=निपुणत्वम्, निपुणता; चपलाया भावः=चपलत्वम्, चपलता।

अभ्यासः

१. तद्धित प्रत्यय निष्पन्न शब्द कौन पद होता है ?

२. निम्नलिखित शब्दों से एक-एक तद्धित प्रत्यय युक्त पद बनाओ :—

कस्मिन् काले, काष्ठेन निर्मितम्, पञ्चभिः प्रकारैः, बहूनामतिशयेन क्षुद्रः, अधुनोत्पन्नम्, विद्यास्ति यस्याः सा, लक्ष्मीर्यस्यास्ति, व्याकरणं वेत्ति यः सः, व्यासस्य पुत्रः, पिता इव, सर्वस्मात् स्थानात्, तैलं पण्यं यस्य सः, बलमस्यास्ति द्वारे नियुक्तः, समुद्रे भवः, चक्षुषा गृह्यते यत्।

सोने का बना, एक निकृष्ट छात्र, किसने पहले बनाया, जिसका अभ्यास मिठाई खाने का है, जो दही से रोटी खाता है, जो वायु सहन नहीं कर सकता।

३. मातृवत् तथा पितृवत् शब्द का प्रयोग कर दो-दो वाक्य बनाओ।

४. नीचे लिखे शब्दों से संज्ञा शब्द बनाओ—

शीत, शुचि, प्रवीण, मधुर, महत्, दरिद्र, कठिन, उदासीन, वृद्ध, प्रिय, विषय, दीर्घ, सरल, कुटिल, मलिन, जड, कृश, लघु, कातर, स्थिर, निपुण, प्रबल।

५. नीचे लिखे शब्दों से विशेषण शब्द बनाओ—

पथिन्, प्रज्ञा, अतिथि, यशस्, वाच्, ग्राम, शिव, वन, निशा, वर्ष, भूमि, धर्म, पृथिवी, लोक, शक्ति, मास, मांस, पत्र, नगर, दण्ड, बल, बध, पशु, चक्षु, वायु, उत्कण्ठा, धन, हृदय, सुहृद्, बुभुक्षा, वचन।

६. तद्धित प्रत्यय निकाल कर शुद्ध संस्कृत पद लिखो—

क्षुधितः, आदिमः, आधिपत्यम्, वैश्वानरः, पार्वत्यः मृतकल्पः, आभिचारिकः, वैयासिकः, पार्वती, सैनिकः, पञ्चत्वम्, जीमूतकल्पाः, सौख्यम्, स्त्रैणः, भागिनेयः, हिरण्मयः, तमिस्रा, पश्चिमः, बहुतिथः।

---

१. त्वतलोर्गुणवचनस्य।

समास-प्रकरण

दो या दो से अधिक पदों के सम्मिलन को समास कहते हैं। जैसे जगतः पतिः इस स्थल में 'जगत्' शब्द की षष्ठी के एकवचन में 'जगतः' और 'पति' शब्द की प्रथमा के एकवचन में 'पतिः' होने से वे दो पद हैं। कभी कभी 'जगतपतिः' ऐसा प्रयोग भी किया जाता है। तब 'जगत्' शब्द में विभक्ति नहीं है, केवल 'पति' शब्द में ही विभक्ति है, इसलिए 'जगतपतिः' एक पद हुआ। इस प्रकार 'कन्दं मूलं फलम्' इन तीन पदों को लेकर 'कन्दमूलफलानि', ऐसा एक पद किया जाता है।

समास के छः प्रकार हैं—१. तत्पुरुष, २. कर्मधारय, ३. द्विगु, ४. द्वन्द्व, ५. बहुव्रीहि और ६. अव्ययीभाव।

परस्पर अन्वय (अर्थात् अर्थ-सङ्गति वा आकांक्षा) न रहने से किसी पद का समास नहीं होता; यथा—राज्ञः सुन्दरः पुत्रः=यहाँ 'राज्ञः' और 'पुत्रः', इन दोनों पदों का अथवा सुन्दरः और पुत्रः इन दोनों पदों का परस्पर अन्वय है, इसलिए उन्हीं का समास हो सकता है, 'राज्ञः' और 'सुन्दरः' इन दोनों पदों का परस्पर अन्वय न रहने कारण समास नहीं हो सकता (अर्थात् 'सुन्दरः राजपुत्रः', वा 'राज्ञः सुन्दर-पुत्रः', अथवा 'सुन्दर-राजपुत्रः', हो सकता है किन्तु 'राजसुन्दरः, पुत्रः, ऐसा नहीं होगा)।

नित्य-समास-भिन्न सभी समास विकल्प से होते हैं। समास-विच्छेद के वाक्य को 'व्यास वाक्य' अथवा 'विग्रह-वाक्य' कहते हैं। जिन पदों का समास किया जाता है, उनको 'समस्यमान-पद' कहते हैं। समास-निष्पन्न पद को 'समस्त-पद' कहते हैं। समस्यमान पदों के बीच में सर्वप्रथम पद को 'पूर्वपद' और सर्व शेष पद को 'उत्तरपद' कहते हैं।

समास के अन्तर्गत पदों की विभक्ति का लोप होता है। कृदन्त तद्धितान्त और समस्त (समास-निष्पन्न) शब्द प्रातिपदिक होते हैं इसलिए इनके उत्तर फिर नूतन विभक्ति होती है।

तत्पुरुष समास

जिस समास में उत्तर पद का अर्थ प्रधान होता है, उसे तत्पुरुष समास कहते हैं[1]। यथा—पितुः गृहम्=पितृगृहम्, कर्मसु निपुणः=कर्मनिपुणः।

प्रथमा से सप्तमी पर्यन्त प्रत्येक विभक्ति के साथ तत्पुरुष समास होता है। हर एक का विवरण नीचे क्रमशः दिखाया जाता है।

प्रथमा-तत्पुरुष

षष्ठ्यन्त एकदेशी के (अर्थात् अवयवी के साथ) प्रथमान्त एकदेश के (अर्थात् अवयव के) समास को प्रथमातत्पुरुष कहते हैं।

(क) एकवचनान्त अवयवी के साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर, इनका समास होता है, यथा—(पूर्वं कायस्य) पूर्वकायः, अपरकायः= अधरकायः, उत्तरकायः। एकवचन न होने से नहीं होता, यथा पूर्वं छात्राणाम् आमन्त्रयस्व।

(ख) कालवाचक पद के साथ समस्त एकदेशवाचक पद का समास होता है। यथा—(पूर्वम् अह्नः) पूर्वाह्णः; (अपरम् अह्नः) अपराह्णः, (मध्यम् अह्नः) मध्याह्नः, (सायः सायं वा अह्नः) सायाह्नः, (पूर्वं रात्रेः) पूर्वरात्रः, (मध्यं रात्रेः), मध्यरात्रः, (अपरं रात्रेः) अपररात्रः।

(ग) एकवचनान्त अवयवी के साथ क्लीबलिङ्ग 'अर्द्ध' शब्द का समास होता है यथा—(अर्द्धम् आसनस्य) अर्द्धासनम्; (अर्द्धं पिप्पल्याः) अर्द्धपिप्पली; (अर्द्धं कोशातक्याः) अर्द्धकोशातकी। एकवचन न होने से नहीं होता, यथा अर्द्धं पिप्पलीनाम्।

द्वितीया-तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ द्वितीयान्त पद के समास को 'द्वितीया-तत्पुरुष' कहते हैं।

---

१. तत्पुरुषसमास-निष्पन्न शब्द उत्तरपद के लिङ्ग-वचन को प्राप्त होता है।

(क) 'श्रित' प्रभृति शब्द उत्तरपद होने से ही द्वितीया तत्पुरुष होता है। यथा—(वृक्षं श्रितः) वृक्षश्रितः, (दुःखम् अतीतः) दुःखातीतः, (गृहं गतः) गृहगतः, (सुखं प्राप्तः) सुखप्राप्तः, (कूपं पतितः) कूपपतितः, (मरणम् आपन्नः) मरणापन्नः, (ग्रामं गामी) ग्रामगामी, (शुभम् इच्छुः) शुभेच्छुः, (धनम् ईप्सुः) धनेप्सुः, (अन्नं बुभुक्षुः) अन्नबुभुक्षुः, (वेदं विद्वान्) वेदविद्वान्।

निन्दा समझाने से 'क्त' प्रत्ययान्त पद के साथ 'खट्वा' शब्द का द्वितीया तत्पुरुष होता है। यथा—(खट्वाम् आरूढः) खट्वारूढः (उत्पथ प्रस्थित इत्यर्थः) "खट्वारूढोऽविनीतः स्यात्" त्रिकाण्डशेषः, यह नित्यसमास है।

'व्याप्ति' अर्थ में द्वितीयाविभक्त्यन्त कालवाचक पद का द्वितीया-तत्पुरुष होता है; यथा—(क्षणं सुखम्) क्षणसुखम्, (मुहूर्त्तं दुःखम्) मुहूर्त्तदुःखम्, (मासं गम्यः) मासगम्यः, (वर्षं भोग्यः) वर्षभोग्यः (क्षणं, मुहूर्तं, मासं, वर्षं व्याप्य इत्यर्थः)।

तृतीया तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ तृतीयान्त पद के समास को 'तृतीया-तत्पुरुष' कहते हैं। यथा—क्रोधेन पिङ्गलः=क्रोधपिङ्गलः।

(क) कृत्प्रत्यय-निष्पन्न पद के साथ कर्ता में और करण में विहित तृतीया-विभक्त्यन्त पद का तृतीया तत्पुरुष होता है। यथा—(कर्ता में) (व्याघ्रेण हतः) व्याघ्रहतः, (अहिना दष्टः) अहिदष्टः, (व्यासेन रचितः) व्यासरचितः, (पाणिनिना प्रणीतम्) पाणिनिप्रणीतम्, (नारदेन प्रोक्तम्) नारदप्रोक्तम्, (राज्ञा पालितम्) राजपालितम्, (द्विजेन भक्ष्यम्) द्विजभक्ष्यम्, (करण में) (नखैः भिन्नः) नखभिन्नः, (असिना छिन्नः) असिच्छिन्नः, (अग्निना दग्धः) अग्निदग्धः, (जलेन सिक्तः) जलसिक्तः, (अञ्जलिना पेयम्) अञ्जलिपेयम्, (शिरसा धार्य्यम्) शिरोधार्य्यम्।

ऊनार्थ पद के साथ तृतीया-तत्पुरुष होता है। यथा (एकेन ऊनः)

एकोनः (विद्यया हीनः) विद्याहीनः, (श्रमेण रहितः) श्रमरहितः, (गर्वेण शून्यः) गर्वशून्यः, (अङ्गेन विकलः) अङ्गविकलः ।

'पूर्व'-प्रभृति पद के साथ तृतीया तत्पुरुष होता है, यथा—(मासेन पूर्वः) मासपूर्व, (वर्षेण अवरः) वर्षावरः, (मात्रा सदृशः) मातृसदृशः, (पित्रा समः) पितृसमः, (वाचा कलहः) वाक्कलहः, (गुडेन मिश्रः) गुडमिश्रः, (आचारेण श्लक्ष्णः मनोहर इत्यर्थः) आचारश्लक्ष्णः, (धनेन अर्थः) धनार्थः ।

चतुर्थी तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ चतुर्थ्यन्त पद के समास को चतुर्थीतत्पुरुष कहते हैं । यथा—(विप्राय दत्तम्) विप्रदत्तम् ।

बलि, हित और सुख शब्द के साथ चतुर्थीतत्पुरुष होता है। यथा—(भूताय बलिः) भूतबलिः; (पुत्राय हितम्) पुत्रहितम्, (भ्रात्रे सुखम्) भ्रातृसुखम् ।

प्रकृति-विकृति[1] भाव समझाने से तादर्थ्य विहित चतुर्थी विभक्त्यन्त पद का चतुर्थीतत्पुरुष होता है । यथा—(कुण्डलाय हिरण्यम्) कुण्डलहिरण्यम्, (यूपाय दारु) यूपदारु । यहाँ 'हिरण्य' और 'दारु' प्रकृति, 'कुण्डल' और 'यूप'—विकृति है । प्रकृति-विचार भिन्न अन्य स्थल में चतुर्थीतत्पुरुष नहीं होता । यथा—रन्धनाय स्थाली । यहाँ समास नहीं होगा ।

पञ्चमी तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ पञ्चम्यन्त पद के समास को 'पञ्चमीतत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'भय' प्रभृति पद के साथ पञ्चमी तत्पुरुष होता है । यथा—(व्याघ्रात् भयम्) व्याघ्रभयम्, (व्याघ्रात् भीतः) व्याघ्रभीतः, व्याघ्रात् भीः) व्याघ्रभीः, (व्याघ्रात् भीतिः) व्याघ्रभीतिः, (गृहात् निर्गतः)

१. स्वतःसिद्ध वस्तु प्रकृति, रूपान्तरित विकृति है ।

गृहनिर्गतः, (अधर्मात् विरतः) अधर्मविरतः; (स्वाध्यायात् प्रमत्तः) स्वाध्यायप्रमत्तः, (सुखाद् अपेतः) सुखापेतः, (बन्धनात् मुक्तः) बन्धनमुक्तः, (रथात् पतितः) रथपतितः, (तरङ्गात् अपत्रस्तः) तरङ्गापत्रस्तः, (विदेशात् आगतः) विदेशागतः, (सितात् इतरः) सितेतरः ।

षष्ठी तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ षष्ठयन्त पद के समास को षष्ठी तत्पुरुष कहते हैं। यथा—(गङ्गायाः जलम्) गङ्गाजलम्, (तरोः छाया) तरुच्छाया, (अग्नेः शिखा) अग्निशिखा, (वायोः वेगः) वायुवेगः, (जलस्य प्रवाहः) जलप्रवाहः, (सुखस्य भोगः) सुखभोगः, (पयसः पानम्) पयःपानम्, (कन्यायाः दानम्) कन्यादानम्, (गवां दोहः) गोदोहः, (आज्ञायाः भङ्गः) आज्ञाभङ्गः, (दशायाः अन्तः) दशान्तः, (सूर्यस्य उदयः) सूर्योदयः, (वृष्टेः पातः) वृष्टिपातः, (शिरसः छेदः) शिरश्छेदः, (गवां वधः) गोवधः, (पितुः गृहम्) पितृगृहम्, (राज्ञः भवनम्) राजभवनम्, (मनोः वचनम्) मनुवचनम्, (अर्थस्य नाशः) अर्थनाशः, (कूपस्य उदकम्) कूपोदकम् ।

सप्तमी तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ सप्तम्यन्त पद के समास को सप्तमीतत्पुरुष कहते हैं। यथा—(शास्त्रे प्रवीणः) शास्त्रप्रवीणः ।

(क) 'शौण्ड' प्रभृति शब्द उत्तर पद होने से ही सप्तमी तत्पुरुष होता है। यथा—(दाने शौण्डः=विख्यात इत्यर्थः) दानशौण्डः, (कर्मणि निपुणः) कर्मनिपुणः, (रणे पण्डितः) रणपण्डितः, (क्रीडायां कुशलः) क्रीडाकुशलः, (कार्ये दक्षः) कार्यदक्षः, (विचारे पटुः) विचारपटुः, (व्याख्याने चतुरः) व्याख्यानचतुरः, (विषये चपलः) विषयचपलः, (आतपे शुष्कः) आतपशुष्कः, (स्थाल्यां पक्वः) स्थालीपक्वः, (वने अन्तः) वनान्तः, (ईश्वरे अधीनः) ईश्वराधीनः, (मन्त्रे सिद्धः) मन्त्रसिद्धः ।

नञ्-तत्पुरुष

प्रथमान्त पद के साथ 'नञ्—इस अव्यय के समास को 'नञ्—

तत्पुरुष' कहते हैं, यथा—(न ब्राह्मणः) अब्राह्मणः, (न मोघः) अमोघः (न प्रियः) अप्रियः, (न विकृतः) अविकृतः, (न सिद्धः) असिद्धः, (न सुखम्) असुखम्, (न दर्शनम्) अदर्शनम्, (न उपालम्भः) अनुपालम्भः ।

कर्मधारय समास

जिस समास में समस्यमान पद समानाधिकरण (अर्थात् विशेष्य-विशेषणभावापन्न अथवा अभेद सम्बन्ध से एकार्थ-प्रतिपदिक) होते हैं उसको कर्मधारय कहते हैं ।

(क) विशेष्य पद के साथ विशेषण पद का कर्मधारय समास होता है । कर्मधारय-समास में उत्तर-पद का अर्थ प्रधान होता है । यथा—(नवः पल्लवः, अथवा नवश्चासौ पल्लवश्च) नवपल्लवः, (नवौ पल्लवौ अथवा नवौ च तौ पल्लवौ च) नवपल्लवौ, (नवाः पल्लवाः अथवा नवाश्च ते पल्लवाश्च) नवपल्लवाः; (शोभना लता, अथवा शोभना चासौ लता च) शोभनलता, (शोभने लते, अथवा शोभने च ते लते च) शोभनलते, (शोभनाः लताः अथवा शोभनाश्च ताः लताश्च) शोभनलताः; (नीलम् उत्पलम् अथवा नीलं च तत् उत्पलं च) नीलोत्पलम्, (नीले उत्पले अथवा नीले च ते उत्पले च) नीलोत्पले, (नीलानि उत्पलानि अथवा नीलानि च तानि उत्पलानि च) नीलोत्पलानि; (शीतः पवनः) शीतपवनः, (उष्णम् उदकम्), उष्णोदकम्, (मधुरं वचनम्) मधुरवचनम्, (नवम् अन्नम्) नवान्नम् (सर्वे लोकाः) सर्वलोकाः, (विश्वे देवाः) विश्वदेवाः, (दृढो बन्धः) दृढबन्धः, (सुरभि चन्दनम्) सुरभिचन्दनम्, (नवः जलधरः) नवजलधरः, (सन् पुरुषः) सत्पुरुषः, (महान् देवः) महादेवः, (महान् वीरः) महावीरः, (परमः पुरुषः) परमपुरुषः, (केवलः वैयाकरणः) केवलवैयाकरणः, (जरन् नैयायिकः) जरन्नैयायिकः, (सप्त ऋषयः) सप्तर्षयः ।

(ख) यदि अनेक विशेषण एक ही विशेष्य के हों, तो विशेषण के साथ विशेषण का भी कर्मधारय होता है । यथा—(नीलः उज्ज्व-

लश्च=जो नील, वही उज्ज्वल) नीलोज्ज्वलः आकाशः, (पीनः उन्नतश्च) पीनोन्नतः कायः, (कुब्जः कुण्ठश्च) कुब्जकुण्ठः पुरुषः ।

उपमान-कर्मधारय

उपमान और उपमेय के साधारण गुण-वाचक पद के साथ उपमान पद के समास को 'उपमान-कर्मधारय' कहते हैं; यथा—(घन इव श्यामः) घनश्यामः, (अर्णव इव गम्भीरः) अर्णवगम्भीरः, (शैल इव उन्नतः) शैलोन्नतः, (अनल इव उज्ज्वलः) अनलोज्ज्वलः, (नवनीतम् इव कोमलम्) नवनीतकोमलम्, (कुसुममिव सुकुमारम्) कुसुमसुकुमारम् ।

उपमित-कर्मधारय

उपमान पद के साथ उपमेय-पद के समास को 'उपमित-कर्मधारय' कहते हैं । यथा—(नरः व्याघ्र इव) नरव्याघ्रः, (पुरुषः सिंह इव) पुरुषसिंहः, तपस्विशार्दूलः, मुनिपुङ्गवः, द्विजर्षभः, कविकुञ्जरः, (मुख कमलम् इव) मुखकमलम्, (चरणम् अरविन्दम् इव) चरणारविन्दम्, (राजा चन्द्र इव) राजचन्द्रः, (वदन सुधाकर इव) वदनसुधाकरः, (करः किसलयमिव) करकिसलयम्, (अधरः पल्लव इव) अधर पल्लवः, (कन्या रत्नम् इव) कन्यारत्नम् ।

उपमान और उपमेय के साधारण गुणवाचक पद का प्रयोग रहने से समास नहीं होता । यथा—नरो व्याघ्र इव शूरः, मुखं कमलमिव सुन्दरम् ।

रूपक-कर्मधारय

उपमान और उपमेय अभिन्नरूप से कल्पित होने से, उपमान-पद के साथ उपमेय पद के समास को 'रूपक-कर्मधारय' कहते हैं। यथा :—(दुःखम् एव सागरः) दुःखसागरः, (मानसमेव विहङ्गः) मानसविहङ्गः, (देह एव पिञ्जरम्) देहपिञ्जरम्, (अविद्या एव निगडः) अविद्या-निगडः, (ज्ञानमेव अग्निः) ज्ञानाग्निः ।

मध्यमपदलोपी-कर्मधारय

जिस कर्मधारय समास में मध्यमपद का लोप होता है, उसे 'मध्यमपदलोपी कर्मधारय' कहते हैं, यथा—(शाकप्रियः पार्थिवः) शाकपार्थिवः, (मेरुनामा पर्वतः) मेरुपर्वतः, (छायाप्रधानः तरुः) छायातरुः, (अर्द्धावशिष्टः दग्धः) अर्द्धदग्धः, (मुखसहिता नासिका) मुखनासिका, (ब्राह्मणबहुलो ग्रामः) ब्राह्मणग्रामः, (बिम्बाकारः अधरः) बिम्बाधरः, (वज्रतुल्यं हृदयम्) वज्रहृदयम्, (पलमिश्रम् अन्नम्) पलान्नम्, (द्व्यधिका दश) द्वादश, इत्यादि।

द्विगु-समास

समाहार-प्रभृति अर्थ में, विशेष्य पद के साथ संख्यावाचक विशेषण पद के समास को 'द्विगु समास' कहते हैं।

द्विगु समास में उत्तर पद का अर्थ प्रधान होता है, और समाहार होने से समस्त-पद क्लीबलिङ्ग एकवचनान्त होता है। यथा–(त्रयाणां भुवनानां समाहारः) त्रिभुवनम्, (चतुर्णां युगानां समाहारः) चतुर्युगम्, (पञ्चानां पात्राणां समाहारः) पञ्चपात्रम्, (चतसृणां दिशां समाहारः) चतुर्दिक्।

(क) समाहार द्विगु होने से पात्रादि भिन्न अकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग (ईप्–'ङीप्'—प्रत्ययान्त) होता है, यथा—(त्रयाणां लोकानां समाहारः) त्रिलोकी, (चतुर्णां पदानां समाहारः) चतुष्पदी, (पञ्चानां वटानां समाहारः) पञ्चवटी, (सप्तानां शतानां समाहारः) सप्तशती।

कर्मधारय और द्विगु समास में उत्तर पद का अर्थ प्रधान होने के कारण, वे भी तत्पुरुष में गण्य होते हैं।

नित्य-समास

'कुत्सित'–अर्थ समझाने से सुबन्त पद के साथ 'कु' इस अव्यय का नित्य समास होता है। यथा—(कुत्सितः जनः) कुजनः कुपुरुषः, कुब्राह्मणः, कुसंस्कारः।

सुबन्त पद के साथ प्रादि उपसर्ग का नित्य-समास होता है। यथा–(प्रकृष्टः पुरुषः) प्रपुरुषः, (शोभनो जनः) सुजनः, (दुष्टो जनः) दुर्जनः; (दुष्टा नीतिः) दुर्नीतः, दुष्कुलम्, दुश्चरितम्, (अपकृष्टः अपभ्रष्टो वा शब्दः) अपशब्दः, (विप्रकृष्ट विभिन्नो वा देशः) विदेशः, (अधिको राजा) अधिराजः, (गौणी–असाक्षात् माता) उपमाता, (अतिशयितं नवः) अभिनवः, (अतिशयितं शीतम्) अति-शीतम्, (ईषत् पिङ्गलः) आपिङ्गलः, आपाण्डुरः, आलोहितः ।

कई प्रादिसमास-निष्पन्न पद बहुव्रीहि के तुल्य अन्यपदार्थ प्रधान होते हैं।

(क) 'क्रान्त'–प्रभृति अर्थ में द्वितीयान्त पद के साथ 'अति' प्रभृति का नित्य समास होता है। यथा—(अतिक्रान्तः मायाम् = मायातीत इत्यर्थः) अतिमायः शिवः, (अतिक्रान्तः मर्य्यादाम्) अतिमर्य्यादः व्यवहारः, (अतिक्रान्तम् इन्द्रियम् इन्द्रयातीतम् इत्यर्थः) अतीन्द्रियं ज्ञानम्, (अतिक्रन्तिम् आदित्यम् = आदि-त्यात् अधिकम् इत्यर्थः), अत्यादित्यं तेजः, (अधिगतं ज्याम्) अधिज्यम् धनुः, (अभिगतः मुखम्) अभिमुखः जनः, (उत्क्रान्तः उद्गतो वा, वेलाम्) उद्वेलः सागरः ।

(ख) 'क्रान्त' प्रभृति अर्थ में पञ्चम्यन्त पद के साथ 'निर्' प्रभृति का नित्य समास होता है, यथा—(निष्क्रान्तः वनात्) निर्वनः व्याघ्रः; (निर्गतः द्वन्द्वात्) निर्द्वन्द्वः साधुः; (निर्गतः नद्याः) निर्नदिः कूर्मः ।

धातु के साथ उपपद का नित्य-समास होता है। यथा—(कुम्भं करोति इति = कुम्भ + कृ) कुम्भकारः । (प्रभां करोति इति = प्रभा + कृ + ट) प्रभाकरः, (जले चरति इति = जल + चर् + ट) जल-चरः, (शास्त्रं जानाति इति = शास्त्र + ज्ञा + क) शास्त्रज्ञः, (पङ्कात् जायते इति = पङ्क + जन् + ड) पङ्कजम्, (अध्वानं गच्छति इति = अध्व + गम् + ड) अध्वगः, (शिलायां शेते इति = शिला + शी + अच्)

शिलाशयः, (दुःखं भजते इति = दुःख + भज् + ण्वि) दुःखभाक् । (वने वसति इति = वन + वस् + णिन्) वनवासी, (आत्मानं बिभर्ति इति = आत्मन् + भृ + खि) आत्मम्भरिः, (वाचं यच्छति इति—वाच् + यम् + खच्) वाचंयमः ।

(क) धातु के साथ उपसर्ग का नित्य-समास होता है, यथा—(सम् + कृ) संस्करोति, संस्कारः, संस्कृत्य; (वि + जि) विजयते, विजयः, विजित्य; (अभि + सिच्) अभिषिञ्चति, अभिषेकः, अभिषिच्य; (आ + रभ्) आरभते, आरम्भः, आरभ्य ।

(ख) धातु के साथ 'ऊरी' प्रभृति शब्द का, और 'च्वि' यथा 'डाच्' प्रत्ययान्त का नित्य समास होता है । यथा—(ऊरी) ऊरीकरोति, ऊरीकरणम्, ऊरीकृत्य; (आविस्) आविष्करोति, आविष्क्रिया, आविष्कृत्य; (प्रादुस्) प्रादुर्भवति, प्रादुर्भावः, प्रादुर्भूय । (च्वि) स्वीकरोति, स्वीकारः, स्वीकृत्य, भस्मीभवति, भस्मीभावः, भस्मीभूय । (डाच्) समयाकरोति, समयाकरणम्, समयाकृत्य, दुःखाकरोति, दुःखाक्रिया, दुःखाकृत्य ।

(ग) धातु के साथ अनुकरणात्मक शब्द का नित्य समास होता है । यथा—झनत्करोति, झनत्कारः, झनत्कृत्य । खात् (ट्) करोति, खात्करणम्, खात्कृत्य । 'इति' शब्द परे रहने से समास नहीं होता । यथा—खात् इति कृत्वा निष्ठीवति ।

(घ) धातु के साथ 'आदर' अर्थ में 'सत्' और 'अनादर' अर्थ में 'असत्' शब्द का नित्य समास होता है । यथा—सत्करोति, सत्कारः, सत्कृत्य; असत्करोति असत्क्रिया, असत्कृत्य ।

(ङ) 'भूषण' अर्थ समझाने से धातु के साथ 'अलम्' शब्द का नित्य समास होता है, यथा—अलङ्करोति, अलङ्करणम्, अलङ्कृत्य ।

(च) धातु के साथ 'अन्तर' शब्द का नित्य समास होता है । यथा—अन्तर्भवति, अन्तर्भावः, अन्तर्भूय ।

(छ) धातु के साथ 'पुरस्' इस अव्यय का नित्य समास होता है । यथा—पुरस्करोति, पुरस्कारः, पुरस्कृत्य ।

(ज) धातु के साथ 'अस्तम्' इस अव्यय का नित्य समास होता है। यथा --अस्तङ्गच्छति, अस्तङ्गतः, अस्तङ्गत्य।

(झ) 'आकाङ्क्षानिवृत्ति' समझाने से, धातु के साथ 'कणे' और 'मनस्' शब्द का नित्य समास होता है, यथा—कणेहत्य पयः पिबति; मनोहत्य पयः पिबति – (तावत् पिबति, यावत् अस्य अभिलाषो न निवर्त्तते इत्यर्थः)—आशा मिटाकर दूध पीता है।

(ञ) 'अन्तर्द्धान' (व्यवधान) समझाने से धातु के साथ 'तिरस्' इस अव्यय का नित्य समास होता है। यथा—तिरोभवति, तिरोभावः; तिरोभूय। किन्तु 'कृ' धातु के साथ विकल्प से समास होता है, यथा–तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा (तिरस्कृत्वा)।

(ट) 'कृ' धातु के साथ 'साक्षात्' प्रभृति शब्द का विकल्प से समास होता है, यथा—साक्षात्कृत्य, साक्षात् कृत्वा, नमस्कृत्य, नमः-कृत्वा, (नमस्कृत्वा), वशेकृत्य, वशेकृत्वा, मिथ्याकृत्य, मिथ्याकृत्वा।

(ठ) 'कृ' धातु के साथ 'उरसि' और 'मनसि' इन दोनों सप्त-म्यन्त पदों का विकल्प से समास होता है। यथा—उरसिकृत्य उरसि-कृत्वा स्वीकृत्य– इत्यर्थः), मनसिकृत्य, मनसिकृत्वा; (निश्चिन्त्य इत्यर्थः)।

(ड) 'विवाह' अर्थ समझाने से 'कृ' धातु के साथ 'हस्ते' और 'पाणौ' इन दोनों सप्तम्यन्त पदों का नित्य समास होता है। यथा—हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य (दारकर्म कृत्वा इत्यर्थः)।

अर्थ शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त पद का नित्य समास होता है। और यह अन्यपदार्थ प्रधान होता है[1]। विग्रह वाक्य में 'अर्थ' शब्द का उल्लेख न करके 'इदम्', शब्द का उल्लेख किया जाता है। यथा—(भोजनाय अयम्) भोजनार्थः सूपः, (गुरवे इयम्) गुर्वर्था दक्षिणा, (पानाय इदम्) पानार्थं जलम्।

(मयूरश्चासौ व्यंसकः धूर्त्तः—च) मयूरव्यंसकः; (अन्यः अर्थः) अर्थान्तरम्, (अन्यः देशः) देशान्तरम्, (अवश्यं कर्तव्यम्) अवश्य-

१. सुतरां अन्य पदार्थ के लिंग वचन को प्राप्त होता है।

कर्तव्यम्; (उदक् च अवाक् च) उच्चावचम्; (नैकभेदम् —अनेक-प्रकारम् इत्यर्थः); (तत् एव) तन्मात्रम्; (नास्ति कुतो भयं यस्य सः) अकुतोभयः; (नास्ति किञ्चन यस्य सः) अकिञ्चनः—इत्यादि स्थलों में भी नित्य समास होता है।

कृष्णसर्पः, लोहितशालिः— इत्यादि स्थलों में भी नित्य-समास होता है।

उक्त नियमों के अतिरिक्त स्थल में भी कभी-कभी नित्य समास होता है। यथा—(पूर्वं भूतः) भूतपूर्वः; (पित्रा तुल्यः) पितृभूतः; (ब्रह्मैव) ब्रह्मभूतः, (नितान्तं दीर्घः) नितान्तदीर्घः, (अयं लोकः) इहलोकः, (यथा तथा) यथातथा, (यथाविधि हुताः) यथाविधि-हुताः, (न एकधा) नैकधा।

द्वन्द्व-समास

जिस समास में प्रत्येक पद का अर्थ ही प्रधान होता है उसे द्वन्द्व-समास कहते है।

इतरेतर-द्वन्द्व

किसी एक पद के साथ प्रत्येक पद का ही पृथग् भाव से समान अन्वय रहने से, उनके समास को 'इतरेतर-द्वन्द्व' कहते हैं। इतरेतर द्वन्द्व में समस्त पद उत्तर पद का लिङ्ग और प्रत्येक पद का वचन प्राप्त होता है। यथा—(रामश्च लक्ष्मणश्च) रामलक्ष्मणौ गच्छतः, यहाँ 'गच्छत्' इस पद के साथ 'रामः' और 'लक्ष्मणः' इन दोनों पदों के प्रत्येक का पृथक् रूप से समान अन्वय है। (भीमश्च अर्जुनश्च) भीमार्जुनौ युध्येते, (हरिश्च हरश्च) हरिहरौ पूजयति, (वृक्षश्च शाखा च) वृक्षशाखे छिनत्ति, (वराहश्च महिषश्च शशकश्च) वराहमहिषशशकाः धावन्ति, (कन्दश्च मूलञ्च फलञ्च) कन्दमूलफलानि भुङ्क्ते, (तिक्तञ्च अम्लञ्च मधुरञ्च) तिक्ताम्लमधुराणि फलानि, (शब्दश्च स्पर्शश्च रूपञ्च रसश्च गन्धश्च) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः विषयाः भवन्ति।

समाहार-द्वन्द्व

किसी एक पद के साथ प्रत्येक पद का अपृथग्भाव से समान अन्वय रहने से उनके समास को 'समाहार-द्वन्द्व' कहते हैं। समाहार द्वन्द्व में समस्त पद क्लीबलिङ्ग एकवचनान्त होता है, यथा—(फलानि च मूलानि च तेषां समाहारः) फलमूलम् भुक्तम्; (दिशश्च देशश्च, तेषां समाहारः) दिग्देशम्।

प्राणी के अङ्ग, वाद्य के अङ्ग और सेना के अङ्ग—इनका नित्य समाहार-द्वन्द्व होता है, यथा—(प्राणी के अङ्ग) (पाणिश्च पादश्च) पाणिपादम्; (करश्च चरणश्च) करचरणम्, (दन्तश्चः ओष्ठश्च) दन्तौष्ठम्; (कर्णश्च नासिका च) कर्णनासिकम्; (पृष्ठञ्च उदरञ्च) पृष्ठोदरम्। वाद्य के अङ्ग (पणवश्च मृदङ्गश्च) पणवमृदङ्गम्; (शङ्खश्च दुन्दुभिश्च) शंखदुन्दुभिः। (भेरी च पटहश्च) भेरीपटहम्; (ऋषभश्च गान्धारश्च) ऋषभगान्धारम्; (धैवतश्च पञ्चमश्च) धैवतपञ्चमम्; (षड्जश्च मध्यमश्च) षड्जमध्यमम्। (सेना के अङ्ग) (रथिकाश्च आश्वारोहाश्व) रथिकाश्वारोहम्; (परशवश्चकरबालाश्व) परशुकरवालम्; (धनूँषि च शराश्च) धनुःशरम्; (शराश्च तूणीराश्च) शरतूणीरम्; (हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च पादाताश्च) हस्त्यश्वरथ-पादातम्।

लिङ्ग का भेद रहने से नदीवाचक और देशवाचक पदों का समा-हार-द्वन्द्व होता है। यथा—(नदी) (गंगा च शोणश्च) गङ्गाशोणम्; (ब्रह्मपुत्रश्च चन्द्रभागा च) ब्रह्मपुत्रचन्द्रभागम्। (देश) (काशी च नव-द्वीपश्च) काशीनवद्वीपम्; (मथुरा च पाटलिपुत्रश्च) मथुरापाटलि-पुत्रम्। ग्रामवाचक पद का समाहार नहीं होता।

जो जन्तु परस्पर नित्य विरोधी हों, तद्वाचक पदों का समाहार-द्वन्द्व होता है। यथा—(अहयश्च नकुलाश्च) अहिनकुलम्, (काकाश्च उलूकाश्च) काकोलूकम्, (मार्जाराश्च मूषिकाश्च) मार्जारमूषिकम्।

बहुवचनान्त क्षुद्र जन्तुवाचक और फलवाचक पदों का समाहार-द्वन्द्व होता है। यथा—(क्षुद्र जन्तु)(दंशाश्च मशकाश्च) दंशमशकम्;

(यूकाश्च मक्षिकाश्च) यूकामक्षिकम् । (फल) (बदराणि च आमलकानि च) बदरामलकम्; (खर्जूराणि च नारिकेलानि च) खर्जूरनारिकेलम् ।

शूद्रवाचक पदों का समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(गोपाश्च नापिताश्च) गोपनापितम्; (कर्माराश्च कुम्भकाराश्च) कर्मारकुम्भकारम् (ताम्बूलिकाश्च तन्तुवायाश्च) ताम्बूलिकतन्तुवायम् । अस्पृश्य शूद्रों का नहीं होता । यथा—(सौनिकाश्च चण्डालाश्च) सौनिकचण्डालाः ।

'गवाश्व' प्रभृतियों का समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(गावश्च अश्वाश्च) गवाश्वम्, (अजाश्च अविकाश्च) अजाविकम्; (पुत्राश्च पौत्राश्च) पुत्रपौत्रम् । ऐसे ही स्त्रीकुमारम्, श्वचण्डालम्, कुब्जवामनम्, उष्ट्रखरम्, दासीदासम्, मूत्रपुरीषम्, मांसशोणितम्, तृणोपलम्, दर्भशरम् इत्यादि ।

बहुवचनान्त वृक्षवाचक, तृणवाचक, शस्यवाचक, पशुवाचक और पक्षिवाचक पदों का विकल्प से समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(वृक्ष) (अश्वत्थाश्च न्यग्रोधाश्च) अश्वत्थन्यग्रोधम्, अश्वत्थन्यग्रोधाः; (चूताश्च अशोकाश्च) चूताशोकम्, चूताशोकाः । (तृण) (कुशाश्च काशाश्च) कुशकाशम्, कुशकाशाः । (शस्य) ब्रीहयश्च यवाश्च) ब्रीहियवम्; (मुद्गाश्च माषाश्च) मुद्गमाषम्, मुद्गमाषाः । (पशु) (गावश्च महिषाश्च) गोमहिषम्, गोमहिषाः, (वृकाश्च कुरङ्गाश्च) वृककुरङ्गम्, वृककुरङ्गाः, (गोमायवश्च गर्दभाश्च) गोमायुगर्दभम्, गोमायुगर्दभाः । (पक्षी) (हंसाश्च सारसाश्च) हंससारसम्, हंससारसाः; (कोकिलाश्च मयूराश्च) कोकिलमयूरम्, कोकिलमयूराः ।

परस्पर विरुद्ध पदार्थों का विकल्प से समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा–(शीतश्च उष्णश्च) शीतोष्णम्, शीतोष्णे; (सुखश्च दुःखश्च) सुखदुःखम्, सुखदुःखे; (धर्मश्च अधर्मश्च) धर्माधर्मम्, धर्माधर्मे; (आलोकश्च अन्धकारश्च) आलोकान्धकरम्, आलोकान्कारौ ।

एकशेष-द्वन्द्व

जिस समास में केवल एक पद शेष अर्थात् अवशिष्ट रहता है, उसे 'एकशेष-द्वन्द्व' कहते हैं ।

(क) समानाकार पदों का एक शेष होता है। यथा—(देवश्च देवश्च) देवौ; (देवश्च देवश्च देवश्च) देवाः, (फलञ्च फलञ्च) फले, (फलञ्च फलञ्च फलञ्च) फलानि।

(ख) एक ही शब्द से उत्पन्न पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदों के समास में पुंल्लिङ्ग-पद शेष रहता है। यथा—(ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च) ब्राह्मणौ; (कुक्कुटश्च कुक्कुटी च) कुक्कुटौ।

(ग) क्लीबलिङ्ग पद के साथ एक ही शब्द से उत्पन्न अन्य लिङ्ग पद के समास में क्लीबलिङ्ग पद शेष रहता है, और वह विकल्प से एकवचनान्त होता है, यथा—(मधुरश्च मधुरा च मधुरञ्च) मधुराणि, मधुरं वा।

(घ) मातृ और पितृ, पुत्र और दुहितृ, भ्रातृ और स्वसृ, श्वश्रू और श्वशुर—इन पदों के समास में पुंल्लिङ्ग पद शेष रहता है। यथा–(माता च पिता च) पितरौ; (पुत्रश्च दुहिता च) पुत्रौ; (भ्राता च स्वसा च) भ्रातरौ; (श्वश्रूश्च श्वसुरश्च) श्वशुरौ। पक्षे—मातापितरौ, और श्वश्रूश्वशुरौ, अर्थात् इन दोनों स्थलों में विकल्प से ।

बहुव्रीहि-समास

जिस समास में अन्य पद का अर्थ प्रधान होता है अर्थात् अनेक (एकाधिक) समस्यमान-पद निज अर्थ का वाचक न होकर अन्य पदार्थ का वाचक होता है। उसे 'बहुव्रीहि-समास' कहते हैं[1]। यथा—(आरूढः वानरः यं सः) आरूढवानरः वृक्षः; (दत्तं धनं यस्मै सः) दत्तधनः विप्रः; (दत्तः उपदेशः यस्मै सः) दत्तोपदेशः शिष्यः; (उपनीतं भोजनं यस्मै सः) उपनीतभोजनः अतिथिः; (प्राप्तः नरः यं सः) प्राप्तनरः ग्रामः; (लब्धं धनं येन सः) लब्धधनः दरिद्रः; (कृतं कर्म येन सः) कृतकर्मा पुरुषः; (दृष्टः कृष्णः येन सः) दृष्टकृष्णः

१. बहुव्रीहि समास-निष्पन्न शब्द विशेषण होता है अर्थात् उसके आगे के संज्ञा शब्द का लिङ्ग-वचन प्राप्त होता है। जैसे—दीर्घनेत्रः पुरुषः, दीर्घनेत्रा बालिका, दीर्घनेत्रौ बालकौ।

भक्तः; (निर्जितः कामः येन सः) निर्जितकामः शिवः; अधीतं शास्त्रं याभ्यां तौ) अधीतशास्त्रौ शिष्यौ; (निरस्ताः शत्रवः येन सः) निरस्तशत्रुः राजा; (निर्गतं जलं यस्मात् तत्) निर्गतजलं सरः; (उद्धृतम् उदकं यस्मात् सः) उद्धृतोदकः कूपः; (श्रुतः वृत्तान्तः यस्मात् सः) श्रुतवृत्तान्तः दूतः; (सुप्ताः मीनाः यस्मिन् सः) सुप्त-मीनः ह्रदः; (बहवः नराः यस्मिन् सः) बहुनरः ग्रामः; (बहवः मृगाः यस्मिन् तत्) बहुमृगं वनम्; (प्रफुल्लानि कमलानि यस्मिन् तत्) प्रफुल्लकमलम् सरः; (लब्धं धनं यस्याः सा) लब्धधना राज्ञी; (दीर्घौ बाहू यस्य सः) दीर्घबाहुः पुरुषः; (सन् आशयः यस्य सः) सदाशयः साधुः; (पीतम् अम्बरं यस्य सः) पीताम्बरः हरिः; (चत्वारः भुजाः यस्य सः) चतुर्भुजः कृष्णः; (निर्मलं जलं यस्याः सा) निर्मलजला नदी। बहुपद—(नीलम् उज्ज्वलञ्च वपुर्यस्य सः) नीलोज्ज्वलवपुः कृष्णः।

पूर्वपद अव्यय होने से भी, बहुव्रीहि समास होता है। यथा–(उच्चैः शिरः यस्य सः) उच्चैःशिराः; (अधः मुखं यस्य सः) अधोमुखः; (उपरि दृष्टिः यस्य सः) उपरिदृष्टिः।

मध्यमपदलोपी बहुव्रीहि

जिस बहुव्रीहि-समास में मध्यमपद का लोप होता है, उसको 'मध्यम पदलोपी बहुव्रीहि' समास कहते हैं। यथा—अविद्यमानं कारणं यस्य सः) अकारणः; (अविद्यमानः पुत्रो यस्य सः) अपुत्रः; (अविद्यमानः क्रोधो यस्य सः) अक्रोधः; (वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य सः) वृष-स्कन्धः; (प्रकृष्टं बलं यस्य सः) प्रबलः; (उत्कण्ठितम् उद्भ्रान्तं वा, मनः यस्य सः) उन्मनाः; (विगतः अर्थः यस्मात् सः) व्यर्थः; (उद्गतः मदः यस्य सः) उन्मदः, (निर्गतं मलं यस्मात् सः) निर्मलः; (अपगतः शोकः यस्य सः) अपशोकः; (प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् सः) प्रपर्णः; (तामरस-सदृशम् आननं यस्य सः) तामरसाननः; (व्याघ्रस्य मुखम् इव मुखं यस्य सः) व्याघ्रमुखः; (चन्द्रस्य प्रभा इव प्रभा यस्य तत्) चन्द्रप्रभम् (आतपत्रम्)।

तुल्ययोगे बहुव्रीहि

तृतीयान्त पद के साथ 'सह' शब्द का बहुव्रीहि होता है। यथा—(पुत्रेण सह वर्त्तमानः) सपुत्रः; (अनुजेन सह वर्तमानः) सानुजः, (बान्धवेन सह वर्त्तमानः) सबान्धवः; (भृत्येन सह वर्तमानः) सभृत्यः; (विनयेन सह वर्त्तमानं यथा स्यात् तथा) सविनयम् उवाच।

व्यतिहारे बहुव्रीहि

व्यतिहार अर्थात् परस्पर एकजातीय कार्य करना समझाने से, बहुव्रीहि होता है, यथा—(केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्) केशाकेशि—'केशाकेश्यभवद् युद्धं रक्षसां वानरैः सह' (महाभा०) (दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्) दण्डादण्डि। ये शब्द अव्यय हैं।

अव्ययीभाव-समास

सुबन्त पद के साथ सामीप्यादि-अर्थबोधक अव्यय के समास को अव्ययीभाव कहते हैं। अव्ययीभाव समास में पूर्व पद का अर्थ प्रधान होता है। यथा—(समीप) (गृहस्य समीपम्) उपगृहम्, (कूलस्य समीपम्) उपकूलम्; (गङ्गायाः समीपम्) उपगङ्गम्। (अभाव) (विघ्नस्य अभावः) निर्विघ्नम्, मक्षिकाणामभावः निर्मक्षिकम्, (भिक्षायाः अभावः) दुर्भिक्षम्। (अत्यय) (हिमस्य अत्ययः—नाशः) अतिहिमम्, (शीतस्य अत्ययः) अतिशीतम्, (बाधायाः अत्ययः) अतिबाधम्। (असम्प्रति) (निद्रा सम्प्रति न युज्यते) अतिनिद्रम्; (शोकः सम्प्रति न युज्यते) अतिशोकम्। (पश्चात्) (रथस्य पश्चात्) अनुरथम्; (गृहस्य पश्चात्) अनुगृहम्, (पदस्य पश्चात्) अनुपदम्। (योग्य) (रूपस्य योग्यम्) अनुरूपम्, (कुलस्य योग्यम्) अनुकुलम्। (वीप्सा) (दिनं दिनम्) अनदिनम् अथवा प्रतिदिनम्, (गृहं गृहं प्रति) प्रतिगृहम्; (क्षणे क्षणे) अनुक्षणम्। (अनतिक्रम्य) (शक्तिम् अनतिक्रम्य) यथाशक्ति, (विधिम् अनतिक्रम्य) यथाविधि, (ज्ञानम् अनतिक्रम्य) यथाज्ञानम्, (ये ये वृद्धाः) यथावृद्धम्, (ये ये तथा भूताः) यथातथम्, (आनुपूर्व्य) (ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण, अथवा ज्येष्ठं ज्येष्ठम् अनुक्रम्य) अनुज्येष्ठम् (वर्णानाम् आनुपूर्व्येण)

अनुवर्णम् । (समृद्धि) (भिक्षायाः समृद्धिः) सुभिक्षम् । (सादृश्य) (चन्द्रस्य सदृशम्) सचन्द्रम्; (हरेः सदृशम्) सहरिः । (यौगपद्य) (चक्रेण युगपत्) सचक्रम् । (साकल्य) (तृणमपि अपरित्यज्य, अथवा तृणेन सह सकलम्) सतृणम् । (विभक्त्यर्थ) (कूले) उपकूलम् वा अधिकूलम्, (हरौ) अधिहरि, (गृहे) अधिगृहम्, (आत्मनि, अथवा आत्मानम् अधिकृत्य) अध्यात्मम् । (व्यतीहार) (कर्णे कर्णे) कर्णाकर्णि।

अलुक्-समास

किसी किसी स्थल में पूर्वपदस्थ विभक्ति का लोप नहीं होता, उसको 'अलुक-समास' कहते हैं । यथा—तमसावृतः, जनुषान्धः । परस्मैपदम्, परस्मैभाषा, आत्मनेपदम्, आत्मनेभाषा । वाचोयुक्तिः, पश्यतोहरः, वाचस्पतिः, (वचसां पतिः अथवा वाक्पतिः), दिवस्पतिः, वास्तोष्पतिः, भ्रातुष्पुत्रः, मातुःष्वसा (वा मातृष्वसा), पितुःष्वसा (वा पितृ-ष्वसा), देवानां-प्रियः (मूर्खः इत्यर्थः) ('तेऽपि अतात्पर्य्यज्ञा देवानां-प्रियाः' काव्यप्रकाशः), दास्याःपुत्रः (निन्दार्थे, गालिप्रदाने "महत्येव प्रत्यूये दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधतोऽस्मि' शकु० २), युधिष्ठिरः, अन्तेवासी, बिलेशयः, पङ्केरुहम्, कण्ठेकालः, उरसिलोमा, सव्येष्ठा, स्तम्बेरमः (हस्ती), कर्णेजपः (सूचकः कर्णे लगित्वा परापवादं वदति यो जनः इत्यर्थः), पात्रेसमितः (भोजनकाले पात्रे एव सङ्गतः, न तु कार्यकाले इत्यर्थः), गेहेशूरः (गेहे एव शूरः, न तु अन्यत्र इत्यर्थः), गेहे-नर्दी (गेहे एव नर्दति, न युद्धे इत्यर्थः), मातरि-पुरुषः ('पुरुष' शब्द इह शूरवचनः, तेन मातरि एव पुरुषः—मातरं वर्जयित्वा अन्यस्मात् सर्वस्मात् बिभेतीति, भीरुः इत्यर्थः) हृदि-स्पृक्, हृदि-स्थः, दिविजः, शरदिजः, मनसिजः (वा मनोजः), सरसिजम् (वा सरोजम्), वनेचरः (वा वनचरः) खेचरः (वा खचरः) इत्यादि ।

पूर्वनिपात वा प्राग्भाव

तत्पुरुष-समास में—प्रथमादि विभक्त्यन्त पदों का प्रागभाव होता

है। यथा—(उत्तरं कायस्य) उत्तरकायः, (तत्त्वं बुभुत्सुः) तत्त्वबुभुत्सुः; (पशुना समानः) पशुसमानः, (देवाय बलिः) देवबलिः; (चोरात् भयम्) चोरभयम् इत्यादि।

(क) 'राजदन्तादि' पदों में 'दन्त' प्रभृति पदों का परनिपात होता है। यथा—(दन्तानां राजा) राजदन्तः, (ऊर्ध्वपङ्क्तिस्थं मध्यवर्ति-दन्तद्वयम् इत्यर्थः), (हंसानां राजा) राजहंसः, "राजविद्या राजगुह्यम्" (गीता० ९); (वनस्य अग्रे) अग्रेवणम् इत्यादि।

कर्मधारय समास में—विशेषण और उपमान, उपमित-प्रभृति जिनके समास का विधान किया गया है, उनका प्राग्भाव होता है। यथा—विशेषण—(शुभः सन्देशः) शुभसन्देशः। उपमान—(चन्द्रिका इव धवलम्) चन्द्रिकाधवलम्। उपमित—(नयनं सरोजम् इव) नयन-सरोजम्; (पदं पल्लवम् इव) पदपल्लवम्।

द्विगुसमास में—संख्यावाचक शब्द का प्राग्भाव होता है। यथा—(त्रयाणां गुणानां समाहारः) त्रिगुणम्; (अष्टानां सहस्राणां समाहारः) अष्टसहस्री।

द्वन्द्वसमास में—दो पदों में द्वन्द्व होने से, अल्पस्वर-विशिष्ट पद का प्राग्भाव होता है। यथा—तालतमालौ, वटाश्वत्थौ, गजतुरङ्गौ, गोमहिषौ, हंससारसौ, काककोकिलौ, शिवकेशवौ, भ्रातृभगिन्यौ, अम्ल-मधुरौ, तिक्तकषायौ।

(क) स्वरसाम्यस्थल में (अर्थात् दोनों पद ही समान स्वर विशिष्ट होने से) स्वरादि (अर्थात् स्वर वर्ण आदि में जिसके ऐसे) अकारान्त पद का प्राग्भाव होता है। यथा—अश्वगजौ, अम्लतिक्तौ, अनल-पवनौ, अच्युतमहेशौ, अचलसमुद्रौ, इन्द्रवह्नी, ईशकृष्णौ, उष्ट्रखरौ, उदर्ध्वनिम्ने।

(ख) स्वरसाम्य स्थल में, इकारान्त और उकारान्त पद का प्राग्-भाव होता है। यथा—हरिहरौ, रविबुधौ, पटुशुक्लौ, मृदुदृढौ।

(ग) लघुवर्ण विशिष्ट पद का प्राग्भाव होता है, यथा—मृगकाकौ, नलनीलौ, कुशकाशम्, वलयकेयूरौ।

(घ) अधिकतर पूजनीय पद का प्राग्भाव होता है। यथा—मातापितरौ ("पितुर्माता सहस्रेण गौरवेणातिरिच्यते") तापसयाचकौ।

(ङ) ज्येष्ठभ्रातृवाचक पद का प्राग्भाव होता है। यथा—युधिष्ठिरार्जुनौ, धृतराष्ट्रपाण्डू, बलदेवकृष्णौ।

(च) ऋतुवाचक और नक्षत्रवाचक पदों के आनुपूर्व्य अर्थात् क्रम के अनुसार पूर्ववर्ती का प्राग्भाव होता है। यथा—(ऋतु) हेमन्त-शिशिरौ, शिशिरवसन्तौ, वसन्तनिदाघौ। नक्षत्र—अश्विनीभरण्यौ; कृत्तिकारोहिण्यौ। वर्णसाम्य स्थल में ही यह नियम है।

(छ) ब्राह्मणादि वर्णवाचक पदों का आनुपूर्व्यनुसार पौर्वापर्य नियम। यथा—ब्रह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः, ब्राह्मणवैश्यौ।

बहुव्रीहि-समास में—सप्तम्यन्त और विशेषण पद का प्राग्भाव होता है। यथा—(कण्ठे कालः यस्य सः) कण्ठेकालः; (उरसि लोमानि यस्य सः) उरसिलोमा; (मूर्द्धिन शिखा यस्य सः) मूर्द्धशिखः, (तत्त्वे दृष्टिः यस्य सः) तत्त्वदृष्टिः। (विशेषण) (चित्रं वस्त्रं यस्य सः) चित्रवस्त्रः; (नीलम् अम्बरं यस्य सः) नीलाम्बरः; (मधुरं वचनं यस्य सः) मधुरवचनः।

(क) 'प्रिय' शब्द का विकल्प से प्राग्भाव होता है। यथा—गुड-प्रियः, प्रियगुडः।

(ख) 'इन्दु' प्रभृति पद के योग से, सप्तम्यन्त पद का परनिपात होता है। यथा—(इन्दुः मौलौ यस्य सः) इन्दुमौलिः; चन्द्रशेखरः; (पद्मं नाभौ यस्य सः) पद्मनाभः, पद्महस्तः, (कुशः पाणौ यस्य सः) कुशपाणिः इत्यादि।

(ग) 'प्रहरण' (शस्त्र)-वाचक पद के योग से, सप्तम्यन्त पद का परनिपात होता है। यथा—(शस्त्रं पाणौ यस्य सः) शस्त्रपाणिः, (दण्डः पाणौ यस्य सः) दण्डपाणिः; चक्रपाणिः, शूलपाणिः, (खड्गः करे यस्य सः) खड्गकरः, (धनुः हस्ते यस्य सः) धनुर्हस्तः।

(घ) 'क्त'प्रत्ययान्त पद का प्राग्भाव होता है। यथा—(कृता विधा येन सः) कृतविधः, (कृतं कर्म येन सः) कृतकर्मा, कृतकृत्यः, (अधीतं व्याकरणं येन सः) अधीतव्याकरणः, (भक्षितम् ओदनं येन

सः) भक्षितौदनः, (धृतम् आयुधं येन सः) धृतायुधः, (उद्धृतः दण्डः येन सः) उद्धृतदण्डः, (भग्नः मनोरथः यस्य सः) भग्नमनोरथः, (पक्वः केशः यस्य सः) पक्वकेशः ।

(ङ) 'आहिताग्नि'-प्रभृति पदों में 'क्त' प्रत्ययान्त पद का विकल्प से प्राग्भाव होता है, यथा—(आहितः अग्निः येन सः) आहिताग्निः, अग्न्याहितः; उद्यतासिः, अस्युद्यतः; सुखोचितः, उचित-सुखः, जातसुखः, सुखजातः, जातपुत्रः, पुत्रजातः, जातदन्तः, दन्तजातः, जातश्मश्रुः, श्मश्रुजातः, पीततैलः, तैलपीतः, पीतघृतः, घृतपीतः, पीतसुरः, सुरापीतः, ऊढभार्य्यः, भार्य्योढः, गतार्थः, अर्थगतः, प्राप्त-कालः, काल प्राप्तः इत्यादि ।

सब समासों में—अव्यय पद का प्राग्भाव होता है। यथा—(न ब्राह्मणः) अब्राह्मणः, (टीकया सह वर्त्तमानः) सटीकः, (भिक्षायाः अभावः) दुर्भिक्षम्, (आदित्यम् अतिक्रान्तम्) अत्यादित्यम् ।

समास-कार्य

(पूर्व पद में)

अन्य 'आशिस्' प्रभृति शब्द परे रहने से 'अन्य' शब्द के स्थान में 'अन्यत्' होता है। यथा—(अन्या आशीः) अन्यदाशीः; (अन्यस्मिन् आशा) अन्यदाशा; (अन्यस्मिन् आस्था) अन्यदास्था; (अन्यम् आ-स्थितः) अन्यदास्थितः; (अन्यस्मिन् उत्सुकः) अन्यदुत्सुकः; (अन्य-स्मिन् रागः) अन्यद्रागः; (अन्यः कारकः) अन्यत्कारकः ।

(क) तृतीयान्त और षष्ठयन्त 'अन्य' शब्द का नहीं होता। यथा-(अन्येन आशीः) अन्याशीः; (अन्यस्य आशीः) अन्याशीः ।

(ख) 'अर्थ' शब्द परे रहने से, विकल्प से होता है। यथा—(अन्यस्य अर्थः) अन्यदर्थः, अन्यार्थः ।

अवश्यम्—'कृत्य' प्रत्यय परे रहने से 'अवश्यम्' शब्द के मकार का लोप होता है। यथा—(अवश्यं देयम्) अवश्यदेयम्; (अवश्यं भव्यम्) अवश्यभव्यम्; (अवश्यं कर्त्तव्यम्) अवश्यकर्त्तव्यम् ।

उदक—'वास' 'पेषम्' प्रभृति शब्द परे रहने से 'उदक' शब्द के

स्थान में 'उद' होता है। यथा—(उदके वासः) उदवासः, 'सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा [निनाय]" (कु, ५, २६,) उदपेषं पिनष्टि, उदधिः।

(क) कुम्भ, पात्र, बिन्दु प्रभृति शब्द परे रहने से, विकल्प से होता है। यथा—(उदकस्य कुम्भः) उदकुम्भः, उदककुम्भः; उदपात्रम्, उदकपात्रम्; उदबिन्दुः, उदकबिन्दुः।

उभ—पूर्व स्थित 'उभ' शब्द के स्थान में 'उभय' होता है, यथा—(उभौ पक्षौ) उभयपक्षौ।

ऋकारान्त—द्वन्द्व समास में—एक गोत्र समझाने से 'पुत्र' शब्द और ऋकारान्त शब्द उत्तरपद होने से ऋकारान्त पूर्वपद के 'ऋ' के स्थान में 'आ' होता है। यथा—(पिता च पुत्रश्च) पितापुत्रौ, (माता च पुत्रश्च) मातापुत्रौ, (माता च पिता च) मातापितरौ, (याता च ननान्दा च) याताननान्दरौ। गोत्र सम्बन्ध न रहने से नहीं होता। यथा—(दाता च भोक्ता च) दातृभोक्तारौ।

कु—स्वरवर्ण और 'रथ' तथा 'वद' शब्द परे रहने से 'कु' शब्द के स्थान से 'कत्' होता है। यथा—(कुत्सितः अश्वः) कदश्वः; (कुत्सितः अर्थः) कदर्थः, (कुत्सितम् अक्षरम्) कदक्षरम्; (कुत्सितम् अन्नम्) कदन्नम्, (कुत्सितः आचारः) कदाचारः, (कुत्सितः उष्ट्रः) कराष्ट्रः, (कुत्सितम् उदकम्) कदुदकम्, (कुत्सितः रथः) कद्रथः; (कुत्सितं वदति) कद्वदः, "प्रियापाये कद्वदं हंसकोकिलम्" भ० ६–७५।

(क) 'पथिन्' और 'पक्ष' शब्द परे रहने से 'कु' के स्थान में 'का' होता है, यथा—(कुत्सितः पन्थाः) कापथम्, (कुत्सितम् अक्षम्) काक्षम् (कुदृष्टिरित्यर्थः), 'अक्ष' शब्द के सामान्यतः इन्द्रियवाची होने पर भी प्रयोग से यही अर्थ बोध्य है "काक्षेणानादरेक्षितः" भ० ५।२४। 'अक्षि' शब्द के साथ बहुव्रीहि समास में भी होता है। यथा—(कुत्सितम् अक्षि यस्य सः) काक्षः पुरुषः।

(ख) 'ईषत्' अर्थ समझाने से 'कु' के स्थान में 'का' होता है, यथा—(ईषत् मधुरं) कामधुरम्; (ईषत् लवणम्) कालवणम्; (ईषत् अम्लम्) काम्लम्।

(ग) 'पुरुष' शब्द परे रहने से, विकल्प से 'का' होता है, यथा— (कुत्सितः पुरुषः) कापुरुषः, कुपुरुषः ।

(घ) 'उष्ण' शब्द परे रहने से, 'कु' के स्थान में—का, कत् और कव होते हैं, यथा—(ईषत् उष्णम्) कोष्णम्, कदुष्णम्, कवोष्णम् ।

तुमुन्—'काम' और 'मनस्' शब्द परे रहने से, 'तुमुन्' प्रत्यय के मकार का लोप होता है। यथा—(गन्तुं कामः यस्य सः) गन्तुकामः; (ग्रहीतुं मनः यस्य सः) ग्रहीतुमनाः ।

नञ्—स्वर वर्ण परे रहने से, 'नञ्' के स्थान में 'अन्' होता है, और व्यञ्जन वर्ण परे रहने से, 'अ' होता है । यथा—(न उचितः) अनुचितः; (न भावः) अभावः ।

महत्—विशेष्य पद परे रहने से, विशेषण 'महत्' शब्द के स्थान में 'महा' होता है। यथा—(कर्मधारय)-(महान् देवः) महादेवः, (महान् पुरुषः) महापुरुषः, (महान् जनः) महाजनः। (बहुब्रीहि) (महान् कायः यस्य सः) महाकायः हस्ती, (महत् बलं यस्य सः) महाबलः, (महत् यशः यस्यः सः) महायशाः ।

'महत्' शब्द विशेष्य होने से नहीं होता। यथा—(महताम् आश्रयः) महदाश्रयः, (महतां सेवा) महत्सेवा, (महतां वाक्यम्) महद्वाक्यम् ।

युष्मद्, अस्मद्—एकवचनान्त 'युष्मद्' शब्द के स्थान में—'त्वत्' और 'अस्मद्' शब्द के स्थान में 'मत्' होता है। यथा—(तव पुस्तकम्) त्वत्पुस्तकम्, (मम गृहम्) मद्गृहम् ।

समान—'गोत्र' प्रभृति शब्द परे रहने से 'समान' शब्द के स्थान में 'स' होता है। यथा—(समानं गोत्रं कुलं यस्य सः) सगोत्रः, अथवा (समानं गोत्रम्) सगोत्रम्, (समानं रूपं यस्य सः) सरूपः, (समानः वर्णः यस्य सः) सवर्णः, (समानः पक्षः यस्य सः) सपक्षः, अथवा (समानः पक्षः) सपक्षः, (समानः नाभिः, गोत्रं, मूलपुरुषो वा यस्य सः) सनाभिः, (समानः पिण्डः, देहः, मूलपुरुषः, निवापो वा—यस्य सः) सपिण्डः, (समानं नाम यस्य सः) सनामा, समानं वयः यस्य सः) सवयाः, (समानः तीर्थः गुरुः यस्य सः) सतीर्थः,

(समाने तीर्थे वसति) सतीर्थ्यः, (समानः ब्रह्मचारी) सब्रह्मचारी, (समानः धर्मः यस्य सः) सधर्मा, (समानः जातीयः) सजातीयः, सस्थानः, सवचनः, इत्यादि ।

(क) 'उदर्य्य' शब्द परे रहने से, विकल्प से होता है । यथा—(समाने उदरे शयतिः) सोदर्य्यः, समानोदर्य्यः ।

सह—बहुब्रीहि-समास में 'सह' शब्द के स्थान में विकल्प से 'स' होता है, यथा—(धनेन सह वर्त्तमानः) सधनः, सहधनः, (अनुजेन सह वर्त्तमानः) सानुजः, सहानुजः ।

पदकार्य

पद होने से सब व्यञ्जनान्त शब्द की आकृति सप्तमी के बहुवचन के तुल्य होती है । यथा—वाच्-ईशः=वाक्-ईशः=वागीशः; सुहृत्-समागमः=सुहृत्समागमः; राजन्-वरः=राजवरः; अहन्-मुखम्=अहः—मुखम्=अहर्मुखम्; दिव्-लोकः=द्युलोकः; विद्वस्-वरः=विद्वत्-वरः=विद्वद्वरः; पुमस्-लिङ्गः=पुलिङ्गः ।

पुंवद्भाव

स्त्रीलिंग विशेष्य पद परे रहने से, विशेषण उक्तपुंस्क (भासितपुंस्क) स्त्रीलिंग शब्द का पुंवद्भाव अर्थात् पुंलिंग के तुल्य आकार होता है । यथा—(कर्मधारय) (सुन्दरी बालिका) सुन्दरबालिका, (कृष्णा चतुर्दशी) कृष्णचतुर्दशी, (पाचिका स्त्री) पाचकस्त्री, (पञ्चमी कन्या) पञ्चमकन्या, (महती नवमी) महानवमी, (सुकेशी भार्य्या) सुकेश-भार्य्या, (ब्राह्मणी भार्य्या) ब्राह्मणभार्य्या । (बहुब्रीहि) (स्थिरा बुद्धिः यस्य स;) स्थिरबुद्धिः, (महती मतिर्यस्य सः) महामतिः, (चित्रा गतिः यस्य सः) चित्रगतिः, (दृढा भक्तिः यस्य सः) दृढभक्तिः (—र० १२, १९), (प्रिया भार्य्या यस्य सः) प्रियभार्य्यः, (काली तनुः यस्य सः) कालतनुः ।

---

१. जो शब्द पुंलिंग और स्त्रीलिंग में एक ही आकार में एक ही अर्थ में प्रयुक्त होता है, उमें उक्तपुंस्क या भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग शब्द कहते हैं ।

उत्तर पद परे रहने से, स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम शब्द का पुंवद्भाव होता है। यथा—(सर्वस्याः धनम्) सर्वधनम्, (भवत्याः प्रसादः) भवत्प्रसादः।

'अण्ड' प्रभृति शब्द परे रहने से, 'कुक्कुटी' प्रभृति शब्द का पुंवद्भाव होता है, यथा—(कुक्कुटचाः अण्डम्) कुक्कुटाण्डम्, (हंस्याः अण्डम्) हंसाण्डम्, (काक्याः शावकः) काकशावकः, (मृग्याः शावः) मृगशावः, (छाग्याः दुग्धम्) छागदुग्धम्, (महिष्याः क्षीरम्) महिषक्षीरम्, (मृग्याः पदम्) मृगपदम्।

समास-कार्य

(उत्तर पद में)

अ आ इ ई—समास-प्रत्यय का स्वरवर्ण परे रहने से, अवर्ण और इवर्ण का लोप होता है। यथा—अल्पमेधा—अस्=अल्पमेधस्, विशालाक्षि—अ=विशालाक्ष।

उ ऊ न—समास-प्रत्यय का स्वरवर्ण परे रहने से, उवर्ण के स्थान में 'ओ' होता है, और नकार का लोप होता है। यथा—बाहु बाहु–इ (इच्)=बाहूबाहवि, महाराजन्–अ (ट)=महाराजः।

दीर्घ स्वर—क्लीबलिङ्ग का विशेषण होने से, दीर्घस्वर ह्रस्व होता है। यथा—(विश्वं पाति इति) विश्वपं ब्रह्म, सुश्रि, सुभ्रु, (नावम् अतिक्रान्तं) अतिनु जलम्।

(आप् ईप्)—अन्य पद का विशेषण होने से 'आप्' और 'ईप्' प्रत्यय का ह्रस्व होता है। यथा—(त्यक्ता लज्जा येन सः) त्यक्तलज्जः पुमान्, (अतिक्रान्तः प्रेयसीम्) अतिप्रेयसिः कृष्णः।

गो—अन्य पद का विशेषण होने से, 'गो' शब्द के स्थान में 'गु' होता है, यथा—(उष्णा गौः—किरणः—यस्य सः) उष्णगुः सूर्य्यः, (शीता गौः यस्य सः) शीतगुः (चन्द्रः)।

पाद—बहुव्रीहि समासमें–उपमानवाचक पद के परवर्ती 'पाद' शब्द के स्थान में 'पाद्' होता है। यथा—व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः) व्याघ्रपात्। 'हस्तिन्' प्रभृति के परवर्त्ती होने से नहीं होता, यथा—(हस्तिन इव पादौ यस्य सः) हस्तिपादः कुम्भपादः।

(क) 'सु' शब्द और संख्यावाचक शब्द पूर्व में रहने से 'पाद' शब्द के स्थान में 'पाद्' होता है। यथा—(शोभनौ पादौ यस्य सः) सुपात्। (द्वौ पादौ यस्य सः) द्विपात्। (त्रयः पादाः यस्य सः) त्रिपात्, चतुष्पात्—(स्त्री०) चतुष्पदी।

समास-प्रत्यय

तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु समासमें—एकदेशवाचक शब्द के परवर्ती 'रात्रि' शब्द के उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(अर्द्धं रात्रेः) अर्द्धरात्रः।

एकदेशवाचक शब्द के परवर्ती 'अहन्' शब्द के उत्तर 'अ' (टच्) होता है, और 'अहन्' शब्द के स्थान में 'अह्न' आदेश होता है, यथा-मध्याह्नः।

(ख) 'सर्व' शब्द 'पुण्य' शब्द, संख्यावाचक शब्द और अव्यय शब्द के परवर्ती 'रात्रि' शब्द के उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(सर्वा रात्रिः) सर्वरात्रः, (पुण्या रात्रिः) पुण्यरात्रः, (द्वयोः रात्र्योः समाहारः) द्विरात्रम्, (तिसृणां रात्रीणां समाहारः) त्रिरात्रम्, पञ्चरात्रम्, दशरात्रम्, (रात्रिम् अतिक्रान्तः) अतिरात्रः।

(ग) 'सर्व' शब्द, 'पुण्य' शब्द संख्यावाचक शब्द और अव्यय शब्द के परवर्ती 'अहन्' शब्द के उत्तर 'अ' (टच्) होता है। और 'अहन्' शब्द के अन्त में 'अह्न' होता है। यथा—(सर्वम् अहः) सर्वाह्नः, (द्वयो अह्नो भवः) द्व्यह्नः, तद्धितार्थे द्विगु—(पञ्चसु अहःसु भवः) पञ्चाह्नः, (निर्गत अह्नः) निरह्नः, निरह्ना वेला।

(घ) संख्यावाचक और अव्यय शब्द के परवर्ती 'अङ्गुलि' शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य) द्व्यङ्गुलयः, (प्रकृष्टाः अङ्गुलयः) अप्राङ्गुलाः।

(ङ) राजन्, अहन्, और सखि शब्द के उत्तर 'ट' (टच्) होता है 'ट' इत् 'अ' रहता है। यथा—(अङ्गानां राजा) अङ्गराजः, (महान् राजा) महाराज, (स्त्री०) महाराजी। (पूर्वम् अहः) पूर्वाह्णः। (परमम्

अहः) परमाहः, (उत्तमम् अहः) उत्तमाहः, (राज्ञः सखा) राजसखः, (प्रियः सखा) प्रियसखः, (स्त्री०) प्रियसखी ।

(च) 'गो' शब्द के उत्तर 'ट' होता है। यथा—(राज्ञः गौः) राजगवः (स्त्री०) राजगवी, (परमो गौः) परमगवः, (दश गावः, धनम् अस्य) दशगवधनः, (पञ्चानां गवां समाहारः) पञ्चगवम् । तद्धित में नहीं होता । यथा—(पञ्चभिः गोभिः क्रीतः) पञ्चगुः ।

(छ) 'कु' और महत्-शब्द के परवर्ती 'ब्रह्मन्' शब्द के उत्तर विकल्प से 'ट' होता है । यथा—(कुत्सितः ब्रह्मा ब्राह्मण इत्यर्थः) कुब्रह्मः, कुब्रह्मा, महाब्रह्मः, महाब्रह्मा ।

कर्मधारय, समास में वृद्ध, महत् और जात शब्द के परवर्ती 'उक्षन्' (साँड़) शब्द के उत्तर 'अ' (अच्) होता है । यथा—(वृद्धः उक्षा) वृद्धोक्षः, (महान् उक्षा) महोक्षः, (जातः उक्षा) जातोक्षः ।

द्विगु-समास में—'द्वि' और त्रि' शब्द के परवर्त्ती 'अञ्जलि' शब्द के उत्तर विकल्प से 'ट' (टच्') होता है । यथा—(द्वयोः अञ्जल्योः-समाहारः) द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलिः त्र्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलिः ।

द्वन्द्व-समास में 'स्त्री पुंसौ'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध हैं। यथा-(स्त्री च पुमांश्च) स्त्रीपुंसौ, (वाक् च मनश्च) वाङ्मनसे, (नक्तञ्च दिवा च) नक्तन्दिवम्, (रात्रौ च दिवा च) रात्रिन्दिवम्, (अहनि च दिवा च) अहर्दिवम्, (अहनि अहनि प्रत्यहम्), (अहश्च रात्रिश्च) अहोरात्रः ।

बहुव्रीहि-समास में 'अक्षि' और 'सक्थि' (ऊरु) शब्द के उत्तर 'ष' (षच्) होता है, 'ष्' इत् होने से 'अ' रहता है। यथा—(दीर्घे अक्षिणी यस्मिन् तत्) दीर्घाक्षं वदनम्, (विशाले अक्षिणी यस्याः सा) विशालाक्षी देवी, (दीर्घे सक्थिनी यस्य सः) दीर्घसक्थः पुरुषः, (वृत्ते-सक्थिनी यस्याः सा) वृत्तसक्थी नारी ।

(क) 'द्वि' और 'त्रि' शब्द के परवर्त्ती 'मूर्द्धन्' शब्द के उत्तर 'ष' होता है । यथा—(द्वौ मूर्द्धानौ यस्य सः) द्विमूर्द्धः, (त्रयः मूर्द्धानः यस्य सः) त्रिमूर्द्धः । अन्यत्र नहीं होता—(पञ्च मूर्द्धानो यस्य सः) पञ्चमूर्द्धा ।

(ख) संज्ञा समझाने से 'नाभि'शब्द के उत्तर विकल्प से 'अ' (अच्) होता है। यथा—पद्मनाभः, पद्मनाभिः, (अरविन्दं नाभौ यस्य सः) अरविन्दनाभः, अरविन्दनाभिः—"प्रजा इवाङ्गादरविन्दनाभेः' (माघ० ३-६५)। (ऊर्णा इव तन्तुः नाभौ यस्य सः) ऊर्णनाभः, ऊर्णनाभिः, "प्रवृत्तिर्नो विना कार्य्यमूर्णनाभेरपीष्यते"—भट्टवार्तिकम्।

(ग) संख्यावाचक शब्द के परवर्त्ती संख्यावाचक शब्द के उत्तर 'ड' होता है और 'ड्' इत्, 'अ' रहता है। यथा—(द्वौ वा त्रयो वा) द्वित्राः, (पञ्च वा षट् वा) पञ्चषाः।

(घ) 'धर्म' शब्द के उत्तर 'अन्' (अनिच्) होता है, यथा—(विदितः धर्मः येन सः) विदितधर्मा, त्यक्तधर्मा, (मरणं धर्मः यस्य सः (मरणधर्मा,) जननमरणे धर्मौ यस्य सः (जननमरणधर्मा, (साक्षात्कृतः धर्मः येन सः) साक्षात्कृतधर्मा—"साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः" उत्तर०७।

(ङ) 'धनुस्' शब्द के उत्तर 'अन्' (अनङ्) होता है, और सकार का लोप होता है। यथा—(गृहीतं धनुः येन सः) गृहीतधन्वा, (अधिज्यं धनुः यस्य सः) अधिज्यधन्वा।

(च) नञ्, दुर् और सु शब्द के परवर्ती 'प्रजा' शब्द के उत्तर 'अस्' (असिच्) होता है। यथा—(अविद्यमाना प्रजा यस्य सः) अप्रजा; (अप्रजस्), (दुष्टा प्रजा यस्य सः) दुष्प्रजाः, (शोभना प्रजा यस्य सः) सुप्रजाः।

(छ) न, दुर्, सु, मन्द और अल्प शब्द के परवर्ती 'मेधा' शब्द के उत्तर 'अस्' होता है, यथा—अमेधाः, दुर्मेधाः, सुमेधाः, (नन्दा मेधा यस्य सः) मन्दमेधाः, अल्पमेधाः।

(ज) सु, उत्, पूति और सुरभि शब्द के परवर्ती गुणवाचक 'गन्ध' शब्द के उत्तर 'इ' होता है, यथा—(शोभनः गन्ध यस्य सः) सुगन्धिः, (उद्गतः गन्धः यस्य सः) उद्गन्धिः, (पूतिः-दुष्टः-गन्धः यस्य सः) पूतिगन्धिः (सुरभिः-मनोहरः-गन्धो यस्य सः) सुरभिगन्धिः।

स्वाभाविक गन्ध न होने से नहीं होता। यथा—सुगन्धः पवनः

'आघ्रायिवान् गन्धवहः सुगन्धस्तेनारविन्दव्यतिषङ्गवाश्च' (वान्-वहन् वायुराघ्रात इत्यर्थः) भ० २-१० ।

(झ) उपमानवाचक पद के परवर्ती 'गन्ध' शब्द के उत्तर 'इ' होता है। यथा—(पद्मस्य इव गन्धो यस्य तत्) पद्मगन्धि मुखम् ।

(ञ) 'जाया' शब्द के उत्तर 'इ' होता है, 'जाया' के स्थान में 'जान्' होता है। यथा—(सीता जाया यस्य सः) सीताजानिः, (युवतिः जाया यस्य सः) युवजानिः, (प्रिया जाया यस्य सः) प्रियजानिः, (सुन्दरी जाया यस्य सः) सुन्दरजानिः ।

(ट) 'अस्' प्रभृति शब्द के उत्तर 'कप्' होता है, 'प्' इत् 'क' शेष रहता है। यथा—(व्यूढम्-विपुलम्-उरः यस्य सः) व्यूढोरस्कः, (पीतं सर्पिः येन सः) पीतसर्पिष्कः, (उपानद्भ्यां सह वर्तमानः) सोपानत्कः, (भाषितः पुमान् येन सः) भाषितपुंस्कः शब्दः, (प्रचुरं पयः यस्याः सा) प्रचुरपयस्का धेनुः, (प्राप्ता लक्ष्मीः येन सः) प्राप्तलक्ष्मीकः, (आहृतं मधु येन सः) आहृतमधुकः, (विक्रीयमाणं दधि यया सा) विक्रीयमाणदधिका गोपी, (न विद्यते अर्थः यस्मिन् तत्) निरर्थकम्, अनर्थकम् ।

(ठ) स्त्रीलिङ्ग में, 'इन्' भागान्त शब्द के उत्तर 'कप्' होता है। यथा—(बहवः धनिनः यस्यां सा) बहुधनिका नगरी, (बहवः वाग्मिनः यस्यां सा) बहुवाग्मिका सभा ।

(ड) ऋकारान्त शब्द और स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द के उत्तर 'कप्' होता है। यथा—(नास्ति पिता यस्य सः) निष्पितृकः, (मात्रा सह वर्त्तमानः) समातृकः, (मृतः भर्त्ता यस्याः सा) मृतभर्तृका, (स्त्रिया सह वर्त्तमानः) सस्त्रीकः, (मृता पत्नी यस्य सः) मृतपत्नीकः, (बह्व्यः कुमार्यः यस्य सः) बहुकुमारीकः, (मधुरा वाणी यस्य सः) मधुरवाणीकः, (प्रौढा वधूः यस्य सः) प्रौढवधूकः ।

'स्त्री'-शब्द-भिन्न—जिनके स्थान में 'इय्' उव होते हैं ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द के उत्तर नहीं होता । तथा—(शोभना श्रीः यस्य सः) सुश्रीः, (शोभना भ्रूः यस्य सः) सुभ्रूः ।

(ढ) पूर्वोक्त-भिन्न अन्यविध शब्दों के उत्तर विकल्प से 'कप्' होता है। यथा—(लब्धं यशः येन सः) लब्धयशस्कः, लब्धयशाः; (प्राप्तं तेजः येन सः) प्राप्ततेजस्कः, प्राप्ततेजाः, (मुण्डितं शिरः यस्य सः) मुण्डित-शिरस्कः, मुण्डितशिराः, (धृतं धनु येन सः) धृतधनुष्कः, धृतधनुः, (अर्जितं धनं येन सः) अर्जितधनकः, अर्जितधनः, (अन्यस्मिन् मनः यस्य सः) अन्यमनस्कः, अन्मनाः ।

(ण) व्यतिहार-अर्थ में 'इच्' होता है, 'च्' इत्, 'इ' रहता है यथा—केशाकेशि, मुष्टीमुष्टि, बाहूबाहवि ।

अव्ययीभाव-समास में—'शरद्' प्रभृति शब्द के उत्तर 'अ' (टच्) होता है। यथा—(शरदि शरदि) प्रतिशरदम् (दिशि दिशि) प्रति-दिशम्, (हिमवत्पर्य्यन्तम्) आहिमवतम्, अनुदशम् ।

(क) 'जरा' शब्द के उत्तर 'अ' होता है, 'अ' होने से 'जरा' के स्थान में 'जरस्' होता है। यथा— (जरायाः समीपे) उपजरसम् ।

(ख) सम्, अनु, प्रति और पर शब्द के परवर्त्ती 'अक्षि' शब्द के उत्तर 'अ' होता है। यथा—(अक्ष्णः समीपे) समक्षम्, अन्वक्षम्, (अक्षि प्रति) प्रत्यक्षम्, (अक्ष्णः परः) परोक्षम् ।

(ग) 'अन्'-भागान्त शब्द के उत्तर 'अ' होता है। यथा—(राज-नि) अधिराजम, अध्यात्मम, प्रत्यध्वम् ।

(घ) गिरि, नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी शब्द के उत्तर विकल्प से 'अ' होता है। यथा- (गिरेः समीपम्) उपगिरम्, उपगिरि; उपनदम्, उपनदि, उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि, उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि ।

(ङ) पञ्चम-भिन्न स्पर्श वर्णान्त शब्द के (अर्थात् वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण के) उत्तर विकल्प से 'अ' होता है, यथा—उपदृषदम्, उपदृषत्; अनुसमिधम्, अनुसमित् ।

(च) 'प्रति'-शब्द के परवर्त्ती सप्तम्यर्थ में वर्त्तमान 'उरस्' शब्द के उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(उरसि) प्रत्युरसम् ।

सर्वसमास में—'पथिन्'-शब्द के उत्तर 'अ' होता है। यथा—

(राज्ञां पन्थाः) राजपथः, (दृष्टेः पन्थाः) दृष्टपथः, (जले पन्थाः) जल-पथः, (दक्षिणा-दक्षिणस्यां दिशि पन्थाः) दक्षिणापथः, (सन् पन्था) सत्पथः, (कुत्सितः पन्थाः) कापथः, (त्रयाणां पथां समाहारः) त्रिपथम्, (चतुर्णां पथां समाहारः) चतुष्पथम्, (क्षेत्रञ्च पन्थाश्च) क्षेत्रपथौ, (रम्यः पन्थाः यस्मिन् तत्) रम्यपथं नगरम्, (पन्थानं प्रति) प्रतिपथम् ।

अव्यय पद के परवर्त्ती होने से क्लीबलिङ्ग होता है । यथा—(विरुद्धः पन्थाः) विपथम्, (गर्हितः पन्थाः) उत्पथम्, (अपकृष्ट पन्थाः) अपपथम् ।

(क) 'अप' शब्द के उत्तर 'अ' होता है । यथा—(विमलाः आपः यस्मिन् तत्) विमलापं सरः, (उद्धृताः आपः यस्मात् सः) उद्धृतापः कूपः ।

(ख) पुर्, धुर्, और ऋच् शब्द के उत्तर 'अ' होता है । यथा—(राज्ञः पूः) राजपुरम्, (राज्यस्य धूः) राज्यधुरा, (महती धूः) महाधुरा, (विश्वस्य धूः) विश्वधुरा, (रणस्य धूः) रणधुरा "ताते चापद्वितीये वहति रणधुराम्" वेणी० ३७ "कार्यधुरां वहति" मुद्रा०, १४, "न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति" मृच्छ, ४-१५, (धृता धूः येन सः) धृतधुरः । (अर्द्धम् ऋचः) अर्द्धर्चः, अर्द्धर्चम्; (अधिगता ऋक् येन सः) अधिगतर्चः ।

समास-प्रत्यय-निषेध

पूजार्थ (प्रशंसावाची) 'सु' और 'अति' शब्द पूर्व में रहने से समास-प्रत्यय नहीं होता । यथा—(शोभनो राजा) सुराजा, (शोभनो राजा यस्मिन् सः) सुराजा देशः, (अतिशयेन राजा) अतिराजा, सुमखा, अतिसखा, सुगौः, अतिगौः, सुपन्थाः, अतिपन्थाः ।

(क) निन्दार्थ किम्—शब्द पूर्व में रहने से, समास-प्रत्यय नहीं होता । यथा—(कुत्सितो राजा) किंराजा, (कुत्सितः सखा) किंसखा, (कुत्सितः पन्थाः यस्मिन् सः) किम्पन्थाः देशः ।

(ख) तत्पुरुष-समास में—'नञ्' शब्द पूर्व में रहने से, समास-प्रत्यय नहीं होता। यथा—(न राजा) अराजा, असखा, अगौः।

'पथिन्' शब्द के उत्तर विकल्प से समासान्त-पक्ष से क्लीबलिङ्ग होता है। यथा—अपथम्, अपन्थाः।

समास-विच्छेद

समास-विच्छेद करने के समय, उसका विग्रह-वाक्य कहना होता है। किन्तु किसी वाक्य के अन्तर्गत समस्त पद का समास-विच्छेद करने के समय, पुनरुक्ति प्रभृति दोष-परिहार तथा अन्यान्य पद के साथ अन्वय-रक्षा करने के लिए कुछ परिवर्तन और परिवर्जन भी करना होता है। यथा—

दधिभाण्डम्=दध्नो भाण्डम्।

मस्तकस्थितात्=मस्तके यत् स्थितं तस्मात्[1]।

यूयं सन्ध्यासमये महारवं करिष्यथ = यूयं सन्ध्यायाः समये महान्तं रवं करिष्यथ।

त्रिभुवने भवादृशः कोऽपि नास्ति=त्रिषु भुवनेषु भवादृशः कोऽपि नास्ति।

दानमानाभ्यां तं पूजयामास=दानेन मानेन च तं पूजयामास।

निरपराधो हंसस्तेन व्यापादितः=यस्यापराधो नासीत् स हंसस्तेन व्यापातिः।

स प्रतिदिनं विद्याभ्यासे सयत्नं प्रवर्त्तते=स दिने दिने विद्याया अभ्यासे यत्नेन सह प्रवर्त्तते।

समास होने के पश्चात् सिंह, व्याघ्र प्रभृति शब्द 'श्रेष्ठ' अर्थ समझाते हैं, और निभ, सङ्काश प्रभृति शब्द 'तुल्य' अर्थ समझाते हैं, इसलिए समास विच्छेद में उनके स्थान में श्रेष्ठार्थ और तुल्यार्थ पद बैठाना चाहिए। यथा—पुरुषसिंहः=पुरुषाणां श्रेष्ठः; देवसङ्काशः=देवस्य सदृशः।

---

१. समस्त पद में द्वितीयादि विभक्ति रहने से समास-विच्छेद के समय अन्तिम तद् शब्द को उसी विभक्तियुक्त पद कहना होता है।

अभ्यास

समास-विच्छेद करो—वृद्धशृगालः। सर्वस्वामिगुणोपेतः। सामर्थ्यहीनः। मन्मरणम्। मत्स्यकण्टकाकीर्णम्। कम्बुग्रीवनामा। स्वकीयोत्कर्षम्। अरण्यवासिषु। क्षुत्क्षामः। चन्द्रार्द्धचूडामणिः। मांसाहारदानेन। तत्कृतरावम्। लगुडहस्तः। हृष्टपुष्टांगः। अस्मत्सौख्यम्। सकोपम्। विश्रम्भालापैः। नीरुजः। व्याघ्रभीतः। रक्तविलिप्तमुखपादः। पार्श्वगतात्। प्रत्यहम्। अज्ञातकुलशीलेन। शताब्दी। स कूर्मः कोपाविष्टो विस्मृतपूर्ववचनः प्रोवाच। ततस्तेन सिंहव्याघ्रादीन् उत्तमपरिजनान् प्राप्य स्वजातीयाः सर्वे दूरीकृताः। नास्ति क्षुद्रजन्तूनामपि निमज्जनस्थानम्। ततस्तत्तीरावस्थिता गजपादाहतिभिश्चूर्णिताः क्षुद्रशशकाः ततस्तेन नकुलेन बालकसमीपमागच्छन् कृष्णसर्पो दृष्ट्वा व्यापादितः। आसीत् सकलराजलक्षणोपेतः शूद्रको नाम राजा। एकादाऽसौ अमात्यगणपरिवृतः। परिषदमास्थितः। तदैको राजपुत्रः पुत्रभार्य्यासमेतो देशान्तरादाजगाम।

समास करो, और समास का नाम कहो—गुरोर्वचनं शृणुयात्। शीतलं जलं पिब। कुठारेण छिन्नो वृक्षः। नद्यां मग्ना नौका। सः अस्याकं गृहम् आगमिष्यति। मया कृतं कार्य्यम्। त्रिषु लोकेषु गीयते ते यशः। दशसु दिक्षु विख्यातम्। चतुर्षु युगेषु सत्यस्य आदरः। तव कुशलं मम प्रीत्यै तूर्णम् आवेदय। तस्योपरि पुष्पाणां वृष्टिः पपात। निशायां निशायाम् उत्सवो भवति। अन्नं व्यञ्जनञ्च भक्षय। फलानि पुष्पाणि च गणय। शस्त्रैः शस्त्रैश्च युध्यते। गुरुः छात्राश्च गच्छन्ति। हंसौ मयूरौ च सरसः तीरे चरन्ति। महान् वृक्षः अयम्। धार्मिकाणां वरो रामः पितुः सत्यस्य पालनार्थं भ्रात्रा अनुयातः पत्न्या सह वनं जगाम्।

स्त्री-प्रत्यय-प्रकरण

इस अध्याय में जो कार्यविहित होंगे उन्हें स्त्रीलिङ्ग समझना होगा। स्त्रीलिङ्ग करने के लिए पुंल्लिङ्ग शब्दों के उत्तर टाप्, डाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन् और ऊङ् प्रत्यय होते हैं। इनमें टाप्, डाप् प्रत्यय का आकार रहता है। ङीप् ङीष्, ङीन् प्रत्यय का ईकार रहता है और ऊङ् प्रत्यय का ऊकार रहता है।

स्त्री-प्रत्यय आगे रहने से—

१. शब्द के अन्त में स्थित अकार और ईकार का लोप होता है। जैसे—अज—अजा, गौर—गौरी, सुधी—सुधी।

२. शब्द व्यञ्जनान्त हो तो उसकी 'टा' विभक्ति के रूप की तरह सारे कार्य होते हैं और उसके आगे स्त्री-प्रत्यय युक्त होता है। जैसे—राजन् (राज्ञा)—राज्ञी, मघवन् (मघोना)—मघोनी, श्वन् (शुना)—शुनी, विद्वस् (विदुषा)—विदुषी।

३. शब्द के अन्त में स्थित तद्धित-प्रत्यय के 'य' का लोप होता है। जैसे—गार्ग्य—गार्गी, अगस्त्य—अगस्ती, माधुर्य—माधुरी, चातुर्य्य—चातुरी, मैत्र्य—मैत्री।

अज आदि जातिवाचक शब्द तथा अकारान्त प्रातिपादिक के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में टाप् होता है। इसके ट् और प् का लोप होता है, केवल आ रह जाता है। जैसे—अश्व–अश्वा, चटक–चटका, मूषिक–मूषिका, वत्स—वत्सा, नन्दन—नन्दना, ज्येष्ठ–ज्येष्ठा, बाल—बाला, मध्यम–मध्यमा, कोकिल—कोकिला, कृश–कृशा, दीन—दीना, अमूल—अमूला मलिन—मलिना, कृपण—कृपणा, क्रूर—क्रूरा, निपुण–निपुणा, चतुर–चतुरा, तरल—तरला, चपल–चपला, दक्षिण–दक्षिणा, उत्तर–उत्तरा, पूर्व—पूर्वा, पश्चिम—पश्चिमा, प्रथम–प्रथमा, द्वितीय–द्वितीया, तृतीय–तृतीया, अनुकूल—अनुकूला, प्रतिकूल–प्रतिकूला, मनोहरा–मनोहरा।

व्यञ्जनान्त शब्दों में क्षुध्, निश्, गिर् आदि कुछ शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में टाप् होता है। जैसे—क्षुध्—क्षुधा, वाच्—वाचा, निश्—निशा, गिर्—गिरा, दिश्—दिशा, स्रज्—स्रजा।

महत् शब्द पूर्व में न रहने या जाति अर्थ में (अर्थात् शूद्र जातीय स्त्री समझाने से) शूद्र शब्द के उत्तर टाप् होता है—जैसे शूद्र—शूद्रा (शूद्रजाति की स्त्री) किन्तु महाशूद्र—महाशूद्री (आभीरी)। शूद्र की पत्नी के अर्थ में शूद्री होता है।

टाप् प्रत्यय होने से प्रत्यय के ककार के पूर्व-स्थित अकार के स्थान में इकार होता है। जैसे नायक—नायिका, वाचक—वाचिका, नाटक—नाटिका, बालक—बालिका।

क्षिपका आदि के ककार के पूर्व स्थित अकार के स्थान में इकार नहीं होता। जैसे—इष्टका, कन्यका, कारका, चटका, तारका, अधित्यका (दर्रा), उपत्यका (तराई), क्षिपका (नौकरानी), सेवका (सेविका)।

किसी विशेष अर्थ में कुछ शब्दों के उत्तर विकल्प से इकार होता है, जैसे—तारक—तारका, तारिका; वर्णक—वर्णका, वर्णिका; अष्टक—अष्टका, अष्टिका; सूतक–सूतका, सूतिका; पुत्रक—पुत्रका, पुत्रिका; वर्तक–वर्तका, वर्तिका (तूलिका, कूची या वत्ती)।

ष् इत् प्रत्ययान्त शब्द और गौर आदि अकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ङीष् होता है, ङ् ष् इत् होते हैं केवल ई रहता है। जैसे—ष् इत्—रजक–रजकी, खनक–खनकी (खोदने वाली), नर्तक–नर्तकी, कमलाक्ष–कमलाक्षी। गौर आदि—गौर–गौरी (आठ वर्ष तक की लड़की,),कुमार–कुमारी, किशोर—किशोरी, सुन्दर—सुन्दरी, तरुण–तरुणी, पितामह–पितामही (दादी), मातामह–मातामही (नानी), नद (बड़ी नदी)–नदी, तट–तटी, नट–नटी, वट–वटी, कदल–कदली (केला), स्थल—स्थली, काल–काली, नाग–नागी (नागिन), मण्डल—मण्डली, वेतस–वेतसी (वेत की लता), अतस—अतसी (एक पीला फूल), आमलक–आमलकी, बदर–बदरी (बेर), कवर–कवरी (जूड़ा)।

जाति समझाने से जो स्त्रीलिङ्ग शब्द नहीं हैं और जिनकी उपधा में यकार नहीं है ऐसे जातिवाचक अकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ईप् होता है। जैसे—सिंह-सिंही, व्याघ्र-व्याघ्री, भल्लूक—भल्लूकी (भालुनी), मृग-मृगी, हरिण-हरिणी, कुरङ्ग-कुरङ्गी, गर्दभ-गर्दभी, शूकर— शूकरी, कुक्कुर-कुक्करी, जम्बूक-जम्बूकी, शृगाल—शृगाली, बिडाल—बिडाली, (बिल्ली), घोटक—घोटकी (घोड़ी), महिष-महिषी (भैंस), हंस—हंसी, सारस—सारसी, चक्रवाक—चक्रवाकी (चकई), मानुष—मानुषी, ब्राह्मण-ब्राह्मणी, गोप-गोपी, चण्डाल-चण्डाली, पिशाच-पिशाची, राक्षस-राक्षसी, निशाचर-निशाचरी।

जिन जातिवाचक प्रातिपदिकों के उपधास्थल में य रहता है उनके उत्तर ईप् नहीं होता। जैसे, वैश्य-वैश्या। गवय (एक जंगली पशु), हय (घोड़ा), मत्स्य (मछली), मनुष्य आदि शब्दों के उत्तर होता है। जैसे—गवयी, हयी।

ईप् प्रत्यय होने से मत्स्य और मनुष्य शब्द के य का लोप होता है, जैसे—मत्सी, मनुषी।

ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ङीप् होता है। जैसे, दातृ-दात्री, धातृ—धात्री, कर्तृ-कर्त्री, जनयितृ—जनयित्री (जननी), प्रसवितृ—प्रसवित्री (प्रसव करने वाली)। गौण ऋकारान्त होने के कारण सुदती, चारुदती, कुन्ददती, शुभ्रदती (सफेद दाँत वाली) (दन्त शब्द के स्थान में दतृ आदेश होता है, इस कारण इन्हें गौण ऋकारान्त कहते हैं। कामिन्—कामिनी, मानिन्—मानिनी, मायाविन्—मायाविनी, तपस्विन्—तपस्विनी, विलासिन्–विलासिनी, अधिकारिन्–अधिकारिणी, उपकारिन्—उपकारिणी, अनुरागिन्-अनुरागिणी, प्रियवादिन्—प्रियवादिनी, मनोहारिन्—मनोहारिणी।

डति-प्रत्ययान्त शब्द, षकारान्त और नकारान्त संख्यावाचक शब्द तथा स्वसृ आदि प्रातिपदिक के उत्तर ईप् नहीं होता। जैसे—स्वसा, माता, दुहिता (कन्या), याता (देवरानी, जेठानी), ननान्दा (ननद), तिस्रः, चतस्रः, कति, यति, तति, पञ्च, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश आदि।

नकारान्तों में मन्-भागान्त प्रातिपदिक के उत्तर ईप् नहीं होता। जैसे—सीमा, पामा (खुजली), सुदामा, अतिमहिमा।

बहुव्रीहि समास होने पर अन्-भागान्त प्रातिपदिक के उत्तर ईप् नहीं होता। जैसे—बहूनि-सन्त्यस्यां पर्वाणि बहुपर्वा वेणुयष्टिः (अनेक गाँठों वाली बाँस की लाठी)।

मन्-भागान्त शब्द और बहुव्रीहि समास होने पर अन्भागान्त प्रातिपदिक के उत्तर डाप् होता है। ड् प् इत् होते हैं, आ रहता है। जैसे—बहुपर्वा, बहुपर्वे, बहुपर्वाः। बहुपर्वा, बहुपर्वाणौ, बहुपर्वाणः।

जिन अन्-भागान्त प्रातिपदिकों के उपधा का लोप हो सकता है, बहुव्रीहि समास होने पर उनके उत्तर विकल्प से डाप् और ईप् होता है। जैसे—बहवः सन्त्यत्र राजानः—बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः। बहुराज्ञी बहुराज्ञ्यौ, बहुराज्ञ्यः। बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः।

युवन् शब्द के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में ति होता है। जैसे–युवन्–युवतिः।

उकार और ऋकार का इत् युक्त प्रत्यय के योग से निष्पन्न प्रातिपदिक के उत्तर ङीप् होता है। जैसे—उकार इत्–भवत्–भवती, इयत्–इयती (इतनी), कियत्–कियती (कितनी), श्रीमत्–श्रीमती, बुद्धिमत्–बुद्धिमती, पुत्रवत्—पुत्रवती (लड़के वाली), लज्जावत्—लज्जावती (लजीली), बलवत्—बलवती, प्रभावत्—प्रभावती (प्रकाशवाली), कृतवत्–कृतवती, प्रेयस्—प्रेयसी, श्रेयस्—श्रेयसी, गरीयस्—गरीयसी, लघीयस्—लघीयसी (छोटी), कनीयस्—कनीयसी (कनिष्ठा)। ऋकार इत्–सत्—सती, रुदत्—रुदती (रोनेवाली), शृण्वत्—शृण्वती (सुननेवाली), द्विषत्—द्विषती (द्वेष करने वाली), बिभ्रत्–बिभ्रती (धारण करनेवाली), कुर्वत्—कुर्वती (करने वाली), गृह्णत्–गृह्णती (ग्रहण करनेवाली) जानत्—जानती (जाननेवाली)।

ङीप् होने से भ्वादिगणीय तथा दिवादिगणीय धातु के उत्तर विहित शतृ प्रत्यय के स्थान में नुम् होता है। उ म् इत्, केवल न् रहता है। न पूर्ववर्त्ती होकर तकार के साथ मिलता है। जैसे–भ्वादिगणीय–धावत्

धावन्ती, गच्छत्–गच्छन्ती, पतत्–पतन्ती, तिष्ठत्–तिष्ठन्ती, चलत्–चलन्ती, पश्यत्-पश्यन्ती, कारयत्–कारयन्ती, स्मारयत्–स्मारयन्ती (स्मरण करानेवाली), स्थापयत्–स्थापयन्ती, पालयत्–पालयन्ती ।

दिवादिगणीय—दीव्यत्—दीव्यन्ती, नश्यत्—नश्यन्ती, जीर्यत्—जीर्यन्ती, मुह्यत्—मुह्यन्ती ।

तुदादिगणीय के उत्तर विकल्प से नुम् होता है। जैसे–तुदत्–तुदन्ती, तुदती; इच्छत्—इच्छन्ती, इच्छती; सिञ्चत्—सिञ्चन्ती, सिञ्चती; स्पृशत्—स्पृशन्ती, स्पृशती ।

अदादिगणीय आकारान्त धातु के उत्तर विकल्प से नुम् होता है। जैसे—यात्—यान्ती, याती; मात्–मान्ती, माती; भात्–भान्ती, भाती; स्नात्–स्नान्ती, स्नाती ।

ईप् होने से स्यतृ-प्रत्यय के स्थान में विकल्प से नुम् होता है। जैसे—भविष्यत्—भविष्यन्ती, भविष्यती; करिष्यत्—करिष्यन्ती, करिष्यती; दास्यत्–दास्यन्ती, दास्यती; यास्यत्–यास्यन्ती, यास्यती; गमिष्यत्—गमिष्यन्ती, गमिष्यती; द्रक्ष्यत्—द्रक्ष्यन्ती, द्रक्ष्यती ।

ट् इत् है ऐसे तथा ढ, अण्, अञ् द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययों के योग से निष्पन्न प्रातिपदिक के उत्तर ङीप् होता है। जैसे—टकार इत् प्रत्यय निष्पन्न–गायन–गायनी, कर्मकर–कर्मकरी, अर्थकर–अर्थकरी, यशस्कर–यशस्करी, निशाचर–निशाचरी, भयङ्कर-भयङ्करी, चतुर्थ-चतुर्थी, पञ्चम–पञ्चमी, षष्ठ-षष्ठी, सप्तम–सप्तमी, अष्टम–अष्टमी, नवम–नवमी, दशम–दशमी, एकादश–एकादशी, द्वादश–द्वादशी, त्रयोदश–त्रयोदशी, चतुर्दश–चतुर्दशी, षोडश–षोडशी, द्वय–द्वयी, त्रय–त्रयी, चतुष्टय–चतुष्टयी, दयामय–दयामयी, स्वर्णमय–स्वर्णमयी, मृन्मय–मृन्मयी, हिरण्मय–हिरण्मयी, नद–नदी, देव–देवी, महाराज–महाराजी। किन्तु ट् इत् होने से भी किङ्कर, यत्कर, तत्कर, बहुकर आदि के उत्तर ङीप् नहीं होता—जैसे-किङ्कर-किङ्करा आदि। स्त्री समझाने से होता है। जैसे—किङ्करस्य भार्य्या—

किङ्करी। ढ—भागिनेय—भागिनेयी, आत्रेय—आत्रेयी। अण्—कुम्भकार—कुम्भकारी, ऐन्द्र—ऐन्द्री, भार्गव—भार्गवी। अञ्—वैष्णव—वैष्णवी, पौत्र—पौत्री, मानुष—मानुषी। द्वयसच्—ऊरुद्वयस—ऊरुद्वयसी। दघ्नच्—ऊरुदघ्नी, गिरिकूटदघ्नी। मात्रच्—ऊरुमात्र—ऊरुमात्री। तयप्—चतुष्टयी, पञ्चतय—पञ्चतयी। ठक्—वार्षिक—वार्षिकी, दौवारिक—दौवारिकी। ठञ्—लावणिक लावणिकी। कञ्—ईदृश—ईदृशी, तादृश—तादृशी, यादृश—यादृशी, कीदृश—कीदृशी, सदृश—सदृशी, एतादृश—एतादृशी, अन्यादृश—अन्यादृशी। क्वरप्—नश्वर—नश्वरी, इत्वर—इत्वरी, गत्वर—गत्वरी।

बहुव्रीहि-समास होने से ङीप् नहीं होता। जैसे—बहुकुरचरा नगरी।

प्राच् आदि प्रातिपदिक के उत्तर ईप् होता है। जैसे-प्राच्—प्राची, आवाच्—अवाची।

प्रतीची आदि निपातन से सिद्ध होते हैं। जैसे—प्रत्यच्-प्रतीची, प्रत्यञ्ची; उदच्—उदीची, उदञ्ची; तिर्यच्—तिरश्ची, तिर्यञ्ची।

जाया अर्थ में जातिवाचक अकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ङीष् होता है। जैसे—ब्राह्मणस्य जाया—ब्राह्मणी, शूद्रस्य जाया—शूद्री, गोपस्य जाया—गोपी, गणकस्य जाया—गणकी, नापितस्य जाया—नापिती, निषादस्य जाया—निषादी।

पालक शब्द अन्त में है ऐसे जातिवाचक अकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ईप् नहीं होता। जैसे—गोपालकस्य जाया—गोपालिका, पशुपालकस्य जाया—पशुपालिका।

जाया अर्थ में इन्द्र आदि प्रातिपदिक के उत्तर ङीष् होने पर आनुक् (आन्) आगम होता है। जैसे—इन्द्रस्य जाया—इन्द्राणी, वरुणस्य जाया—वरुणानी, भवस्य जाया—भवानी, शर्वस्य जाया—शर्वाणी, रुद्रस्य जाया—रुद्राणी, मृडस्य जाया—मृडानी।

महत्त्व समझाने से हिम और अरण्य शब्दों के उत्तर आनुक् होता है। जैसे—महत् हिमम्—हिमानी, महत् अरण्यम्—अरण्यानी।

दुष्ट (दोष युक्त) यव समझाने से यव शब्द के उत्तर आनुक् होता है। जैसे—दुष्टो यवः—यवानी। यवनस्य स्त्री—यवनी।

लिपि अर्थ में यवन शब्द के उत्तर आनुक् होता है। जैसे—यवनानां लिपिः—यवनानी।

मातुल और उपाध्याय शब्दों के उत्तर पत्नी अर्थ में विकल्प से आनुक् होता है। जैसे—मातुलस्य जाया—मातुलानी, मातुली; उपाध्यायस्य जाया उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

स्वयं अध्यापिका समझाने से उपाध्याय शब्द के उत्तर विकल्प से ङीष् होता है। जैसे—उपाध्याय—उपाध्यायी, उपाध्याया।

जाया अर्थ समझाने से आचार्य शब्द के उत्तर आनुक् होता है। और उसके न् के स्थान में ण् नहीं होता, किन्तु 'स्वयम् अध्यापिका' समझाने से आचार्य शब्द के उत्तर टाप् होता है। जैसे—आचार्यस्य जाया—आचार्यानी, स्वयम् अध्यापिका-आचार्या।

स्त्रीलिङ्ग में अय, क्षत्रिय शब्दों के उत्तर विकल्प से ङीष् और आनुक् तथा दूसरे पक्ष में टाप् होता है किन्तु पत्नी अर्थ समझाने से ङीप् होता है। जैसे—अर्य—अर्याणी, अर्या; अर्यस्य जाया—अर्य्यी, क्षत्रिय—क्षत्रियाणी, क्षत्रिया, क्षत्रियी।

बहु आदि प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से ङीष् होता है। जैसे—बहु–बह्वी, बहुः; पद्धति–पद्धती, पद्धतिः; शक्ति—शक्ती, शक्तिः; चण्ड–चण्डी, चण्डा; अराल—अराली, अराला; कृपण—कृपणी, कृपणा, कल्याण—कल्याणी, कल्याणा; पुराण—पुराणी, पुराणा; उदार—उदारी, उदारा; विकट—विकटी, विकटा; विशाल—विशाली, विशाला; विशङ्कट—विशङ्कटी, विशङ्कटा (बृहत्)।

शोण शब्द के उत्तर विकल्प से ङीष् होता है। जैसे—शोण—शोण, शोणा (लाल घोड़ी)।

बहुव्रीहि समास होने पर अवयव-वाचक प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से ङीष् होता है। जैसे-चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; सुकेशी, सुकेशा;

ताम्रनखी, ताम्रनखा। उपधा में संयुक्त वर्ण रहने से ङीप् नहीं होता। जैसे—मृगनेत्रा, चारुगुल्फा, लोलजिह्वा। अंग आदि के उत्तर विकल्प से ङीष् होता है। जैसे—कृशाङ्गी, कृशाङ्गा; चारुगात्री, चारुगात्रा; बिम्बोष्ठी बिम्बोष्ठा; कोकिलकण्ठी, कोकिलकण्ठा; कुन्ददन्ती, कुन्द-दन्ता; चारुकर्णी, चारुकर्णा; दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा; सत्पुच्छी, सत्पुच्छा; तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा।

संज्ञा समझाने से नख और मुख इन दो शब्दों के अव्यय-वाचक प्रतिपादिक के उत्तर ईप् नहीं होता। जैसे—शूर्पणखा, गौरमुखा। अन्यथा ताम्रमुखी कन्या।

क्रोड आदि तथा दो से अधिक स्वर युक्त अवयववाचक प्रातिपदिक के उत्तर ङीष् नहीं होता। जैसे—सुक्रोडा, तीक्ष्णखुरा, चारुशिखा, दीर्घशफा, मृगनयना, चन्द्रवदना, चारुदर्शना, पृथुजघना, लोलरसना। नासिका और उदर शब्दों के उत्तर विकल्प से होता है। जैसे—तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका; कृशोदरी, कृशोदरा।

सह, नञ् और विद्यमान शब्द पूर्व में रहने से अवयववाचक प्राति-पदिक के उत्तर ङीष् नहीं होता। जैसे—सकेशा, अकेशा, विद्यमानकेशा।

बहुव्रीहि-समास होने पर ऊधस् शब्द के उत्तर नित्य ङीष् और टि के स्थान में अन् होता है। जैसे—पीनमस्या ऊधः-पीनोध्नी (बड़े थनों वाली गाय), घटवदस्या ऊधः—घटोध्नी, द्विविधमस्या ऊधः—द्विवि-धोध्न, अति यस्या ऊधः-अत्यूध्नी।

बहुव्रीहि-समास होने पर संख्या-वाचक शब्द के परवर्ती दामन् और हायन इन दो प्रातिपदिकों के उत्तर ङीष् होता है। जैसे—द्वे अस्या दाम्नी—द्विदाम्नी (दो रस्सियों से बँधी गाय), त्रीण्यस्या दामानि—त्रिदाम्नी। द्वे अस्या हायने-द्विहायनी (दो साल की उमर वाली गाय), त्रिहायणी, चतुर्हायणी गौः। हायनशब्द वयोवाचक न होने पर ईप् और णत्व नहीं होता। जैसे—द्विहायना, त्रिहायना, चतुर्हायना शाला (चार सालों का दालान)।

इकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से ईप् होता है। जैसे-श्रेणी,

श्रेणि:; राजी, राजि:; आली, आलि:; कटी, कटि:; रात्री, रात्रि:; रजनी, रजनि:; शारी, शारि:; षष्टी, षष्टि:; अही, अहि:; कपी, कपि:; मुनी, मुनि:; शकटी, शकटि: ।

क्ति प्रत्यय-निष्पन्न इकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ङीष् नहीं होता। जैसे—गति:, स्थिति:, कृति:, मति: भक्ति:, युक्ति:, बुद्धि: । किन्तु सखि शब्द के उत्तर नित्य ङीष् होता है । जैसे—सखी ।

समास में पति शब्द के उत्तर पद होने से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होकर विकल्प से न का आगम होता है । जैसे—गृहपति—गृहपति:, गृहपत्नी (घर की मालकिन) ।

सपत्नी आदि शब्द में नित्य न का आगम होता है । जैसे-समानः पतिः यस्या सा-सपत्नी (सौत), एक: पति: यस्या: सा-एकपत्नी (साध्वी), वीर: पतिरस्या:-वीरपत्नी, वृद्ध: पतिरस्या:-वृद्धपत्नी, भद्र: पतिरस्या:— भद्रपत्नी, पञ्च पतयोऽस्या:—पञ्चपत्नी द्रौपदी, पतिरस्त्य-स्या: पतिवत्नी (सौभाग्यवती), अन्तरस्त्यस्या:—अन्तर्वत्नी (गर्भवती) ।

बहुव्रीहि-समास होने पर पाद्-भागान्त प्रातिपदिक के उत्तर ङीप् होता है । जैसे, द्वौ अस्या: पादौ—द्विपदी (दो पैरों वाली,) त्रयो अस्या: पादा:—त्रिपदी । इसी प्रकार-चतुष्पदी, बहुपदी, शतपदी । दूसरे पक्ष में द्विपात्, त्रिपात् । वेदमन्त्र समझाने से टाप् होता है । जैसे—द्विपदा ऋक्, त्रिपदा गायत्री ।

पत्नी अर्थ समझाने से पाणिगृहीत शब्द के उत्तर ङीष् होता है । जैसे—पाणिर्गृहीतोऽस्या:—पाणिगृहीती पत्नी । अन्यत्र पाणिगृहीता नारी । गुणवाचक उकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर विकल्प से ङीष् होता है । जैसे – मृद्वी; मृदु:, साध्वी, साधु:; पट्वी, पटु:; गुर्वी, गुरु:; लघ्वी, लघु:; अण्वी, अणु:; स्वाद्वी, स्वादु:; बह्वी, बहु: ।

जिन गुणवाचक उकारान्त प्रातिपदिक के उपधा स्थल में संयुक्त वर्ण रहता है उसके उत्तर ऊप् नहीं होता । जैसे—पाण्डु: ।

उकारान्त प्रातिपदिक के उत्तर ऊङ् होता है । ङ् इत्, ऊ रहता है । जैसे—कुरू:, कद्रू:, अलाबू:, कर्कन्धू: भीरू:, पङ्गू: ।

प्राणि-भिन्न जातिवाचक शब्दों के उत्तर ऊङ् होता है। जैसे, अलाबूः, कर्कन्धूः, सरयूः। परन्तु रज्जु आदि के उत्तर नहीं होता। जैसे—रज्जुः, धेनुः, आखुः, हनुः, कमण्डलुः, कृकवाकुः, वृत्तबाहुः, अध्वर्युः।

तनु आदि उकारान्त प्रातिपादिक के उत्तर विकल्प से ऊङ् होता है। जैसे—तनूः, तनु; चञ्चूः, चञ्चुः।

श्वशुर शब्द के उत्तर ऊङ् होता है और श्वशुर शब्द के उकार और अकार का लोप होता है। जैसे—श्वशुरस्य जाया—श्वश्रूः (सास)।

उपमा समझाने से ऊरू इस प्रातिपदिक के उत्तर ऊङ् होता है। जैसे—रम्भे इव अस्या ऊरू—रम्भोरूः (केले के पेड़ के समान जाँघों वाली), करभाविवास्या ऊरू—करभोरूः (हाथी के सूँड के समान जाँघोंवाली), करिकराविवास्या ऊरू—करिकरोरूः (हाथी के सूँड के समान जाँघोंवाली।

संहिता आदि शब्दों के परवर्त्ती ऊरु इस प्रातिपदिक के उत्तर ऊङ् होता है। जैसे—संहितोरूः, वामोरूः, सहितोरूः, सहोरूः, लक्षणोरूः, शफोरूः।

अभ्यास

(१) शतृप्रत्ययान्त शब्द के स्त्रीलिङ्ग रूप का प्रयोग कर वाक्य बनाओ।

(२) उदाहरण दो, जिनमें ह्रस्व उकारान्त गुणवाचक विशेषण स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हुआ हो।

नीचे लिखे शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप बताओ—

आचार्य, अश्व, गोप, शूद्र, धातृ, विद्वस्, पुत्र, सखि, भव, व्याघ्र, ईदृश, मूषिक, हय, रुद्र, श्वशुर, पाचक, नर, सेवक, शिव, पति, राजन्, सुन्दर, हरिण, उदच्, पुत्रक, चटक, मातुल, सुकण्ठ, सुगात्र, पृच्छत्, अग्नि, मनु, रजक, यवन, सूर्य, पाणिगृहीत, स्थल, काल, नील, वैश्य, कवर।

व्याकरण के अनुसार भेद बताओ—उपाध्यायानी और उपाध्याया, आचार्यानी और आचार्या, क्षत्रियाणी और क्षत्रिया, शूद्री और शूद्रा ।

ऐसे कुछ शब्द बताओ जिनके स्त्रीलिङ्ग में एकाधिक रूप हैं और अर्थ भिन्न-भिन्न हैं ।

नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—बलवान् में लज्जा । विदुषीं स्त्रीं पूजय । अत्र ब्रह्मपुत्रः अतिवेगवती । नर्तकानां गायकीनां च अत्र समावेशः । इयं वराही इयं च अश्वी । चटुलनयनी स रमणी । इयं नर्तकी सुगायकी । रामः सर्वेषां प्रकृतीनां प्रियोऽभवत् । अपरा हि सत्यस्य महिमा । शूद्राण्यां इयं पञ्चमा दुहिता । यादृशा तृतीया कन्या तादृशैव चतुर्था । अश्विनी मारुतस्य यवनानी गच्छति ।